गुरु नानक वाणी प्रकाश

(भाग पहला)

टीकाकार

डॉ. तारन सिंह



पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला

गुरु नानक वाणी प्रकाश

भाग पहला

टीकाकार

डॉ० तारन सिंह



पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला

टीकाकार
स्वर्गीय डॉ० तारन सिंह

पहली पोथी : मई, 1986
पहली बार : 1100
मूल्य :
Price Rs. 75-00

स. दविन्दर सिंह, रजिस्ट्रार, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला ने
यूनिवर्सिटी प्रेस से छपवाई ।

दो शब्द

इस समय सिक्ख धर्म के विषय में जानकारी की उत्सुकता बहुत अधिक हैं। सिक्ख धर्म को समझने के लिए सर्वोत्तम माध्यम गुरु वाणी है। इस क्षेत्र में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब अध्ययन विभाग का जो योगदान है, वह श्लाघनीय है। डॉ० तारन सिंह इस विभाग के संचालक थे। बड़े दुःख की बात है कि अब वे हमारे साथ शारीरिक रूप में नहीं हैं परन्तु अपनी रचनाओं के माध्यम से वे सदैव हमारे साथ हैं। "गुरु नानक वाणी प्रकाश" पुस्तक पहले पंजाबी में छपवाई गई थी। इसी का हिन्दी अनुवाद इस समय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। मैं आशा करता हूं कि इस पुस्तक से हिन्दी ज्ञाताओं को गुरु नानक देव जी के विचारों से परिचित कराने का उद्देश्य पूर्ण हो जाएगा।

सिक्ख धर्म में किसी प्रकार के वर्ण-विभाजन का विधान नहीं हैं और न ही सिक्ख धर्म किसी विशेष प्रान्त तक सीमित है। गुरु नानक वाणी प्रकाश से स्पष्ट हो जाता है कि सिक्ख धर्म सम्पूर्ण विश्व के लिए है। गुरु नानक द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चल कर प्राणी सदैव "सरबत के भले" (सब के कल्याण) की कामना करता है। सिक्ख यदि भय को सहन नहीं करता तो वह अन्य को भयभीत करना भी नहीं चाहता। श्री गुरु तेग बहादुर जी को "हिन्द दी चादर" कहा जाता है। उनका वचन है :

भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आन ॥
कहु नानक सुनि रे मना गिआनी ताहि बखानि ॥

आज के सन्तप्त युग में गुरु की वाणी को ही उचित मार्ग प्रदर्शन करना है। इसी आशा से यह पुस्तक पाठकों तक पहुँचाई जा रही हैं।

भगत सिंह (डॉ०)
उप-कुलपति

मई, 1986

भूमिका

श्री गुरु नानक देव जी ने 1469 ई० में सिक्ख धर्म की नींव रखने के समय निम्नलिखित वचन कहे थे :

"न को हिन्दू न को मुसलमान।"

वेईं नदी में प्रवेश करते समय उच्चारित इन शब्दों को जन्म साखियों ने सम्भाल रखा है। इसी भावना का समर्थन गुरदास जी ने अपनी प्रथम वार में किया है। मक्के की तीर्थ-यात्रा के समय गुरु जी ने पूछे गए प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया था :

पुछनि फोलि किताब नो हिन्दू वडा कि मुसलमानोई ?
बाबा आखे हाजीआं सुभि अमला बाझहु दोनों रोई ॥(१:३३)

इससे स्पष्ट है कि जिस धर्म-चिन्तन की नींव गुरु नानक देव जी ने रखी उसमें जन्म पर आधारित वर्ण-विभाजन को कोई स्थान प्राप्त नहीं था। यही कारण है कि पांच शताब्दियों के स्वल्प काल में ही गुरु वाणी ने जिस प्रकार के इतिहास एवं सभ्याचार की सृजना एवं स्थापना की है वह अपने स्वभाव, प्रभाव एवं अभिव्यक्ति में विलक्षण है। धर्म-चिन्तन के सन्दर्भ में गुरमति चिन्तन के लक्षणों के आधार पर भी उपर्युक्त धारणा का समर्थन हो जाता है। गुरमति चिन्तन में धार्मिक सम-स्वरता एवं भ्रातृत्व को प्रधानता प्राप्त है। मनुष्य गुरु वाणी के नेतृत्व के अधीन जिन नैतिक नियमों का पालन करता है उनमें किरत (व्यवसाय) करनी, नाम का जाप करना एवं बाँट कर खाना आदि को गिना गया है। मनुष्य को मनुष्य की अधीनता से बचाने के लिए सशक्त प्रबन्ध किया गया है। इस व्यवस्था में सिद्धान्त एवं व्यवहार में एक स्वर रहना है। इस एक-स्वरता में से उत्पन्न होने वाले व्यक्तित्व के उदाहरण सिक्ख इतिहास

से उद्धृत किए जा सकते हैं।

गुरु वाणी को "धुर की बाणी" का स्थान प्राप्त है। यह सचाई है कि वाणी के आँचल से लगने के परिणाम-स्वरूप "सगली चिन्ता" मिट जाती हैं। मानव के लिए वाणी ऐसी निधि है जो व्यय करने पर वृद्धि को प्राप्त होती हैं। इस निधि के साथ सम्बन्धित प्राणी सन्तुलित मानसिकता का स्वामी बन जाता है। वाणी को जिज्ञासु साधकों ने अपने दैनिक जीवन में प्रयोग में लाना है। यह प्रयोग वाणी के प्रकाश में जीवित जीवन ही है। इसकी प्राप्ति प्रभु-कृपा से ही होती है। कृपा को आध्यात्मिक सन्दर्भ में देखे जाने की आवश्यकता है। पदार्थ-साफल्य कृपा का माप-दण्ड नहीं है। गुरु नानक देव जी के सिक्ख (शिष्य) ने "बन्दगी" एवं "बुध बिबेक" की याचना करनी है। गुरु जी के इस सन्देश को संसार के प्रत्येक प्राणी तक पहुंचाने के लिए सर्वोच्च माध्यम गुरु जी की वाणी है; जैसा कि उप-कुलपति महोदय ने पीछे "दो शब्द" में संकेत किया है। इसी आदर्श को ध्यान में रखकर "गुरु नानक वाणी प्रकाश" को पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

विभाग में सम्पूर्ण श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का शब्दार्थ हिन्दी में किया जा रहा है। यह शब्दार्थ प्रसिद्ध विद्वान् प्रोफैसर गुलवन्त सिंह जी की देख-रेख में किया जा रहा है। इस शब्दार्थ की पहली पोथी प्रैस में छपने के लिए दी जा चुकी है। दूसरी पोथी का कार्य पूर्ण हो चुका है और तीसरी पोथी का कार्य चल रहा है। शब्दार्थ में हिन्दी रूपान्तर के समय कुछ अन्तर भी पाए गए हैं। उदाहरणार्थ "गुरु नानक वाणी प्रकाश" में १ओं को बदल कर १ओं कर दिया गया है।

यह पुस्तक स्वर्गीय डॉ० तारन सिंह के परिश्रम का फल है। जैसा कि "क्रम" में उन्होंने स्वयं ही बतलाया है, "बाणी प्रकाश" को तैयार करने के लिए टीकाकारों के पूर्व परिश्रम से लाभ उठाया गया है। इस पुस्तक के प्रकाशन के समय अपने जीवन-काल में डॉ० तारन सिंह पुस्तक की भूमिका नहीं लिख पाए। संयोगवश यह दायित्व मुझ पर आ पड़ा है। डॉ० तारन सिंह मिशनरी कालिज अमृतसर में सन् 1964-66

तक मेरे माननीय अध्यापक भी रहे, इस बात का मुझे गौरव है। फिर 1970 से 1980 तक मैं उनके निर्देशन में विभाग के सदस्य के रूप में काम करता रहा। उनके परिश्रम, लगन एवं दृढ़ता से मैंने बहुत कुछ सीखा है। आज उनके परिश्रम के विषय में कुछ कहते हुए मेरा सिर श्रद्धा से झुक जाता है। "गुरु नानक वाणी प्रकाश" के इस प्रथम भाग में तिलंग राग तक की वाणी का टीका दिया गया है। इस पोथी के प्रूफ़ पढ़ने का कार्य डॉ० बी. ऐम. शर्मा, रीडर, हिन्दी विभाग, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला ने किया है। उनके परिश्रम का सत्कार है। डॉ० भगत सिंह, उप-कुलपति जी ने अपना नाम इस पुस्तक के साथ जोड़ा है, मैं इसके लिए उनका धन्यवाद करता हूँ।

मेरा विश्वास है कि इस पुस्तक का हिन्दी भाषी क्षेत्रों में भरपूर स्वागत होगा।

बलकार सिंह
अध्यक्ष

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब अध्ययन विभाग,
पंजाबी यूनिवर्सिटी,
पटियाला।
मई, 1986

क्रम

नोट : डॉ० तारन सिंह का निधन जनवरी 1980 में हुआ था। इन्होंने यह क्रम "गुरु नानक वाणी प्रकाश" को पंजाबी में शोद्ध कार्य करने के लिए लिखा था। यह पुस्तक उसी का लिपियांत्रण है। इसलिए क्रम का हिन्दी लिपियांत्रण यहां दिया जा रहा है।

"गुरु नानक वाणी प्रकाश" में श्री गुरु नानक देव जी की सम्पूर्ण वाणी उसी क्रम एवं राग-क्रम के अनुसार संकलित की गई है जिस क्रम एवं राग क्रम में वह श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में विद्धमान है। वाणी का मूल पाठ शब्दार्थ चार पोथियों (संचियों) से लिया गया है। मूल वाणी के साथ साथ पद-अर्थ और पूर्ण अर्थ दिया गया है। जहां पर बहुत आवश्यकता अनुभव की वहां प्रस्तावना अथवा विशेष तुकें भी दी गई हैं। पद-अर्थ एवं टीका के लिए 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब" के निम्नलिखित प्रामाणिक सटीक और कोशों की सहायता ली गई हैं।

1. शब्दार्थ (चार भाग)	शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी
2. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब दर्पण (दस भाग)	प्रो० साहिब सिंह
3. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी आदि सटीक (चार भाग)	फरीद कोट वाला टीका
4. सन्थ्या श्री गुरु ग्रन्थ साहिब (सात पोथियां)	भाई वीर सिंह
5. श्री गुरु ग्रन्थ कोश (तीन भाग)	खालसा ट्रैक्ट सोसाईटी, अमृतसर।

मूल वाणी की प्रत्येक पंक्ति को अंक लगाया गया है। टीका की पंक्ति का अंक भी वही दिया गया है। जो मूल पाठ की पंक्ति का अंक है। टीका में जहां आवश्यकता के अनुसार शब्द अपनी ओर से भावार्थ की पूर्ति के लिए अथवा आवश्यक व्याख्या के लिए प्रयोग किए गए हैं उन्हें ब्रैकटों में रखा गया है। टीका में प्रत्येक स्थान पर "नानक" शब्द को जहां प्रतीक के रूप में आया है ब्रैकट में रखा गया है परन्तु जहां पर कर्त्ता कारक अथवा कर्म कारक के रूप में आया है वहां ब्रैकट में नहीं रखा गया। मूल पाठ के प्रारम्भ में राग की सूचना एक बार ही दी गई है। काव्य के रूप यथा, पद, अष्टपदी, छन्द आदि की सूचना प्रत्येक राग में एक बार ही दी गई है परन्तु प्रत्येक पद, अष्टपदी, छन्द आदि का अंक पृथक् पृथक् दिया गया है। विशेष वाणियां जैसे सोदरु, आरती, अलाहणीयां, कुचजी, सुचजी, ओअंकार (ओंकार) सिध गोसटि, वारां आदि की सूचना भी श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के अनुसार ही दी गई है। गुरु नानक देव जी द्वारा रचित तीनों वारें उसी रूप में दी गई हैं जिस रूप में वे श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में संकलित हैं अर्थात् इन वारों में दूसरे गुरुओं के श्लोक भी हैं उन्हें भी दे दिया गया है। परन्तु दूसरे गुरुओं के श्लोकों के अर्थ एवं टीका नहीं दी गई। अन्य गुरुओं द्वारा रचित वारों में जहां जहां गुरु नानक देव जी के श्लोक आए हैं वे श्लोक शब्द अर्थ एवं टीका सहित दे दिए गए हैं। गुरु नानक देव जी के जो शब्द (श्लोक) दो अथवा तीन बार आए हैं उनका टीका एक स्थान पर ही दिया गया है जहां पर वे पहली बारी "श्री गुरु ग्रन्थ साहिब" में आए हैं।

तारन सिंह (डॉ.)

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ।

नोट :— इस को मूल मंत्र कहा जाता है। यह जपुजी, अथवा किसी अन्य वाणी, का भाग नहीं, प्रत्युत यह समस्त दीर्घ वाणियों एवं रागों के प्रारम्भ में दिया गया है। इसमें वे आधारभूत सिद्धान्त हैं जिन पर सिक्ख धर्म का भवन खड़ा किया गया है। इस में परमात्मा के स्वरुप के कुछ आवश्यक अंग हैं, और उसे (परमात्मा को) प्राप्त करने के लिए गुरु की आवश्यकता दृढ़ कराई गई है। इसका संक्षिप्त रुप '१ओं सतिनामु करता पुरखु गुर प्रसादि' है और इससे भी संक्षिप्त '१ओं सतिगुर प्रसादि' है।

पद-अर्थ

१ओं—(केवल) एक ओंकार, निराकार परमात्मा; **सतिनामु**—उसका नाम है सत्य (शाश्वत) 'सतिनामु तेरा परा पूरबला'; **करता पुरखु**—स्रष्टा पुरुष (अस्तित्व, सत्ता) जैसे अकाल पुरुष, सतिपुरुष, पूर्ण पुरुष आदि; **निरभउ**—जिसे किसी का भय नहीं, क्योंकि उसके कर्म दोषरहित (पवित्र) हैं, 'सो डरै जि पाप कमावदा धरमी विगसेतु,' 'सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेखु। नानक निरभउ निरंकारु सचु एकु'; **निरवैर**—वैर से रहित है (क्योंकि वह प्रेम-स्वरुप है); **अकाल मूरति**—वह सत्ता जो समय के प्रहार से परे है, वह सदा एक समान है; **अजूनी**—वह योनि से परे है, न जन्म लेता है न मरता है; **सैभं**—स्वतः सत्तावान है; **गुर प्रसादि**—गुरु की कृपा से (मिलता है)।

टीका

परमात्मा केवल एक है; उसका नाम है शाश्वत; वह कर्ता पुरुष है; वह भयरहित है; वह वैररहित है (वह प्रेम-स्वरुप है); वह समय के प्रहार से परे है; वह योनि से परे है (न जन्म लेता है न मरता है) वह स्वतः सत्तावान् है; वह गुरु की कृपा से प्राप्त होता है।

जपु

नोट :—जपु का आरम्भ एक 'शलोक' (श्लोक) के साथ किया गया है, अन्त में भी एक 'शलोक' ही है।

१. **आदि सचु जुगादि सचु ।**

२. **है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥१॥**

पद-अर्थ

जपु—आगे आने वाली वाणी का नाम 'जपु' है। इसे आदरार्थ 'जपु जी' कहा जाता है; **आदि**—आरम्भ से, (सृष्टि के निर्माण से भी पहले का अनन्त समय); **जुगादि**—युगों के आरम्भ से, काल अर्थात् सृष्टि के आरम्भ से; **सचु**—सत्य स्वरूप; **होसी**—भविष्यत् में रहेगा।

टीका

१. (वह परमात्मा) आदिकाल से सत्स्वरुप है, सृष्टि के आरम्भ से सत्स्वरुप है।

२. वह अब भी सत् है, (नानक) वह भविष्यत् में भी सत् रहेगा।

१

१. **सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार ।**

२. **चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिव तार ।**

३. **भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार ।**

४. **सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि ।**

५. **किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि ।**

६. **हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि ।१।**

पद-अर्थ

सोचै—मनन से; **सोचि न होवई**—बुद्धिगम्य नहीं होता; **चुपै**—चुप समाधि से, मौन धारण करने से; **लिव तार**—ध्यान की धारा, एकाग्र चित्तवृति, सतत समाधि; **भुखिया**—भूखों की (भूखे मन, इन्द्रियों

ग्रौर ग्रात्मा की); **पुरीग्रा**—तीनों पुरियों के ग्रर्थात् त्रिलोकी के; **सहस**—सहस्रों; **सिग्राणपा**—चतुरताएँ; **सचिग्रारा**—सत्याचारशाली, सदाचारशाली, ईश्वर-परायण; **पालि**—दीवार, पर्दा; **हुकमि**—ग्रादेश के ग्रनुसार; **रजाई**—ग्रपनी इच्छा के स्वयं स्वामी प्रभु के; **लिखिग्रा नालि**—ग्रंत:करण में ग्रंकित है ।

टीका

१. (गत 'श्लोक' में बतलाया गया है कि परमात्मा शाश्वत सत्य है। जीवन का उद्देश्य पूर्ण करने के लिये उस सत्य को प्राप्त करना ग्रावश्यक है ग्रौर वह प्राप्त किया जा सकता है । परन्तु किस प्रकार ? जब कि) मनन करने से वह मनन में नहीं ग्राता, चाहे मैं लाखों बार मनन करुं (वह बुद्धि का विषय ही नहीं । वह तो इन्द्रियों ग्रौर मन से परे है) ।

२ (मनन का त्याग करके) मौन धारण करने से (मन ग्रौर इन्द्रियों के विषयों से) मौनिता, विरति नहीं होती (ग्रतएव सत्य प्राप्त नहीं होता, 'सुचि होवै ता सचु पाईऐ') चाहे मैं निरन्तर पूर्ण समाधि लगाए रखूं ।

३. (दूसरी ग्रोर, सत्य की प्राप्ति किए बिना) मेरी भूखी इन्द्रियों, भूखे मन तथा ग्रात्मा की भूख शान्त नहीं होती, चाहे मैं चौदह भुवनों के (पदार्थों के) भार भी बांध लूं ('भुखिया भुख न उतरै, गली भुख न जाइ । नानक भुखा ता रजै जा गुण कहि गुणी समाइ' । 'साचु नामु ग्रधार मेरा जिनि भुखा सभि गवाईग्रा') ।

४. चाहे मैं लाखों चातुर्य करुं परन्तु (मेरी) एक भी (भूख नहीं उतारता) क्योंकि, यह चातुर्य उस सत्य तक नहीं पहुंचाता (जहां समस्त लालसाएं समाप्त हो जाती हैं) ।

५. (तो फिर) सत्य (सत्यवान, ईश्वर-परायण) कैसे बना जाए ? मिथ्या की भित्ति (जो हमारे ग्रौर परमात्मा के मध्य खड़ी है) कैसे टूटे ?

६. (उत्तर है) स्वतन्त्रेच्छाशाली प्रभु के ग्रादेश के ग्रनुसार ग्राचरण करने से (ग्रपनी इच्छा को उस प्रभु की इच्छा में मिला देने से), जो ग्रादेश हमारे हृदय में (ग्रारम्भ से) ग्रंकित है (परमात्मा भीतर बसता है । ग्रत: उसका ग्रादेश भी भीतर ही है) । हमारा ग्राचरण

उसके आदेश के अनुकूल होना चाहिए। अन्दर रहनेवाला प्रभु का आदेश-शब्द अन्दर सुना जा सकता है। चाहे वह धीमा हो जाए परन्तु सर्वथा नष्ट नहीं होता। जब भीतर की ज्योति नाम के बल से जग पड़ती है तब अन्दर का शब्द भी स्पष्ट सुनाई देता है और जीवन, ईश्वर-परायण हो जाता है। तब इस जीवन से सत्य, प्रेम, परोपकार, दया, धैर्य आदि गुण वैसे ही स्वतः निकलते हैं जैसे परमात्मा से निकलते हैं। नाम की विधि इस 'पउड़ी' में नहीं बतलाई गई। वह अन्यत्र बतलाई गई है। जैसे, 'तेरा सदड़ा सुणीजै भाई जे को बहै अलाइ' (सूही, महला १), 'जपु जी' में यही विधि आगे चल कर चौथी 'पउड़ी' में बतलाई गई है। क्योंकि, पहले आदेश का बोध कराना था जो दूसरी और तीसरी 'पउड़ी' में कराया गया है।१।

२.

१. **हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई।**

२. **हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई।**

३. **हुकमी उतमु नीचु हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि।**

४. **इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि।**

५. **हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ।**

६. **नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ।२।**

पद-अर्थ

हुकमी—आदेश के अनुसार; **आकार**—शरीर।

टीका

१. (आदेश के द्वारा जगत् की रचना कर दी गई है। जिस हरि का आदेश मनुष्य के भीतर लिखा गया है उसी का आदेश बाहर की शारीरिक रचना में भी वर्तमान है)। (उसके) आदेश के अनुसार आकार बने हैं; यह आदेश बतलाया नहीं जा सकता।

२. (उसके) आदेश से ही (समस्त) जीव बने हैं।; (पुनः, आदेश के अनुसार ही समस्त जीवों में से) मनुष्यों को महत्ता मिली है, 'माणस कउ प्रभि दीई वडिआई'।

३. (उसके) आदेश के अनुसार ही मनुष्यों में कोई उत्तम **और** कोई नीच हो गया है। और, फिर आदेश के अनुसार ही अपने अपने कर्मों के अनुसार मनुष्य सुख-दुःख पाते हैं। (आदेश उस हरि के बनाए नियमों का रूप ले रहा है)।

४. आदेश के अनुसार अर्थात् नियमों के अनुसार ही कई मनुष्यों पर कृपा होती है और कई आदेश के अनुसार ही सदा जन्म-मरण के चक्र में घुमाए जाते हैं।

५. प्रत्येक प्राणी आदेश के अधीन हैं। आदेश के बाहर कोई भी नहीं है।

६. (नानक) यदि कोई मनुष्य यह समझ ले कि सब कुछ परमात्मा के आदेश के अनुसार हो रहा है तो फिर वह अहन्त्व प्रकट नहीं करता (क्योंकि, वह अपनी सत्ता की तुच्छता अनुभव करके अपना शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन आदेश, प्राकृतिक एवं ईश्वरीय नियमों, के अधीन कर लेता है)।

३,

१. गावै को ताणु होवै किसै ताणु।
२. गावै को दाति जाणै नीसाणु।
३. गावै को गुण वडिआइआचार।
४. गावै को विदिआ विखमु विचारु।
५. गावै को साजि करे तनु खेह।
६. गावै को जीअ लै फिरि देह।
७. गावै को जापै दिसै दूरि।
८. गावै को वेखै हादरा हदूरि।
९. कथना कथी न आवै तोटि।
१०. कथि कथि कथी कोटी कोटि कोटि।
११. देदा दे लैदे थकि पाहि।
१२. जुगा जुगंतरि खाही खाहि।
१३. हुकमी हुकमु चलाए राहु।
१४. नानक विगसै वेपरवाहु।३।

पद-अर्थ

को—कोई; **ताणु**—शक्ति बल; **दाति**—प्रदत्त वस्तुओं को; **नीसाणु**—चिह्न, उसकी महत्ता का चिह्न; **चार**—चारू; **विखमु वीचारु**—कठिन विचार (दर्शन) को; **खेह**—मिट्टी; **कथना**—कथन; **न आवै तोटि**—समाप्त नहीं होता है; **विगसै**—प्रसन्न होता है।

टीका

१. (जगत् में व्याप्त इस चामत्कारिक आदेश का प्रकाश जीवों ने अपनी अपनी बुद्धि और रुचि के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार से देखा है) जिसे प्रभु की ओर से बल मिलता है, वह (यह समझता है कि वह प्रभु अवश्य ही शक्तिमान् है। अतः (वह) उसके बल को ही गाता है (कि वह महाबलवान् है)।

२. कोई उसकी प्रदत्त वस्तुओं को उसकी महत्ता का चिह्न समझ कर उसकी प्रशंसा करता है।

३. कोई उसके गुणों और उसकी सुन्दर महत्ताओं को गाता है।

४. कोई उसके कठिन विचार (दर्शन) को विद्या द्वारा गाता है।

५. कोई गाता है कि वह प्रभु शरीर बनाकर फिर आप ही मिट्टी कर देता है।

६. कोई गाता है कि वह जीवात्माओं को ले लेता है और फिर उनको अन्य शरीरों में प्रविष्ट कर के (जन्म-मरण का चक्र चलाता है)

७. कोई गाता है कि वह प्रतीत तो होता है परन्तु दूरस्थ प्रतीत होता है।

८. कोई उसका गान करता हुआ कहता है कि वह दृष्टिगोचर (प्रत्यक्ष) हो कर सब को देख रहा है (सब की संभाल कर रहा है)।

९. उसके गुणों के वर्णन कहने से समाप्त नहीं होते।

१०. करोड़ों ने (उसकी कथा) कितनी बार कह-कह कर फिर फिर कही है।

११. (वह दाता) दान करता है और लेने वाले (ले लेकर) थक जाते हैं (देने वाला न उदास होता है न थकता है)।

१२. उसके वे दान, युग—युगान्तरों से जीव खाते आ रहे हैं।

१३. आदेशकारी प्रभु का आदेश इस संसार का कार्य चला रहा है।

१४. (नानक) वह परमोदार है (फिर भी) स्वयं सदा प्रसन्न है। इतना काम करते हुए भी वह चिन्ताहीन होकर प्रसन्न रहता है।३।

४

१. साचा साहिबु साचु नाइ भाखिआ भाउ अपारु।

२. आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारु।

३. फेरि कि अगै रखीऐ जितु दिसै दरबारु।

४. मुहौ कि बोलणु बोलीऐ जितु सुणि धरे पिआरु।

५. अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु।

६. करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु।

७. नानक एवै जाणीऐ सभु आपे सचिआरु।४।

पद-अर्थ

नाइ—नाम के द्वारा; **भाखिआ**—भाषा; **भाउ**—प्रेम; **कपड़ा**—अर्थात् शरीर, जन्म; **नदरी**—कृपा से; **मोखु**—मुक्ति; **दरु**—प्रभु का द्वार।

टीका

१. (अब प्रभु की इच्छा को जानने और उसमें अपनी इच्छा को मिला देने का व्यवहारिक मार्ग दिखाते हैं) प्रभु सत्य स्वामी है। वह सत्य-स्वरूप प्रभु नाम के द्वारा मनुष्य के अन्तःकरण में प्रत्यक्ष किया जाता है। (कैसे ?) उसकी भाषा प्रेम है अर्थात् वह प्रेम की भाषा समझता है (चाहे) वह अपार है—(वह अपार होते हुए भी मनुष्य हृदय में प्रत्यक्षरुपतया देखा जा सकता है—'जिन प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पाइओ')।

२. अतः (उसके भक्त) उससे प्रेम का दान मांगते हैं (और गहरी श्रद्धा-भावना से) उससे कहते हैं कि हे प्रभु, प्रेम दे और दाता प्रेम का दान देता है। (अगली तीन पंक्तियों में इन विचारों की ही व्याख्या, प्रश्न—उत्तर के रुप में की गई है)।

३. तो फिर उसके सम्मुख क्या ढौंक (भेंट) रखी जाए जिससे उस के दरबार के (उसके) दर्शन हो जाते हैं ?

४. मुख से क्या शब्द बोले जाते हैं,जिसे सुनकर वह अपना प्रेम देता है ?

५. (उत्तर यह है) ब्रह्म मुहूर्त हो (जब कि मन की वृत्तियां अधिक नियंत्रित होती हैं), उस समय सच्चे-नाम का स्मरण किया जाए और उसकी महत्ताओं का विचार किया जाए।

६. (यह भक्तिमार्ग है जिससे उसकी कृपा प्राप्त की जाती है) केवल कर्मों से तो शरीर रुपी कपड़ा मिलता रहता है (जन्म-मरण समाप्त नहीं होता) परन्तु मुक्ति का द्वार उसकी कृपा से ही मिलता है (और वह कृपा भक्तिभाव से प्राप्त होती है)।

७. (नानक) इस प्रकार ज्ञात होता है कि वह सत्-स्वरुप प्रभु स्वंय ही सब कुछ (प्रत्येक हृदय के भीतर) है (क्योंकि अपने भीतर ही वह साक्षात् देख लिया जाता है) ।४।

५

१. थापिआ न जाइ कीता ना होइ ।
२. आपे आपि निरंजनु सोइ ।
३. जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु ।
४. नानक गावीऐ गुणी निधानु ।
५. गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ ।
६. दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ ।
७. गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं गुरमुखि रहिआ समाई ।
८. गुरु ईसरु गुरु गोरखु बरमा गुरु पारबती माई ।
९. जे हउ जाणा आखा नाही कहणा कथनु न जाई ।
१०. गुरा इक देहि बुझाई ।
११. सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई ।५।

पद-अर्थ

थापिआ—मूर्ति रूप में स्थापित किया; **कीता**—(मूर्ति के समान) बनाया; **निरंजनु**—माया से रहित; **गुणी-निधानु**—गुणों का भडार;

परहरि—दूर कर के; **घरि**—अर्थात् हृदय घर में; **गुरमुखि**—मुख्य गुरु, गुरु जनों का गुरु, परमात्मा; **नाद**—नाद, शब्द जो भीतर होता हुआ माना जाता है; **गुरु**—हरि, गुरु; **वेदं**—वेद; **गोरखु**—विष्णु।

टीका

१. (इस 'पउड़ी' में नाम अथवा शब्द की साधना को सबसे श्रेष्ठ दिखलाया गया है। इसकी तुलना में मूर्तियों अथवा देवी-देवताओं की पूजा तुच्छ है)। परमात्मा (मन्दिर में मूर्तियों के समान) स्थापित नहीं किया जा सकता और न ही वह (मूर्ति आदि के समान) किसी के बनाने से बन सकता है।

२. (क्योंकि) वह स्वयंभूत है और माया से भी रहित है)।

३. जिस मनुष्य ने उसकी आराधना की है, उसने मान प्राप्त किया है।

४. (नानक) (आओ) हम भी उस गुणों के भंडार प्रभु की स्तुति-प्रशंसा करें।

५. उसकी स्तुति-प्रशंसा करें और सुनें, तथा मन में उसका प्रेम स्थिर करें।

६. (जो इस प्रकार करता है, वह अपने) दुःख दूर करके हृदय में सुख बसा लेता है।

७. अतः हमने हरि-गुरु को ही नाद बनाया है और हरि-गुरु को ही वेद बनाया है, उस हरि-गुरु को जो विश्व में व्याप्त है। अर्थात् हमने हरि-गुरु के शब्द की साधना से नाद, वेद के फल प्राप्त कर लिए हैं। हरि-गुरु की पूजा में सब कुछ आ जाता है।

८. हरि-गुरु ही (हमारे लिए) शिव है, हरि-गुरु ही गोरख (विष्णु) है, ब्रहमा है और हरि-गुरु ही हमारे लिए पार्वती (शिवजी की पत्नी) और माया (विष्णु की पत्नी) है। (हमने अन्य समस्त प्रकार की पूजा का त्याग कर दिया है और हरि-गुरु की पूजा ग्रहण कर ली है। क्योंकि, उस अनन्त की तुलना में किसी अन्य पूजा का मूल्य ही नहीं रहता)।

९. यदि मैं उस (अनन्त) हरि-गुरु को जान लूं तो भी कह नहीं सकता। वह कथन से परे है।

१०. (मेरी यही प्रार्थना है) हे मेरे गुरु ! मुझे केवल यह बुद्धि दे।

११. कि समस्त जीवों का जो एक हरि-गुरु दाता है, मैं (किसी अन्य पूजा में लग कर) उसको विस्मृत न कर दूं ।५।

६

१. तीरथि नावा जे तिसु भावा विणु भाणे कि नाइ करी ।

२. जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई ।

३. मति विचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी ।

४. गुरा इक देहि बुझाई ।

५. सभना जीआ का इकु दाता सो मैं विसरि न जाई ।६।

पद-अर्थ

तीरथि—तीर्थ पर; **नावा**—मैं स्नान करुं; **भावा**—प्रसन्न करूं; **सिरठि**—सृष्टि ।

टीका

१. (वे कर्मकांड जो प्रभु की प्रसन्नता प्राप्त नहीं करते, व्यर्थ हो जाते हैं) मैं तीर्थ पर स्नान तब करूं यदि ऐसा करने से मैं उस प्रभु को प्रसन्न कर सकूं, (और वह इस प्रकार कि तीर्थ से प्रेरणा लेकर मैं भीतर का मल नष्ट कर दूं, अथवा तीर्थ को नाम का साधन बनाकर अपना आत्मविकास कर लूं 'तीरथि नावण जाउ तीरथु नामु है।' केवल परम्परा के पालन के लिए डुबकी लगाने से परमात्मा प्रसन्न नहीं होता) और यदि मैं परमात्मा को प्रसन्न न कर सकूं तो मैं नहाकर क्या प्राप्त करुंगा ?

२. मैं परमात्मा की उत्पादित जितनी भी सृष्टि देखता हूं, उसमें कर्मों (सौभाग्य) के बिना क्या मिलता है जो मैं ले सकूं ? (कुछ नहीं मिलता । अच्छा भाग्य आत्मविकास करके उसकी प्रसन्नता प्राप्त करने से बनता है, केवल डुबकी लगाने से नहीं) ।

३. (अच्छा भाग्य ऐसे बनता है) यदि (साधना करने के विचार से) केवल गुरु की शिक्षा सुन ली जाए तो (मनुष्य की) बुद्धि से रत्न, मणि और मुक्ता उत्पन्न होते हैं (गुण उत्पन्न हो जाते हैं) ।

४. (अतः)हे गुरु ! (मेरी यह प्रार्थना है) मुझे इस एक बात का ज्ञान दे ।
५. कि समस्त जीवों का जो एक दाता है, मैं (किसी अन्य पूजा में लगकर) उसे विस्मृत न कर दूं ।६।

७

१. **जे जुग चारे आरजा होर दसूणी होइ ।**
२. **नवा खंडा विचि जाणीऐ नालि चलै सभु कोइ ।**
३. **चंगा नाउ रखाइकै जसु कीरति जगि लेइ ।**
४. **जे तिसु नदरि न आवई त वात न पुछै के ।**
५. **कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे ।**
६. **नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे ।**
७. **तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोइ करे ।७।**

पद-अर्थ

आरजा—आयु; **दसूणी**—दस गुना; **नवा खंडा**—नौ खंडों में, सारी सृष्टि में; **नालि चलै**—साथ होकर चले, साथ दे; **कीरति**—कीर्ति यश ।

टीका

१. (प्रभु की कृपा नाम के द्वारा प्राप्त होती है । उसके अभाव में लौकिक प्रताप, दीर्घ आयु, मान—प्रतिष्ठा इत्यादि व्यर्थ हैं ।) यदि किसी मनुष्य की आयु चार युगों के समान दीर्घ हो जाए, (प्रत्युत) इससे भी दस गुनी हो जाए;
२. यदि वह मनुष्य समस्त संसार में विदित (लब्धप्रतिष्ठ) हो और प्रत्येक अन्य मनुष्य उसका साथ भी दे (उसका पक्षपाती हो);
३. यदि वह अच्छा प्रसिद्ध हो जाए और समग्र संसार में कीर्ति-शोभा प्राप्त कर ले;
४. (परन्तु) यदि वह प्रभु की कृपा-दृष्टि (जो नाम के द्वारा प्राप्त होती है) में नहीं आया तो यह समझना चाहिए कि वह उस मनुष्य जैसा है जिसकी सुधि कोई नहीं लेता, तात्पर्य, जो निराश्रय है (क्योंकि अन्त में सांसारिक सभी सहारे समाप्त हो जाते हैं) ।

५ वह मानो कीड़ों में एक कीड़ा (अर्थात अतिसाधारण प्राणी) है। परमात्मा उसे दोषी ठहराकर दोष लगाएगा।

६. (नानक) वह प्रभु गुणहीन मनुष्यों में गुण उत्पन्न करता है और गुणवानों को (अधिक) गुण देता है।

७. (परन्तु) ऐसा कोई अन्य दिखाई नहीं देता जो उसे गुण दे सके (समस्त गुण उस प्रभु से ही निकलते हैं) ।७।

८

१. **सुणिऐ सिध पीर सुरिनाथ ।**

२. **सुणिऐ धरति धवल आकास ।**

३. **सुणिऐ दीप लोअ पाताल ।**

४. **सुणिऐ पोहि न सकै कालु ।**

५. **नानक भगता सदा विगासु ।**

६. **सुणिऐ दूख पाप का नासु ।८।**

पद-अर्थ

सुणिऐ—सुनने से, नाम श्रवण से; **सुरिनाथ**—नाथों में सुर, महानाथ; **धवल**—पृथिवी के नीचे खड़ा हुआ पुराण-प्रसिद्ध वृषभ; **दीप**—द्वीप (देश-विभाजन के अनुसार सात द्वीप हैं) । **पोहि**—छूता है, गुण अथवा प्रभाव करता है; **विगासु**—विकास, खिलना । नोट : अगली आठ 'पउड़ियों' में नाम सुनने और मानने की महत्ता बतलाई गई है । चार 'पउड़ियां' सुनने की हैं और चार मानने की हैं । इनमें विस्तार से बताया गया है कि नाम सुनने और मानने से मनुष्य के भीतर प्रकाश होकर भ्रम, अन्धविश्वास आदि नष्ट हो जाते हैं, वह वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के उच्च से उच्च गुणों को प्राप्त करके और आध्यात्मिक गुणों का भंडार होकर उच्चतम आध्यात्मिक स्तर पर पहुंच जाता है । यहां नाम सुनने वाले केवल साधारण श्रोता नहीं रहते प्रत्युत वे आत्म-मण्डल के पथिक हो जाते हैं । अब वे प्रभु के भक्त हो गए हैं । 'सुणिऐ' की प्रत्येक 'पउड़ी' के पश्चात दो पंक्तियों में उन्हीं भक्तों का वर्णन है । इसी प्रकार मानने वाले केवल वे मनुष्य नहीं हैं जिनका नाम में विश्वास हो गया है, प्रत्युत वे मनुष्य हैं जिनके भीतर नाम व्याप्त है । वे नाम-रंग में रंग गए हैं । 'मंनै' की

'पउड़ियों' की अन्तिम दो पंक्तियों में ऐसे मानने वालों का स्पष्ट उल्लेख है ।

टीका

१. प्रभु का नाम सुनने वाले प्रभु-भक्त सिद्धों, पीरों और बड़े नाथों की पदवी तक पहुंचे हैं।

२. नाम सुनने से भक्तों को अनुभव होता है कि प्रभु ही पृथिवी, बैल और आकाश सबका सहारा है ।

३. नाम सुनने से (भक्त) द्वीपों, लोकों और पातालों में परमात्मा को ही देखते हैं ।

४. नाम सुनने से (भक्तों को) मृत्यु का भय नहीं छू सकता (सर्वत्र हरि को देखकर उनकी दृष्टि विशाल हो गई है और भय जाता रहा है) ।

५. (नानक) भक्तों को सदा आनन्द बना रहता है ।

६. (क्योंकि) नाम सुनने से उनके सारे दुःखों और पापों का नाश हो जाता है । ।८।

९

१. सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु ।

२. सुणिऐ मुखि सालाहणमंदु ।

३. सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद ।

४. सुणिऐ सासत सिम्रित वेद ।

५. नानक भगता सदा विगासु ।

६. सुणिऐ दूख पाप का नासु ।९।

पद-अर्थ

ईसरु—शिव; **जोग**—(परमात्मा से) युक्त होने की अवस्था ।

टीका

१. (नाम) सुनने से (प्रभु के भक्त) शिव, ब्रह्मा और इन्द्र की पदवी तक पहुंचे हैं ।

२. (नाम) सुनने से नीच मनुष्य भी (भक्त होकर) परमात्मा की स्तुति-प्रशंसा करने लग जाता है।

३. (नाम) सुनने से (भक्तों को) परमात्मा के साथ मिलाप (योग) की युक्ति आ जाती है। वे शरीर के वे भेद जानते हैं (जो मिलाप के मार्ग में बाधक होते हैं जैसे शरीर से उत्पन्न मन की लहरें जिन पर वे नियंत्रण कर लेते हैं)।

४. (नाम) सुनने से (भक्तों को) शास्त्रों, स्मृतियों और वेदों का ज्ञान हो जाता है।

५. (नानक) भक्तों को सदा आनन्द बना रहता है।

६. (क्योंकि) नाम सुनने से (उनके समस्त) दु:खों और पापों का नाश हो जाता है। ।९।

१०

१. सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु ।

२. सुणिऐ अठसठि का इसनानु ।

३. सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु ।

४. सुणिऐ लागै सहजि धिआनु ।

५. नानक भगता सदा विगासु ।

६. सुणिऐ दूख पाप का नासु ।१०।

पद-अर्थ

अठसठि—अड़सठ तीर्थ; **सहजि**—सहज ही, कष्ट सहे बिना ही।

टीका

१. (नाम) सुनने से (भक्तों को) सत्य, सन्तोष और ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

२. (नाम) सुनने से मानों वे अड़सठ तीर्थों का स्नान कर लेते हैं।

३. (नाम) सुनने से वे पढ़-पढ़ कर मान प्राप्त कर लेते हैं।

४. (नाम) सुनने से (उनका) ध्यान सहज ही परमात्मा में लगा रहता है।

५. (नानक) भक्तों को सदा आनन्द बना रहता है।

६. (गुरु की शिक्षा) सुनने से (उनके) दु:खों ग्रोर पापों का नाश हो जाता है ।१०।

११

१. सुणिऐ सरा गुणा के गाह ।

२. सुणिऐ सेख पीर पातिसाह ।

३. सुणिऐ ग्रंधे पावहि राहु ।

४. सुणिऐ हाथ होवै ग्रसगाहु ।

५. नानक भगता सदा विगासु ।

६. सुणिऐ दूख पाप का नासु ।११।

पद-ग्रर्थ

सरा गुणा के—गुणों के सर, गुणों के समुन्द्रों को; **हाथ होवै**—थाह मिल जाती है; **ग्रसगाहु**—ग्रस्वगाह्य, ग्रतिगम्भीर समुद्र ।

टीका

१. (नाम) सुनने से (भक्त) गुणों के समुन्द्र की थाह जान लेते हैं ग्रर्थात् गुणशाली हो जाते हैं ।

२. (नाम) सुनने से (भक्त) शेखों, पीरों ग्रौर बादशाहों की पदवी पर पहुंच गए हैं ।

३. (नाम) सुनने से ग्रज्ञानी पुरुष भी (भक्ति मार्ग पर पहुंच कर) जीवन मार्ग प्राप्त कर लेते हैं ।

४. (नाम) सुनने से (भक्त) गहरे संसार सागरों की थाह जान लेते हैं, ग्रर्थात संसार समुद्र से निरायास पार हो जाते हैं ।

५. (नानक) भक्तों को सदा ग्रानन्द बना रहता है ।

६. (क्योंकि) नाम सुनने से (उनके) दु:खों ग्रौर पापों का नाश हो जाता है ।११।

१२

१. मंने की गति कही न जाइ ।

२. जे को कहै पिछै पछुताइ ।

३. कागदि कलम न लिखणहारु ।

४. मंने का बहि करनि वीचारु ।

५. ऐसा नामु निरंजनु होइ ।

६. जे को मंनि जाणै मनि कोइ ।१२।

पद-अर्थ

मंने—मानने वाले की, विश्वस्त प्राणी की, नाम में रंगे हुए की, जिसने नाम-निरंजन में विश्वास करके नाम रस माना है उसकी; **गति**—ऊँची अवस्था; **कागदि**—कागज़ पर; **निरंजनु**—माया से रहित ।

टीका

१. प्रभु का नाम मानने वाले की (नाम के प्रेमी की) आध्यात्मिक अवस्था का वर्णन नहीं हो सकता ।)

२. यदि कोई वर्णन करने का यत्न करता है, तो वह पश्चात्ताप करता है (कि मैं भली भान्ति वर्णन नहीं कर सकता ।)

३. (यह वर्णन) न कागज पर पूर्णतया लिखा जा सकता है, न किसी की (इतनी द्रुत) लेखन-गति है, न किसी में लिखने की इतनी योग्यता है ।

४. चाहे कई लेखक इकट्ठे बैठकर मानने वाले पुरुष की आध्यात्मिक अवस्था का विचार करें ।

५. इतना ऊँचा है मायारहित परमात्मा का नाम (जो मानने वालों के भीतर बसता है) ।

६. (परन्तु इस तथ्य का ज्ञान तभी होता है) जब कोई मनुष्य स्वयं अपने मन में नाम का मनन करके देखता है ।१२।

१३

१. मंनै सुरति होवै मनि बुधि ।

२. मंनै सगल भवण की सुधि ।

३. मंनै मुहि चोटा न खाइ ।

४. मंनै जम कै साथि ना जाइ ।

५. **ऐसा नामु निरंजनु होइ ।**

६. **जे को मंनि जाणै मनि कोइ ।१३।**

पद-अर्थ

मंनै—मानने से; **सगल**—सकल; **भवन की**—भवनों की; **सुधि**—ज्ञान; **मुहि**—मुख पर ।

टीका

१. नाम मानने से मन और बुद्धि में उच्च ध्यान का जन्म होता है ।
२. नाम मानने से समस्त भुवनों का ज्ञान हो जाता है ।
३. नाम मानने से नाम प्रेमी मुंह पर चोटें नहीं खाते ।
४. नाम मानने से वह यम राज के साथ नहीं जाता (जन्म–मरण से छूट जाता है) ।
५. इतना ऊंचा है मायारहित परमात्मा का नाम (जो मानने वालों के भी बीच बसता है) ।
६. (परन्तु इस तथ्य का ज्ञान तब ही होता है) जब कोई मनुष्य स्वयं अपने मन में नाम का मनन करके देखता है ।१३।

१४

१. **मंनै मारगि ठाक न पाइ ।**

२. **मंनै पति सिउ परगटु जाइ ।**

३. **मंनै मगु न चलै पंथु ।**

४. **मंनै धरम सेती सनबंधु ।**

५. **ऐसा नामु निरंजनु होइ ।**

६. **जे को मंनि जाणै मनि कोइ ।**

पद-अर्थ

मारगि—जीवन मार्ग में; **ठाक**—बाधा; **परगटु**—प्रकट होकर, यश प्राप्त करके

टीका

१. नाम मानने से नाम-प्रेमी के जीवन मार्ग में कोई बाधा नहीं होती ।

२. नाम मानने से वह संसार में यश प्राप्त करके प्रतिष्ठा के साथ प्रभु के सम्मुख पहुंचता है ।

३. नाम मानने से वह (किसी संकीर्ण से) मार्ग (धर्म के मार्ग) पर नहीं चलता । (वह साम्प्रदायिकता से ऊपर उठ जाता है क्योंकि, उसका धर्म इतना विशाल है कि वह समस्त धर्मों को अपने भुज-बन्ध में ले लेता है) ।

४. (क्योंकि) नाम मानने से धर्म के साथ उसका सुदृढ़ ग्रन्थि-बन्धन हो जाता है ।

५. इतना ऊंचा है माया रहित परमात्मा का नाम (जो मानने वालों के भीतर बसता है) ।

६. (परन्तु इस तथ्य का ज्ञान तब होता है जब कोई मनुष्य स्वयं अपने मन में नाम का मनन करके देखता है ।४।

१५

१. मंनै पावहि मोखु दुआरु ।
२. मंनै परवारै साधारु ।
३. मंनै तरै तारे गुरु सिख ।
४. मंनै नानक भवहि न भिख ।
५. ऐसा नामु निरंजनु होइ ।
६. जे को मंनि जाणै मनि कोइ ।१५।

पद-अर्थ

साधारु—आधार सहित, आश्रयवान् ।

टीका

१. नाम मानने से नाम-प्रेमी मुक्ति के द्वार को प्राप्त कर लेते हैं ।

२. नाम मानने से वे परिवार को भी आश्रयवान् कर देते हैं ।

३. नाम मानने से ही गुरु आप पार होता है और शिष्यों को भी उपदेश देकर पार उतारता है ।

४. (नानक) नाम मानने से नाम-प्रेमी द्वार-द्वार से भिक्षा नहीं मांगते (अर्थात् कभी एक धर्म से, कभी अन्य धर्म से शिक्षा रुपी भिक्षा नहीं मांगते फिरते) ।

५. इतना ऊंचा है माया रहित परमात्मा का नाम (जो मानने वालों के भीतर रहता है)।

६. (परन्तु इस तथ्य का ज्ञान तभी होता है) जब कोई मनुष्य स्वयं अपने मन में नाम का मनन करके देखता है।१५।

१६

१. पंच परवाण पंच परधानु ।
२. पंचे पावहि दरगहि मानु ।
३. पंचे सोहहि दरि राजानु ।
४. पंचा का गुरु एकु धिआनु ।
५. जे को कहै करै वीचारु ।
६. करते कै करणै नाही सुमारु ।
७. धौलु धरमु दइआ का पूतु ।
८. संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति ।
९. जे को बुझै होवै सचिआरु ।
१०. धवलै उपरि केता भारु ।
११. धरती होरु परै होरु होरु ।
१२. तिस ते भारु तलै कवणु जोरु ।
१३. जीअ जाति रंगा के नाव ।
१४. सभना लिखिआ वुड़ी कलाम ।
१५. ऐहु लेखा लिखि जाणै कोइ ।
१६. लेखा लिखिआ केता होइ ।
१७. केता ताणु सुआलिहु रूपु ।
१८. केती दाति जाणै कौणु कूतु ।
१९. कीता पसाउ एको कवाउ ।
२०. तिसते होए लख दरीआउ ।
२१. कुदरति कवण कहा वीचारु ।
२२. वारिआ न जावा एक वार ।
२३. जो तुधु भावै साई भली कार ।
२४. तू सदा सलामति निरंकार ।१६।

पद-अर्थ

पंच—नेता, (परमार्थ के मार्ग का) मुखिया, ज्ञानी पुरुष, जो भक्त है, सेवक भी है, सन्त जन ; **परवाणु**—स्वीकार; **परधानु**—अग्रणी, नेता ; **करणै**—काम; **सुमारु**—गणना; नाप तोल ; **धौलु**—पृथ्वी के नीचे पुराण प्रसिद्ध बैल; **सूति**—सूत्र में, प्रबन्ध में, मर्यादा में; **वुडी**—बहती हुई, निरन्तर प्रवहमान; **कलाम**—कलम, लेखनी; **ताणु**—बल; **सुआलिहु**—सुन्दर;**कूतु**—माप, अनुमान; **पसाउ**—प्रसार; **कवाउ**—हुकम, आदेश ; **कुदरति**—ताकत, बल; **वारिआ**—बलिहारी ; **निरंकार**—आकार रहित प्रभु ।

टीका

विज्ञप्ति—(जिन भक्तों और नाम-प्रेमियों ने नाम को सुना और माना है वे पक कर सन्त हो जाते हैं, वे ज्ञानी हैं, उनके विश्वास उचित होते हैं; क्योंकि, उन्होंने अपने भीतर बसते हुए परमात्मा के शब्द को अपना गुरु बना लिया है) ।

१. सन्त जन परमात्मा की दृष्टि में प्रामाणिक होते हैं एवं (मनुष्यों में अपनी सूझ-बूझ के कारण) प्रधान अथवा नेता समझे जाते हैं। (उनके लोक और परलोक दोनों संवर गए हैं। इस पंक्ति की ही व्याख्या आगामी दो पंक्तियों में की गई है) ।

२. सन्त जन ही प्रभु के घर मान पाते हैं ।

३. और सन्त जन ही राजाओं के दरबारों में गौरव का पद प्राप्त करते हैं ।

४. सन्त जनों का गुरु है प्रभु का ही एक ध्यान। (वे उस ध्यान के निदेश के अनुसार चलते हैं) ।

५. यदि कोई पुरुष कहे (कि प्रभु के निर्देशन में चलने की क्या विशेषता है तो) वह (जो हम कहते हैं) उस बात पर विचार करे। (उदाहरण के लिए गुरु साहिब ने अपने समय में प्रचलित विश्वास को लिया है कि पृथ्वी एक बैल के सहारे खड़ी है; परन्तु जो ईश्वर के संकेत के अनुसार चलता है उसके लिए यह विश्वास हास्यास्पद है। क्योंकि, उसका आस्थेय परमात्मा अनन्त है) ।

६. परमात्मा के कार्यों की गणना नहीं हो सकती ।

७. बैल का तात्पर्य है धर्म (कानून) जो दया का पुत्र है, अर्थात् प्रभु

ने कृपा कर के जिसे उत्पन्न किया है (नहीं तो संसार की व्यवस्था चल नहीं सकती थी)।

८. जिस प्रभु ने सन्तोष विस्तीर्ण कर के सब कुछ व्यवस्था में रखा है (समस्त प्राकृतिक शक्तियां अपने अपने कार्य सन्तोष के साथ करती जा रही हैं)।

९. (अब उपर्युक्त भ्रम भरे विश्वास की आलोचना करते हैं। जो मनुष्य हमारे इस (नीचे लिखे प्रश्न) का उत्तर देगा वह सदाचारी कहला सकेगा। प्रश्न है :

१०. (इस कल्पित) बैल के सिर पर कितना भार होगा ?

११. पृथ्वी और आगे तक चली गई है और आगे तक चली गई है (उसके नीचे कौन है ?)

१२. यदि उस पृथ्वी का भार भी बैल के ऊपर है तो बैल के भार के नीचे किसका सहारा है ?

१३. पृथ्वी पर कई जातियों, रंगों और नामों के जीव हैं ?

१४. सबका लेख निरन्तर चलने वाली ईश्वर की लेखनी ने लिखा है।

१५. यदि कोई ऐसा असीम लेखा लिखना जानता है (तो वह बतलाए कि)।

१६. लिखा हुआ होने पर यह लेखा कितना विशाल हो जाता है ? अर्थात् ऐसा लेखा कोई लिख सकता)।

१७. उसके केवल बल का ही अनुमान करो। उसका कितना बल हैं। फिर, उसका स्वरुप कितना सुन्दर है।

१८. फिर, उसकी देन कितनी है। इनका अनुमान कौन कर सकता है ? (कोई नहीं)।

१९. (उसने) एक आदेश से (सृष्टि का) प्रसार कर दिया।

२०. (उसके आदेश से) लाखों नदियां बहने लगीं।

२१. (गुरु जी प्रभु की अनन्तता बतलाते हुए आत्मविस्मारक महावस्था में चले गए हैं, जब कुछ कहा नहीं जा सकता, प्रत्युत आनन्द में मग्न रहना और ईश्वरेच्छा के अनुसार रहना अच्छा लगता है) (हे प्रभु) मेरी क्या शक्ति है, मेरा क्या बल है कि मैं तुम्हारा विचार करुं।

२२. मैं तो तुम पर एक बार बलिहार होने योग्य भी नहीं हूँ।

२३. जो कुछ तुम्हें अच्छा लगता है, वही अच्छा है।
२४. हे निराकार। तुम ही सदा एक रुप अविकारी हो। ६।

१७

१. **असंख जप असंख भाउ।**
२. **असंख पूजा असंख तप ताउ।**
३. **असंख गरंथ मुखि वेद पाठ।**
४. **असंख जोग मनि रहहि उदास।**
५. **असंख भगत गुण गिआन वीचार।**
६. **असंख सती असंख दातार।**
७. **असंख सूर मुह भख सार।**
८. **असंख मोनि लिव लाइ तार।**
९. **कुदरति कवण कहा वीचारु।**
१०. **वारिआ न जावा एक बार।**
११. **जो तुधु भावै साई भली कार।**
१२. **तू सदा सलामति निरंकार।१७।**

पद-अर्थ

असंख—असंख्य; **भाउ**—प्रेम, भक्तिभावना; **तप ताउ**—तपों का तपना; **जोग**—योगी; **सती**—दानी; **सूर**—शूर, वीर; **मुंह भख सार**—मुंह से लोहा खाते हैं, मुंह पर तलवारों की चोटें खाते हैं; **मोनि**—मौन-व्रती।

टीका

विज्ञप्ति—(यह और अगली दो 'पउड़ियां' भी उसी आत्मविस्मृति दशा की सूचक है जिसका वर्णन ऊपर किया गया है अर्थात एक 'पउड़ी' में वे असंख्य लोग सामने लाए गए हैं जो सद्‌गुण और धर्म के मार्ग पर चलने का यत्न कर रहे हैं। दूसरी 'पउड़ी' में उन असंख्य लोगों का वर्णन है जो नीच वासनाओं के दास होकर जगत को नरक बना रहे हैं। गुरु जी ने इस से अगली (पउड़ी) में इन दोनों प्रकारों के मनुष्यों को, तथा अन्य समस्त मनुष्यों को सामूहिकतया परमात्मा का रूप मान कर देखा है।

१. (परमात्मा की असीम रचना में) असंख्य जप (जपे जा रहे हैं), असंख्य जीव प्रेम (भक्ति भावना) प्रगट कर रहे हैं।

२. असंख्य पूजाएं हो रही हैं , असंख्य तप तपे जा रहे हैं।
३. असंख्य मनुष्य मुख से धार्मिक ग्रंथों और वेदों के पाठ कर रहे हैं।
४. असंख्य लोग योगी होकर संसार के प्रति उदासीन बैठे हैं।
५. असंख्य भक्त उसके गुणों और ज्ञान का विचार कर रहे हैं।
६. असंख्य ही दानी हैं, असंख्य ही दाता हैं।
७. असंख्य शूरवीर हैं जो तलवारों की चोटें मुंह पर खाते हैं।
८. असंख्य मौन-धारी लोग उसमें ध्यान का तार लगाए बैठे हैं।
९. (हे प्रभु) मेरी क्या शक्ति है कि मैं तुम्हारा विचार करूं ?
१०. मैं तो तुम पर एक बार बलिहार होने योग्य भी नहीं हूं।
११. तुम्हें जो कुछ अच्छा लगता है, वही अच्छा है ।
१२. हे निराकार ! तुम सदा एक रूप अविकारी रहते हो।१७।

१८

१. असंख मूरख अंध घोर ।
२. असंख चोर हराम खोर ।
३. असंख अमर करि जाहि जोर ।
४. असंख गलवढ हतिआ कमाहि ।
५. असंख पापी पापु करि जाहि ।
६. असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि ।
७. असंख मलेछ मलु भखि खाहि ।
८. असंख निंदक सिरि करहि भारु ।
९. नानकु नीचु कहै वीचारु ।
१०. वारिआ न जावा एक वार ।
११. जो तुधु भावै साई भली कार ।
१२. तू सदा सलामति निरंकार ।१८।

पद-अर्थ

मूरख अंध घोर—महामूर्ख; **हराम खोर**—पराया माल खाने वाला; घातक; **अमर**—हुक्म, राज्य; **गलवढ**—गला काटने वाला; **हतिआ**—हत्या; **कूड़े**—मिथ्या कार्यों में; **फिराहि**—फिरते हैं, लगे रहते हैं; **मलेछ**—मलिनेच्छ बुरी इच्छावाले; **मलुभखि खाहि**—मल खाते रहते हैं, मल खाते चले जाते हैं।

टीका

१. (परमात्मा की अनन्त रचना में) असंख्य ही महामूर्ख हैं।

२. असंख्य ही चोर हैं, जो हराम खाते हैं (दूसरों का माल खाते हैं)।

३. असंख्य ही दूसरों पर शासन, अत्याचार करके (यहाँ से) चले जाते हैं।

४. असंख्य ही दूसरों का गला काटकर हत्या के दोषी बनते हैं।

५. असंख्य पापी पाप कर के (यहाँ से) जाते हैं।

६. असंख्य झूठे मनुष्य झूठ में ही लगे रहते हैं।

७. असंख्य बुरी इच्छा वाले लोग मल (अधर्म से अर्जित भोग) भोगते हैं।

८. असंख्य निन्दक निन्दा कर के सिर पर भार उठाते हैं।

९. (नीचों की गिनती करते हुए अपनी तुच्छता भी सामने आ जाती है) नीच नानक (बुरों के विषय में) यह विचार कहता है।

१०. (हे प्रभु) मैं तो तुम पर एक बार बलिहार होने योग्य नहीं (नीचों की रचना पर भी बलिहार हो जाते हैं। क्योंकि, जिस प्रकार अगली 'पउड़ी' में विस्तार से बतलाया गया है, उत्तम, नीच, समस्त, उसी का प्रकाश है)।

११. जो कुछ तुम्हें अच्छा लगता है वही अच्छा है।

१२. हे निराकार ! तुम सदा एक रूप अविकारी रहते हो।१८।

१९

१. असंख नाव असंख थाव।

२. अगंम अगंम असंख लोअ।

३. असंख कहहि सिरि भारु होइ।

४. अखरी नामु अखरी सालाह।

५. अखरी गिआनु गीत गुण गाह।

६. अखरी लिखणु बोलणु बाणि।

७. अखरा सिरि संजोगु वखाणि।

८. जिनि एहि लिखे तिसु सिरि नाहि।

९. जिव फुरमाए तिव तिव पाहि।

१०. जेता कीता तेता नाउ।

११. विणु नावै नाही को थाउ।

१२. कुदरति कवण कहा वीचारु ।

१३. वारिश्रा न जावा एक वार ।

१४. जो तुधु भावै साई भली कार ।

१५. तू सदा सलामति निरंकार ।१६।

पद-अर्थ

नाव—(प्रभु के) नाम; **थाव**—प्रभु के निवास स्थान; **अगंम**—अगम्य; **लोअ**—लोक; **अखरी**—शब्दों के द्वारा; **सालाह**—प्रशंसा; **गुण गाह**—गुणावग्राही, गुणज्ञ; **अखरी**—अक्षरों के द्वारा; **वाणी**—वाणी; **संजोगु**—सम्बन्ध ।

टीका

१. असंख्य ही तुम्हारे नाम हैं, असंख्य ही तुम्हारे निवास स्थान हैं। (यह बात दसवीं और ग्यारहवीं पंक्तियों में बतलाई गई है।)

२. (इस पृथ्वी के अतिरिक्त अभी) असंख्य ही ऐसे लोक हैं जहाँ पहुंच भी नहीं होती है। (वे भी तुम्हारे ही निवास स्थान हैं)।

३. जो असंख्य कहते हैं उनके सिर पर भार होता है (कोई वस्तु असंख्य, असंख्येय, होकर भी सीमित हो सकती है। अत: असंख्य शब्द अनन्तता का अर्थ पूर्णतया प्रकट नहीं करता; परन्तु विवशता यह है कि भाषा का प्रयोग करना पड़ता है।

४. शब्दों के द्वारा प्रभु का नाम लिया जाता है। शब्दों के द्वारा ही स्तुति प्रशंसा की जाती है।

५. शब्दों के द्वारा ही उसका ज्ञान कहा जाता है, उसके गीत गाए जाते हैं, उसके गुणों का ज्ञान अर्जित किया जाता है।

६. शब्दों के द्वारा ही बाणी लिखना और बोलना संभव होता है।

७. शब्दों के द्वारा ही प्रभु के साथ जीवों का जो सम्बन्ध है उसका वर्णन किया जाता है।

८. जिसने ये अक्षर लिखे हैं, अर्थात् समस्त रचना की है, उसके सिर पर अक्षर नहीं हैं (सृष्टा की समस्त रचना अक्षरों में आ जाती है। पृथ्वी, सूर्य आदि का वर्णन अक्षरों के द्वारा हो जाता है। इन्हें एक प्रकार से अक्षर ही समझा जा सकता है। यदि ये अक्षर हैं तो इन्हें

लिखने वाला परमात्मा है...द्रिसटिमान अखर है जेता। नानक पारब्रह्म निरलेपा'। गउड़ी, महला ५। वह शब्दों के द्वारा नहीं बतलाया जा सकता, जैसे दूसरी वस्तु बताई जा सकती है वह आत्मा के भीतर ही देखा जा सकता है। बावन अछर लोक त्रै सभु कछु इनही माहि। ए अखर खिरि जाहिगे ओइ अखर इन महि नाहि। १। (गउड़ी, कबीर जी)।

९. वह जिस प्रकार आदेश करता है वह (आदेश) उसी प्रकार जीवों को मिलता है।

१०. उसने जो कुछ रचा है (वह समस्त) उस का नाम ही है (उसी का प्रकाश है)

११. और उसके नाम से शून्य कोई स्थान भी नहीं है (अतः समस्त स्थान उसके स्थान हैं)।

१२. (हे प्रभु !) मेरी क्या शक्ति है कि मैं तुम्हारा विचार करूं।

१३. मैं तो एक बार तुम पर बलिहार होने योग्य भी नहीं हूं।

१४. जो कुछ तुम्हें अच्छा लगता है, वही अच्छा है।

१५. हे निराकार ! तुम सदा अविकार्य रहने वाले हो। १९।

२०

१. **भरीऐ हथु पैरु तनु देह।**

२. **पाणी धोतै उतरसु खेह।**

३. **मूत पलीती कपड़ु होइ।**

४. **दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ।**

५. **भीरीऐ मति पापा कै संगि।**

६. **ओहु धोपै नावै कै रंगि।**

७. **पुंनी पापी आखणु नाहि।**

८. **करि करि करणा लिखि लै जाहु।**

९. **आपे बीजि आपे ही खाहु।**

१०. **नानक हुकमी आवहु जाहु।२०।**

पद-अर्थ

भरिऐ—भरा जाता है; मलिन हो जाता है; **खेह**—मिट्टी, धूलि, मल; **रंगि**—प्रेम के साथ।

टीका

विज्ञप्ति—(प्रभु के उत्पादित समस्त जीव, उत्तम अथवा अधम, उसके ही नाम है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि मनुष्यों का अपने किए कर्मों से उत्पन्न नैतिक उत्तरदायित्व नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य अपने कर्मों का स्वयं उत्तरदायी है। जैसा कोई बोएगा, वैसा ही फल पाएगा। पापों का मल केवल नाम से ही दूर हो सकेगा। नहीं तो जन्म-मरण बना रहेगा।

१. जब हाथ, पैर अथवा शरीर (शारीरिक भाग) मल से लिप्त हो जाता है।

२. तब पानी से धोने से उसकी धूलि उतर जाती है।

३. जब वस्त्र मूत्र आदि से अशुचि हो जाता है—

४. तब वह साबुन लगाकर धो लिया जाता है।

५. उसी प्रकार जब बुद्धि पापों से मलिन हो जाती है।

६. तब वह नाम के प्रेम से ही धोई जा सकती है।

७. पुण्यात्मा अथवा पापात्मा होना केवल कथनमात्र (शब्द) नहीं है।

८. (हे जीव) तू जैसा कर्म करेगा, (संस्कारों के रूप में उत्कीर्ण करके) वैसा ही प्रभाव तू अपने साथ ले जाएगा।

९. तू आप जो बोएगा, उसका फल आप ही खाएगा।

१०. (नानक) तू प्रभु के आदेश के अनुसार (अपने किए कर्मों) के कारण जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहेगा।२०।

२१

१. तीरथु तपु दइआ दतु दानु।

२. जे को पावै तिल का मानु।

३. सुणिआ मनिआ मनि कीता भाउ।

४. अंतरगति तीरथि मलि नाउ।

५. सभि गुण तेरे मैं नाही कोइ।

६. विणु गुण कीते भगति न होइ।

७. सुअस्ति आथि बाणी बरमाउ ।

८. सति सुहाणु सदा मन चाउ ।

९. कवणु सु वेला वखतु कवणु कवण थिति कवण वारु ।

१०. कवणि सि रुती माहु कवणु जितु होआ आकारु ।

११. वेल न पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु ।

१२. वखतु न पाइओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु ।

१३. थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु न कोई ।

१४. जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई ।

१५. किवकरि आखा किव सालाही किउ वरनी किव जाणा ।

१६. नानक आखणि सभु को आखै इकदू इक सिआणा ।

१७. वडा साहिबु वडी नाई कीता जा का होवै ।

१८. नानक जे को आपौ जाणै अगै गइआ न सोहै । २१

पद-अर्थ

दतु—दिया हुआ; **दतु दान**—दिया हुआ दान; **तिल का**—तिल मात्र, थोड़ा; **अंतरगति**—आन्तरिक (तीर्थ); **सुआसति**—नमस्कार है; **आथि**—माया; **वाणी**—शब्द; **बरमाउ**—ब्रह्मा; **सति**—सत्य; **सुहाणु**—सौन्दर्य; **चाउ**—हर्ष; **वेल**—समय अर्थात ऋषि की रचना का समय; **सिरठी**—सृष्टि; **वरनी**—वर्णन करु; **नाई**—नाम, प्रशंसा ।

टीका

विज्ञप्ति—(कर्मों का फल भोगने से बचने के लिए तीर्थ तप आदि भी सहायक हो सकते हैं यदि वे भक्ति उत्पन्न कर सकें। भक्ति सब से उत्तम साधन है। भक्ति के बल से ईश्वर के गुणों को मन के भीतर बसाना है। उसके सत्य, सौन्दर्य और आनन्द आदि स्वरुपों को जपना है)।

१. तीर्थाटन, तपश्चरण, जीव-दया, और पुण्य दान करने ।

२. (ये समस्त शोभन हैं यदि इनके बल से) किसी को ईश्वर घर तिल भर भी आदर मिल जाए (और यह इन साधनों से उत्पन्न भक्ति के द्वारा होता है। परन्तु प्रभु की प्रसन्नता प्राप्त किए बिना केवलमात्र परम्परागत कर्म काण्डों से लाभ नहीं होता 'विण भाणै के नाइ करी') ।

३. (सत्य तो यह है कि) जिसने सुना है, माना है और मन में प्रभु से प्रेम किया है---

४. उसी ने मानो अन्त: करण के तीर्थ में मल-मल कर स्नान कर लिया है (तीर्थ तप आदि का अभिप्राय भी यही होना चाहिए ।)

५. हे प्रभु ! समस्त गुण तुम में हैं, मुझ में कोई गुण नहीं ।

६. यदि तुम अपने गुण मुझ में उत्पन्न न करो । यदि भक्ति करता हुआ मैं तुम्हारे गुण ग्रहण नहीं करता) तो मैं तुम्हारी भक्ति नहीं कर रहा हूं । (भक्ति करते हुए गुणों का जपना आवश्यक है, नहीं तो यह दंभ अथवा अज्ञान है) ।

७. (किस की भक्ति ?) मेरा नमस्कार केवल तुम्हें है । तुम ही माया हो, तुम ही बाणी हो, तुम ही ब्रह्म हो । अर्थात् सृष्टि की रचना करने वाले तुम स्वयं हो । माया अथवा अरबी शब्द 'कुन्') अथवा आदि किसी शब्द ने अथवा ब्रह्मा ने सृष्टि नहीं रची जैसे कई मानते हैं । तुझ से भिन्न स्वतंत्र अस्तित्व वाली कोई शक्ति नहीं ।

८. तुम सत्य हो, सौन्दर्य हो और सदा हर्ष में रहने वाले हो (आनन्द स्वरुप हो) ।

९. (नाम-स्मरण में परिपक्व होने के लिए अन्य बौद्धिक चातुर्यों से बचना चाहिए । उदाहरण के रूप में रचना कब हुई ? एक ऐसा प्रश्न है जिसका समाधान न कदाचित मानवीय बुद्धि से हो सकता है और न आत्ममण्डल में पहुंच कर इसका कोई लाभ है) कौन सा समय था ? कौन सा काल था ? कौन सी तिथि थी ? कौन सा दिन था ?

१०. कौन सी ऋतु थी ? कौन सा मास था ? जब दृश्यमान संसार बना ।

११. (संसार की उत्पति के) समय का ज्ञान पंडितों को नहीं हो सका ; नहीं तो कोई पौराणिक लेख (इस विषय में भी होता) ।

१२. इस समय का ज्ञान काजियों को भी नहीं हुआ ; नहीं तो काज़ी कुरान में से कोई प्रमाण लेकर लेख लिखते ।

१३. सृष्टि रचना के समय तिथि क्या थी और दिन क्या था ? इसका ज्ञान किसी योगी को भी नहीं लगा । ऋतु और मास कौन थे ? वह कोई मनुष्य नहीं जानता ।

१४. जो स्रष्टा सृष्टि को बनाता है, वह स्वयं ही जानता है (कि जगत् कब रचा गया था) ।

१५. (मैं यह बातें क्या बतला सकता हूं जब कि मुझे यह पता भी नहीं था कि मैं किस प्रकार प्रभु की अनन्त महिमा का वर्णन करुं, किस प्रकार उस अनन्त की स्तुति प्रशंसा करुं किस प्रकार उसकी विशालता का वर्णन करुं और किस प्रकार उसे जानूं ?

१६. (नानक) कहने को तो प्रत्येक मनुष्य अपने आप को दूसरे से अधिक बुद्धिमान् समझ कर उस (प्रभु) की रचना अथवा अन्य कार्यों के विषय में कहता रहता है।

१७. (परन्तु कथनीय तत्व केवल यह है कि) परमात्मा महान है। उसकी महता इयता-रहित है। उसका ही किया हुआ हो रहा है।

१८. (नानक) यदि कोई कहता फिरे कि अपनी बुद्धि के द्वारा मैंने प्रभु के कार्यों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो वह प्रभु के घर में शोभा नहीं पाता (क्योंकि वह असत्य कहता फिरता है।) २१।

२२

१. पाताला पाताल लख आगासा आगास।

२. ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक बात।

३. सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु।

४. लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु।

५. नानक वडा आखीऐ आपे जाणै आपु।२२।

पद-अर्थ

इक बात—एक बात ; **असुलू**—आदि, आरम्भ ; **धातु**—तत्व वस्तु, हरि ; **विणासु**—विनाश ।

टीका

१. (पूर्वगत 'पउड़ी' का विचार एक अन्य उदाहरण देकर पुष्ट किया गया है। प्रभु की रचना के विषय में गणना तथा परिमाण का विचार मूलभूत दोष है। अलेख्य का लेखा नहीं हो सकता) पातालों के नीचे कई लाख पाताल हैं और आकाशों के ऊपर कई लाख आकाश हैं।

२. एक तथ्य वेद कहते हैं कि इनके अन्वेषण अन्वेषक कर कर के थक गए हैं (परन्तु सफल नहीं हुए)।

३. (दूसरी बात, मुसलमान, ईसाई आदि पश्चिमी धर्मों के अनुयायियों की) धार्मिक पुस्तकें बतलाती हैं कि सृष्टि में अठारह हजार संसार हैं जिनका आरम्भ प्रभु से हुआ है।

४. (परन्तु लेखों के चक्रों में नहीं पड़ना चाहिए। यह मूलभूत दोष है। अलेख्य के कार्यों को माप, तोल से मापा नहीं जा सकता है) लेखा हो सके तब ही लिखा जाए। लेखा करते हुए मनुष्य स्वयं समाप्त हो जाता है (परन्तु लेखा समाप्त नहीं होता)

५. (अतः नानक) उसे 'महान् महान' कहना चाहिए (उसकी स्तुति-प्रशंसा करनी चाहिए) वह अपने आपको (अपनी महता को) स्वयं ही जानता है। २२।

२३

१. सालाही सालाहि एती सुरति त पाईआ।
२. नदीआ अतै वाह पवहि समुंदि न जाणीअहि।
३. समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु।
४. कीड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि।२३।

पद-अर्थ

सालाही—प्रशंसनीय, हरि; **सुरति**—ध्यान, बुद्धि; **वाह**—प्रवाह, नाला; **जाणीअहि**—जाने जाते हैं; **साह**—शाह, स्वामी; **गिरहा**—गिरि, पहाड़; **तुल**—तुल्य, समान।

टीका

१. ('महान्, महान्' कहने का फल बतलाया गया है। उसका अन्त वे भी नहीं पा सकते जो 'महान्, महान्' कहते हैं। परन्तु वे उसका रूप होकर अमूल्य हो जाते हैं) प्रशंसनीय प्रभु की महिमाओं का गान कर के उसके भक्तों को भी ज्ञात नहीं होता कि वह प्रभु कितना महान् है? परन्तु वे उसमें लीन हो जाते हैं।

२. जैसे समुद्र में नदी और नाले गिरते हैं और फिर समुद्र से पृथक् वस्तु के रूप में पहचाने नहीं जाते (उसी प्रकार वे प्रभु के साथ अभेद को प्राप्त हो जाते हैं। और इस प्रकार गुणवान होकर अमूल्य हो जाते हैं। यह रहस्य अगली पंक्तियों में स्पष्ट किया गया है)।

३. वे भूपति जो समुद्रों के पति हों और जिनके पास पर्वतों के समान

सम्पत्ति हो—

४. हे प्रभु ! वे भी उस कीड़ी के तुल्य नहीं जिसके मन से तुम्हारी स्मृति कभी दूर नहीं होती है। २३।

२४

१. **अंतु न सिफती कहणि न अंतु ।**

२. **अंतु न करणै देणि न अंतु ।**

३. **अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु ।**

४. **अंतु न जापै किआ मनि मंतु ।**

५. **अंतु न जापै कीता आकारु ।**

६. **अंतु न जापै पारावारु ।**

७. **अंत कारणि केते बिललाहि ।**

८. **ताके अंत न पाए जाहि ।**

९. **एहु अंतु न जाणै कोइ ।**

१०. **बहुता कहीऐ बहुता होइ ।**

११. **बडा साहिबु ऊचा थाउ ।**

१२. **ऊचे ऊपरि ऊचा नाउ ।**

१३. **एवडु ऊचा होवै कोइ ।**

१४. **तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ ।**

१५. **जेवडु आपि जाणै आपि आपि ।**

१६. **नानक नदरी करमी दाति ।२४।**

पद-अर्थ

मंतु—मन्त्र, परामर्श, सलाह; **बिललाहि**—रोते हैं, प्रार्थना करते हैं।

टीका

१. (अब विस्तार के साथ कहते हैं कि अनन्त का अन्त पाने का यत्न स्वतः एक भ्रान्ति है। जीवों के लिए यही उचित है कि वे उसे 'महान्, महान्' कहें और उसकी स्तुति-प्रशंसा करें तथा उसका रूप हो जाएं)। परमात्मा के गुणों का अन्त नहीं है, अतः गुणगान से उसके गुणों का अन्त नहीं हो जाता।

२. उसके कर्मों का अन्त नहीं। उसकी देन जीवों को देने से समाप्त नहीं होती। उनका अन्त नहीं है।

३. लोचन-गोचर (पदार्थों का) अन्त नहीं है, कर्ण-गोचर पदार्थों का अन्त नहीं है।

४. 'उसके मन में क्या विचार है ?' इसका भी अन्त नहीं पाया जा सकता।

५. दृश्यमान, उत्पादित, इस जगत का अन्त नहीं मिलता है।

६. इस दृश्यमान संसार के आर-पार का अन्त नहीं मिलता है।

७. इन समस्त अन्तों को पाने के लिए कितने ही मनुष्य बिलखते रहे हैं।

८. परन्तु उसके अन्त नहीं पाए जा सकते।

९. (अन्त पाने की बात क्या करते हो) यह अन्त तो कोई नहीं पा सकता।

१०. जितना महान् उसे कह दें, वह उस से महान् लगने लगता है।

११. वह स्वामी महान् है। उसका निवास स्थान भी ऊंचा है।

१२. और उसका नाम उस से भी ऊंचा है।

१३. यदि कोई अन्य उसके समान महान् हो—

१४. तो वही उस ऊंचे को जान सके।

१५. 'वह जितना महान् है, इसको केवल वह आप ही जानता है।

१६. (नानक) उस (कृपादृष्टि वाले की कृपा से ही प्रत्येक देन मिलती है।

२५

१. वहुता करमु लिखिआ ना जाइ।

२. वडा दाता तिलु न तमाइ।

३. केते मंगहि जोध अपार।

४. केतिआ गणत नहीं वीचारु।

५. केते खपि तुटहि वेकार।

६. केते लै लै मुकरु पाहि।

७. केते मूरख खाही खाहि।

८. केतिआ दूख भूख सद मार।

९. **एहि भि दाति तेरी दातार ।**
१०. **बंदि खलासी भाणै होइ ।**
११. **होरु आखि न सकै कोइ ।**
१२. **जे को खाइकु आखणि पाइ ।**
१३. **ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ ।**
१४. **आपे जाणै आपे देइ ।**
१५. **आखहि सि भि केई केइ ।**
१६. **जिस नो बखसे सिफति सालाह ।**
१७. **नानक पातिसाही पातिसाहु ।२५।**

पद-अर्थ

करमु—कृपा; **तमाइ**—तमा, लोभ; **वेकार**—विकारों में; **खलासी**—बंधन से मुक्ति; **खाइकु**—मूर्ख ।

१. (इस 'पउड़ी' तथा इस से अगली दो 'पउड़ियों' में भी उस अनन्त की अनन्तता को भिन्न-भिन्न पक्षों से दिखाया है । भक्ति में दृढ़ रहने के लिए यह आवश्यक भी होता है कि भक्त के मन के भीतर प्रभु के अनन्त होने का विश्वास पक्का हो जाए। यदि किसी का परमात्मा लघु है तो उसके विश्वास भी कच्चे होंगे । इस 'पउड़ी' में केवल उसकी देनों का वर्णन है) । परमात्मा की कृपा ही इतनी अधिक है कि लिखीं नहीं जा सकती अर्थात् वर्णित नहीं हो सकती ।

२. वह महान् दाता है । उसे स्वयं अणुमात्र भी लोभ-लालच नहीं है) (वह देन के बदले में कुछ मांगता नहीं) ।

३. कितने ही महान् योद्धा हैं जो उस से मांगते हैं ।

४. कितने ही अन्य अभ्यर्थी हैं जिनकी गणना नहीं हो सकती ।

५. कितने ही (विकारी पुरुष हैं जो दान का अनुचित उपयोग करके) विकार जटित होकर नष्ट होते हैं ।

६. कितने ही उस सें दान लेकर उनकी प्राप्ति स्वीकार नहीं करते हैं (उन देनों को अपनी अर्जित वस्तु समझते हैं) ।

७. कितने ही ईश्वरीय देनों को खाते ही रहते हैं ।

८. कितने ही ऐसे हैं जो सदा दुःख और भूख की मार सहते हैं ।

९. परन्तु हे दाता ! यह (दुःख अथवा भूख) भी तेरी कृपा है (क्योंकि, दुःख ,भूख कई बार मानवीय दुर्बलताओं के औषध होते हैं) ।

१०. (माया के) बन्धनों में पड़ जाना अथवा बन्धनों से बच निकलना परमात्मा की इच्छा पर है (उस के नियमों के अनुसार है) ।

११. (इसके विपरीत कुछ) और कोई कह नहीं सकता ।

१२. यदि कोई मूर्ख कहने का यत्न करे—

१३. तो वही जानता है कि हरि के घर उसके मुख पर कितने जूते पड़ते हैं ।

१४. (सच यह है कि) परमात्मा आप ही जीवों की आवश्यकताएं जानता है और आप ही उन आवश्यकताओं के अनुसार दान देता है ।

१५. यह बात कहने वाले भी अनेकों पुरुष हैं ।

१६. जिसे परमात्मा अपनी स्तुति-प्रशंसा प्रदान करे—

१७. (नानक) उसे राजाओं का अधिराजा समझना चाहिए । २५ ।

२६

१. अमुल गुण अमुल वापार ।
२. अमुल वापरीए अमुल भंडार ।
३. अमुल आवहि अमुल लै जाहि ।
४. अमुल भाइ अमुला समाहि ।
५. अमुलु धरमु अमुलु दीबाणु ।
६. अमुलु तुलु अमुलु परवाणु ।
७. अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु ।
८. अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु ।
९. अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ ।
१०. आखि आखि रहे लिव लाइ ।
११. आखहि वेद पाठ पुराण ।
१२. आखहि पड़े करहि वखिआण ।
१३. आखहि बरमे आखहि इंद ।
१४. आखहि गोपी तै गोविंद ।

१५. आखहि ईसर आखहि सिध ।

१६. आखहि केते कीते बुध ।

१७. आखहि दानव आखहि देव ।

१८. आखहि सुरि नर मुनि जन सेव ।

१९. केते आखहि आखणि पाहि ।

२०. केते कहि कहि उठि उठि जाहि ।

२१. एते कीते होरि करेहि ।

२२. ता आखि न सकहि केई केइ ।

२३. जेवडु भावै तेवडु होइ ।

२४. नानक जाणै साचा सोइ ।

२५. जे को आखै बोलु विगाडु ।

२६. ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु ।२६।

पद-अर्थ

अमुल—अमूल्य; **तुलु**—तोल, माप ; **परिवाण**—परिमाण; **नीसाणु**—स्वीकृति का चिह्न, प्रमाण-पत्र ; **गोविंद**—कृष्ण; **दानव**—दैत्य ; **सुरिनर**—देवता पुरुष ; **मुनि–जन**—मननशील पुरुष ; **बोल बिगाडु**—बोल को बिगाड़ने वाला, बहुत बोलने वाला ।

टीका

१. (पीछे अनेक प्रकार की सांसारिक देन बतलाई गई है। अब आचारिक और आत्मिक गुणों की अनन्त अमूल्य देन परमात्मा के गुण अमूल्य हैं और अमूल्य है उन गुणों का व्यापार करना ।

२. अमूल्य हैं उन गुणों का व्यापार करने वाले भी और अमूल्य हैं उन गुणों के कोष ।

३. अमूल्य हैं वे जो प्रभु के गुणों को लेने के लिए आते हैं और जो वह सौदा ले जाते हैं, वे भी अमूल्य हैं ।

अमूल्य हैं वे जो परमात्मा के प्रेम में हैं और अमूल्य हैं वे जो उसमें मग्न हैं ।

५. अमूल्य है परमात्मा का धर्म। (कानून) अमूल्य है उसका दीवान (न्यायालय) जहां उस कानून के अनुसार निर्णय होते हैं।

६. वह तुला अमूल्य है, अमूल्य ही है वह बाट (जिससे गुण तोले जाते हैं)।

७. अमूल्य है उसकी कृपा, अमूल्य है उसकी ओर से प्राप्त स्वीकृति का चिह्न अर्थात् प्रमाण पत्र।

८. अमूल्य है उसकी कृपा, और अमूल्य है उसका आदेश।

९. परमात्मा अमूल्य ही अमूल्य है, कहा नहीं जा सकता कि वह (कितना अमूल्य है)।

१०. कई कह-कह कर तुम में लीन हो गए।

११. कई वेदों और पुराणों के पाठों द्वारा उसका वर्णन करते हैं।

१२. कई पढ़े-लिखे (विद्वान) उसका वर्णन करते हैं और दूसरों को बतलाते हैं।

१३. कई ब्रह्मा, कई इन्द्र उसका वर्णन करते हैं।

१४. गोपियां और कृष्ण भी उसका वर्णन करते हैं।

१५. शिव और सिद्ध उसका वर्णन करते हैं।

१६. उसके बनाए हुए अनेक बुध उसका वर्णन करते हैं।

१७. दैत्य और देवगण भी उसका वर्णन करते हैं।

१८. देवता पुरुष, मुनि जन और अनेक सेवक उसका वर्णन करते हैं।

१९. अनेक प्राणी उसका वर्णन कर रहे हैं और अनेक वर्णन करने के यत्न में हैं।

२०. उसका वर्णन कर करके अनेक जगत् से चले जाते हैं।

२१. परन्तु यदि तुम इतने जीव, जितने पहले पहले उत्पन्न किए हैं, और भी उत्पन्न कर दो—

२२. तो भी (कोई) जीव तुम्हारा वर्णन नहीं कर सकेंगे।

२३. वह जितना महान् होना चाहता है उतना महान् हो जाता है।

२४. (नानक) वह सत्स्वरुप स्वयं ही अपनी महत्ता जानता है।

२५. यदि कोई अधिक बातें करने वाला साधिकार कहे कि मैं जानता हूँ कि वह (परमात्मा) इतना महान् है—

२६. तो वह मूर्खों में मूर्ख (महान् मूर्ख) गिना जाना चाहिए।२६।

१. सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले ।
२. वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे ।
३. केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावणहारे ।
४. गावहि तुहनो पउणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे ।
५. गावहि चितु गुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे ।
६. गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे ।
७. गावहि इंद इंदासणि बैठे देवतिआ दरि नाले ।
८. गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध विचारे ।
९. गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे ।
१०. गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले ।
११. गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले ।
१२. गावनि रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ।
१३. गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे ।
१४. गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे ।
१५. सेई तुधुनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ।
१६. होरि केते गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किआ वीचारे ।
१७. सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ।
१८. है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ।
१९. रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ।
२०. करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई ।
२१. जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई ।
२२. सो पातिसाहु साहा पाति साहिबु नानक रहणु रजाई ।२७।

पद-अर्थ

दरु—द्वार; **नाद**—बाजे; **परी**—रागनियां; **बैसंतरु**—अग्नि; **चित गुपतु**—धर्मराज के मुन्शी, जीवों के सत-असत् कर्मो का लेखा लिखाने वाले; **इसरु**—शिव; **इंद**—इन्द्र; **इंदासणि**—इन्द्र के आसन; **विचारे**—विचार के भीतर; **वीर करारे**—कड़े शूर; परम शूर; **रखीसर**—ऋषिश्वर;

मछ—मातृलोक, पृथ्वी; **पइम्राले**—पाताल की; **रतन**—चौदह रत्न, जो पौराणिक कथानुसार, समुन्द्र मंथन करके निकाले गए—चन्द्रमा, धन्वन्तरि, कामधेनु म्रादि; **खाणी चारे**—म्रण्डज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज; **खंड मंडल वरभंडा**—ब्रह्माण्ड के भाग, ब्रह्माण्ड के चक्र म्रौर ब्रह्माण्ड; **रसाले**—रस वाले, रसिक।

टीका

विज्ञप्ति—(म्रब एक राजसभा सजा कर प्रभु की महिमा दिखलाई गई है। उस राजसभा में मानवीय म्रनुभव में म्राने वाली पृथ्वी म्राकाश की समग्र शक्तियां प्रभु के सम्मुख खड़ी होकर उसके गुण गाती हुई दिखाई गई हैं। ये समस्त् कार्य उसकी म्रनंत इच्छा के म्रनुकूल, उसके म्रादेश के म्रनुसार चल रहे हैं। म्रत: प्रत्येक जीव को उसकी इच्छा के म्रनुकूल रहना ही शोभा देता है)।

१. (हे हरि) वह द्वार कैसा है, वह घर कैसा है, जहां बैठ कर तुम समस्त जीवों की संभाल करते हो ?

२. (वहां) म्रनेक, म्रसंख्य, बाजे बज रहे हैं म्रौर कितने ही बाजे बजाने वाले हैं।

३. वहां रागनियों के साथ कितने ही राग गाए जा रहे हैं, बज रहे हैं, म्रौर कितने ही राग रागनियां गाने वाले हैं।

४. पवन, जल म्रौर म्रग्नि तुम्हारी गुण स्तुति कर रहे हैं। धर्मराज भी तुम्हारे ही द्वार पर तुम्हारी गुणस्तुति कर रहा है।

५. वे चित्रगुप्त भी तुम्हारा गान करते हैं जो मनुष्यों के कर्मो को लिखना जानते हैं म्रौर जिनके लेख के म्रनुसार धर्मराज जीवों की गति विचारता है।

६. शिव, ब्रहमा म्रौर देवियां, जो तुम्हारे बनाए हुए हैं, तुम्हारा गान कर रहे हैं।

७. कितने ही इन्द्र, म्रपने सिंहासनों पर बैठे, देवताम्रों के साथ तुम्हारे द्वार पर तुम्हारा गुणगान कर रहे हैं।

८. समाधि में लीन सिद्ध लोग तुम्हारा गान कर रहे हैं म्रौर साधु विचार द्वारा तुम्हें गा रहे हैं।

९. यति, सत्यनिष्ट, श्रौर सन्तोषी पुरुष तुम्हारा गुणगान कर रहे हैं। परम शूरवीर तुम्हारा गुणगान कर रहे हैं।

१०. पण्डित श्रौर महर्षि जो वेदों को पढ़ते हैं, अपने-अपने युगों के वेदों को लेकर तुम्हारा गुण-गान कर रहे हैं।

११. स्वर्गलोक, मर्त्यलोक श्रौर पाताल लोक की मनोमोहनी सुन्दरियां तुम्हारा गुण-गान कर रही हैं।

१२. चौदह रत्न श्रौर अठारह तीर्थ, जो तुम्हारे उत्पादित हैं, तुम्हारा ही गुण-गान कर रहे हैं।

१३. योधा, महाबली श्रौर शूरवीर तुम्हारा गुण-गान कर रहे हैं। चौदह भुवनों के जीव तुम्हारा गुण-गान कर रहे हैं।

१४. समस्त ब्रह्माण्ड, उसके भाग श्रौर मण्डल जो तुमने बनाकर स्थिर कर रखे हैं तुम्हारा गुण-गान कर रहे हैं।

१५. तुम्हें वही गाते हैं जो तुम्हें अच्छे लगते हैं। क्योंकि, वे तुम्हारे भक्त हैं श्रौर तुम्हारे प्रेम के रस में मग्न हुए रसिक हैं।

१६. कितने ही अन्य भी गाने वाले है जो मेरे विचार में भी नहीं आ रहे, नानक उनका क्या विचार करे।

१७. वह स्वामी परमात्मा ही सदा सत्य है। वह सत्य है। उसकी महिमा सत्य है।

१८. वह अब विद्यमान है, वह आगामी काल में भी होगा; वह अकाल पुरुष जिसने सृष्टि रची है, न जन्म ग्रहण करता है, न मृत्यु को प्राप्त होगा।

१९. यह प्रभु वह है जिसने अनेक रंगों, जातियों श्रौर प्रकारों की रचना करके साथ-साथ माया भी रच दी है।

२०. वह जीवों को उत्पन्न कर के उनकी संभाल भी कर रहा है, जिस प्रकार कि उस महान की महत्ता के अनुरूप है।

२१. उसे जो कुछ अच्छा लगता है वह वही करेगा। उसके सम्मुख कोई आदेश नहीं किया जा सकता (कि ऐसे करना चाहिए अथवा नहीं करना चाहिए)।

२२. वह राजा है, राजाश्रों का राजा है, (नानक) उसकी इच्छा के अनुसार चलना ही उचित है।२७।

१. **मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूति ।**
२. **खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति ।**
३. **आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु ।**
४. **आदेसु तिसै आदेसु ।**
५. **आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ।**२८

मुंदा—मुद्रा, कर्णमुद्रा, कुण्डल; **सरमु**—श्रम, उद्यम; **पतु**—पात्र, खप्पर; **बिभूति**—राख; **खिंथा**—कन्था, गुदड़ी; **कालु**—मृत्यु, **कुआरी काइआ**—पवित्र शरीर; **परतीत**—निश्चय का; **आई पंथी**—जोगियों के एक सम्प्रदाय का नाम; 'आई, पन्थ हैं; **जमाती**—अपने साथ को, सहचर; **आदेसु**—नमस्कार; **अनीलु**—बेदाग़, पवित्र; **अनादि**—जिसका अपना आदि नहीं है; **अनाहति**—जो मरता नहीं ।

टीका

विज्ञप्ति—ये चार 'पउड़ियां' सिद्ध जोगियों के प्रति हैं । यहां गुरु महाराज धर्म का वास्तविक विविक्षित अर्थ बतलाना चाहते हैं । किसी के धार्मिक होने को जानने के लिए यह देखना चाहिए कि उसने अपने मन की दासता से ऊपर उठ कर मन के ज्योति-स्वरूप होने की पहचान कितनी की है और जीवन-जांच सीख कर जीवन की समस्याओं को कितना सुलझा लिया है ? और इस प्रकार वह वास्तविकतया कितना मनुष्य बन गया है ? इन 'पउड़ियों' में चाहे योगियों के धार्मिक चिह्नों—कन्था, कुण्डल, दण्ड तथा अन्य साम्प्रदायिक वस्तुओं का ग्रहण किया है परन्तु उपदेश का भाव सब धर्मों के लिए एक है । बाह्य धार्मिक चिह्न तब ही गुणकारी हो सकते हैं जब वे किसी आन्तरिक सुन्दर जीवन के प्रदर्शक हों अथवा उस जीवन को बनाने में सहायता करें । वह कैसे ? यह इन 'पउड़ियों' में बतलाया गया है ।

१. (हे योगी, तू योगी कहलाने का अधिकारी तब है जब) तू सन्तोष कुण्डल पहने, उद्यम को अपना खप्पर और झोली बनाए, प्रभु में ध्यान जोड़ने को शरीर पर राख मली समझे । (कुण्डल, झोली आदि ठीक हैं यदि उनमें से सन्तोष आदि निकलें) ।
२. मृत्यु का ध्यान तेरी कन्था हो । (तेरी जोग की पद्धति यह हो कि शरीर को पवित्र रखा जाए और निश्चय रुपी तेरा दण्ड हो ।

३. 'सबको अपना सहचर समझना', तेरा "आई पंथी' होना" हो । अपने मन की जीत को जगत् की जीत समझ । (जोगी जगत् को चामत्कारिक शक्तियों के द्वारा चकित करके अपना अनुयायी बनाना चाहते हैं । परन्तु जब मन वश में हो जाए तब मानो जगत् जीत लिया गया) तब विषय-विकार की नाना प्रकार की तरंगें मन को चलायमान नहीं करतीं, अतः मन जीतने से जगत् जीता जाता है ।

४. तेरा 'आदेश', 'आदेश' का वचन केवल उस परमात्मा को लक्ष्य करके कहा जाना चाहिए जो (वास्तविक अर्थ में स्वयं आदेश (आदेश=आदि—ईश=ईशों में प्रथम ईश) है : अतः आदेश नमस्कार का अधिकारी है ।

५. जो सबका आदि है, जो पवित्र स्वरुप है जिसका अपना आदि नहीं, जो मरता नहीं और जो युग-युग (सदा) से एक वेश (रुप) में रहता है ।२८।

२९

१. **भुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि वाजहि नाद ।**

२. **आपि नाथु नाथी सभ जा की रिधि सिधि अवरा साद ।**

३. **संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग ।**

४. **आदेसु तिसै आदेसु ।**

५. **आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ।२९।**

पद-अर्थ

भुगति—योगियों का चूरमा, भोजन, **भंडारणि**—भंडारा बांटने वाली; **घटि-घटि**—प्रत्येक हृदय में; **नाद**—वाजे, शब्द (शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है—शब्द-रुप ब्रह्म; हरि का शब्द जो गुरु का शब्द हो जाता है) ।

विज्ञप्तिः—जब साधक शब्द द्वारा ऊंची आध्यात्मिक दशा में पहुंच जाता है तब आत्मा को परमात्मा के आत्मिक दर्शन होते हैं । उससे जो आनन्द उत्पन्न होता है वह ऐन्द्रिय आनन्द नहीं होता प्रत्युत आत्मिक आनन्द है । इसे कहा जाता है कि आनन्द संगीतमय हो गया है अर्थात् नाद, भेरी, किंगरी आदि बज पड़े हैं । परन्तु क्योंकि, शब्द के, अथवा नाम के द्वारा यह आनन्द की दशा आई है) अतः शब्द ही एक प्रकार से संगीत्-

मय हुआ है। क्या शब्द वस्तुत: संगीतमय हो जाता है? हां, हो जाता है। परन्तु यह संगीत ऐन्द्रिय नहीं होता, आत्मिक आनन्द का ही प्रकटीकरण होता है। यह आत्मिक मंडल में व्याप्त आत्मिक दशा के आनन्द का ही एक रूप है यह कानों का विषय नहीं। यह नाम से उत्पन्न होता है, साधक प्रभु के प्रेम से, शब्द की साधना से, प्रभु में सुरति जोड़ने आदि से एक ऊंची ध्यानावस्था में पहुंच जाता है। वहां पहुंच कर यह आनन्द मिलता है। इसे मेल का आनन्द भी कह सकते हैं। साधक का मनोरथ मेल है आनन्द नहीं; आनन्द उस मेल का स्वत: प्रकटीकरण है); **नाथु**—स्वामी; **नाथी**—नथी हुई है (सृष्टि); **रिधि**—प्रताप, महत्ता; **सिधि**—सफलता, चमत्कार, जोगियों में आठ सिद्धियां प्रसिद्ध हैं (क) अणिमा—छोटा हो जाना; (ख) लघिमा—बहुत हलका हो जाना; (ग) प्राप्ति—प्रत्येक पदार्थ प्राप्त करने की शक्ति; (घ) प्राकामय—स्वतन्त्र इच्छा, जिसका कोई प्रतिरोध न कर सके; (ङ) महिमा—अपने आप को इच्छानुसार बड़ा बनाना; (च) ईशित्व—प्रभुता; (छ) वशित्व—दूसरे को अपने वश में करना (ज) कामावसाइता—कामादिक विकारों को वश में करने का बल); **अवरा**—अन्य प्रकार का; **साद**—स्वाद; **संजोग**—मेल; **विजोगु**—वियोग, **लेखै**—कर्मों के लेखों के अनुसार, **भाग**—हिस्से।

टीका

१. (हे योगी) हमने आपके भोजन तैयार होते देखे हैं—एक भंडारी अथवा भंडारिन होती है, नाथ जी भी मौजूद होते हैं; रिद्धियों—सिद्धियों का अभ्यास होता है, नाद बजते हैं, एक भंडारे की सामग्री लाने वाला होता है एक उसे बांटने वाला, अन्त में सब को अपना भाग मिलता है। परन्तु उस ईश्वरीय भंडारे की ओर देखो जो ईश्वर के घर तैयार होता है)। वहां हरि का ज्ञान भोजन होता है, उसकी दया भंडारिन है (उसकी दया से वह भंडारा चलता है) घट-घट में उसके नाद बज रहे हैं (यद्यपि जब कोई साधक नामवान के साथ अभेद को प्राप्त हो जाता है तब कोई विरला ही उसे सुनता है।

२. उस भंडार का स्वामी वह आप है जिसने समस्त सृष्टि को नाथ (वश में कर) रखा है। वहां रिद्धियों-सिद्धियों के आनन्द अन्य प्रकार के हैं (वहां वे रिद्धियां-सिद्धियां नहीं जिन्हें प्राप्त करने के लिए आप भाग दौड़ करते हैं। आपकी यह समस्त 'रिधि-सिधि' मोह है, यह सब माया है; परन्तु वहां जीवन-सम्बन्धी विचार ही अन्य हैं।

वहां नाम के द्वारा जो आध्यात्मिक और आचारिक गुण उत्पन्न होते हैं वे ही वास्तविक रिद्धियां सिद्धियां मानी जाती हैं । 'प्रभ कै सिमरनि रिधि सिधि नउ निधि' ।

३. (जो दो तत्व) संसार का कार्य चलाने के सिए संयोग के दो अमूल्य नियम कार्य कर रहे हैं (वे हैं प्रभु का प्रेम और माया का प्रेम । एक संयोजन का कार्य करता है, अन्य वियोजन का) और फिर जीवों को कर्मों के लेखे के अनुसार ईश्वरीय भंडार से अपना-अपना भाग मिलता है ।

४. तेरा 'आदेश' 'आदेश' का वचन केवल उस परमात्मा को लक्ष्य करके कहा जाना चाहिए जो (वस्तुत:) आप आदेश (आदीश=आदि ईश=ईशों में प्रथम) है (और आदेश का अधिकारी है)—

५. जो सबका आदि है, जो पवित्र स्वरूप है जिसका अपना आदि नहीं, जो मरता नहीं और जो युग-युगान्तर (सदा) से एक वेश (एक समान) ही रहता है ।

३०

१. **एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ।**
२. **इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु ।**
३. **जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु ।**
४. **ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु ।**
५. **आदेसु तिसै आदेसु ।**
६. **आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेस ।३०**

पद-अर्थ

एका माई—एक (एक हरि) और माया का, **जुगति**—किसी युक्ति से, **विआई**—प्रसववती हुई, प्रसूता हुई, **परवाणु**—माना हुआ (विचार), **संसारी**—संसार वाला, संसार का रचने वाला, ब्रह्मा, **भंडारी**—पालक, विष्णु, **लाईदीबाणु**—मृत्यु के आदेशों को पूर्ण करने के लिए सभा लगाने वाला, शिव; **ओना**—उन्हें, जीवों को; **विडाणु**—आश्चर्यजनक बात ।

टीका

१. (हे योगी ! आप जानते हैं कि यह विचार) प्रामाणिक हैं (अर्थात्

यह सैद्धान्तिक विचार है) कि एक (ब्रहम) और माया अर्थात् शिव शक्ति (चेतन और प्रकृति) का मेल हुआ और फिर माया किसी युक्ति से प्रसववती हुई तथा उस से तीन शिष्य (पुत्र) उत्पन्न हुए।

२. (उनमें से) एक संसार के रचने वाला (ब्रहमा) हुआ, एक पालने वाला (विष्णु) और एक मृत्यु की आज्ञाओं की पूर्ति के लिए सभा लगाने वाला शिव हुआ। अर्थात शिव और शक्ति, चेतन और प्रकृति, शरीर और आत्मा को किसी बुद्धिचातुर्य से मिला दिया गया है। फिर विकास के नियमों के अनुसार संसार के उत्पन्न होते रहने, विस्तीर्ण होते रहने और नष्ट होते रहने की व्यवस्था हो गई।

३. (हे योगी) शिव और शक्ति का अपना अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं, न ब्रहमा, विष्णु, शिव आदि का है। यह स्रष्टा ने खेल बनाया है— 'शिव सकति आपि उपाइकै करता आपे हुकमु वरताए, जैसे उस प्रभु को अच्छा लगता है और जैसे उसकी आज्ञा होती है वैसे ही वह संसार की व्यवस्था कर रहा है।

४. (जीवों के लिए) परम आश्चर्य की बात यह है कि वह परमात्मा तो सब जीवों को देखता है (सब की संभाल आप करता हैं) परन्तु जीवों को वह दिखाई नहीं देता (यही कारण है कि लोग इस व्यवस्था को ब्रहमा, शिव और विष्णु आदि भिन्न-भिन्न देवताओं के द्वारा की गई समझते हैं और कारणों के कारण उस हरि को विस्मृत कर देते हैं जो अकेला आप ही सब का आदि, पवित्र, अनादि तथा अनश्वर है)।

५. हे योगी ! तेरा 'आदेश' का वचन केवल परमात्मा को लक्ष्य करके कहा जाना चाहिए जो (वास्तव में) आप ही आदेश (आदिश = आदि ईश = ईशों में प्रथम) है।

६. जो सब का आदि है, जो पवित्र स्वरुप है, जिसका अपना आदि नहीं है जो मरता नहीं है और जो युग-युगान्तर (सर्वदा) एक समान है। ३०।

३१

१. आसणु लोइ लोइ भंडार
२. जो किछु पाइआ सु एका वार
३. करि करि वेख सिरजणहारु।
४. नानक सचे की साची कार

५. **आदेसु तिसै आदेसु**

६. **आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुग एको वेसु । ३१ ।**

पद-अर्थ

आसणु—निवास-स्थान; **लोइ लोइ**—प्रत्येक लोक में; **भंडारु**—भाण्डागार; **सिरजणहारु**—स्रष्टा ।

टीका

१. (हे योगी) हरि का निवास (किसी शिवपुरी में नहीं) वह लोक लोक में है, और लोक लोक में उसके अन्नागार हैं ।

२. इन अन्नागारों में उसने जो कुछ भरा है, एक बार ही भर दिया है

३. (फिर) सृष्टि को बना-बना कर उसकी संभाल भी करता रहता है ।

४. (नानक) सत्य प्रभु की रचना (सृष्टि) सत्य है—'आप सति कीआ सभु सति ।

५. हे योगी । तेरा 'आदेश' 'आदेश' का वचन, केवल उस परमात्मा को लक्ष्य कर के कहा जाना चाहिए जो (वस्तुत:) आप ही आदेश (आदीश=आदि ईश ईशों में प्रथम) है ।

६. जो सब का आदि है, जो पवित्र स्वरुप है, जिसका अपना आदि नहीं है, जो मरता नहीं है और जो युग युग (सदा) एक समान रहता है ।३१।

३२

१. **इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस**

२. **लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस**

३. **एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीऐ होइ इकीस**

४. **सुणि गला आकास की कीटा आई रीस**

५. **नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस ।३२।**

पद-अर्थ

इकदु—एक से; **जीभौ**—जीभ से; **गेड़ा**—चक्कर, फेरा, बारी; **जगदीस**—जगत के स्वामी, प्रभु; **राहि**—रास्ते में; **पति पवडीआ**—

पति से मिलने के मार्ग के सोपान; **इकीस**—एक ईश्वर के; **गला आकास कीआ**—परमात्मा की आकाशी (ऊंची) बातें; **कीटा**—तुच्छ जीव; **कूड़ी ठीस**—मिथ्या बातें।

टीका

१. (अब स्पष्टतया बतलाया जाता है कि नाम धर्म अथवा परमार्थ के मार्ग में मनोरथ प्राप्त करने के लिए सर्वोच्च साधन गिना गया है—'सगल धरम महि स्रेसट धरमु। हरि का नामु जपि निरमल करमु' उस नाम का यथार्थ दर्शन क्या है?—नाम क्या है और क्या नहीं। यह स्पष्ट समझाया गया है) यदि एक जीभ से लाख जीभें हो जाएं और फिर लाख से बीस लाख।

२. और प्रत्येक जीभ से जगदीश, प्रभु, के नाम के जप के लाख लाख चक्र पूर्ण किए जाएं अर्थात निरन्तर नाम जपा जाए—

३. पति से मिलने के मार्ग में ये (वास्तव में) सोपान हैं। परन्तु ईश्वर के होकर इन पर चढ़ा जाता है (ईश्वर के) आत्मसमर्पण करके, प्रेम में लीन होकर इन पर चढ़ना सम्भव है—'राम राम सभु को कहै कहिऐ रामु न होई, गुरपरसादी रामु मनि वसै ता फलु पावै कोइ।)

४. वैसे चाहे परमात्मा की आकाशी (ऊंची) बातें सुनकर तुच्छ से तुच्छ जीव के मन में भी स्मरण की उत्सुकता उत्पन्न हो जाती है।

५. परन्तु (नानक) जब उसकी कृपा हो तभी उसकी प्राप्ति होती है (और कृपा होती है उसके साथ अभिन्नता हो जाने पर) शेष मिथ्या वादियों की केवलमात्र मिथ्या गप्पें होती हैं (मिथ्यावादियों के ईश्वर स्मरण संबंधी कथन निस्सार हैं)।३२।

३३

१. आखणि जोरु चुपै नह जोरु
२. जोरु त मंगणि देणि न जोरु
३. जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु
४. जोरु न राजि मालि मनि सोरु
५. जोरु न सुरती गिआनि वीचारि
६. जोरु न जुगती छुटै संसारु

७. **जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ**

८. **नानक उतमु नीचु न कोइ ।३३।**

पद-अर्थ

जोरु—शक्ति, बल; **सोरु**—शोर, कोलाहल, वैभव-प्रदर्शन; **जुगती**—युक्ति, रीति; **छुटै संसार**—संसार छूट जाता है, जन्म-मरण दूर होता है ।

टीका

१. (उपर्युक्त 'पउड़ी' में उल्लिखित 'कृपा' का विचार यहां सामूहिकतया लिया गया है । कुछ भी उसकी कृपा के बिना नहीं चलता न कोई बोलने में स्वतन्त्र है, न चुप रहने में । (अपने आप न कोई बोल सकता है न चुप रह सकता है) ।

२. न मांगने में किसी का वश चलता है, न दूसरों को देने में अपना वश (अधिकार) है ।

३. न जीवित रहने में कोई स्व-वश है, न करने में ।

४. जिस राज्य और धन के कारण मनुष्य का मन अंहकार से इतना पूर्ण रहता है उस राज्य और धन का स्वामी बने रहने में कोई स्व-वश नहीं है ।

५. उच्च सुरति, ज्ञान और विचार में रहने में कोई स्वाधीन नहीं है ।

६. जिस युक्ति के बल से संसार अर्थात् जन्म-मरण छूटता है उसकी प्राप्ति में भी कोई स्वाधीन नहीं है ।

७. जिस (प्रभु) के हाथ में शक्ति (बल, सामर्थ्य) है, वही यह सृष्टि रचकर इसकी देखभाल करता है ।

८. (नानक) कोई स्वयं न उत्तम बन सकता है और न नीच ।३३।

३४

१. **राती रुती थिती वार ।**

२. **पवण पाणी अगनी पाताल**

३. **तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल**

४. **तिसु विचि जीअ जुगति के रंग**

५. **तिन के नाम अनेक अनंत ।**

६. करमी करमी होइ वीचारु

७. सचा आपि सचा दरबारु

८. तिथै सोहनि पंच परवाणु

९. नदरी करमि पवै नीसाणु

१०. कच पकाई ओथै पाइ ।

११. नानक गइआ जापै जाइ ।३४

पद-अर्थ

धरमसाल—धर्म साधना का स्थान: **परवाण**—प्रमाण, स्वीकृत होना, सम्मानित होना, **कच**—कच्चापन अथबा कमी होना, **पकाई**—पक्कापन पूर्ण होना।

टीका

विज्ञप्ति—यहां से आरम्भ होकर उन पांच पउड़ियों' (पड़ावों) का विस्तार है जिन पर क्रमश: चढ़कर जिज्ञासु जीवन के शिखर पर जा पहुंचता है । इन 'पउड़ियों' को खण्ड कहा गया है, और वे इस प्रकार हैं : धर्म खण्ड, ज्ञान खण्ड, लज्जा खण्ड, कर्म खण्ड, सत्य खण्ड (अन्तिम दो खण्ड एक 'पउड़ी' में समाप्त कर दिए गए हैं) ।

१. रात्रियां, ऋतुएं तिथियां दिन (आदिक),

२. और वायु, जल, अग्नि, पाताल (आदि)

३. (दो समूहों में) प्रभु ने पृथिवी को धर्म (कर्तव्य) साधन का स्थल बनाकर रखा है ।

४, इस पृथिवी पर अनेक प्रकार के और अनेक रंगों के जीव हैं ।

५. उन जीवों के अनेक अनन्त नाम भी हैं ।

६. इन जीवों के कर्मो के अनुसार प्रभु के घर उनके भाग्य का निर्णय होता है ।

७. (वहां न्याय होता है क्योंकि) प्रभु आप सत्य हैं और उसका घर सत्य है ।

८. वहां सन्त जन ही शोभित होते हैं । यह उनका ईश्वर के घर स्वीकृत होकर ऊपर चढ़ना है ।

९. वे सन्त प्रभु की कृपा से प्रामाणिक होने के भक्ति मार्ग में ऊपर

चढ़ने की, अवस्था की सूचना मुद्रा से अंकित हो जाते हैं।

१०. (जीवों के) अपूर्ण अथवा पूर्ण होने की परीक्षा नहीं होती है।

११. (नानक) इस तथ्य का ज्ञान वहां जाकर ही होता है (कि कौन कच्चा है और कौन पक्का है ?) ।३४।

३५

१. धरम खण्ड का एहो धरमु

२. गिआन खण्ड का आखहु करमु

३. केते पवण पाणी वैसंतर केते कान महेस

४. केते बरमें घाड़ति घड़ीअहि रुप रंग के वेस

५. केतीआ करम भूमी मेर केते केते धू उपदेस

६. केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस

७. केते सिधु बुध नाथ केते केते देवी वेस

८. केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद

९. केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद।

१०. केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु ।३५।

पद-अर्थ

खण्ड—(आध्यात्मिक अवस्था के) भाग, आध्यात्मिक मार्ग के सोपान; **धरमु**—नियम; **करमु**—कर्त्तव्य, व्यवहार; **कान**—कृष्ण; **महेश**—शिव; **करम भूमि**—कर्म अनुष्ठान के स्थान; **मेर**—सुमेरु पर्वत; **ध**—ध्रुव; **देवी वेस**—देवी के रूप (लक्ष्मी, दुर्गा, काली, चण्डी, भगवती आदि; **देव**—देवता; **दानव**—दैत्य; **खाणीं**—भवन; **बाणी**—वाणियों, बोलियों; **पात**—बादशाह; **नरिंद**—राजा; **सुरती**—सुरति, ध्यान, वृतियां।

टीका

१. धर्म-खण्ड का नियम तो यह है (जो ऊपर कहा है)

२. (अब) ज्ञान-खण्ड का व्यवहार कहो (सुनो)

३. (ज्ञान की अवस्था में पहुंचकर ज्ञात होता है कि) कितने ही अर्थात् अनेक ही पवन, जल और अग्नि (के रुप हैं) और कितने ही कृष्ण और शिव हैं।

४. कितने ही ब्रहमा उसकी रचना में रचे जा रहे हैं जिनके अनेक रुप रंग और वेश हैं।

५. कर्म-अनुष्ठान की कितनी ही पृथ्वी हैं (जैसे, हमारी पृथ्वी है) कितने ही सुमेरु पर्वत हैं और कितने ही ध्रुव भक्त और उनके उपदेश हैं।

६. कितने ही इन्द्र, चन्द्रमा और सूर्य हैं और कितने ही मण्डल तथा देश

७. कितने ही साधु बुद्धिमान् पुरुष और नाथ हैं, और कितने ही देवी के रुप हैं।

८. कितने ही देव, दैत्य और मुनीश्वर हैं और कितने ही समुद्र हैं और (समुद्रों से निकलने वाले) रत्न हैं।

९. कितने ही भुवन हैं और बोलियां हैं, कितने ही बादशाह और राजा हैं।

१०. कितने ही ध्यान लगाए जाते हैं, कितने ही सेवक हैं, (नानक) इन सबका अन्त नहीं प्राप्त किया जा सकता है।३५।

३६

१. गिआन खण्ड महि गिआनु परचंडु
२. तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु
३. सरम खण्ड की बाणी रूपु
४. तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु
५. ता कीआ गला कथीआ न जाहि
६. जे को कहै पिछै पछुताइ
७. तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि
८. तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि।३६।

पद-अर्थ

परचंडु—प्रबल; **नाद**—राग; **बिनोद**—मनोविनोद के साधन; **कोड**—कौतुक; **अनंदु**-आनन्द, आस्वाद, **सरम**-श्रम, उद्यम; **बाणी**—बनावट, लक्षण; **रूपु**—सौंदर्य:, सुधि-बुद्धि।

टीका

१. ज्ञान की अवस्था में ज्ञान का प्राबल्य होता है।

२. इस अवस्था में राग, मनोविनोद, कौतुक और उनसे प्राप्त होने वाला आनन्द ये सब बने रहते हैं।

३. लज्जा खण्ड की रचना (आध्यात्मिक) सुन्दरता है।

४. इस खण्ड की रचना में बहुत सुन्दर रूप रचा जाता है।

५. इस अवस्था की बातें बताई नहीं जा सकतीं।

६. यदि कोई बतलाने का यत्न करेगा तो पीछे पश्चाताप करेगा। (क्योंकि) इसका वर्णन नहीं हो सकता।

७. यहां मति, मन और बुद्धि में उच्च सुरति घड़ी जाती है।

८. यहां देवताओं और सिद्धों वाली बुद्धि घड़ी जाती है।३६।

३७

१. करम खण्ड की बाणी जोरु
२. तिथै होरु न कोई होरु
३. तिथै जोध महाबल सूर
४. तिन महि रामु रहिआ भरपूर
५. तिथै सीतो सीता महिमा माहि
६. ता के रुप न कथने जाहि
७. ना ओहि मरहि न ठागे जाहि
८. जिन कै रामु वसै मन माहि
९. तिथै भगत वसहि के लोअ
१०. करहि अनंहु सचा मनि सोइ
११. सच खंडि वसै निरंकारु
१२. करि करि वेखै नदरि निहाल
१३. तिथै खंड मंडल वरभंड
१४. जे को कथै त अंत न अंत
१५. तिथै लोअ लोअ आकार
१६. जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार

१७. वेखै विगसै करि वीचारु

१८. नानक कथना करड़ा सारु ।३७।

पद-अर्थ

करम—कृत्य, व्यावहारिक कर्म, भक्ति भाव से उत्पन्न सेवक का कर्म; **बाणी**—बनावट, लक्षण, रूप; **जोर**—बल; **लोअ**—लोक; **विगसै**—प्रसन्न होता है; **सारु**—लोहा।

टीका

विज्ञप्ति—(गत खण्ड में भी व्यावहारिक सेवक की अवस्था ही कही गई है। परन्तु अब सेवक घड़ा हुआ होकर ऊंची सुरति वाला हो गया है। अब ऐसा पूर्ण सेवक है। जिस से सेवा स्वत: निकलती है उसे सेवा के लिए उद्यम करने की आवश्यकता नहीं रहती। वह आध्यात्मिक बल से परिपूर्ण है। ज्ञानी वह पहले ही था। अब भक्त भी हो गया है। वह एक साथ सेवक, भक्त और ज्ञानी है।

१. कर्म खण्ड की बनावट आत्मबल है।

२. (इस अवस्था में सब स्थानों पर सब जीवों में, केवल परमात्मा ही परमात्मा दिखाई देता है (उसके अतिरिक्त कोई अन्य होता ही नहीं)

३. यहां आत्म-बल वाले योद्धा, महाबली और शूरवीर होते हैं—

४. जिनके भीतर राम (प्रभु) आप बस रहा है।

५. वहां इस राम की महिमा में सीता ही सीता (उसके अनेक भक्त) हैं।

६. इनके आत्मा के रूप की सुन्दरता कही नहीं जा सकती।

७. वे न मरते हैं, न ठगे जाते हैं—

८. जिनके मन में यह राम (परमात्मा) रहता है।

९. इस अवस्थामें अनेक लोकों के भक्त जन बसते हैं।

१०. जो सदा आनन्द प्राप्त करते हैं। (क्योंकि) उनके हृदय में सत्य प्रभु रहता है।

११. (इस से आगे) सत्य खण्ड है जिसमें निराकार भगवान् स्वयं रहता है

१२. जो रचना रच कर, समृद्ध कर देने वाली कृपा की दृष्टि से, उसे देखता है।

१३. उस अवस्था में रचना के अनेक खण्ड, मण्डल और ब्रहमाण्ड हैं।

१४. यदि कोई उनका वर्णन करे तो उनका अन्त नहीं प्राप्त कर सकता।

१५. वहां लोक ही लोक हैं और उन लोकों में अनेक आकार हैं।

१६. जैसे-जैसे निराकार प्रभु का आदेश होता है वैसे-वैसे कार्य चलता है।

१७. निराकार प्रभु विचार करके इन लोगों की संभाल करता है, और प्रसन्न होता है।

१८. (नानक) इस अवस्था का कथन लोहे के सदृश कठिन है।३७।

३८

१. **जतु पांहारा धीरजु सुनिआरु**

२. **अहरणि मति वेदु हथीआरु**

३. **भउ खला अगनि तप ताउ**

४. **भांडा भाउ अंम्रितु तित ढालि**

५. **घड़ीऐ सबदु सची टकसाल**

३. **जिन कउ नदरि करमु तिन कार**

७. **नानक नदरी नदरि निहाल।३८।**

पद-अर्थ

जतु—इन्द्रियों को विकारों से रोकना, संयमित्व; **पाहारा**—पसारा अथवा भट्ठी, जहां बैठकर स्वर्णकार काम करता है; **वेदु**—ज्ञान; **तप ताउ**—कठिन साधना, संयमी जीवन; **भाउ**—प्रेम; **अंम्रित**—अमृत नाम; **ढालि**—गला कर, ढाल कर; **नदरि**—कृपा दृष्टि शाली प्रभु; **निहाल**—समृद्ध, प्रसन्न।

टीका

विज्ञप्ति—(जिस अत्युच्च आध्यात्मिक दशा का वर्णन पीछे किया गया है उसका आधार पवित्राचरण है जिसे महती साधना से इस प्रकार बनाना पड़ता है जैसे सुनार किसी धातु को अग्नि में डालकर, तपा कर बनाता है। ऐसे जीवन में ही नाम टिकता है जो प्रत्येक आध्यात्मिक उच्चता का कारण होता है। ज़ब पवित्र आचरण के द्वारा जीवन का आधार पक्का करके नाम जपा जाता है तब एक उच्च सुरति उत्पन्न होती

है जहां हरि के साथ अभेद हो जाता है। यहां पहुंच कर शब्द घड़ा जाता है अर्थात् वाणी उतर कर महापुरुषों को प्राप्त होती है)।

१. यदि संयम रूपी भट्टी हो, धैर्य रूपी स्वर्णकार हो।

२. मति रूपी अहरन हो और ज्ञान रूपी हथोड़ा हो।

३. प्रभु भय रूपी धौंकनी हो और कठिन साधना रूपी अग्नि हो।

४. प्रेम रूपी बर्तन (कुठाली) हो तो इस (कुठाली) में अमृत नाम ढालो।

५. इसी सच्ची टकसाल में शब्द घड़ा जाता है।

६. जिन मनुष्यों को प्रभु कृपा का दान देते हैं, जिन पर अनुग्रह करते हैं वे यह कार्य करते हैं।

७. (नानक) उस प्रभु की कृपा दृष्टि के कारण धन्य हो जाते हैं।३८।

सलोक

विज्ञप्ति—यह जपुजी का अन्तिम 'सलोक' है। इसमें मानवीय जीवन पर द्रुत दृष्टिपात किया गया है।

१. पवणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु

२. दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै-सगल जगतु

३. चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि

४. करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि

५. जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि

६. नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि।१।

पद-अर्थ

मसकति—महती; **वाच**—पढ़ता है, जांच पड़ताल करता है; **महतु**—मेहनत, साधना।

टीका

१. (जगत के जीवों के लिए) पवन मानो गुरु हैं, (पवन को गुरु कहने का कारण यह है कि शरीर को क्रियाशील रखने के लिए यह ऐसे ही आवश्यक है जैसे आत्मा के लिए गुरु) 'पवन गुरु गुर शब्द है'—(भाई गुरुदास), जल पिता है और पृथ्वी महती माता है (पृथ्वी के उदर

में पानी जाने से ही पृथ्वी से वनस्पति तथा अन्य कितने ही पदार्थ उत्पन्न होते हैं जैसे माता पिता की रक्त बूंद से बालक का जन्म होता है। अतः पृथ्वी वास्तव में महती माता है और जल पिता है)।

२. दिन खिलाने वाला पुरुष, और रात्रि खिलाने वाली स्त्री है। समस्त जगत इसकी गोद में खेल रहा (काम-काज में लग्न है)

३. आगे, प्रभु के सम्मुख, धर्मराज (जीवों के) सत्-असत् कर्मों की पड़ताल करता है।

४. अपने-अपने कर्मो के अनुसार कई जीव परमात्मा के निकट हो जाते हैं और कई दूर फेंके जाते हैं।

५. जिन जीवों ने नाम—स्मरण किया है, वे श्रममय जीवन सफल कर गये हैं—

६. (नानक) वे (प्रभु के घर) मुक्त होते हैं और कई अन्य जीव भी उनके साथ (माया के बन्धनों, जन्म-मरण के चक्रों से तथा कर्मों का फल भोगने से) बच जाते हैं।

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥

सो दरु रागु आसा, महला—१

१. सो दरु तेरा केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले।
२. वाजे तेरे नाद अनेक असंखा केते तेरे वावणहारे।
३. केते तेरे राग परी सिउ कहीअहि केते तेरे गावणहारे।
४. गावनि तुधनो पवणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरम दुआरे।
५. गावनि तुधनो चितुगुपतु लिखि जाणनि लिखि लिखि धरमु बीचारे
६. गावनि तुधनो ईसरु ब्रह्मा देवी सोहनि तेरे सदा सवारे।
७. गावनि तुधनो इन्द्र इन्द्रासणि बैठे देवतिआ दरि नाले।
८. गावनि तुधनो सिध समाधी अंदरि गावनि तुधनो साध बीचारे।
९. गावनि तुधनो जती सती संतोखी गावनि तुधनो वीर करारे।
१०. गावनि तुधनो पंडित पड़नि रखीसुर जुगु जुगु वेदा नाले।
११. गावनि तुधनो मोहणीआ मनु मोहनि सुरगु मछु पइआले।
१२. गावनि तुधनो रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले।

१३. गावनि तुधनो जोध महाबल सूरा गावनि तुधनो खाणी चारे ।
१४. गावनि तुधनो खंड मंडल ब्रहमंडा करि करि रखे तेरे धारे ।
१५. सेई तुधनो गावनि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ।
१६. होरि केते तुधनो गावनि जो मै चिति न आवनि नानकु किआ बीचारे ।
१७. सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ।
१८. है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ।
१९. रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ।
२०. करि करि देखै कीता आपणा जिउ तिसदी वडिआई ।
२१. जो तिसु भावै सोई करसी फिरि हुकमु न करणा जाई ।
२२. सो पातिसाहु साहा पति साहिबु नानक रहणु रजाई ।१।

दरु—दरवाज़ा; **नाद**—बाजे; **परी**—रागिनियां; **वैसंतरु**—अग्नि; **चितु गुपतु**—धर्मराज के मुन्शी, जीवों के सद्-असत् कर्मों का लेख लिखने वाले; **इसरु**—शिव; **इन्द्र**—इन्द्र राजा; **इन्द्रासणि**—इन्द्र के आसन; **विचारे**—विचार के अन्दर; **वीर करारे**—कड़े (बलवान्) बहादुर; **रखीसर**—महर्षि; **मछ**—(मध्यलोक) मातृलोक, पृथ्वी; **पइआलै**—पाताल लोक की; **रतन**—चौदह रत्न, जो समुन्द्र मंथन से निकले हुए माने गए हैं—चन्द्रमा, धन्वंतरि, कामधेनु आदि; **खाणी चारे**—अण्डज, जटायुज, उद्भिज्ज, स्वेदज (चार योनियां); **खंड मंडल वरभंडा**—ब्रह्माण्ड के भाग, ब्रह्माण्ड के चक्र अतः ब्रह्माण्ड; **रसाले**—रसवाले, रसिक ।

विज्ञप्ति—(अब प्रभु की प्रशंसा एक दरबार की रचना करके बतलाई है जिस दरबार के मध्य मानवीय अनुभव में आई हुई पृथ्वी आकाश की सभी शक्तियां प्रभु के उस दरबार में खड़ी होकर उसके गुण गाती हुई दिखाई गई हैं। ये सब उसकी असीम इच्छा में बंधी उसकी आज्ञा के अनुसार चल रही हैं। अतः प्रत्येक जीव को उसकी इच्छा के भीतर रहना ही शोभा देता है) ।

१. (हे प्रभु), वह दरवाज़ा कैसा है, वह घर कैसा है, जहां बैठकर तू सभी प्राणियों की रक्षा करता है ?
२. (वहां) अनेक, असंख्य बाजे बज रहे हैं और कितने ही बाजे बजाने वाले हैं ।
२. वहां रागनियों सहित कितने ही राग गाए जा रहे हैं, (विविध राग

रागिनियाँ) बज रही हैं और कितने ही राग-रागिनियों के गायक हैं।

४. पवन, जल और अग्नि तुम्हारा यश गा रहे हैं, धर्मराज भी तुम्हारे ही दरवाजे पर बैठकर गुणगान कर रहा है।

५. चित्रगुप्त जो मनुष्यों के कर्मों को लिखते हैं और जिनके लिखे अनुसार धर्मराज जीवों की गति पर विचार करते हैं, वे भी तुम्हारा गुणगान कर रहे हैं।

६. शिव ब्रह्मा और देवियां जो तुम्हारे बनाए हुए हैं, तुम्हारा गान कर रहे हैं।

७. देवताओं के साथ अपने इन्द्रासन पर बैठे कई इन्द्र भी तुम्हारे दरवाजे पर बैठे हुए तुम्हारा गुणगान कर रहे हैं।

८. समाधियों में लीन सिद्धगण तुम्हारे गीत गा रहे हैं और साधु विचारों में तुम्हारे गीत गा रहे हैं।

९. यति, सत्वगुणी, सन्तोषी और महान शूरवीर तुम्हारे गीत गा रहे हैं।

१०. पण्डित एवं महर्षि जो वेदों का अध्ययन करते हैं, अपने-अपने युग-युगान्तरों के वेदों सहित, तुम्हारे गीत गा रहे हैं।

११. स्वर्ग, भूमि और पाताललोक की मनमोहिनी सुन्दरियां तुम्हारे गीत गा रही हैं।

१२. चौदह रत्न और अड़सठ तीर्थ, जिन्हें तुमने उत्पन्न किया है, तुम्हारा ही गुणगान कर रहे हैं।

१३. योद्धागण, महाबली और शूरवीर तुम्हारे गीत गा रहे हैं, चार प्रकार की योनियों के जीव तुम्हारा यश गाते हैं।

१४. समस्त ब्रह्माण्ड, उसके खण्ड और मण्डल, जिनकी रचना करके तुमने उन्हें (नियत स्थानों पर) स्थित कर दिया है, तुम्हारे गीत गा रहे हैं।

१५. तुम्हारा गुणगान वे ही करते हैं जो तुम्हें अच्छे लगते हैं। क्योंकि, वे तुम्हारे भक्त हैं और तुम्हारे प्रेम में रंगे रसिक हैं।

१६. (गुरु) नानक कहते हैं कि अन्य भी कितने ही गायक हैं जो सब मेरे ध्यान में नहीं आ रहे हैं। मैं उनका क्या करूं?

१७. वह स्वामी, ईश्वर ही, सदैव सत्य है, वही सत्यवान है, उसकी महिमा सत्य है।

१८. वह अब विद्यमान है, वह भविष्य में भी विद्यमान रहेगा; वह

अकालपुरुष, जिसने सृष्टि का निर्माण किया है, न तो उत्पन्न होता है, न (ही उसका) मरण होगा।

१९. यह प्रभु वह है जिसने विविध आकार, प्रकार, रूप, वर्ण की अनेक वस्तुओं की रचना करके साथ-साथ माया का निर्माण कर दिया है।

२०. वह जीवों को उत्पन्न करके उनकी रक्षा भी कर रहा है, जैसा कि उस महान् की महिमा के अनुरूप है।

२१. उसे जो कुछ अच्छा लगता है, वह वही करता है। उसको कोई आदेश नहीं किया जा सकता (कि इस प्रकार करना चाहिए या नहीं करना चाहिए)।

२२. वह राजा है, राजाओं का राजा है, (नानक) उसकी इच्छा के अनुसार चलना उचित है।२७।

आसा महला–१

१. सुणि वडा आखै सभु कोइ।
२. केवडु वडा डीठा होइ।
३. कीमति पाइ न कहिआ जाइ।
४. कहणै वाले तेरे रहे समाइ।।१।
५. वडे मेरे साहिबा गहिर गंभीरा गुणी गहीरा।
६. कोइ न जाणै तेरा केता केवडु चीरा।१। रहाउ।
७. सभि सुरती मिलि सुरति कमाई।
८. सभि कीमति मिलि कीमति पाई।
९. गिआनी धिआनी गुर गुरहाई।
१०. कहणु न जाई तेरी तिलु वडिआई।२।
११. सभि सत सभि तप सभि चंगिआईआ।
१२. सिधा पुरखा कीआ वडिआईआ।
१३. तुधु विणु सिधी किनै न पाईआ।
१४. करमि मिलै नाही ठाकि रहाईआ।३।
१५. आखण वाला किआ वेचारा।
१६. सिफती भरे तेरे भंडारा।
१७. जिसु तू देहि तिसै किआ चारा।
१८. नानक सचु सवारणहारा।४।२।

पद-अर्थ

सुणि—सुनकर; **रहे समाइ**—लीन हो जाते हैं; **गहिर गंभीरा**—गहन और गंभीर; **गुणी गहीरा**—गुणों के कारण गहरा; **चोरा**—विस्तार, विस्फार; **सुरती**—ध्यानी लोग; **कीमति**—मूल्य जानने वाला; **गुरहाई**—गुरु शब्द का बहुवचन, गुरुओं के गुरू, महान् गुरू; **सत**—पुण्य दान; **सिधा**—सिद्ध गण; **सिधी**—सिद्धि; **करमि**—कृपा द्वारा; **ठाकि रहाईआ**—रोक कर रखी जा सकती है; **चारा**—उपाय; **सवारणहारा**—संवारने वाला, परिष्कारक, संस्कारक ।

टीका

१. सुन-सुन कर सभी लोग कहते हैं कि वह (प्रभु) महान् है ।

२. परन्तु वह कितना महान् है ? यह वही बतला सकता है जिसने उसके दर्शन किए हों ।

३. हे प्रभु, न तुम्हारा कोई मूल्यांकन कर सकता है और न उस मूल्थ का वर्णन हो सकता है ।

४. तुम्हारी महिमा का वर्णन करने वाले तुम्हीं में समाहित हो जाते हैं।

५. हे मेरे महान स्वामी, हे अत्यंत गभीर, हे गुणों से अगाध ।

६. कोई नहीं जानता कि तुम्हारा विस्तार कितना है, और कितन विशाल है ? ।।१।। रहाउ ।

७. सभी ध्यानियों ने (तुम्हारा अन्त जानने के लिए) समाधियाँ लगाईं ।

८. सभी मूल्याकन करने वालों ने मिलकर तुम्हारे मूल्य-अंकन करने का प्रयास किया ।

९. ज्ञानियों, ध्यानियों, गुरुओं और गुरुओं के गुरुओं ने यत्न किया ।

१०. परन्तु तुम्हारी महिमा का तिलमात्र अंश भी न बतला सके ।२।

११. सभी सत्वगुण, सभी तप, सभी शुभ गुण

१२. और सिद्ध पुरुषों की प्राप्त की हुई महत्ताएं ।

१३. (इन सबके होते हुए) तुम्हारी प्राप्ति के बिना किसी को जीवन की सफलता नहीं मिली ।

१४. (जब तुम्हारी कृपा से जीवन-सफलता मिले तब) कोई शक्ति मार्ग में बाधा नहीं डाल सकती ।

१५. (तुम्हारी महिमाएं) कथन करने वाले की शक्ति (योग्यता, गुणवत्तां) ही क्या है ?

१६. तुम्हारे भण्डार प्रशंसा से पूर्ण इतने अनन्त हैं कि वराक वक्ता किस प्रकार कथन करें ?

१७. जिसे तुम (उस भण्डार से सत्य का दान) देते हो उसे कोई अन्य उपाय अपेक्षित नहीं है।

१८. (नानक) यह सत्य (प्रभु) ही उसका परिष्कर्ता है।४।२।

आसा महला—१

१. आखा जीवा विसरै मरि जाउ ।
२. आखणि अउखा साचा नाउ ।
३. साचे नाम को लागै भूख ।
४. उतु भूखै खाइ चलीअहि दूख ।१।
५. सो किउ विसरै मेरी माइ ।
६. साचा साहिबु साचै नाइ ।१। रहाउ ।
७. साचे नाम की तिलु वडिआई ।
८. आखि थके कीमति नही पाई ।
९. जे सभि मिल कै आखणि पाहि ।
१०. वडा न होवै घाटि न जाइ ।२।
११. ना ओहु मरै न होवै सोगु ।
१२. देदा रहै न चूकै भोगु ।
१३. गुणु एहो होरु नाही कोइ ।
१४. ना को होआ ना को होइ ।
१५. जेवडु आपि तेवड तेरी दाति ।
१६. जिनि दिन करि कै कीती राति ।
१७. खसमु विसारहि ते कमजाति ।
१८. नानक नावै बाझु सनाति ।४।३।

आखा अर्थात् 'आखां'—कहता हूँ, स्मरण करता हूं; **जीवा अर्थात् 'जीवां'**—मैं जीता हूं; **विसरै**—विस्मृत हो जाता है; **साचै नाइ**—सच्चा नाम (ईश्वर का नाम); **आखणि पाहि, अर्थात् 'आखण लगपैण'**—कहने

लगें; **न चूकै भोगु**—खाना समाप्त नहीं होता; **गुण**—विशिष्टता; **कमजाति**—छोटी जाति वाले, नीच; **सनाति**—छोटी जाति वाले, नीच।

१. जब मैं ईश्वर का स्मरण करता हूँ तब (वास्तविक अर्थ में) मैं जीवित रहता हूँ, यदि नाम भूल जाता हूँ तो मर जाता हूँ।

२. (परन्तु) सच्चे नाम का स्मरण कठिन है (इसके लिये पवित्रता, प्रेम, श्रद्धा आदि गुण चाहियें—'विणु गुण कीते भगति न होई'—गुणों के बिना कहीं भक्ति नहीं होती)।

३. मुझे सच्चे नाम की भूख लगती है।

४. उस भूख में नाम रूपी भोजन खाने से दुःख दूर हो जाते हैं।१।

५. हे मेरी माँ, वह नाम (परमात्मा) मुझे किस प्रकार भूल सकता है?

६. उस सच्चे नाम के स्मरण से ही सच्चा स्वामी प्राप्त होता है।।रहाउ।।

७. सच्चे नाम की तिल भर महिमा भी

८. कथित नहीं हो सकी—सभी कथन कर करके थक गए।

९. यदि सभी जीव मिलकर उस नामवान् की महिमा कहने लगें,

१०. तो (बहुत भली-भान्ति कहने से) वह महान् नहीं होता। और (कम भली भांति कहने से) वह लघु नहीं होता।।२।।

११. (उसका नाम क्योंकि आवश्यक है? क्योंकि वह ही अमर वस्तु है) वह मरता नही है और उसके सेवक को शोक नहीं होता है।

१२. वह दानी देता रहता है और उसकी देनें भोगने से कभी समाप्त नहीं होती है।

१३. यह उसी की विशिष्टता है कि उसके समान और कोई नहीं है।

१४. न कोई हुआ है, न कोई होगा।।३।।

१५. (हे प्रभु) जितने महान तुम स्वयं हो, उतनी ही महती तुम्हारी देनें हैं।

१६. तुम वह हो जिसने दिन और रात्री को जन्म दिया है।

१७. जो जीव ऐसे स्वामी को विस्मृत कर देते हैं, वे नीच हो जाते हैं।

१८. नानक का कथन है कि नाम स्मरण से हीन जीव (वास्तव में) नीच होते हैं।४।३

आसा महला—१

१. तितु सरवड़ै भईले निवासा पाणी पावकु तिनहि कीआ।

२. **पंकजु मोह पगु नही चालै हम देखा उह डूबीअले ।१।**

३. **मन एकु न चेतसि मूड़ मना ।**

४. **हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ।१। रहाउ ।**

५. **ना हउ जती सती नही पड़िआ मूरख मुगधा जनमु भइआ ।**

६. **प्रणवति नानक तिन की सरणा जिन तू नाही वीसरिआ ।२।३।**

तितु—उस; **सरवड़े**—सरोवर में, संसार रूपी समुन्द्र में; **भइले**—हुआ है; **निवासा**—वास; **पावकु**—अग्नि; **तिनहि**—उसने, परमात्मा ने; **पंकजु**—पङ्क, मोह रूप कर्दम; **पगु**—पैर; **उह**—वहां, उस तालाब के मध्य; **डूबीअले**—डूबता है; **चेतसि**—स्मरण करता है; **मूड़**—मूढ़, मूर्ख; **जती**—इन्द्रियों पर संयम रखने वाला; **सती**—सत्य को धारण करने वाला; **मुगधा**—मुग्ध, मतिमन्द; **प्रणवति**—प्रणाम करता है, विनय करता है ।

१. हे भाई, हम जीवों का उस संसार रूपी समुद्र में निवास है जिस में उस प्रभु ने जल के स्थान में तृष्णा की अग्नि भर दी है ।

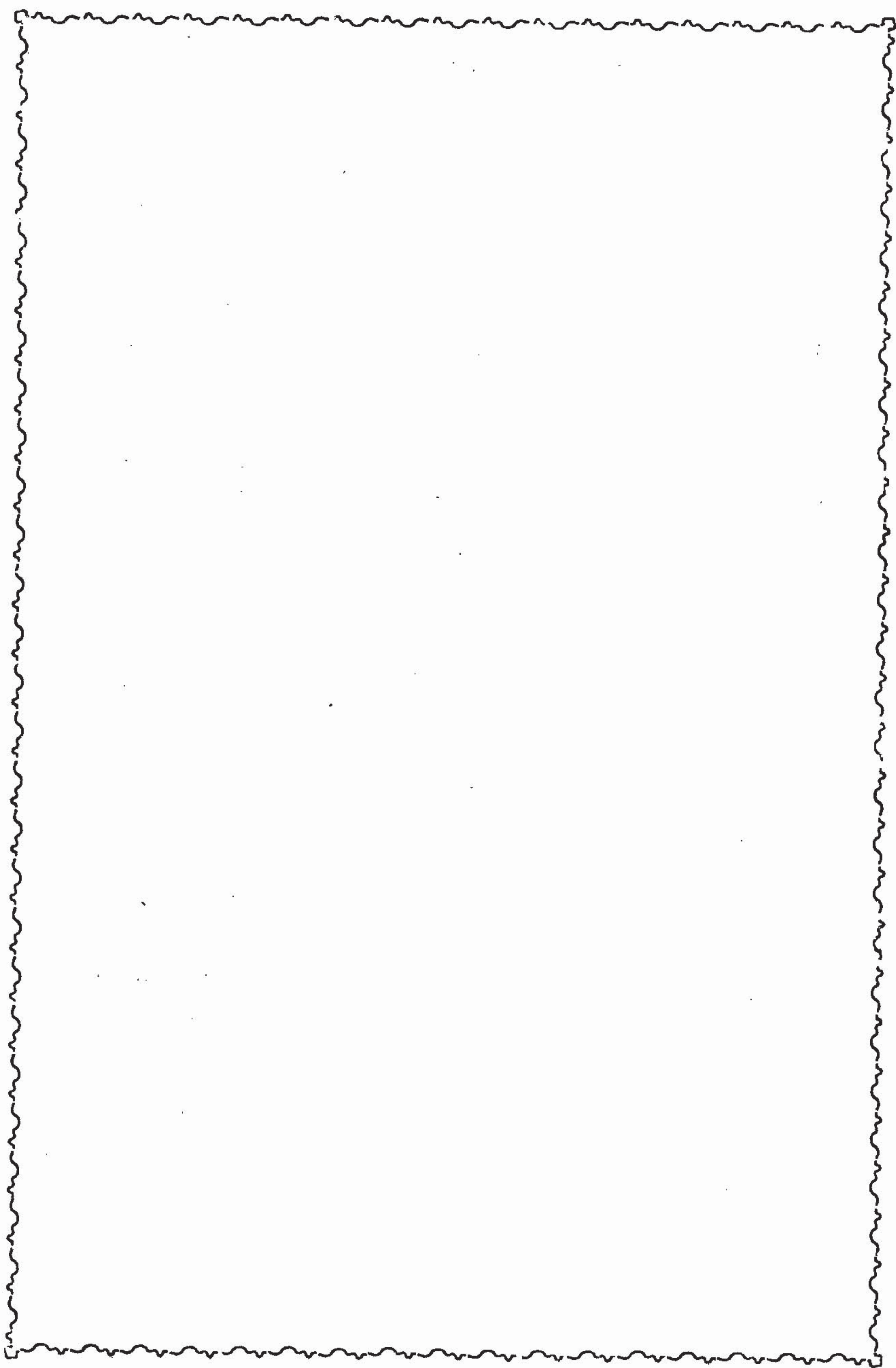
२. उसमें मोह रूपी कर्दम है और पैर आगे नहीं चलता है। हमारे देखते-देखते ही उस सागर में अनेक प्राणी डूबते जा रहे हैं ।

३. हे मन, हे मूर्ख मन, तू एक अद्वितीय परमात्मा को स्मरण नहीं करता है ।

४. भगवान के विस्मरण से ही तेरे गुण नष्ट हो रहे हैं ।।रहाउ।

५. हे प्रभु, न मैं संयमी हूँ, न मैं सत्य पर दृढ़ रहने वाला हूँ, न शिक्षित हूँ । मेरा जीवन मूर्खों का सा, मन्दमतियों का सा, है ।

६. (दास नानक) विनय करता है कि मुझे उन की शरण में रखो, जो तुमको कभी नहीं भूलते हैं, जो सदा तुम्हारा स्मरण करते हैं ।२।३।



'सोहिला' में से

[illegible]

१–ओं सतिगुर प्रसादि ॥

सोहिला

रागु गाउड़ी दीपकी महला—१

१. **जै घरि कीरति आखीऐ करते का होइ बीचारो ।**

२. **तितु घरि गावहु सोहिला सिवरिहु सिरजणहारो ।१।**

३. **तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला ।**

४. **हउ वारी जितु सोहिलै सदा सुखु होइ ।१। रहाउ ।**

५. **नित नित जीअड़े समालीअनि देखैगा देवणहारु ।**

६. **तेरे दानै कीमति ना पवै तिसु दाते कवणु सुमारु ।२।**

७. **संबति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेलु ।**

८. **देहु सजण असीसड़ीआ जिउ होवै साहिब सिउ मेलु ।३।**

९. **घरि घरि एहो पाहुचा सदड़े नित पवंनि ।**

१०. **सदणहारा सिमरीऐ नानक से दिह आवंनि ।४/१।**

पद-अर्थ

जै घरि—जिस घर में, तात्पर्य सत्संग में ; **सोहिला**—कीर्तिगीत, विवाह के अवसर पर सौभाग्य के लिए आशीष का गीत; **सिवरिहु**—स्मरण करो; **समालिअनि**—संभाले जाते हैं, पालन-पोषण होता है; **देखैगा**—देख भाल करेगा, सुख - दुःख का पता लेता रहेगा ; **दानै**—दान की; **सुमारु**—गणना, लेखा; **संबति**—संवत्, वर्ष; **साहा**—विवाह दिन, समय विशेष; **पावहु तेल**—विवाह वाली कन्या के सिर में तेल डाला जाता है और सौभाग्यवती होने की आशीषें दी जाती हैं; **असीसड़ीआं**—आशीषें; **पाहुचा**—सन्देशवाहक, सन्देश देने वाला नाई, जो कन्यावालों के घर वर वालों के घर से आवश्यक सन्देश लेकर जाता है; **सदड़े**—बुलावे; **दिह**—दिन; **आवनि**—आ रहे हैं ।

टीका

१. जिस सत्संग घर में (परमात्मा की) कीर्ति गाई जाती है और कर्त्ता पुरुष का विचार होता है।

२. (हे मेरे जीवन) उस घर में तू भी सोहिला गा और स्रष्टा प्रभु का स्मरण कर।१।

३. (हे मेरे जीवन) तू मेरे निर्भय प्रभु का सोहिला गा।

४. मैं उस सोहिले के बलिहार जाता हूँ जिसके कारण शाश्वत सुख मिलता है।

५. (हे जीवन) जिस प्रभु के भवन में सर्वदा जीवों की देख-भाल की जाती है। दानों का देने वाला सब की देख-रेख करता है।

६. (हे जीवन) जिसकी दी हुई देनों का मूल्यांकन नहीं हो सकता, उस दाता का क्या मूल्यांकन हो सकता है ? ।२।

७. वह संवत् और शुभ दिन लिखा रहता है (जब स्वामी के घर जाना है) इस हेतु (हे सत्संगी सहेलियों) एकत्र होकर मेरे सिर में तेल चुवाओ।

८. हे सज्जनों, (सहेलियों), आशीर्वाद दो जिससे मेरे स्वामी, पति, के साथ मेरा मिलाप हो।३।

९. (परलोक जाने के लिए) विवाह का निमंत्रण घर-घर आ रहा है, जीव रुपी स्त्रियों को नित्य बुलावे आ रहे हैं।

१०. अत: हमें अपने स्रष्टा प्रभु का स्मरण करना चाहिए। (नानक) (हमारे भी) वे दिन निकट आ रहे हैं। ४/१।

रागु आसा महला—१

१. **छिअ घर छिअ गुर छिअ उपदेस।**

२. **गुरु गुरु एको वेस अनेक।१।**

३. **बाबा जै घरि करते कीरति होइ।**

४. **सो घरु राखु वडाई तोइ ।१। रहाउ।**

५. **विसुए चसिआ घड़ीआ पहरा थिती वारी माहु होआ।**

६. **सूरजु एको रुति अनेक।**

७. **नानक करते के केते वेस।२।२।**

पद-अर्थ

छिअ घर—छः शास्त्र (न्याय, वैशेषिक, सांड्ख्य, योग, मीमांसा और वेदांत); **छिअ गुर**—छः शास्त्रों के निर्माता (गौत्तम, कणाद, कपिल, पंतजलि, जैमिनि, और व्यास); **छिअ उपदेस**—छः सिद्धान्त, और व्यास; **छिअ उपदेस**—छः सिद्धान्त, प्रत्येक शास्त्र का सिद्धान्त; **घरि**—शास्त्र में, सत्संग में; **वडाई**—भलाई, हित; **विसुए**—१५ बार पलकों का गिरना; **चसिआ**—१५ विसुए का १ चसा; **घड़ीआ**—३० × ६० चसे की एक घड़ी (**पल**—३० चसे; **घड़ी**—६० पल); **पहरा**—साढ़े सात घड़ी का एक प्रहर; **दिन-रात**—८ प्रहर का दिन रात; **थितां**—चंद्रमास की पन्द्रह तिथियां; **वार**—सात दिन; **माहु**—मास; **रूतां**—ऋतुएं; **वेस**—वेश, रूप ।

टीका

१. (हे भाई) छः शास्त्र हैं, छः ही इनके प्रवर्तक हैं और छः ही इनके सिद्धान्त हैं ।

२. परन्तु इन सभी का परम गुरु एक परमात्मा है जिसके अनेक रूप हैं (जिनका शास्त्र वर्णन करते हैं ।) ।१।

३. हे भाई; जिस शास्त्र में सृष्टि-रचयिता की कीर्त्ति का वर्णन रहता है ।

४. तुम उस शास्त्र को मानो, इसी में तेरा हित है ।१। रहाउ ।

५. जिस प्रकार विसुए चसे, घड़ियां, प्रहर, तिथि, वार मास (हैं) ।

६. अनेक ऋतुएं हैं—परन्तु सूर्य एक ही है (जिसके ये सभी भिन्न-भिन्न रूप हैं) ।

७. (नानक, इसी प्रकार) कर्त्ता पुरुष के भी अनेक रूप हैं (जिनको ये सिद्धान्त प्रकट करते हैं) ।२/२।

रागु धनासरी महला—१

१. गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ।

२. धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फुलंत जोती ।१।

३. कैसी आरती होइ ।

४. भवखंडना तेरी आरती ।

५. अनहता सबद वाजंत भेरी ।१। रहाउ

६. सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस मूरति नना एक तोही ।

७. सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही ।२।

८. सभ महि जोति जोति है सोइ ।

९. तिस दै चानणि सभ महि चानणु होइ ।

१०. गुरसाखी जोति परगटु होइ

११. जो तिसु भावै सु आरती होइ ।३।

१२. हरि चरण कवल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही पिआसा ।

१३. क्रिपा जलु देहि नानक सारिंग कउ होइ जा ते तेरै नाइ वासा ।४/३।

पद-अर्थ

गगन में—आकाशमय, आकाश रूपी; **रवि**—सूर्य; **तारिका**—तारे; **मंडल**—समूह; **जनक**—मानो, जिस प्रकार कि; **धूपु**—सुगंधित पदार्थ; **मलआनलो**—मलय (पर्वत) को स्पर्श करके आई हवा (**मलय**—मद्रास के समीप एक पर्वत है जिस पर चंदन होता है); **पवणु**—हवा; **बनराइ**—वनस्पति; **फुलंत**—फूल रही है; **जोती**—हे ज्योतिस्वरुप प्रभु; **आरती**—आरती, पूजा; **भवखंडना**—हे जन्म-मरण से मुक्ति देने वाले; **अनहता शबद**—अनाहत शब्द, वह शब्द जो बिना बजाए बजे; **वाजंत**—बज रही है; **भेरी**—नगाड़ा; **सहस**—सहस्रों; **तव**—तेरे; **नैन**—आंखें; **नव**—कोई नहीं; **हहि**—है; **तोहि कउ**—तेरे; **मूरति**—स्वरूप; **पद**—पैर; **बिमल**—स्वच्छ, सुन्दर; **गंध**—नाक; **चलत**—कौतुक; **मोहो**—मोहित; **गुर साखी**—गुरु की शिक्षा द्वारा; **मकरंद**—पुष्पों का रस; **लोभित**—ललचा रहा है; **आही**—है; **सारिंग**—पपीहा; **जाते**—जिससे; **नाइ**—नाम के अन्दर ।

टीका

विज्ञप्ति—(यह आरती गुरु नानक देव जी ने जगन्नाथ जी के मन्दिर में गाई थी)।

१. हे प्रभु, तुम्हारी पूजा के लिए आकाश रूपी थाल हैं, उसमें सूर्य और

चन्द्रमा दो दीपक हैं, तारों का समूह मानों उसमें मोती हैं ।

२. मलयगिरि के चन्दन की सुगन्धित धूप है, वायु चँवर कर रहा है, और हे ज्योतिस्वरूप प्रभु, सम्पूर्ण वनस्पति पुष्पों का कार्य दे रही है ।

३. तुम्हारी यह कैसी सुन्दर आरती हो रही है ?

४. हे जन्म-मरण के नाश करने वाले, तुम्हारी कैसी सुन्दर आरती हो रही है ?

५. सभी जीवों के अन्दर बजने वाला अनाहत शब्द मानो नगाड़ा है । (१। रहाउ ।) जपुजी में इसको नाद कहा है 'घटि-घटि बाजहि नाद'—प्रत्येक हृदय के अन्दर प्रभु का नाद बज रहा है—(सभै घट रामु बोलै'—सभी हृदयों में प्रभु प्रकट हो रहा है) ।

६. (अब आगे उस प्रभु को सभी जीवों में व्यापक दिखाया गया है । जिस प्रभु की प्रकृति में आरती हो रही है वह समस्त जीवों के मध्य ही देखा जा सकता है) । (हे प्रभु) तुम्हारे सहस्रों नेत्र हैं, समस्त जीव तुम्हारा ही प्रकाश हैं (नाम हैं), उनके नेत्र एक प्रकार से तुम्हारे नेत्र हैं, परन्तु वैसे तुम्हारा एक भी नेत्र नहीं है (तुम निराकार हो) (कहने के लिए) तुम्हारी सहस्रों मूर्तियां हैं, वास्तव में तुम्हारी कोई भी मूर्त्ति नहीं ।

७. तुम्हारे सहस्रों सुन्दर चरण हैं परन्तु तुम्हारा कोई भी चरण नहीं है, तुम्हारी सहस्रों घ्राणेन्द्रियां हैं परन्तु तुम्हारी कोई भी घ्राणेन्द्रिय नहीं हैं—यह कौतुक देखकर मैं विस्मित हो रहा हुँ ।२।

८. सभी में एक ज्योति व्याप्त है ।

९. जिसके प्रकाश से सभी में प्रकाश हो रहा है :

१०. वह ज्योति गुरु की शिक्षा द्वारा दिखाई देती है ।

११. फिर जो कुछ उस ज्योति को स्वीकार्य होता है वही पूजा बन जाती है (उसे स्वीकार कर लिया जाता है) ।३।

१२. हे हरि, तुम्हारे कमल रूपी चरणों के मकरन्द के लिए मेरा मन ललचा रहा है । अतः मुझे सर्वदा प्यास लगी रहती है ।

१३. हे प्रभु, नानक पपीहे को अपनी कृपा का जल दो, जिस से उसका निवास तुम्हारे नाम में हो जाए ।४/३।

[illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

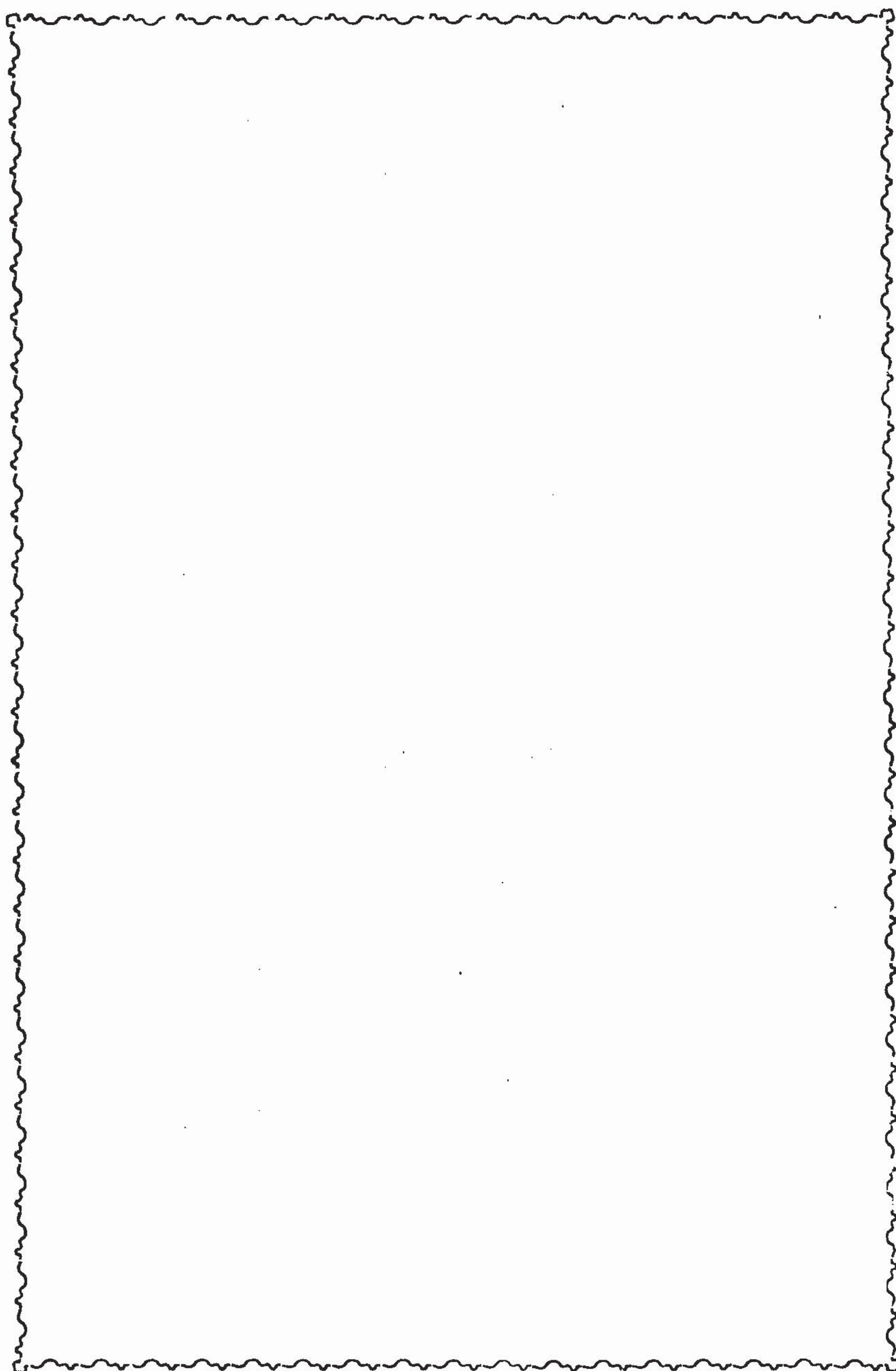
[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

राग सिरी



१—ओं सतिगुर प्रसादि ॥

सिरी रागु महला १

पदे १

१. मोती त मंदर ऊसरहि रतनी त होहि जड़ाउ ।
२. कसतूरि कुंगू अगरि चंदनि लीपि आवै चाउ ।
३. मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ।१।
४. हरि बिनु जीउ जलि बलि जाउ ।
५. मैं आपणा गुरु पूछि देखिआ अवरु नाही थाउ ।१। रहाउ ।
६. धरती त हीरे लाल जड़ती पलघि लाल जड़ाउ ।
७. मोहणी मुखि मणी सोहै करे रंगि पसाउ ।
८. मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ।२।
९. सिधु होवा सिधि लाई रिधि आखा आउ ।
१०. गुपतु परगटु होइ बैसा लोकु राखै भाउ ।
११. मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ।३।
१२. सुलतानु होवा मेलि लसकर तखति राखा पाउ ।
१३. हुकमु हासलु करी बैठा नानका सभ वाउ ।
१४. मतु देखि भूला वीसरै तेरा चित न आवै नाउ ।४।१।

पद-अर्थ

कसतूरि—कस्तूरी; **कुंगू**—कुङ्कुम, केसर; **अगरि**—अगरु, एक सुगन्धित काष्ठ, (ऊद); **लीपि**—लिपा हुआ; **आवै चाउ**—हर्ष हो; **मतु**—न (संस्कृत—मा 'तावत्'); **थाउ**—स्थान, आश्रम; **मोहणी**—सुन्दर स्त्री; **रंगि**—प्यार में; **पसाउ**—हाव-भाव; **सिधु-सिद्ध, चमत्कार प्रदर्शक**; रिधि ऋद्धियां; धन-संपत्ति उत्पन्न करने की शक्तियां; **मेलि**—सङ्गृहीत करके; **पाउ**—पाद; **हासलु**—कर, शुल्क; **वाउ**—वायु के समान गतिशील ।

टीका

१. चाहे (मेरे लिए) मोतियों के भवन बने हुए हों जिनमें रत्न जड़े हुए हों (उन्हें और अधिक सुन्दर तथा बहुमूल्य बनाने के लिए),

२. (और) उन्हें कस्तूरी, केसर, अगर तथा चन्दन के साथ इस प्रकार लीपा जाए कि देखकर मन प्रसन्न हो जाए।

३. (परन्तु मैं सतर्क रहना चाहता हूं) ऐसा न हो कि उन्हें देखकर मैं भुलावे में पड़ जाऊं और तुम्हारा नाम विस्मृत हो जाए और पुन: चित्त में ही न आए।

४. जिस हृदय में भगवान नहीं है, वह जल-बल जाता है।

५. मुझे तो अपने गुरु से यही शिक्षा मिली है कि ईश्वर के बिना जीव का कोई आश्रय नहीं है।१। रहाउ।

६. चाहे मेरे घर की भूमि हीरक-जटित हो और पलंग में भी पद्म राग जड़े हों।

७. वहां सुन्दर स्त्री भी हो जिसके मस्तक पर मणि सुशोभित हो और वह प्रेम में हाव-भाव प्रकट करती हो।

८. (परन्तु मैं सावधान रहना चाहता हूं) कि ऐसा न हो कि इन्हें देखकर भूल में पड़ जाऊं, तुम्हारा नाम विस्मृत हो जाए और पुन: हृदय में आए ही नहीं।२।

९. चाहे सिद्ध होकर चमत्कारों का प्रदर्शन कर सकूं और ऋद्धियों पर भी मेरा अधिकार हो।

१०. मैं (अपनी इच्छानुसार) गुप्त या प्रत्यक्ष भी हो जाऊं और (इन शक्तियों के कारण) लोग मेरे ऊपर विश्वास रखने लगें।

११. (परन्तु मैं सावधान रहता हूं) कि ऐसा न हो कि इन्हें देखकर भूल में पड़ जाऊं तुम्हारा नाम विस्मृत हो जाए और पुन: हृदय में आए ही नहीं।३।

१२. चाहे मैं धराधीश हो जाऊं और सेना सङ्घड़ित करके अपने पैर भली-भान्ति जमा लूं।

१३. और इस प्रकार राज्य-सिंहासन पर बैठ कर शासन करूं और कर प्राप्त करूं, परन्तु (नानक) ये सब पदार्थ पवन के समान चंचल हैं।

१४. (परन्तु मैं सावधान रहना चाहता हूं) कि ऐसा न हो कि इनको

देखकर भूल में पड़ जाऊं, तुम्हारा नाम विस्मृत हो जाए और पुनः वह हृदय में आए ही नहीं ।४।१।

२

१. **कोटि कोटी मेरी आरजा, पवणु पीअणु अपिआउ ।**
२. **चंदु सूरजु दुइ गुफै न देखा, सुपनै सउण न थाउ ।**
३. **भी तेरी कीमति न पवै हउ केवडु आखा नाउ ।१।**
४. **साचा निरंकारु निज थाइ ।**
५. **सुणि सुणि आखणु आखणा जे भावै करे तमाइ ।१। रहाउ ।**
६. **कुसा कटीआ वार वार, पीसणि पीसा पाइ ।**
७. **अगी सेती जालीआ भसम सेती रलि जाउ ।**
८. **भी तेरी कीमति न पवै, हउ केवडु आखा नाउ ।२।**
९. **पंखी होइ कै जे भवा सै असमानी जाउ ।**
१०. **नदरी किसै न आवऊ ना किछु पीआ ना खाउ ।**
११. **भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ।३।**
१२. **नानक कागद लख मणा पड़ि पड़ि कीचै भाउ ।**
१३. **मसू तोटि न आवई लेखणि पउणु चलाउ ।**
१४. **भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ।४।२।**

पद-अर्थ

कोटि कोटी—करोड़ों, कई करोड़; **आरजा**—आयु; **पवणु पीअणु अपिआउ**—वायु ही खाना एवं पीना हो; **गुफै**—कन्दराओं में; **तमाइ**—कृपा; **कुसा**—काटा जाऊं; **भसम**—राख; **पंखी**—पक्षी; **सै**—सैंकड़े; **भाउ**—भाव जानना; **मसु**—स्याही; **लेखणि**—कलम; **पउण**—वायु के समान ।

टीका

१. चाहे मेरी आयु कई करोड़ वर्ष की हो जाए और मेरा खाना-पीना भी वायु ही हो,
२. मैं (समस्त आयु) ऐसी गुफा के अन्दर (बैठा हुआ तुम्हारा स्मरण

करता रहूं) जहां चन्द्र-सूर्य (रात्रि-दिन) का ज्ञान ही न हो और मुझे स्वप्न में भी निद्रा न आए।

३. (तो भी) (मैं) तुम्हारा मूल्याङ्कन नहीं कर सकता अर्थात् तुम्हारा नाम (यश) कितना बड़ा है, यह मैं कह नहीं सकता।१।

४. वह सच्चा निराकार अपने स्वरूप में ही स्थित है।

५. (जब तक कोई उसमें लीन न होवे तब तक कोई अन्य उसकी महिमा क्या कह सकता है)। लोग सुन-सुनकर ही उसका वर्णन करते हैं। यदि उसे अच्छा लगे तो वह कृपा करता है (और तब कुछ उसका ज्ञान हो जाता है)।१। रहाउ।

६. यदि मैं कई बार शूल से बांधा जाऊं, काटा जाऊं, चक्की में डालकर पीसा जाऊं।

७. अग्नि से जला कर राख में मिला दिया जाऊं।

८. (तो भी) (मैं) तुम्हारा मूल्यांकन नहीं कर सकता अर्थात् तुम्हारा नाम (यश) कितना महान् है, यह मैं नहीं कह सकता।२।

९. यदि मैं पक्षी होकर सौ आकाशों में उड़ता फिरूं ?

१०. कोई मुझे देख न सके और न मुझे खाने-पीने की आवश्यकता हो।

११. (तो भी) (मैं) तुम्हारा मूल्यांकन नहीं कर सकता अर्थात् तुम्हारा नाम (यश) कितना महान् है, यह मैं कह नहीं सकता।३।

१२. हे नानक, यदि (पुस्तकों के लिखने तथा पढ़ने के लिए) मेरे पास लाखों मन काग़ज़ हों और मैं भली-भांति अध्ययन-मनन करके उन पर सिद्धांत लिखूं।

१३. मेरे पास अक्षय्य स्याही भी हो और मेरी लेखनी वायु के समान चलती रहे।

१४. (तो भी) (मैं) तुम्हारा मूल्यांकन नहीं कर सकता अर्थात् तुम्हारा नाम (यश) कितना महान् है, यह मैं नहीं कह सकता।४।२।

३

१. लेखै बोलणु बोलणा लेखै खाणा खाउ।

२. लेखै वाट चलाईआ लेखै सुणि वेखाउ।

३. लेखै साह लवाईअहि पड़े कि पुछण जाउ।१।

४. बाबा माइआ रचना धोहु ।

५. अंधै नामु विसारिआ ना तिसु एह न ओहु ।१। रहाउ ।

६. जीवण मरणा जाइ कै, एथै खाजै कालि ।

७. जिथै बहि समझाईऐ तिथै कोइ न चलिओ नालि ।

८. रोवण वाले जेतड़े सभि बंनहि पंड परालि ।२।

९. सभु को आखै बहुतु बहुतु घटि न आखै कोइ ।

१०. कीमति किनै न पाईआ कहणि न वडा होइ ।

११. साचा साहबु एकु तू होरि जीआ केते लोअ ।३।

१२. नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु ।

१३. नानकु तिनकै संगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस ।

१४. जिथै नीच समालीअनि तिथै नदरि तेरी बखसीस ।

पद-अर्थ

लेखै—हिसाब में; **वाट**—मार्ग; **साह**—श्वास; **धोहु**—धोखा; **लोअ**—लोग ।

टीका

१. (मार्ग दो ही हैं—एक माया का और अन्य भगवान् का । जो लोग माया के मार्ग में हैं वे सर्वथा सीमा अर्थात् कर्मों के कारावास में हैं) जीवों का वचनों का बोलना, भोजन का खाना आदि समस्त कार्य-कलाप हिसाब (सीमा) की परिधि में है ।

२. उनका मार्ग चलना, उनका सुनना और देखना सब कुछ (भगवान् के) लेखे में हैं ।

३. यहां तक कि हम जो श्वास लेते हैं वे भी लेखे में हैं—यह उपर्युक्त विचार इतना स्पष्ट है कि किसी बुद्धिमान् से पूछने की आवश्यकता ही नहीं है ।१।

४. हे भाई (बाबा) माया का समस्त प्रपंच-निर्माण ही धोखा है ।

५. अज्ञानी पुरुष ने नाम को (जो सीमा से बाहर रहता है) विस्मृत कर दिया है । माया स्थायिनी ही नहीं है और नाम उसने लिया नहीं (उसके लोक और परलोक दोनों नष्ट हो गए) ।

६. जीव शरीर धारण करता है, जीवन व्यतीत करता है और फिर शरीर का त्याग कर देता है। जीवित-काल में वह माया के भोग भोगता है।

७. परन्तु परमात्मा के सम्मुख कर्मों का लेखा-जोखा समझाया जाता है। वहां माया की समस्त खेल साथ छोड़ देती है।

८. (मृत्यु के पश्चात्) रोने वाले सम्बन्धियों के रोने का उसको कोई लाभ नहीं पहुंचता। इस रोने का मूल्य उतना ही है जितना पयाल के गट्ठर का ।२।

९. (कहने के लिए तो) समस्त जीव उस असीमित को अतिमहान् कहते हैं और कोई भी उसे लघु नहीं बतलाता।

१०. परन्तु कोई उसका मूल्य नहीं समझ सका। वाचिक कथन मात्र से उसके मूल्य का अङ्कन नहीं किया जा सकता और न वह देखने में महान् हो जाता है (उसके स्वरूप को समझने के लिए त्याग करके उसमें लीन होना पड़ता है)।

११. हे भगवान्, स्थिर रहने वाले तुम ही हो। समस्त वर्गों के प्राणी (अस्थिर हैं) ।३।

१२. (अब मैंने समझ लिया है कि माया नश्वर है। जो माया के कारण महान् बने फिरते हैं उनको माया ने त्याग दिया है) जो जाति नीचों से नीच है और उन नीच जातियों में जो सबसे अधिक नीच गिनी जाती है।

१३. नानक उसका साथी बनना चाहता है। (मायाधारियों का नहीं)। मायाधारियों का अनुकरण करके वह उनके समान जीवन व्यतीत करना नहीं चाहता है।

१४. जहाँ नीचों की सेवा होती है, प्रभु की कृपा भी वहीं होती है ।४/३।

४

१. लबु कुता, कूड़ चूहड़ा ठगि खाधा मुरदारु।
२. पर निंदा पर मलु मुखि सुधी, अगनि क्रोध चंडालु।
३. रस कस आपुसलाहणा ए करम मेरे करतार ।१।
४. बाबा बोलिऐ पति होइ।

५. **ऊत्तम से दरि ऊत्तम कहीअहि नीच करम बहि रोइ । १ । रहाउ ।**

६. **रसु सुइना रसु रुपा कामिण रसु परमल की वासु ।**

७. **रसु घोड़े रसु सेजा मंदर रसु मीठा रसु मासु ।**

८. **एते रस सरीर के कै घटि नाम निवासु ।२।**

९. **जितु बोलिऐ पति पाईऐ सो बोलिआ परवाणु ।**

१०. **फिका बोलि विगुचणा सुणि मूरख मन अजाण ।**

११. **जो तिसु भावहि से भले होरि कि कहण वखाण ।३।**

१२. **तिन मति तिन पति तिन धनु पलै जिन हिरदै रहिआ समाइ ।**

१३. **तिन का किआ सालाहणा अवर सुआलिउ काइ ।**

१४. **नानक नदरी बाहरे राचहि दानि न नाइ ।४/४।**

पद-अर्थ

लबु—लोभ; **परनिंदा**—पर-दोष-दर्शन; **परमलु**—अन्यों का मल; **सुधी**—निरा, पूर्णतया; **रसकस**—कसैला आदि रस; खट्टे मीठे रस; **अम्ल**—मधुर रस; **आप सलाहणा**—अपनी प्रशंसा करनी, स्वयं को पसन्द करना; **दरि**—द्वार पर; **कामणि**—नारी; **परमल**—परिमल; **कै घट**—किसके हृदय में; **विगुचणा**—दुःखित होना; **सुआलिउ**—सुशोभन, सुन्दर; **नदरी बाहरे**—कृपा-दृष्टि के बिना ।

टीका

१. मेरे मन के भीतर लोभ कुत्ता है, मिथ्या-भाषण भंगी है और ठगकर खाना मृत-पशु (को खाने के समान) है ।

२. (हे जगत् के कर्ता ! परनिंदा मानो मेरे मुंह में निरा परकीय मल भरा है और क्रोध चाण्डाल (मानो) मेरे अन्दर प्रज्वलित अग्नि है ।

३. आत्म प्रशंसा कषाय रस है (जो मुझे स्वाद लगते हैं) हे मेरे कर्त्तार, (इन रुचियों से प्रेरित ही) मेरे समस्त कर्म होते रहते हैं ।

४. हे बाबा (भाई), नम्रता, हीनता, प्रेम-भावना तथा मधुरता के साथ) ऐसे वचन बोलो जिन से भगवान् के घर मान प्राप्त हो ।

५. उत्तम पुरुष वे हैं जो भगवान् के घर उत्तम घोषित किए जाते हैं । परन्तु नीच कर्मवान् दुःखित होकर रोते हैं ।१। रहाउ ।

६. मुझे सुवर्ण से प्रेम है, रजत से प्रेम है, नारी से प्रेम है और सुगन्ध से प्रेम है ।

७. मुझे घोड़ों से, (कोमल) शय्या से, मधुर रस से और मांस से प्रेम है ।

८. जिस मन में ऐन्द्रियिक रस से इतना प्रेम है वहां नाम का निवास किस प्रकार हो सकता है ।२।

९. वाग-व्यवहार वही यथार्थ है जिससे भगवान् के घर आदर प्राप्त हो ।

१०. हे मूढ, मुग्ध मन, सुन नीरस वचन बोलने से (मनुष्य) को दुःखित होना पड़ता है ।

११. (जो वचन) उस प्रभु को प्रिय लगे हैं, वे उत्तम हैं; और अन्य (वचन) क्या उच्चरित करने हैं, अथवा जिह्वा पर लाने हैं ।२।

१२. जिनके हृदय में परमात्मा हैं वे ही बुद्धिमान् हैं, सत्कार के योग्य और लक्ष्मीवान् हैं ।

१३. उनकी प्रशंसा किस प्रकार हो सकती है ? उनके अतिरिक्त कोई अन्य किस प्रकार अभिराम हो सकते हैं ?

१४. (नानक) जो लोग (प्रभु की) कृपा से दूर हैं, वे प्रभु की दोनों में उलझे हुए रहते हैं, नाम में नहीं ।४/४।

५

१. अमलु गलोला कूड़ का दिता देवणहारि ।
२. मती मरणु विसारिआ खुसी कीती दिन चारि ।
३. सचु मिलिआ तिन सोफीआ राखण कउ दरवारु ।१।
४. नानक साचे कउ सचु जाणु ।
५. जितु सेविऐ सुखु पाईऐ तेरी दरगह चलै माणु ।१। रहाउ ।
६. सचु सरा गुड़ बाहरा जिसु विचि सचा नाउ ।
७. सुणहि वखाणहि जेतड़े हउ तिन बलिहारै जाउ ।
८. ता मनु खीवा जाणीऐ जा महली पाए थाउ ।२।
९. नाउ नीरु चंगिआईआ सतु परमलु तनि वासु ।
१०. ता मुखु होवै उजला लख दाती इक दाति ।
११. दूख तिसै पहि आखीअहि सूख जिसै ही पासि ।३।

१२. सो किउ मनहु विसारीऐ जाके जीअ पराण ।

१३. तिसु विणु सभु अपवित्र है जेता पैनणु खाणु ।

१४. होरि गला सभि कूड़ीआ तुधु भावै परवाणु ।४/५।

पद-अर्थ

गलोला—मावे के तुल्य पिण्डित पदार्थ का गोला; **मती**—मत्त हुए लोगों ने; **सोफीआ**—सूफी लोग; **राखण कउ दरबारु**—राजसभा रखने के लिए, राजसभासद् बने रहने के लिए; **सरा**—सुरा, मदिरा; **बाहरा**—बिना; **खीवा**—क्षीण, मत्त; **महली**—महल में, घर में; **नाउ नीरु**—(ईश्वर) नाम रूपी जल; **सतु**—सात्विक कर्म (दान पुण्य आदि)।

टीका

१. दाता (प्रभु) ने मिथ्या रूपी मादक द्रव्य (अफ़ीम) का गोला जीवों को दिया है ।

२. (इस की मादकता से) मत्त हुए प्राणियों ने मृत्यु को विस्मृत कर दिया है और वे जीवन के अचिरस्थायी आमोदों में मग्न हैं।

३. परन्तु प्रभु ने (सत्वस्वरुप ईश्वर के अन्वेषी) सूफियों (सन्तों को स्वयं ही) सत्स्वरुप का प्रकाश किया है जिससे वे उस के राज्य-सभासद् (भक्त) बने रहें ।१।

४. (नानक,) केवल उस सत्स्वरुप को ही सत्य समझ ।

५. जिस की सेवा से सुख प्राप्त होता है और जिसके घर आदर मिलता है ।१। रहाउ ।

६. वास्तविक सुरा वह है जिसके निर्माण में गुड़ नहीं पड़ता बल्कि इसमें गुड़ के स्थान पर सच्चा नाम पड़ता है (जो जीवन को मीठा गुड़ बना देता है)।

७. जिन्होंने सत्य नाम को सुना है और उसका व्याख्यान किया है मैं उनके बलिहार जाता हूं।

८. उसी मन को वास्तविक उन्माद से पूर्ण समझो जिसे परमात्मा के द्वार में आदर प्राप्त हो ।२।

९. यदि (स्नानार्थ) परमात्मा का नाम रूपी जल हो और दान-पुण्य आदि

शुभ-कर्मों की सुगन्ध से शरीर सुगन्धित हो,

१०. तो मुख पवित्र होता है। (ईश्वर की) लाखों देनो में से यह एक देन प्राप्त करने योग्य है।

११. अपना दु:ख उस प्रभु के सम्मुख ही निवेदन करना चाहिए जिसमें सुख (देने की शक्ति) है। जीव सांसारिक पदार्थों में सुख का अन्वेषण करता है; परन्तु सुख है भगवान् के नाम में जो ईश्वरीय दानों में श्रेष्ठ दान है।) ।३।

१२. जिस परमात्मा के आश्रय में जीव (आत्मा) तथा प्राण (श्वास) हैं उसका विस्मरण कैसे किया जा सकता है ?

१३. उसके बिना जितना अशन-वसन है, सब अपवित्र है।

१४. (हे प्रभो !) अन्य सब बातें असत्य हैं, जो तुम्हें अच्छी लगें वही बात प्रामाणिक है ।४/५।

६

१. जालि मोहु घसि मसु करि मति कागदु करि सारु।
२. भाउ कलम करि चितु लेखारी, गुर पुछि लिखु बीचारु
३. लिखु नामु सालाह लिखु लिखु अंतु न पारावारु ।१।
४. बाबा एहु लेखा लिखि जाणु।
५. जिथै लेखा मंगीऐ, तिथै होइ सचा नीसाणु ।१।
६. जिथै मिलहि वडिआईआ सद खुसीआ सद चाउ।
७. तिन मुखि टिके निकलहि जिन मनि सचा नाउ।
८. करमि मिलै ता पाईऐ, नाहीं गली वाउ दुआउ ।२।
९. इकि आवहि इकि जाहि उठि, रखीअहि नाव सलार।
१०. इकि उपाए मंगते इकना वडे दरवार।
११. अगै गइआ जाणीऐ विणु नावै वेकार ।३।
१२. भै तेरै डर अगला, खपि खपि छिजै देह।
१३. नाव जिना सुलतान खान, होदे डिठे खेह।
१४. नानक उठी चलिआ, सभि कूड़े तुटे नेह ।४/६।

पद-अर्थ

जालि—दग्ध करके; **घसि**—घिसकर, रगड़ कर, पीसकर; **मसु**—स्याही; **सारु**—श्रेष्ठ; **भाउ**—प्रेम; **सालाहु**—स्तुति, हरियश; **नीसाणु**—चिह्न; **टिके**—स्वीकृति के तिलक; **करम**—आशीर्वाद के साथ; **वाउ दुग्राउ**—व्यर्थ की बातें; **सलार**—सरदार; **नेहु**—प्रेम।

टीका

१. हे भाई, मोह को जलाकर, पीस कर स्याही बना और अपनी बुद्धि को श्रेष्ठ कागज़ बना।

२. प्रेम को कलम बना, मन को लेखक बना और गुरु से पूछ कर उसके बतलाये हुए विचार लिख। (क्या विचार ?)

३. नाम लिख, हरि की प्रशंसा, स्तुति लिख और यह लिख कि वह असीम है।१।

४. हे भाई, यही लेखा लिखना सीख।

५. (जिससे जो) जहां (हरि के द्वार पर) तेरे लेखों का हिसाब हो वहां उन लेखों के यथावत् होने का प्रमाणपत्र (यात्रा-स्वीकृति-पत्र) तेरे पास हो।१।

६. (वह ऐसा द्वार है) जहां (उनकी) शोभा (कीर्ति) होती है, (उनको) नित्य हर्ष और आनंद प्राप्त होते हैं।

७. जिनके हृदय में सच्चा नाम है वहां पर उन के मस्तक पर प्रामाणिकता-सूचक तिलक लगाये जाते हैं।

८. परन्तु जब उसकी अपनी कृपा हो तब ही (सच्चा नाम) प्राप्त होता है, इधर उधर की निरर्थक बातों से नहीं प्राप्त हो सकता है।२।

९. कुछ जीव संसार में आते हैं, कुछ चले जाते हैं, कुछ को (लोग) सरदार कहकर पुकारते हैं।

१०. कुछ जीव जन्म से ही भिक्षुक होते हैं, और कुछ जीवों की महती राज सभाएं होती हैं।

११. परन्तु इस बात का पता आगे जाकर लगता है कि नाम के बिना सब कुछ (धनवत्ता, सामन्तता, निर्धनता आदि) व्यर्थ है।३।

१२. मैं तुमसे भय मानता हूं और यह भय बहुत अधिक लग रहा है, यहां

तक कि मेरा शरीर दु:खित होकर टूट रहा है (कि वहां मेरी क्या दशा होगी ?)

१३. (क्योंकि) मैंने देखा है कि जिनके सुलतान और खान (आदि) नाम थे वे भी अन्त में मिट्टी में मिल गए।

१४. (नानक) प्रत्येक जीव अन्त में संसार से प्रस्थान कर जाता है, और उसके समस्त मिथ्या स्नेह (पदार्थों के मोह, प्रेम) छूट जाते हैं।४।६।

७

१. सभि रस मिठे मंनिऐ सुणिऐ सालोणे ।
२. खट तुरसी मुखि बोलणा मारण नाद कीए ।
३. छतीह अंम्रित भाउ एकु जा कउ नदरि करे ।१।
४. बाबा होरु खाणा खुसी खुआर ।
५. जितु खाधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ।१। रहाउ ।
६. रता पैनणु मनु रता सुपेदी सतु दानु ।
७. नीली सिआही कदा करणी पहिरणु पैर धिआन ।
८. कमरबंदु संतोख का धनु जोबनु तेरा नामु ।२।
९. बाबा होर पैनणु खुसी खुआरु ।
१०. जितु पैधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ।१। रहाउ ।
११. घोड़े पाखर सुइने साखति बूझणु तेरी वाट ।
१२. तरकस तीर कमाण साँग तेगबंद गुण धातु ।
१३. वाजा नेजा पति सिउ परगटु करमु तेरा मेरी जाति ।३।
१४. बाबा होरु चड़णा खुसी खुआरू ।
१५. जितु चड़िऐ तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ।१। रहाउ ।
१६. घर मंदर खुसी नाम की नदरि तेरी परवारु ।
१७. हुकमु सोई तुधु भावसी होर आखणु बहुतु अपारु ।
१८. नानक सचा पातिसाहु पूछि न करें बीचारु ।४।
१९. बाबा होरु सउणा खुसी खुआर ।
२०. जितु सुतै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ।१। रहाउ ।४/७।

पद-अर्थ

तुरसी—(फारसी तुर्श) कटु; **मारण**—मसाले; **नाद कीए**—शब्द करने से, कीर्त्तन करने से; **सुपेदी**—श्वेत वस्त्र; **कदा करनी**—काटनी; **पहिरणु**—परिधान वस्त्र; **गुण धातु**—गुणों के लिए दौड़ना, गुर्ण प्राप्त करने के प्रयास; **सांग**—बरछी; **वाजा**—बाजा; **तेगबन्द**—म्यान ।

टीका

१. (हे भाई) नाम के मानने से मानो समस्त मधुर रस प्राप्त हो गए, नाम के सुनने से समस्त लावणिक रस ।

२. और परमात्मा की बातें करने से अम्ल रस । इन रसों में हरि की प्रशंसा-स्तुति कीर्तन-रूपी सभी मसाले पड़ गए हैं ।

३. परमात्मा में अनन्य प्रेम छत्तीस प्रकार के भोजनों का रस देता है; परन्तु यह उसी को प्राप्त होता है जिस पर उसकी कृपा होती है ।१।

४. हे मेरे भाई, अन्य प्रकार के भोजनों से प्राप्त सुख (अन्त में) दु:ख उत्पन्न करेगा ।

५. जिन भोजनों से शरीर में रोग उत्पन्न हों और मन में विकार चल पड़ें ।१। रहाउ ।

६. नाम में मन का रंग जाना मानो रक्त वर्ण का परिधान है, सात्त्विक दान-पुण्य करना मानो श्वेत परिधान है ।

७. हृदय की स्याही (कालिमा) समाप्त करना नील एवं कृष्ण परिधान हैं । भगवान के चरणों का ध्यान ही (चोगा) है ।

८. संतोष मेरा कमरबंद है और तुम्हारा नाम मेरे लिए धन और यौवन का हर्ष है ।२

९. हे भाई, अन्य परिधानों से प्राप्त सुख (अन्त में) दु:ख-जनक होगा ।

१०. जिनके धारण करने से शरीर को पीड़ा होती है और मन में विकार उत्पन्न होते हैं ।१। रहाउ ।

११. तुम्हारे मार्ग का ज्ञान ही काठी-सहित घोड़े और सोना-जड़ी झूल का पूंछ वाला भाग है ।

१२. (तुम्हारे) गुणों की ओर दौड़ना ही तूणीर, बाण, धनुष, बरछी, और कृपाण की म्यान है ।

१३. तुम्हारे घर मान प्राप्त करके सम्प्रतिष्ठित हो जाना ही धौंसा और भाला है। तुम्हारी दया-दृष्टि ही मानो मेरी उच्च जाति हैं।

१४. हे भाई, अन्य सब प्रकार के वाहनों का सुख दुःख-जनक होगा।

१५. जिन पर चढ़ने से शरीर में पीड़ा होती है और मन में विकार होते हैं।१। रहाउ।

१६. तुम्हारे नाम-स्मरण से उपलब्ध हर्ष मानो भवनों और सदनों में निवास का हर्ष है। और तुम्हारी कृपा मानों परिवार में रह कर प्राप्त होने वाला हर्ष है।

१७. जो तुम्हें अच्छा लगे उसी में प्रसन्न रहना, यह आदेश प्राप्त करना है। आदेश केवल उसी का प्रवर्तमान है जो उस आदेश के साथ एक स्वर हो जाता है; उसे उस आदेश का एक प्रकार से भागहारी समझना चाहिए।

१८. (नानक) वह सच्चा अधिपति किसी अन्य से पूछकर विचार नहीं बनाता।४।

१९. हे मेरे भाई, उस ऐश्वर्य से प्रत्येक प्रकार का हर्ष (अन्त में) दुःख उत्पन्न करेगा।

२०. जिस ऐश्वर्य से शरीर में रोग उत्पन्न होते हों और मन में विकारों का संचार हो जाए।१। रहाउ।४।७।

८

१. कुंगू की कांइआ रतना की ललिता अगरि वासु तनि सासु।
२. अठसठि तीरथ का मुखि टिका तितु घटि मति विगासु।
३. ओतु मती सालाहणा सचु नामु गुणतासु।१।
४. बाबा होर मति होर होर।
५. जे सउ वेर कमाईऐ कूड़ै कूड़ा जोरु।१। रहाउ।
६. पूज लगै पीरु आखीऐ सभु मिलै संसार।
७. नाउ सदाए आपणा होवै सिधु सुमारु।
८. जा पति लेखै ना पवै सभा पूज खुआरु।२।
९. जिन कउ सतिगुरि थापिआ तिन मेटि न सकै कोइ।
१०. ओना अंदरि नामु निधानु है नामो परगटु होइ।

११. **नाउ पूजीऐ नाउ मंनीऐ अखंडु सदा सचु सोइ ।३।**

१२. **खेहू खेह रलाईऐ ता जीउ केहा होइ ।**

१३. **जलीआ सभि सिआणपा उठी चलिआ रोइ ।**

१४. **नानक नामि विसारिऐ दरि गइआ किआ होइ ।४/८।**

पद-अर्थ

कुंगू—केसर; **काइआ**—शरीर; **ललिता**—जिह्वा; **अगरि**—अगरु-काष्ठ; **अठसठि**—अठसठ; **टिका**—चिह्न, तिलक; **गुणतासु**—गुणों का निधान; **सुमारु**—गिना जाए; **थापिआ**—स्थापित किया; **अखंडु**—निरन्तर; **खेह**—मिट्टी ।

टीका

१. यदि शरीर केसर के समान पवित्र हो, जिह्वा रत्नों के समान शुद्ध (विविक्त) हो, शरीर में चलता हुआ श्वास अगरु की सुगन्ध प्रसारित करता हो,

२. मुख के ऊपर अड़सठ तीर्थों की पवित्रता का सूचक तिलक लगा हो और इस प्रकार के उत्तम शरीर में बुद्धि का विकास हो,

३. जिससे उस बुद्धि द्वारा सच्चे नाम और गुणों के निधान परमात्मा की प्रशंसा स्तुति की जाए ।१।

४. हे मेरे भाई, अन्य प्रकार की बुद्धि अन्य ही दिशा में ले जाती है (बुद्धि मिथ्या है) ।

५. इस मिथ्या बुद्धि को चाहे सौ बार परिमार्जित किया जाए, इससे मिथ्या वस्तु-राशि उत्पन्न होती है । (आगे उदाहरणों के द्वारा इस विचार को समझाते हैं) ।१। रहाउ ।

६. किसी मनुष्य को लोग चाहे पूजते हों, वह पीर नाम से अभिहित हो और समस्त संसार उसका अभिनन्दन करे,—

७. उसका नाम भी प्रसिद्ध हो और वह महान् सिद्ध गिना जाता हो,—

८. परन्तु यदि ईश्वर के घर उसकी लौकिक प्रतिष्ठा स्वीकार्य नहीं होती है तो सांसारिक व्यक्तियों द्वारा हो रही यह पूजा व्यर्थ है ।२।

९. (दूसरी ओर) जिन पर सद्गुरु ने कृपा की है उनको कोई क्षति नहीं

पहुंचा सकता ।

१०. उनके अन्तः करण में नाम का कोष है और इस नाम के बल से ही वे जगत् में प्रकट (कीर्त्तिमान) होते हैं ।

११. (वास्तव में) पूजा और मान्यता (मनुष्य की नहीं) नाम की ही होती है । ईश्वर-नाम का स्मरण करने वाले ही माने और पूजे जाते हैं; क्योंकि, नाम अविनाशी और शाश्वत (सत्य) होता है ।३।

१२. जब शरीर धूलि में मिल जाता है तब आत्मा पर क्या बीतता होगा?

१३. उसकी समस्त चतुराइयां समाप्त हो जाती हैं और वह रोता हुआ चला जाता है ।

१४. (केवल नाम साथ जाता है). (नानक, जिन्होंने) नाम विस्मृत कर दिया ईश्वर के घर उनकी क्या दशा होगी ?४/८।

६

१. **गुणवंती गुण वीथरै अउगुणवंती भूरि ।**
२. **जे लोड़हि वरु कामणी नह मिलीऐ पिर कूरि ।**
३. **ना बेड़ी न तुलहड़ा ना पाईऐ पिरु दूरि ।१।**
४. **मेरे ठाकुर पूरे तखति अडोलु ।**
५. **गुरमुखि पूरा जे करे पाईऐ सचु अतोलु ।१। रहाउ ।**
६. **प्रभु हरिमंदरु सोहणा तिसु महि माणक लाल ।**
७. **मोती हीरा निरमला कंचन कोट रीसाल ।**
८. **बिनु पउड़ी गड़ि किउ चड़उ गुर हरि धिआन निहाल ।२।**
९. **गुरु पउड़ी बेड़ी गुरू गुरु तुलहा हरिनाउ ।**
१०. **गुरु सरु सागरु बोहिथो गुरु तीरथु दरीआउ ।**
११. **जे तिसु भावै ऊजली सतसरि नावण जाउ ।३।**
१२. **पूरो पूरो आखीऐ पूरे तखति निवास ।**
१३. **पूरे थानि सुहावणै पूरे आस निरास ।**
१४. **नानक पूरा जे मिलै किउ घाटै गुणतास ।४/६।**

पद-अर्थ

वीथरै—विस्तार करती है, विकीर्ण करती है; **भूरि**—परिदेवना करती

है, व्याकुल होती है; **कामणि**—नारी; **कूरि**—मिथ्या साधनों से; **तुलहड़ा**—तरण-फलक, तैरने का तख्ता; **कंचन**—सुवर्ण; **रीसाल**—रसाल, मनोहर; **गड़ि**—दुर्ग पर; **बोहिथो**—वोहित, जलयान; **सतिसरि**—सच्चे सरोवर; **तास**—उसके।

टीका

१. गुणवती नारी अपने गुणों का विस्तार करती है। (बांटती है और उनमें अधिक वृद्धि करती है) परन्तु अवगुणवती दुःखी होती रहती है।

२. हे जीव रूपी स्त्री; यदि तू स्वामी अर्थात् परमात्मा से मिलना चाहती है; तो (यह समझ कि) वह मिथ्या साधनों (अवगुणों से भरे जीवन) में रहते हुए तुझे नहीं मिलेगा।

३. प्रियतम रूपी परमात्मा तेरी पहुंच से दूर है और तेरे पास कोई नौका अथवा तरण-फलक नहीं है, (आगे कहा है कि गुरू नौका है) ।१।

४. मेरा स्वामी अपने पूर्ण तख्त पर (अपने स्वरूप में) स्थित (अचल) होकर विराजमान है। उस तक पहुंच कैसे हो? उत्तर आगे है।)

५. यदि पूर्ण गुरू सहायता करे तो उस सच्चे और अचल (असीम) परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। रहाउ ।१।

६. प्रभु का हरि-मन्दिर सुन्दर है जो (गुण रूपी) हीरकों एवं पद्मरागों से जटित है।

७. वहां सुवर्ण के सुन्दर दुर्ग हैं जिन में सच्चे हीरे, लाल और मोती जड़े हैं।

८. सीढ़ी बिना उस दुर्ग तक किस प्रकार पहुंचा जाए? (उत्तर यह है) गुरु द्वारा सीखकर भगवान् में ध्यान लगाकर उस परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं ।२।

९. गुरु सीढ़ी है, नाव है, तैरने के लिए तरूता है; क्योंकि गुरु के पास ईश्वर का नाम है।

१०. गुरु सत्य का समुद्र है, गुरु ही जल-यान है, गुरु ही तीर्थ और नदी है।

११. यदि प्रभु को अच्छा लगे तो जीवात्मा रूपी स्त्री सत्य के सागर (गुरु) में स्नान कर के उज्जवल होती है ।३।

१२. पिर अर्थात् परमात्मा की पूर्णता ही पूर्णता है और पूर्ण तख्त पर उसका निवास है ।

१३. (वह) रमणीय और पूर्ण स्थान का निवासी है और प्रत्येक निराशजन की आशा पूर्ण करता है ।

१४. (नानक) यदि किसी जीव रूपी नारी को यह पूर्ण परमात्मा मिल जाए तो उसके गुणों में कमी क्यों होगी ? (नहीं होगी) ।४/९।

१०

१. आवहु भैणे गलि मिलहि अंकि सहेलड़ीआह ।

२. मिलि कै करह कहाणीआ संम्रथ कंत कीआह ।

३. साचे साहिब सभि गुण अउगण सभि असाह ।१।

४. करता सभु को तेरै जोरि ।

५. एकु सबदु बीचारीऐ जा तू ता किआ होरि ।१। रहाउ ।

६. जाइ पुछहु सोहागणी तुसी राविआ किनी गुणी ।

७. सहजि संतोखि सीगारीआ मिठा बोलणी ।

८. पिरु रीसालू ता मिलै जा गुर का सबदु सुणी ।२।

९. केतीआ तेरीआ कुदरती केवड तेरी दाति ।

१०. केते तेरे जीअ जंत सिफति करहि दिनु राति ।

११. केते तेरे रूप रंग केते जाति अजाति ।३।

१२. सचु मिलै सचु ऊपजै सच महि साचि समाइ ।

१३. सुरति होवै पति ऊगवै गुरबचनी भउ खाइ ।

१४. नानक सचा पातिसाहु आपे लए मिलाइ ।४/१०।

पद-अर्थ

अंकि—गले लगाकर मिली हुई सहेलियां; **संम्रथ**—समर्थ; **कंत**—स्वामी; **राविया**—रमण; **गुणी**—गुणों के कारण; **सहिज**—धीरज; **रीसालु**—रसपूर्ण, आनन्ददायक; **केतीआ**—कितनी ।

टीका

१. (गुरु जी ने शेख़ बहराम के साथ बातचीत करते हुए यह 'शबद'

उच्चरित किया है) मेरी बहिनो, मेरी सहेलियो, आओ हम गले लग कर आलिंगन करें।

२. (और) मिलकर सर्व-शक्तिमान् प्रियतम प्रभु की बातें करें।

३. उस सच्चे प्रभु में समस्त गुण हैं और हम में तो सभी अवगुण हैं (उनकी बातें करने से हमारे अवगुण समाप्त होंगे और गुण हमारे अन्दर प्रवेश करेंगे) ।१।

४. हे कर्त्ता (सब के स्रष्टा) समस्त संसार तुम्हारे बल के आश्रय में जीवित है।

५. यदि केवल इस तथ्य का ज्ञान हो जाए कि 'सभी प्राणियों को तुम्हारा आश्रय' है) तो स्पष्ट है कि तुम्हारे होते हुए किसी अन्य की अपेक्षा नहीं रहती ।१। रहाउ।

६. जाओ सधवाओं से पूछो कि उन्होंने किन गुणों के द्वारा प्रियतम की शय्याएं प्राप्त की हैं ?।

७. (वे सभी बतलायेंगी कि) उन्होंने पहले धैर्य, संतोष और मधुर बोलना ग्रहण किया था।

८. वह सभी रसों का घर अर्थात् रसिकशिरोमणि तब मिलता है जब गुरु की शिक्षा प्राप्त की जाए (और इस प्रकार धैर्य, संतोष आदि गुण प्राप्त किए जाएं ।२।

९. हे प्रभु, तुम्हारी सृष्टि-शक्तियां अनन्त हैं, तुम्हारी देन असीम हैं।

१०. तुम्हारे रचे हुए जीव-जन्तु असंख्य हैं जो अहर्निश तुम्हारी स्तुति करते हैं।

११. अनन्त रूप-रंगों और असंख्य उच्च-नीच जीवों में तुम्हारा रूप प्रत्यक्ष हो रहा है ।२।

१२. (यहां उपर्युक्त विचार को खोलकर मिलन की विधि बतलाई है) जब किसी जीव रूपी नारी के भीतर सत्य उत्पन्न होता है तब सत्य स्वरूप प्रियतम मिल जाता है क्योंकि, सत्य से एकरूपता सत्य द्वारा ही हो सकती है।

१३. जब जीव रूपी नारी गुरु की शिक्षा से पति का भय अनुभव करतीं है तब उच्च ध्यानवस्था में चली जाती है जहां पति की सूझ उत्पन्न होती है।

१४. (नानक) तत्पश्चात् वह सच्चा अधिपति स्वयं ही उसे अपने साथ मिला लेता है ।४/१०।

१. भली सरी जि उबरी हउमै मुई घराहु ।
२. दूत लगे फिरि चाकरी सतिगुर का वेसाहु ।
३. कलप तिआगी बादि है सचा वेपरवाहु ।
४. मन रे सचु मिलै भउ जाइ ।
५. भै बिनु निरभउ किउ थीऐ गुरमुखि सबदि समाइ ।१। रहाउ ।
६. केता आखणु आखीऐ आखणि तोटि न होइ ।
७. मंगणवाले केतड़े दाता एको सोइ ।
८. जिस के जीअ पराण हहि मनि वसिऐ सुखु होइ ।२।
९. जगु सुपना बाजी बनी खिन महि खेलु खेलाइ ।
१०. संजोगी मिलि एकसे विजोगी उठि जाइ ।
११. जो तिसु भाणा सो थीऐ अवरु न करणा जाइ ।३।
१२. गुरमुखि वसतु वेसाहीऐ सचु वखरु सचु रासि ।
१३. जिनी सचु वणंजिआ गुर पूरे साबासि ।
१४. नानक वसतु पछाणसी सचु सउदा जिसु पासि ।४/११।

पद-अर्थ

भली सरी—अच्छा हो गया; **उबरी**—(मेरा) बचाव हो गया; **घराहु**—घर (हृदय) में; **दूत**—विकार काम-आदि; **चाकरी**—सेवा; **वेसाहु**—विश्वास, भरोसा; **कलप**—परिदेवना; **बादि**—व्यर्थ; **भउ**—डर; **बाजी**—खेल; **खेलु खेलाइ**—खेल समाप्त कर देता है; **एकसे**—एक के साथ; **थीऐ**—होता है; **वेसाहीऐ**—मोल ली जाती है, क्रीत की जाती हैं; **वखरु**—वस्तु, क्रय्य द्रव्य; **रासि**—पूंजी ।

टीका

१. अच्छा हुआ, मैं (दुःख, क्लेश और विकारों से) बच गई हूं, मेरे हृदय में अहन्ता का अभाव जो हो गया है ।
२. विकारों में लगी हुई इन्द्रियां पुनः मेरी सेविकाएं हो गई हैं । सद्गुरु के समीप से लाए आत्मविश्वास से यह हुआ है ।

३. मैंने व्यर्थ की परिदेवना का त्याग कर दिया है, और सच्चा निश्चिन्त अर्थात् अत्यन्त उदार भगवान् (आकर मेरे मन में बस गया है) ।१।

४. हे मेरे मन, सत्य की प्राप्ति से भय (जिससे अहन्ता, तृष्णा उत्पन्न होते हैं) नष्ट हो गया है ।

५. और भय से मुक्त हुए बिना किस प्रकार कोई निर्भय स्वरूप (जैसे भगवान् स्वयं हैं) हो सकता है । (निर्भय की प्राप्ति के लिए) निर्भय होना आवश्यक है । गुरु द्वारा दिए गए उपदेश में लीन होकर ही मनुष्य ऐसा हो सकता है ।

६. (अहन्ता और तृष्णा वशीभूत) जीव (दोनों के लिए) कई प्रकार से कहता रहता है । उस के कहने का कोई अन्त ही नहीं ।

७. अभ्यर्थी बहुत हैं और दाता अकालपुरुष, अकेला है ।

८. परन्तु (दोनों के स्थान पर) उस परमात्मा के, जिसके सहारे जीवों के प्राण हैं, हृदय में निवास करने से सुख होता है ।२।

९ विश्व स्वप्न के समान है । यह उसकी क्रीड़ा है, जिस को वह निमिषमात्र में समाप्त कर देता है ।

१०. इस खेल में संयोग और वियोग दो नियामक हैं, संयोग के अनुसार जीव उससे मिल जाते हैं और वियोग के अनुसार उससे पृथक् हो जाते हैं) ।

११. (ये दोनों नियामक उसी द्वारा संचालित हैं) अतः वही होता है जो उसे अच्छा लगता है, उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं किया जा सकता है ।३।

१२. आओ, गुरु की सहायता से एक वस्तु मोल ली जाए । वह वस्तु सत्य है और इस वस्तु को मोल लेने के लिए धन-राशि भी सत्य है ।

१३. जिन्होंने यह सत्य रूपी वस्तु मोल ली है, उन पर पूर्ण गुरु प्रसन्न हैं।

१४. (नानक) इस सत्य रूपी वस्तु को वही पहिचानता है, जिस के पास यह सत्य वस्तु है ।४/११।

१२

१. धातु मिलै फुनि धातु कउ सिफती सिफति समाइ ।

२. लालु गलालु गहबरा सचा रंगु चड़ाउ ।

३. सचु मिलै संतोखीआ हरि जपि एकै भाइ ।१।

४. भाई रे संतजना की रेणु ।

५. संतसभा गुरु पाईऐ मुकति पदारथ धेणु ।१। रहाउ ।

६. ऊचउ थानु सुहावणा ऊपरि महलु मुरारि ।

७. सचु करणी दे पाईऐ दरु घरु महलु पिआरि ।

८. गुरमुखि मनु समझाईऐ आतमरामु बीचारि ।२।

९. त्रिबिधि करम कमाईअहि आस अंदेसा होइ ।

१०. किउ गुर बिनु त्रिकुटी छुटसी सहजि मिलिऐ सुखु होइ ।

११. निजघरि महलु पछाणीऐ नदरि करे मलु धोइ ।३।

१२. बिनु गुर मैलु न उतरै बिनु हरि किउ घर वासु ।

१३. एको सबदु वीचारीऐ अवर तिआगै आस ।

१४. नानक देखि दिखाईऐ हउ सद बलिहारै जासु ।४/१२।

पद-अर्थ

धातु—रजत, आदि; **फुनि**—पुनः; **सिफती**—गुण-गायक; **सिफति**—गुणवान् (परमात्मा) में; **लाल गुलालु गहबरा**—गुलेलाला अर्थात् पोस्त के रक्त पुष्प के समान गहरे लाल रंग वाला; **एकै भाई**—एक रस, प्रेम में; **रेणु**—अर्थात् चरण धूलि; **धेणु**—गौ अर्थात् कामधेनु जो सभी पदार्थ प्रदान कर सकती है; **मुरारि**—मुर दैत्य को मारने वाला, कृष्ण, भगवान्; **पिआरि**—प्रेम द्वारा; **त्रिबिधि करम**—रज, तम और सत्त्व तीन प्रकार के गुणों के अधीन किए गए कर्म; **त्रिकुटी**—तीन प्रकार के; **आतमराम**—आत्मा ।

टीका

१. भगवान् के स्तोता उस स्तुत्य भगवान् में ऐसे मिल जाते हैं जैसे ढ़ल कर धातु धातु में मिल जाती है ।

२. (ईश्वर-गुण-गान से भक्तों के आत्मा के ऊपर) गहरे लाल रंग के फूल के रंग के समान सच्चा रंग चढ़ जाता है ।

३. वे संतोषी हो जाते हैं और वे हरि को अनन्य प्रेम से जपते हैं । अतः उन्हें सत्यस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है ।१।

४. हे भाई, सन्तों की चरणधूलि प्राप्त कर ।

५. क्योंकि, सन्तों की सभा में ज्ञान-मूर्ति गुरू की प्राप्ति होती है जिस

को मुक्ति-रूपी पदार्थ देने वाली कामधेनु समझना चाहिए ।१। रहाउ ।

६. शरीर के अन्दर उत्तम स्थान (आत्मा) है उस स्थान में निवास के लिए भगवान् का महल है (आत्मा में ही परमात्मा का वास है) ।

७ प्रभु के प्रेम में लीन होकर और सत्य तथा शुभ कर्म उसको अर्पित कर के वह महल, वह घर, वह द्वार प्राप्त किया जाता है ।

८. गुरु के उपदेश से पहले मन को समझा कर वश में करना चाहिए तत्पश्चात् विचार द्वारा आत्मा को बोध कराना चाहिए ।२।

९. (आत्मस्वरूप की पहचान कैसे हो ? जब तक जीव रज, तम और सत्त्व गुण के अधीन कर्मकरता है तब तक उस के लिए आशा और चिन्ता बनी रहती है ।

१०. गुरु के बिना त्रिकुटी (रजोगुण, तमोगुण और सत्त्व गुण में विचरण) की समाप्ति नहीं होती (और आशा, चिन्ता से परे की स्थिति अर्थात् सहजावस्था उत्पन्न नहीं होती । गुरु ही सहजावस्था (चौथे पद) में ले जाता है जहां सुख ही सुख हैं ।

११. जब (गुरु) कृपा कर के आन्तरिक विकार रूपी मल दूर कर देता है तब आत्मस्वरुप का ज्ञान हो जाता है ।३।

१२. गुरु के बिना मन का मल नहीं उतरता (और मलिन में भगवान् नहीं रहता) और भगवान् को बसाये बिना अपने आत्मस्वरूप के दर्शन नहीं होते ?

१३. अतः केवल एक गुरु उपदेश का विचार कीजिए और सब आशाएं छोड़िए ।

१४. (नानक) मैं उस पर (गुरु पर) सदैव बलिहारी जाता हूं, जिसने (अपने हृदय में) भगवान् का साक्षात्कार किया है और अन्य को कराया है ।४।

१३

१. ध्रिगु जीवणु दोहागणी मुठी दूजै भाइ ।

२. कलर केरी कंध जिउ अहिनिसि किरि ढहि पाइ ।

३. बिनु सबदै सुखु ना थीऐ पिर बिनु दूखु न जाइ ।१।

४. मुंधे पिर बिनु किआ सीगारु ।

५. दरिघरि ढोई न लहै दरगह झूठु खुआरु ।१। रहाउ।

६. अपि सुजाणु न भुलई सचा वड किरसाणु ।
७. पहिला धरती साधि कै सचु नामु दे दाणु ।
८. नउ निधि उपजै नामु एकु करमि पवै नीसाणु ।२।
९. गुर कउ जाणि न जाणई किआ तिस चजु अचारु ।
१०. अंधुलै नामु विसारिआ मनमुखि अंधु गुबारु ।
११. आवणु जाणु न चुकई मरि जनमै होइ खुआरु ।३।
१२. चंदनु मोलि अणाइआ कुंगू मांगु संधूरु ।
१३. चोआ चंदनु बहु घणा पाना नालि कपूरु ।
१४. जे धन कंति न भावई त सभि अडंबर कूडु ।४।
१५. सभि रस भोगण बादि हहि सभि सीगार विकार ।
१६. जबलगु सबदि न भेदीऐ किउ सोहै गुरदुआरि ॥
१७. नानक धंनु सुहागणी जिन सहि नालि पिआरु ।५/१३।

पद-अर्थ

ध्रिगु—धिक्कार है; **दोहागणी**—दुर्भागिनी, प्रभु से वियुक्त स्त्री; **मुठी**—मुष्ट, प्रवंचित, ठगी हुई; **दूजै भाइ**—द्वैत भाव, (प्रभु के बिना) किसी अन्य के प्रेम में; **केरी**—की; **अहि**—दिन; **निसि**—रात्रि; **किरि**—ढह-ढह कर; **मुंधे**—हे मुग्धे, हे भोली भाली; **दरिघरि**—भगवान के द्वार पर; **ढोई**—आश्रय; **सुजाण**—चतुर; **साधि कै**—तैयार करके; **दाणु**—दाना, अन्न का बीज; **करमि**—कृपा से; **नीसाणु**—चिह्न, मुद्रा, प्रमाणपत्र; **चजु अचारु**—जीवन के शोभन आचार-व्यवहार; **मोलि**—मूल्य देकर; **कुंगू**—केसर; **मांग**—सीमन्त, स्त्री के बालों का चीर; **चोआ**—इत्र; **धन**—धन्या, स्त्री; **अडंबर**—आडम्बर, सजावटें; **बादि**—व्यर्थ; **भेदीऐ**—हृदय का बींधा जाना; **धनु**—धन्या, सौभाग्यशालिनी; **सहि**—शाह, पति ।

टीका

१. (जिस जीव रूपी नारी का अपने 'प्रियतम' के साथ प्रेम नहीं है वह दुर्भागिनी है, प्रभु से वियुक्त है) द्वैत-भाव उसे लूट चुका है, उस के जीवन को धिक्कार है ।

२. जिस प्रकार वह दीवार, जिसको रेह लगा हुआ है, दिन रात ढह-

ढह कर गिरती रहती है, उसी प्रकार वह नष्ट हो रही है।

३. उसको गुरु के उपदेश बिना सुख नहीं हो सकता। (गुरूपदेश की अर्चना से ही सब सुखों के स्रोत् भगवान् की प्राप्ति होती है और) भगवान् के बिना वह दुःख भोगती रहती है।१।

४. (तू मिथ्या में विचरण कर रही है) प्रभु के घर मिथ्या के लिए कोई स्थान नहीं है प्रत्युत मिथ्याचारी क्लेश पाता है।१। रहाउ।

५. हे जीव नारी, प्रभु मिलन के बिना तेरे शृङ्गार का क्या लाभ ?

६. भगवान् रूपी गुरु बुद्धिमान् है, उससे कभी भूल नही होती (उसे सत्य के अन्वेषकों का ज्ञान है) वह सच्चा महान् कृषिकार है।

७. (जिस हृदय में उसे नाम का बीज बोना होता है) वह पहले उसे अच्छी तरह तैयार करता है (जिस प्रकार कृषक भूमि तैयार करता है) फिर उस हृदय रूपी भूमि में नाम का बीज बोता है।

८. फिर नव निधियों का दाता नाम उत्पन्न होता है और भगवान् की कृपा से प्रामाणिकता की मुद्रा अंकित होती है।२।

९. जो जीव रूपी नारी जान बूझकर गुरु को नहीं समझती उसके जीवन-व्यवहारों में क्या बुद्धिमता है ?

१०. अज्ञानी जीव ने नाम विस्मृत कर दिया है, वह मनोमुख है, तथा अज्ञान के घोर अन्धकार में रहता है ?

११. उसका जन्म-मरण-चक्र समाप्त नहीं होता। वह मर-मर के उत्पन्न होता रहता है तथा क्लेशों से पूर्ण जीवन व्यतीत करता रहता है।३।

१२. (यदि जीव रूपी नारी ने) चंदन मोल मंगाया है, केसर और सिन्दूर के साथ मांग भरी है,

१३. इत्र और चन्दन का अच्छा लेप किया है और पानों के साथ कपूर का प्रयोग किया है,

१४. परन्तु यदि वह परमात्मा रूपी प्रियतम की प्रसन्नता प्राप्त नहीं कर सकती तो उसका यह सब आडम्बर व्यर्थ है।

१५. (सत्य यह है कि) समस्त (प्रियतम को प्रिय लगे बिना) रसों का भोगना व्यर्थ है और समस्त प्रकार के शृङ्गार पूर्णतया निरर्थक हैं ?

१६. जब तक जीव रूपी नारी 'शबद' (गुरूपदेश) के बाण से विद्ध नहीं हो जाती तब तक वह गुरु के द्वार पर किस प्रकार शोभा पा सकती है।

१७. (नानक) वे सौभाग्यवती नारियां जिनका प्रभु-प्रियतम के साथ प्रेम है, धन्य हैं ।५/३।

१४

१. सुंवी देह डरावणी जा जीउ विचहु जाइ ।
२. भाहि बलंदी विझवी धूउ न निकसिओ काइ ।
३. पंचे रुंने दुखि भरे बिनसे दूजै भाइ ।१।
४. मूड़े रामु जपहु गुण सारि ।
५. हउमै ममता मोहणी सभ मुठी अहंकारि ।१।
६. जिनी नामु विसारिआ दूजी कारै लगि ।
७. दुबिधा लागे पचि मुए अंतरि त्रिसना अगि ।
८. गुरि राखे से उबरे होरि मुठी धंधै ठगि ।२।
९. मुई परीति पिआरु गइआ मुआ वैरु विरोधु ।
१०. धंधा थका हउ मुई ममता माइआ क्रोधु ।
११. करमि मिलै सचु पाइऐ गुरमुखि सदा निरोधु ।३।
१२. सची कारै सचु मिलै गुरमति पलै पाइ ।
१३. सो नरु जंमै ना मरै ना आवै न जाइ ।
१४. नानक दरि परधानु सो दरगहि पैधा जाइ ।४।१४।

पद-अर्थ

सुंवी—शून्य, उजड़ी हुई; **जीउ**—आत्मा; **भाहि**—अग्नि (जीवन-सत्ता); **विझवी**—बूझ गई; **धुऊ**—धुंआ (श्वास); **पंचे**—पांचों ज्ञानेन्द्रियां; **दूजै भाइ**—प्रभु को छोड़कर दूसरे के प्रेम में; **मूड़े**—मुग्ध, मूर्ख; **गुण सारि**—स्मरण करो; **सभ**—समस्त (सृष्टि); **मुठी**—मुष्थ, मुषित, प्रवंचित; **दूजी कारै**—अन्य कार्यों में, माया के कार्यों में; **दुबिधा**—दूसरे से प्रेम करना; **पचि मुए**—प्रयत्न कर करके मृत, क्लेश सह-सहकर मृत; **उबरे**—बचगए; **थका**—समाप्त हो गया; **करमि**—कृपा द्वारा; **निरोधु**—विकारों से रोकना; **परधानु**—प्रधान, सम्मानित; **पैधा**—परिधान, प्रतिष्ठासूचक वस्त्र पहन कर, मान के साथ ।

टीका

१. जब जीवात्मा शरीर से निकल जाता है तब शरीर शून्य-सा उजड़ा-सा रह जाता है और भयंकर लगता है।

२. अग्नि (जीवन-सत्ता) जो पहले वेग से जल रही थी, बुझ जाती है और पुनः तनिक भी धुंआ (श्वास) नहीं निकलता।

३. पंच ज्ञानेन्द्रियां, दुःख से पूर्ण रहती हैं, वे द्वैत भाव से नष्ट हो जाती हैं।१।

४. हे मूर्ख जीव (इस दशा को देख और हरि के गुणों का स्मरण करके नाम जप।

५. समस्त विश्व अहं, मोहक मोह और अभिमान में पड़कर प्रवंचित हो रहा है।१। रहाउ।

६. जिन जीवों ने द्वितीय, अर्थात् माया, के धंधों में लगकर नाम विस्मृत कर दिया है,

७. वे द्वैत भावना में निगडित होकर, व्याकुल होकर, मर जाते हैं। उनके अन्दर जीवत-तृष्णा की अग्नि है।

८. परन्तु वे बच गए हैं जिनको गुरू ने बचाया है, अन्य सभी को सांसारिक धंधे रूपी ठग ने ठग लिया है।२।

९. (शरीर के समाप्त होने के साथ) सांसारिक प्रीति गई, प्रेम गया, वैर-विरोध समाप्त हो गए।

१०. 'मूई मूरति बादु अहंकारु, उह न मूआ जो देखणहारु' (गउड़ी, महला-१) अहंकार, माया, मोह और क्रोध समाप्त हो गए हैं।

११. परन्तु यदि उसकी कृपा से सत्य की प्राप्ति हो जावे तो गुरू के उपदेश द्वारा मन सदा नियंत्रण में रहता है।

१२. जब जीव गुरू का उपदेश ग्रहण करता है, तब वह सत्य के कार्य में लगता है और तदनन्तर उसे सत्यस्वरुप भगवान् मिलते हैं।

१३. (वह पुनः) न जन्म लेता है, न गमनागमन के चक्र में पड़ता है।

१४. (नानक) वह परमात्मा के घर आदर के साथ जाता है, वह वहां प्रधान बनाया जाता है।४/१४।

१५

१. तनु जलि बलि माटी भइआ मनु माइआ मोहि मनुरु।

२. अउगरण फिरि लागू भए कूरि वजावै तूरु ।
३. बिनु सबदै भरमाइऐ दुबिधा डोबे पूरु ।१।
४. मन रे सबदि तरहु चितु लाइ ।
५. जिनि गुरमुखि नाम न बूझिआ मरि जनमै आवै जाइ ।१। रहाउ
६. तनु सूचा सो आखीऐ जिसु महि साचा नाउ ।
७. भै सचि राती देहुरी जिहवा सचु सुआउ ।
८. सची नदरि निहालीऐ बहुड़ि न पावै ताउ ।२।
९. साचे ते पवना भइआ पवनै ते जलु होइ ।
१०. जल ते त्रिभवणु साजिआ घटि-घटि जोति समोइ ।
११. निरमलु मैला न थीऐ सबदि रते पति होइ ।३।
१२. इहु मनु साचि संतोखिआ नदरि करे तिसु माहि ।
१३. पंच भूति सचि भै रते जोति सची मन माहि ।
१४. नानक अउगरण वीसरे राखे पति ताहि ।४/१५।

पद-अर्थ

मनूरु—लोहे का मल; **लागू भए**—पीछे पड़ गए; **कूरि**—मिथ्या (माया); **तूरु**—तूर्य, तुरही; **सुआउ**—स्वाद; **ताउ**—अग्नि में तपाया जाना (जिस प्रकार सोने का खोट निकालने के लिए उसे तपाया जाता है); **त्रिभवण**—तीन लोक; **घटि**—हृदय में; **समोइ**—समा रही है; **पंच भूत**—पांच तत्व (शरीर); **पति**—प्रतिष्ठा ।

टीका

१. प्राणी का शरीर तो जल कर अन्त में राख हो गया । (परन्तु मन की क्या दशा है ?) मन माया के मोहवश लोहे के मल के समान मलिन हो गया है ।

२. अवगुण (उसे दु:खित करने के लिए) मन के पीछे पड़ गए हैं और मिथ्या अर्थात् माया अपनी तुर ही बजाती है (माया की तूती बोलती है) ।

३. शब्द के ग्रहण किए बिना मन जन्म-मरण के चक्र में रहता है ।

इस प्रकार प्रभु को छोड़ अन्य का प्रेम अनेक जीवों को भवसागर में डुबा देता है ।१।

४. हे मन, तेरा उद्धार गुरू के उपदेश से होगा । अतः उपदेश में ध्यान लगा ।

५. जिन्होंने गुरू से नाम नहीं समझा वे जन्म लेते और मरते रहते हैं ।१। रहाउ ।

६. प्राणी का वही शरीर पवित्र है जिसमें सच्चे नाम का निवास है ।

७. ऐसा शरीर सत्य में लीन और प्रभु के भय से पूर्ण रहता है और उसकी जिह्वा के लिए सत्य ही परम स्वादु है ।

८. उस प्राणी को परमात्मा की कृपा-दृष्टि प्राप्त है और (क्योंकि वह निर्दोष है) वह पुनः पुनः तपाया नहीं जाता (आवागमन खोट दूर करने के लिए है) यदि खोट नहीं है तो आवागमन भी नहीं है ।२।

९. (प्रभु की सर्व-व्यापकता दिखाने के लिए एक प्रचलित विश्वास का उल्लेख किया जाता है) सत्य (परमात्मा) से ही वायु उत्पन्न हुई है और वायु से जल उत्पन्न हुआ है ।

१०. जल से तीनों लोकों (समस्त सृष्टि) का निर्माण हुआ है जिसके घट-घट में (अणु-अणु में) उसकी ज्योति व्याप्त है ।

११. इस ज्योति का स्वामी निर्मल है, वह मलिन नहीं होता है (अतः मलिन उसमें नहीं मिल सकते हैं) शब्द के साथ प्रेम रखने से ही प्रतिष्ठा होती है ।३।

१२. जब किसी का यह मन सत्य द्वारा सन्तुष्ट हो जाता है तब उस पर उस की कृपा होती है ।

१३. उसका शरीर सत्य और प्रभु के भय में डूबा रहता है और उसके मन में प्रभु की सच्ची ज्योति का प्रकाश होता है ।

१४. (नानक उसके अवगुण दूर होते हैं, गुरु उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा करता है ।४/१५।

१६

१. नानक बेड़ी सच की तरीऐ गुर वीचारि ।

२. इकि आवहि इकि जावही पूरि भरे अहंकारि ।

३. मनहठि मती बूड़ीऐ गुरमुखि सचु सु तारि ।१।

४. गुर बिनु किउ तरीऐ सुखु होइ ।

५. जिउ भावै तिउ राखु तू मैं अवरु न दूजा कोइ ।१। रहाउ

६. आगै देखउ डउ जलै पाछै हरिओ अंगूरु ।

७. जिस ते उपजै तिसते बिनसै घटि-घटि सचु भरपूरि ।

८. आपे मेलि मिलावही साचै महलि हदूरि ।२।

९. साहि साहि तुझु संमला कदे न विसारेउ ।

१०. जिउ जिउ साहिबु मनि वसै गुरमुखि अंम्रितु पेउ ।

११. मनु तनु तेरा तू धणी गरबु निवार समेउ ।३।

१२. जिनि एहु जगतु उपाइआ त्रिभवणु करि आकारु ।

१३. गुरमुखि चानणु जाणीऐ मनमुखि मुगधु गुबारु ।

१४. घटि घटि जोति निरंतरी बूझै गुरमति सारु ।४।

१५. गुरमुखि जिन्हीं जाणिआ तिन कीचै साबासि ।

१६. सचै सेती रलि मिले सचे गुण परगासि ।

१७. नानक नामि संतोखीआ जीउ पिंड प्रभपासि ।६/१६।

पद-अर्थ

मन हठि—मनमानी करने वाले, हठी; **राखु**—रक्षा करो; **डउ**—दव, दावानल; **अंगूरु**—अंकुर, नयी उगी हुई कोंपलें; **साहि-साहि**—श्वास श्वास; **संभला**—स्मरण करता हूं; **धणी**—स्वामी; **गरबु**—अहंकार; **निवारि**—दूर कर के; **मुगध**—मुग्ध, मूर्ख; **गुबार**—गहन अन्धकार; **निरंतरी**—निरन्तर, सतत; **सार**—तत्व; **कीचै**—कीजिए; **जीउ**—आत्मा; **पिंड**—शरीर ।

टीका

१. (विश्व रूपी सागर पार करने के लिए), (हे नानक) सत्य की नौका है और वह गुरु के विचार रूपी (पतवार) की सहायता से पार किया जाता है।

२. इस नौका और पतवार के बिना) कुछ जीव जन्म लेते हैं और कुछ मरते हैं अहंकारवश वहुसंख्यक जीव नष्ट होते रहते हैं ।

३. हठी बुद्धि के पीछे लगने वाले प्राणी (संसार-सागर में) डूबते हैं

परन्तु कुछ प्राणी गुरू से सत्य प्राप्त कर के उसे पार कर जाते हैं।१।

४. गुरू के बिना संसार-सागर से किस प्रकार पार हुआ जा सकता है है और (इससे बिना) सुख भी किस प्रकार हो सकता है ?

५. हे प्रभु, जिस प्रकार तुम्हें अच्छा लगे उसी प्रकार मुझे अपने आदेश में रखो। तुम्हारे बिना मेरा कोई आश्रय नहीं है।१। रहाउ।

६. मैं देखता हूं कि एक और दावानल प्रज्वलित है (कई प्राणी मर रहे हैं) और पीछे नव अंकुर स्फुटित हो रहे हैं (नव-नव प्राणी उत्पन्न हो रहे हैं।)

७. जिस सत्य प्रभु से जीव उत्पन्न होते हैं उसी द्वारा नष्ट किए जा रहे हैं, और वही सत्य-स्वरूप भगवान् प्रत्येक हृदय में व्याप्त भी हो रहा है।

८. (फिर जब उसे अच्छा लगता है तब) वह आप कितनों को अपने सम्मुख बुला लेता है और अपने साथ मिला लेता है।

९. मैं प्रत्येक श्वास में तुम्हारा स्मरण करना चाहता हूं और कभी विस्मरण करना नहीं चाहता।

१०. ज्यों-ज्यों गुरु-कृपा से भगवान् मेरे हृदय में टिकते जाते हैं त्यों-त्यों मैं हरि-प्रेम रूपी अमृत पीता जाता हूं।

११. हे प्रभु, यह तन, मन तुम्हारा है, तुम स्वामी हो, मेरा अहंकार नष्ट कर के मुझे अपने में समाहित कर लो।३।

१२. जिस प्रभु ने यह विश्व उत्पन्न किया है और तीन लोकों को आकार दिया है।

१३. गुरु कृपा से उसका प्रकाश होता है परन्तु मनमुखों के लिए गहन अन्धकार रहता है।

१४. वैसे तो उसकी ज्योति प्रत्येक हृदय में निरन्तर प्रकाशमान है, परन्तु इस समस्त (ज्ञान) को गुरू-प्रदत बुद्धि द्वारा ही समझा जा सकता है।

१५. जिन प्रभु भक्तों ने गुरु के उपदेश द्वारा उस को जान लिया है, उनकी प्रशंसा करनी चाहिए ?

१६. वे सत्य प्रभु में मिल जाते हैं और उन के हृदय में सत्य गुणों का प्रकाश होता हैं।

१७. (नानक) नाम द्वारा वे सन्तोषी हो जाते हैं उन के शरीर और आत्मा प्रभु की सेवा में अर्पित होते हैं।५/१६।

१७

१. सुणि मन मित्र पिआरिआ मिलु वेला है एह ।
२. जबलगु जोबनि सासु है तबलगु इहु तनु देह ।
३. बिनु गुण कामि न आवही ढहि ढेरी तनु खेह ।१।
४. मेरे मन लै लाहा घरि जाहि ।
५. गुरमुखि नामु सलाहीऐ हउमै निवरी भाहि ।१। रहाउ ।
६. सुणि सुणि गंढणु गंढीऐ लिखि पड़ि बूझहि भारु ।
७. त्रिसना अहिनिसि अगली हउमै रोग विकारु ।
८. ओहु वेपरवाहु अतोलवा गुरमति कीमति सारु ।२।
९. लख सिआणप जे करी लख सिउ प्रीति मिलापु ।
१०. बिनु संगति साथ न धापीआ बिनु नावै दूख संतापु ।
११. हरि जपि जीअरे छुटीऐ गुरमुखि चीनै आपु ।३।
१२. तनु मनु गुर पहि वेचिआ मनु दीआ सिरु नालि ।
१३. त्रिभवण खोजि ढंढोलिआ गुरमुखि खोजि निहालि ।
१४. सतिगुरि मेलि मिलाइआ नानक सो प्रभु नालि ।४/१७।

पद-अर्थ

वेला—समय, अवसर; **जोबनि**—यौवन; **सासु**—श्वास; **लाहा**—लाभ; **घरि**—परलोक; **निवरी**—निवृता, दूर हुई; **भाहि**—अग्नि; **गंढणु गंढीऐ**—उधेड़ बुन में दौड़ना; **भारु**—पुस्तकों का भार; **त्रिसना**—तृष्णा, कामना; **अहिनिस**—दिन रात; **अगली**—अधिक; **विकारु**—विकार; **अतोलवां**—अतुल्य, असीम; **सारु**—तत्व (ज्ञान); **धापीआ**—तृप्त, सन्तुष्ट; **संतापु**—बहुत दुख; **जीअरे**—हे जीव; **चीनै**—समझे; **त्रिभवणु**—तीन लोक; **निहालि**—देखा ।

टीका

१. हे मेरे प्रिय मित्र मन, ध्यान के साथ सुन कि यह जीवन तुझे एक अवसर मिला है, इस अवसर पर उस से मिल ।
२. जब तक तेरी युवावस्था है और श्वास सुख से चल रहे हैं तब तक यह देह तेरे काम आने वाली है ।

३. (आत्मा के काम तो गुण ही आते हैं। गुणों के बिना यह शरीर किसी काम का नहीं, अन्त में यह समाप्त होकर राख का ढेर हो जाता है।१।

४. हे मेरे मन, (इस अवसर को संभाल और) कुछ लाभ प्राप्त कर के प्रभु की सेवा में जा।

५. (इस अवसर को संभालने का एक ही साधन है, नाम स्मरण में लगना)। अतः गुरु के उपदेश द्वारा नाम-स्मरण में लग जिससे अहन्ता की अग्नि बुझ जाए। इस अहन्ता ने तुझे परमात्मा से दूर कर रखा है।१। रहाउ।

६. (स्मरण की विशेषता कही गई है) कई व्यक्ति कथा-कहानियां सुन-सुन कर बौद्धिक उधेड़-बुन में लीन रहते हैं। लिख-पढ़ कर और सोच-समझ कर पुस्तकों के भार प्रस्तुत करते हैं।

७. परन्तु उनकी तृष्णा दिन-रात बढ़ती रहती है और अहंकार का रोग विकार उत्पन्न करता रहता है।

८. वह (प्रभु) निश्चित, अतुल्य है। उस के मूल्य का बोध (ज्ञान) गुरु द्वारा प्रदान की हुई शिक्षा से होता है।२।

९. यदि मैं लाखों चतुराइयां करुं और लाखों के साथ प्रेम द्वारा मेल-मिलाप बढ़ाऊं, तो

१०. तो भी साधु गुरु की संगति के बिना मन की क्षुधा समाप्त नहीं होती। (उस की संगति में ही नाम की प्राप्ति है) नाम के बिना दुःख कष्ट बने रहते हैं।

११. हे मेरे आत्मा, भगवान् के स्मरण द्वारा ही दुःखों से मुक्ति होती है। क्योंकि गुरु द्वारा ही आत्म-ज्ञान होता है (इस ज्ञान से ही समस्त सुख उत्पन्न होते हैं।३।

१२. अतः मैंने तन-मन गुरु को अर्पित कर दिया है और साथ ही सिर भी।

१३. मैं जिसका अन्वेषण तीनों लोकों में कर रहा था, गुरु ने उस के दर्शन करा दिए हैं।

१४. गुरु ने मेरा उस के साथ मिलाप करा दिया है, (नानक) वह तो मेरे साथ ही था (अन्दर वास करता था)।४/१७।

१. मरणै की चिंता नहीं जीवण की नहीं आस ।
२. तू सरब जीआ प्रतिपालही लेखै सास गिरास ।
३. अंतरि गुरमुखि तू वसहि जिउ भाव तिउ निरजासि ।
४. जीअरे नाम जपत मनु मानु ।
५. अंतरि लागी जलि बुझी पाइआ गुरमुखि गिआनु ।१। रहाउ ।
६. अंतर की गति जाणीऐ गुर मिलीऐ संक उतारि ।
७. मुइआ जितु घरि जाईऐ तितु जीवदिआ मरु मारि ।
८. अनहद सबद सुहावणे पाईऐ गुर वीचारि ।२।
९. अनहद बाणी पाईऐ तह हउमै होइ बिनासु ।
१०. सतगुरु सेवे आपणा हउ कुरबाणै तासु ।
११. खड़ि दरगह पैनाईऐ मुखि हरिनाम निवासु ।३।
१२. जह देखा तहि रवि रहे सिव सकती का मेलु ।
१३. त्रिहु गुण बंधी देहुरी जो आइआ जगि सो खेलु ।
१४. विजोगी दुखि विछुड़े मनमुखि लहहि न मेलु ।४।
१५. मनु बैरागी घरि वसै सच भै राता होइ ।
१६. गिआन महारसु भोगवै बहुड़ि भूख न होइ ।
१७. नानक इहु मनु मारि मिलु भी फिरि दुखु न होइ ।१५/८।

पद-अर्थ

प्रतिपाल—पालता है; **लेखै**—लेख में, ज्ञान में; **सास**—श्वास; **गिरास**—ग्रास, भोजन; **अंतरि**—हृदय में; **निरजासि**—तृप्ति कराता है; **मनु मानु**—मन को मना लो, तृप्ति करलो; **जलि**—जलना, अग्नि; **गति**—दशा; **संक**—शङ्का, संशय; **मरू**—मृत्यु (मृत्यु के भय को); **मारि**—मार कर; **अनहद**—अनाहत शब्द, अनाहत सङ्गीत; **तासु**—उससे; **बैरागी**—विरक्त, बाहर घूमने वाला; **भोगवै**—भोगता है, खाता है; **बहुड़ि**—पुनः, फिर; **मनुमारि**—तृष्णा समाप्त करना ।

टीका

१. (गुरु के उस ज्ञान द्वारा जिसका उल्लेख 'रहाउ' के चरण में है, मै

अवस्था को प्राप्त हो गया हूं) अब मुझे मृत्यु का भय नहीं है और न ही मैंने जीवन के साथ आशाओं को संयुक्त कर रखा है।

२. (यह अवस्था इस विश्वास से प्राप्त हुई है कि) तुम समस्त जीवों के पालक-पोषक हो और उनके श्वास और भोग तुम्हारे ही विवरण-विचार में हैं।

३. जब गुरु के उपदेश से तुम हृदय में आकर निवास करते हो तब जिस प्रकार तुम्हें अच्छा लगता है भीतर से ही निश्चय (निर्णय) कर देते हो ।१।

४. हे जीव, राम नाम जप कर मन को परितृप्त कर ले ।

५. जब जीव को गुरु-द्वारा ज्ञान-प्राप्ति हुई तब उसकी तृष्णा की अग्नि बुझ गयी ।१। रहाउ ।

६. यदि समस्त शंकाएं दूर करके पूर्ण विश्वास के साथ गुरु से मिलें तो स्वत: भीतर ही ज्ञान-दृष्टि उत्पन्न हो जाती है ।

७. जिस दशा को मृत्यु के अनन्तर पहुंचना है उसके लिए जीवित ही, (दुर्वासनाओं को) मार कर मर (जन्म-मरण के हेतु को समाप्त कर के यहां से जा)।

८. तब गुरु के विचार-द्वारा सहज ही शोभन सङ्गीतमयी अवस्था प्राप्त कर ली जाती है ।२।

९. जिस हृदय में सहज की सङ्गीतमयी दशा उत्पन्न हो जाती है वहां अहंकार का नाश हो जाता है ।

१०. (इस दशा को प्राप्त करने के लिए) जो सद्गुरू की सेवा में लगता है मैं उसके सौ बार बलिहारी जाता हूं।

११. उसके मुख में भगवन्नाम बसता है और वह परमात्मा की सभा में प्रतिष्ठा के परिधान से अलङ्कृत किया जाता है ।३।

१२. मैं प्रत्येक स्थान पर आत्मा और प्रकृति का मेल देखता हूं परन्तु इस समस्त के अभ्यन्तर वह स्वयं व्याप्त हो रहा है ।

१३. शरीर प्रकृति के तीन गुणों के संयोग से बना है और जो भी आया है वह गुणों की सीमा में रहकर कार्य करता है और साँसारिक खेल-खेल कर चला जाता है ।

१४. मनोमुख लोग परमात्मा से पृथक् रहने का मार्ग ग्रहण करते हैं और भगवान् से वियुक्त रहते हैं। भगवान् से उनका मिलन हो ही नहीं

सकता ।४।

१५. यदि अपने घर (स्वरूप) का त्याग कर के माया के पीछे दौड़ने वाला यह मन (वैरागी मन) अपने घर (स्वरूप में) स्थिर हो जाए और सच्चे प्रभु के भय से पूर्ण हो जाए,—

१६. तो वह ब्रह्म ज्ञान के महान् रस का आनान्द प्राप्त करता है। फिर उसे तृष्णा नहीं रहती।

१७. (नानक) इस मन को मार कर उस से मिलो, तब दुःख नहीं होगा। ५/१८

१९

१. एहु मनो मूरखु लोभीआ लोभे लगा लोभानु।
२. सबदि न भीजै साकता दुरमति आवन जानु।
३. साधू सतगुरू जे मिलै ता पाईऐ गुणी निधानु।
४. मन रे हउमै छोडि गुमानु।
५. हरिगुरू सरवरु सेवि तू पावहि दरगह मानु।१। रहाउ।
६. राम नामु जपि दिनस राति गुरमुखि हरि धनु जानु।
७. सभि सुख हरिरस भोगणे संत सभा मिलि गिआनु।
८. नीति अहिनिसि हरिप्रभु सेविआ सतिगुरि दीआ नामु।२।
९. कूकर कूड़ु कमाईऐ गुरनिंदा पचै पचानु।
१०. भरमे भूला दुखु घणो जमु मारि करै खुलहानु।
११. मनमुखि सुखु न पाईऐ गुरमुखि सुखु सुभानु।३।
१२. ऐथै धंधु पिटाईऐ सचु लिखतु परवानु।
१३. हरि सजणु गुरु सेवदा गुर करणी परधानु।
१४. नानक नामु न वीसरै करमि सचै नीसाणु।४/१९।

पद-अर्थ

लोभानु—लुब्ध होकर; **साकता**—शक्ति का उपासक, माया का भक्त; **दुरमति**—दुर्मति दुर्बुद्धि; **हउमै**—अहंकार; **गुमान**—गर्व-मान, अभिमान; **सरवरु**—सरोवर, समुद्र (के समान पवित्र करने वाला); **कूकर**—कुत्ता; **पचै**—पचती है; **पचै पचानु**—नाश हो रहा है; **घणो**—बहुत; **खुलहान**—चूर-

चूर कर देता है; **सुभानु**—(अरबी का सुबहान शब्द) पवित्र; **धंधु पिटाईऐ**—माया के मिथ्या कार्यों में व्यर्थ लगे रहना; **लिखतु**—लेखा; **करमि**—कृपा द्वारा; **नीसाणु**—स्वीकृति की मुद्रा को अङ्क प्रमाण-पत्र ।

टीका

१. यह मेरा मूर्ख मन लोभी है, यह लोभ में ही मग्न रहता है ।

२. यह शक्ति (शक्ति का उपासक, माया का दास) गुरु के उपदेश में नहीं लगता दुर्मति के कारण जन्म-मरण के चक्र में बद्ध रहता है ।

३. यदि इसे साधु सद्गुरु मिल जाएं तो यह उस गुणों के भाण्डागार भगवान् को प्राप्त कर सकता है ।१।

४. हे मेरे मन, अहंकार का अभिमान छोड़ दे ।

५. हरि-रूपी गुरु (पावन) सागर है । तू उसकी सेवा कर, फिर तुझे प्रभु की सभा में प्रतिष्ठा मिलेगी ।१। रहाउ ।

६. (हे मेरे मन), अहर्निश हरि का नाम जप । परन्तु यह समझ ले कि हरि रूपीं धन गुरु द्वारा प्राप्त होता है ।

७. हरि-रस के आस्वादन में सभी सुखों का आस्वादन आ जाता है । यह ज्ञान सन्तों की संगति में रह कर प्राप्त होता है ।

८. जिन्हें सद्गुरु ने नाम दिया है उन्होंने (विश्व में) दिन रात, सदैव ही हरि-प्रभु की सेवा की है । २ ।

९. (मनोमुख पुरुष) कुत्ते के समान मिथ्या की कमाई करता हुआ (घर-घर के धक्के खाता है) और गुरु की निन्दा में (गुरु के बतलाये हुए मार्ग की हानि करते हुए) नष्ट होता है ।

१०. वह अज्ञान में भ्रान्त हुआ बहुत दुःख भोगता है, यमराज उसको मार-मार कर चूर्ण बनाता है ।

११. मनोमुख पुरुष को कभी सुख प्राप्त नहीं होता है; क्योंकि, निर्मल सुख की प्राप्ति गुरु द्वारा ही होती है (जहां वह जाता ही नहीं) । ३ ।

१२. यदि मनुष्य इस जीवन में माया के धंधों में लीन रहे, (तो परिणाम क्लेश है) । क्योंकि, वहां ईश्वर की सभा में केवल सत्य कर्म का लेख ही स्वीकृत होता है ।

१३. जो हरि का प्रेमी गुरु की सेवा करता है, उस को गुरु के कार्य ही

श्रेष्ठ दिखाई देते हैं।

१४. फिर उसे नाम विस्मृत नहीं होता। हरि की सभा में उसे प्रामाणिकता का प्रमाण-पत्र प्राप्त होता है। ४/१६।

२०

१. **इकु तिलु पिआरा वीसर रोगु वडा मन माहि।**
२. **किउ दरगह पति पाईऐ जा हरि न वसै मन माहि।**
३. **गुरि मिलिऐ सुखु पाईऐ अगनि मरै गुण माहि।१।**
४. **मन रे अहिनिसि हरि गुण सारि।**
५. **जिन खिनु पलु नामु न वीसरै ते जन विरले संसारि।१। रहाउ**
६. **जोती-जोंति मिलाईऐ सुरती सुरति संजोगु।**
७. **हिंसा हउमै गतु गए नाही सहासा सोगु।**
८. **गुरमुखि जिसु हरि मनि वसै तिसु मेले गुरु संजोगु।२।**
९. **काइआ कामणि जे करी भोंगे भोगणबहारु।**
१०. **तिसु सिउ नेहु न कीजई जो दीसै चलणहारू।**
११. **गुरमुखि रवहि सोहागणी सो प्रभु सेज भतारू।३।**
१२. **चारे अगनि निवारि मरू गुरमुखि हरि जलु पाइ।**
१३. **अंतरि कमलु प्रगासिआ अंम्रित भरिआ अघाइ।**
१४. **नानक सतगुरु मीतु करि सचु पावहि दरगह जाइ।४/२०।**

पद-अर्थ

तिलु—तिलमात्र भी; **रोगु वडा**—भारी कष्ट; **अगनि**—तृष्णा; **सारि**—स्मरण कर; **हिंसा**—परपीडन; **गतु**—चाँचल्य, मन की चंचलता; **कामणि**—कामिनी, नारी; **निवारि**—दूर कर के; **कमल**—हृदय; **अघाइ**—तृप्ति हो जायगी।

टीका

१. यदि प्रियतम हरि तिल मात्र भी मुझे विस्मृत हो जाय तो मैं इसे भारी कष्ट समझता हूं :

२. यदि मन में भगवान् का निवास नहीं है तो प्रभु की सभा में कोई सम्मान कैसे प्राप्त कर सकता है ?

३. गुरु के मिलन से सुख प्राप्त किया जाता है (उससे नाम की देन मिलती है जिस से सब सुख उत्पन्न होते हैं) हृदय में हरि के गुण आ बसते हैं जिससे तृष्णा की अग्नि बुझती है ।१।

४. हे मेरे मन, तू रात-दित हरि के गुणों का स्मरण कर ।

५. जिन्हें स्वल्पकाल के लिए भी हरि नाम नहीं भूलता वे पुरुष चाहे विरले हैं ।१। रहाउ ।

६. यदि जीवात्मा को परमात्मा से मिला दिया जाए और अपनी ध्याना-त्मिकावृत्ति को उसकी उच्च ध्यान-वृत्ति के साथ, गुरु-वृत्ति के साथ, मिलाएं ।

७. तो समझो कि मन से हिंसा और अहन्ता निकल गई और संशय, शोक समाप्त हो गए ।

८. गुरु के उपदेश से जिस मन में प्रभु की स्मृति दृढ़ हो जाती है, गुरु उसका मिलन प्रभु से करा देता है ।२।

९. यदि मैं शरीर को नारी बनाऊं अर्थात् इस प्रकार प्रभु-सेवा में लगाऊं जिस प्रकार पत्नी पति की सेवा में निरत रहती है तभी प्रियतम परमात्मा इसे स्वीकृत करता है ।

१०. इस शरीर को भी साँसारिक पदार्थों में न लगाएं क्योंकि वे नश्वर हैं।

११. गुरु की शिक्षा द्वारा सौभाग्यवती नारियां प्रभु के संयोग का आनन्द प्राप्त करती हैं, वह प्रभु उनकी हृदय-शय्या पर बैठता है ।३।

१२. गुरु की शिक्षा द्वारा हरि-नाम के जल से अन्दर जलती हुई चारों अग्नियां (हिंसा, मोह, लोभ, क्रोध) बुझा कर (जीवन-मोह) से मुक्त हो जा ।

१३. फिर अमृत से पूर्ण तेरा हृदय रूपी कमल खिल जाएगा और तेरी तृप्ति हो जाएगी ।

१४. (नानक) तुम सद्गुरु को अपना मित्र बनाओ, (जिस की कृपा से) तुम्हें ईश्वर की सभा में सत्य रूपी हरि प्राप्त होगा । ४/२०।

२१

१. हरि हरि जपहु पिआरिआ गुरमति ले हरि बोलि ।

२. मनु सच कसवटी लाईऐ तुलऐ पूरै तोलि ।

३. कीमति किनै न पाइऐ रिद माणक मोलि अमोलि ।१।

४. भाई रे हरि हीरा गुर माहि ।

५. सतसंगति सतगुरु पाईऐ अहिनिसि सबदि सलाहि ।१। रहाउ ।

६. सचु वखरु धनु रासि लै पाईऐ गुर परगासि ।

७. जिउ अगनि मरै जलि पाईऐ तिउ त्रिसना दासनिदासि ।

८. जम जंदारु न लगई इउ भउजलु तरै तरासि ।२।

९. गुरमुखि कूड़ु न भावई सचि रतै सच भाइ ।

१०. साकत सचु न भावई कूड़ै कूड़ी पांइ ।

११. सचि रतै गुर मेलिऐ सचै सचि समाइ ।

१२. मन महि माणकु लालु नामु रतनु पदारथ हीरु ।

१३. सचु वखरु धनु नामु है घटि घटि गहिर गंभीरु ।

१४. नानक गुरमुखि पाईऐ दइआ करे हरि हीरु ।४/२१।

पद-अर्थ

तुलीऐ—तुला जाता है; **माणक**—माणिक्य, मोती; **अहिनिसि**—दिनरात; **वखरु**—अवक्रव्य वस्तु, सौदा; **रासि**—पूंजी; **दासनिदासि**—दासियों की दासी; **जंदारू**—चाण्डाल, असभ्य; **भउजल**—संसार-सागर; **साकत**—शक्ति का उपासक, माया का भक्त; **पांइ**—नींव; **हीरु**—हीरा; **घटि**—हृदय में ।

टीका

१. हे प्यारे (मित्रो) हरि के नाम का जप करो, गुरु की शिक्षा-द्वारा भगवान् की चर्चा करो ।

२. जब मन को सच की कसौटी पर लगाया जाता है तब ही (मोल) तोल में पूर्णतया तुलता है ।

३. हृदय के अन्तर्गत हरि रूपी अमूल्य मोती रहता है जिसका मूल्यांकन कोई नहीं कर सकता ।१।

४. हे भाई, हरि रूपी हीरा गुरु के अन्दर प्रकाशमान हो रहा है ।

५. परन्तु सद्गुरु की प्राप्ति सत्संगति से होती है, जहां उससे सम्बद्ध विचारों द्वारा हरि की स्तुति प्रशंसा, की जाती है :१। रहाउ ।

६. सत्य रूपी सौदा उस धनराशि से प्राप्त कर जो गुरु के दिए प्रकाश

द्वारा प्राप्त की जाती है ।

७. तत्पश्चात् जैसें जल से अग्नि बुझ जाती हे वैसे ही तृष्णा (शान्त होकर) दास का रूप धारण कर लेती है ।

८. पुन: भीषण यमराज भी पीछे नहीं पड़ता और मनुष्य संसार-सागर से पार हो जाता है ।२।

९. गुरुमुखों (गुरु के अनुसर्त्तांओं) को मिथ्या से प्रेम नहीं होता है। वे ईश्वरीय प्रेम के कारण सत्य में रंग जाते हैं ।

१०. माया के भक्तों को सत्थ प्रिय नहीं होता, असत्य की नींव ही असत्य होती हे ।

११. गुरु द्वारा सम्पादित मिलाप से जो मनुष्य सत्य में अनुरक्त हो जाते हैं वे सत्य होकर सत्यस्वरूप हरि में मिल जाते हैं ।३।

१२. नाम, जो मोती, रत्न, हीरे जैसे पदार्थों के समान है, मन में ही निवास करता है ।

१३. नाम ही वास्तविक धन है, सत्य वस्तु है, यह उस गहन, अगाध अकालपुरुष के दर्शन कराता है जो प्रत्येक हृदय में रहता है ।

१४. (नानक) हरि रूपीं हीरा गुरु की कृपा द्वारा ही प्राप्त होता है ४/२१।

२२

१. भरमै माहि न विझवै जे भवै दिसंतर देसु ।

२. अंतरि मैलु न उतर ध्रिगु जीवणु ध्रिगु वेसु ।

३. होरु कितै भगति न होवई बिनु सतिगुर के उपदेस ।१।

४. मन रे गुरमुखि अगनि निवारि ।

५. गुर का कहिआ मनि वसै हउमै त्रिसना मारि ।१। रहाउ ।

६. मनु माणकु निरमोलुहै रामनामि पति पाइ ।

७. मिलि सतसंगति हरि पाईऐ गुरमुखि हरि लिव लाइ ।

८. आपु गइआ सुखु पाइआ मिलि सललै सलल समाइ ।२।

९. जिन हरि हरि नामु न चेतिओ सु अउगुणि आवै जाइ ।

१०. जिसु सतगुरु पुरखु न भेटिओ सु भउजलि पचै पचाइ ।

११. इहु माणकु जीउ निरमोलु है इउ कउडी बदलै जाइ ।३।

१२. जिंना सतगुरु रसि मिलै से पूर पुरख सुजाण ।

१३. गुर मिलि भउजलु लंघीऐ दरगह पति परवाणु ।

१४. नानक ते मुख उजले धुनि उपजै सबदु नीसाणु ।४/२२।

पद-अर्थ

भरभै—भ्रमण करने से; **भाहि**—अग्नि (तृष्णा की); **बिझवै**—बुझती है; **दिसंतर**—देशान्तर; **अंतरि**—आन्तरिक (मन की); **ध्रिगु**—धिक्कार योग्य; **अगनि**—अग्नि (तृष्णा); **निवारि**—दूर कर; **पति**—प्रतिष्ठा; **लिव**—ध्यान, प्रेम; **सललै**—सलिल के भीतर; सलल—जल; **भउजलि**—संसार-सागर में; **रसि**—प्रेम के साथ; **सुजाणु**—बुद्धिमान; **धुनि**—गूंज; **नीसाणु**—नगाड़ा ।

टीका

१. यदि कोई देश-देशान्तरों में (सन्यासी, साधुओं की भांति फिरता रहे तो उसके इस प्रकार भ्रमण करने से आन्तरिक अग्नि 'तृष्णा') नहीं बुझती ।

२. और न ही आन्तरिक मल उतरती है । अतः ऐसे जीवन को धिक्कार है और धिक्कार है ऐसे वेष को ।

३. सद्‌गुरु के उपदेश के बिना किसी अन्य स्थान पर भक्ति नहीं हो सकती ('अतः तृष्णा भी समाप्त नहीं होती) ।१।

४. हे मेरे मन, गुरु के उपदेश से तृष्णा की अग्नि को शान्त कर ।

५. यदि गुरु का उपदेश तेरे अन्तःकरण में दृढ़ हो जाए तो तू अहन्ता मार कर तृष्णा भी समाप्त कर ले ।१। रहाउ ।

६. मनुष्य का मन बहुमूल्य मोती है, परन्तु इसे (ईश्वर की सभा में) राम नाम द्वारा ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ।

७. सत्संगति में रहकर और गुरु-शिक्षा से हरि में ध्यान केन्द्रित करके प्रभु की प्राप्ति होती है ।

८. अहन्ता नष्ट हो जाती है और प्राणी को सुख प्राप्त हो जाता है; जीवात्मा परमात्मा में इस प्रकार मिल जाता है जिस प्रकार जल जल में ।२।

९. जो जीव प्रभु के नाम का स्मरण नहीं करते वे अवगुणी हैं, और इसी कारण जन्मते और मरते रहते हैं ।

१०. जिस जीव का सद्‌गुरु से मिलाप नहीं होता, वह संसार-समुद्र में नष्ट हो जाता है।

११. इस प्रकार यह अमूल्य जीवन कोड़ियों (सांसारिक पदार्थों) के वदले व्यर्थ चला जाता है ।३।

१२. जिन्हें सद्‌गुरु उनके प्रेम के कारण मिल जाता है, वे पुरुष पूर्ण-ज्ञानवान् हैं।

१३. वे गुरु से मिलकर संसार-समुद्र से पार होते हैं, और ईश्वर की सभा में मान प्राप्त करते हैं और प्रामाणिक माने जाते हैं।

१४. (नानक) उन के मुख उज्ज्वल होते हैं, उन के भीतर सदैव शब्द-रूपी नगाड़ा बजता रहता है जिससे आत्मानन्द-रूपी ध्वनि निकलती रहती है। ४/२२।

२३

१. वणजु करहु वणजारिहो वखरु लेहु समालि।
२. तैसी वसतु विसाहीऐ जैसी निबहै नालि।
३. अगै साहु सुजाणु है लैसी वसतु समालि ।१।
४. भाई रे रामु कहहु चितु लाइ।
५. हरिजसु वखरु लै चलहु सहु देखै पतीआइ ।१। रहाउ।
६. जिना रासि न सचु है किउ तीना सुखु होइ।
७. खोटै वणजि वणजिऐ मनु तनु खोटा होइ।
८. फाही फाथे मिरग जिउ दूखु घणो नित रोइ ।२।
९. खोटे पोतै ना पवहि तिन हरिगुर दरसु न होइ।
१०. खोटे जाति न पति है खोटि न सीझसि कोइ।
११. खोटे खोटु कमावणा आइ गइआ पति खोइ ।३।
१२. नानक मनु समझाईऐ गुर कै सबदि सालाह।
१३. राम नाम रंगि रतिआ भारु न भरमु तिनाह।
१४. हरि जपि लाहा अगला निरभउ हरि मन माह ।४/२३।

पद-अर्थ

वणजु=वाणिज्य, व्यापार; वणजारिहो=हे व्यापार करने वालो;

वखरु—अवकव्य वस्तु, सौदा, व्यापार की चीज; **बिसाहीऐ**—मोल लो; **निबहै नालि**—मृत्यु के अनन्तर भी साथ रहे; **अगै**—परलोक में; **साहु**—साधु, श्रेष्ठी, महावणिक् (परमात्मा); **पतीआइ**—प्रतीत हो कर, प्रसन्न होकर; **रासि**—पूंजी; **खोटे**—दोष के साथ; **पोतै**—(अकाल पुरुष के) क्रोध; **जाति**—व्यक्तित्व; **सीझसि**—सिद्ध होता है, सफल होता है; **सालाह**—स्तुति, प्रशंसा; **भारु**—पाप फा भार; **भरमु**—अज्ञान; **लाहा**—लाभ; **अगला**—अधिक; **निरभउ**—निर्भय अकाल पुरुष।

टीका

१. हे जीव रूपी व्यापारी, प्रभूत व्यापार करो, परन्तु सावधान होकर व्यापारिक वस्तु की सँभाल करो।

२. तुम्हें ऐसी वस्तु मोल लेनी चाहिए, जो सदैव तुम्हारा साथ दे।

३. जो भगवान् इस वस्तु की परीक्षा करेगा वह यहां बुद्धिमान श्रेष्ठी है। वह सच्ची वस्तु को सँभाल लेगा (अपने पास रख लेगा)।१।

४. हे मेरे भाई, मनोयोगपूर्वक राम-नाम का स्मरण करो।

५. यदि भगवान् की स्तुति-प्रशंसा रूपी वस्तु लेकर (परलोक) जाओगे तो अकाल पुरुष प्रसन्न होकर इसे देखेगा।१। रहाउ।

६. जिन व्यापारियों के पास सत्य पूंजी नहीं है वे किस प्रकार सुख प्राप्त कर सकते हैं ?

७. खोटे व्यापार में लगने से, मन और तन खोटे रहते हैं।

८. खोटे व्यापार में (धन, पदार्थ) लगने से परलोक में महा दुःख सहना पड़ता है। खोटे व्यापार वाले उसी प्रकार दुःखी होकर रोते हैं जिस प्रकार जाल में फँसे हुए मृग को दुःख होता है और वह दुःख में रोता हे।२।

९. खोटे व्यापारियों को अकाल पुरुष अपने कोष में प्रामाणिक नहीं मानता है और न ही उनको हरि रूपी गुरु का दर्शन होता है।

१०. खोटे का न कोई व्यक्तित्व है और न मान। दोष पूर्ण होकर कोई भी जीवन में सफल नहीं होता।

११. परन्तु खोटा मनुष्य तो खोटा कर्म ही करता है वह प्रतिष्ठा खोकर जन्म-मरण के चक्र में निमग्न रहता है।३।

११. (नानक) मन को गुरु की स्तुति प्रशंसा से पूर्ण शब्दों द्वारा

समझाना चाहिए।

१३. (इस प्रकार) जो राम नाम के प्रेम में रंगे जाते हैं उनको न पापों का भार है और न कोई संशय-भ्रम।

१४. वे भगवान् का नाम जप कर गुरुतर लाभ प्राप्त करते हैं, और निर्भय अकाल पुरुष उनके मन में स्थिर हो जाता है।४/२३।

२४

१. **धनु जोबनु अरु फुलड़ा नाठीअड़े दिन चारि।**
२. **पबणि केरे पत जिउ ढलि ढुलि जुंमणहार।१।**
३. **रंगि माणि लै पिआरिआ जा जोबनु नउहुला।**
४. **दिन थोड़ड़े थके भइआ पुराणा चोला।१। रहाउ।**
५. **सजणु मेरे रंगुले जाइ सुते जीराणि।**
६. **हंभी वंञा डुमणी रोवा झीणी बाणि।२।**
७. **की न सुणेही गोरीए आपण कंनी सोइ।**
८. **लगी आवहि साहुरै नित न पेईआ होइ।३।**
९. **नानक सुती पेईऐ जाणु विरती संनि।**
१०. **गुणा गवाई गंठड़ी अवगण चली बंनि।४/२४।**

पद-अर्थ

जोबनु—यौवन; **फुलड़ा**—सुन्दर फूल (सुन्दरता); **नाठीअड़े**—अभ्यागत अतिथि; **पबणि**—पद्मिनी; **केरे**—के; **पत**—पत्ते; **ढलि ढुलि**—सूख सड़कर; **जुंमणहार**—चले जाने वाले, नश्वर; **रंग**—प्रेम (रस); **नउहुला**—नवल; **थके**—रह गए; **चोला**—शरीर; **रंगुले**—प्रिय; **सुते**—सो गए; **जीराण**—जीर्णारण्य में, श्मशान में, कब्रिस्तान में; **हंभी**—अहं भी, मैं भी; **वंवा**—जाऊँगी; **डुमणी**—अस्थिर हृदयवती, जिसने एकनिष्ठ होकर परमात्मा से प्रेम नहीं किया; **झीणी**—लगातार, रिमझिम रिमझिम वर्षा के समान; **गोरीए**—हे सुन्दर जीव रूपी नारी; **सोइ**—खबर, समाचार; **लगी आवहि**—आएगी; **साहुरै**—श्वशुरालय, परलोक; **नित**—नित्य; **पेईआ**—पिता का घर, यह संसार; **सुती**—सोते हुए, दुविधा में जीते हुए; **विरती**—रात्रि के विना ही दिन में ही; **सनि**—सन्धिछेद, सेंध; **गंठड़ी**—पोटली; **बनि**—बांधकर, एकत्र करके।

टीका

१. धन, यौवन और सुन्दरता चार दिन के अतिथि होते हैं।

२. ये इसी प्रकार नश्वर हैं जिस प्रकार कमलिनी के दल सूख-सड़कर नष्ट हो जाते हैं।

३. हे प्रिय मित्र-जीव, जब तक नवयौवन है, प्रभु-प्रेम का आनन्द ले ले।

४. आप के दिन स्वल्प हैं। ये समाप्त हो जाएँगे और शरीर का चोला पुराना हो जायगा (फिर यह रस प्राप्त नहीं होगा) ।१। रहाउ।

५. (तेरे देखते देखते) मेरे कई प्रिय मित्र श्मशान में चले गए हैं।

६. अस्थिरचित्तवती मैं भी वहां (श्मशान में) जाऊँगी और पुन: निरन्तर रोते रहना है ।२।

७. हे सुन्दर जीव रूपी नारी, तू अपने कान से (ध्यान से) यह समाचार क्यों नही सुनती ?

८. कि अन्ततोगत्वा भी श्वशुरालय (परलोक) जा रही है और यह पिता का घर (सांसारिक जीवन) सदा नहीं रहेगा ।३।

९. (नानक) जो जीव रूपी नारी इस संसार (पिता के घर) में प्रमाद में सोई पड़ी है, (समझो कि) उसके घर में दिन में ही सेंध लग रही है।

१०. उसने गुणों की गठरी गंवा दी है और वह अवगुण संचित करके ले जा रही है ।४/२४।

२५

१. आपे रसीआ आपि रसु आपे रावणहारु।
२. आपे होवै चोलड़ा आपे सेज भतारु ।१।
३. रंगि रता मेरा साहिबु रवि रहिआ भरपूरि ।१। रहाउ।
४. आपे माछी मछुली आपे पाणी जालु।
५. आपे जाल मणकड़ा आपे अंदरि लालु ।२।
६. आपे बहुविधि रंगुला सखीए मेरा लालु।
७. नित रव सोहागणी देखु हमारा हालु।
८. प्रणवे नानकु बेनती तू सरवरू तू हँसु।
९. कउल तू है कवीआ तू है आपे वेखि विगसु ।४/२५।

पद-अर्थ

रसीआ—रसीला, रस से पूर्ण; **रसु**—किसी पदार्थ में रस देने की सामर्थ्य; **रावणहारु**—रमणकारी, आनन्द मनाने वाला; **चोलड़ा**—चोली स्त्री; **भतारु**—पति; **रांगे**—प्रेम; **रता**—प्रेम में मत्त; **रवि रहिआ**—रमा हुआ है, मिला हुआ है; **माछी**—मछलियां पकड़ने वाला, मछेरा; **जाल मणकड़ा**—जाल के साथ बंधा लोहे का मणका; **लालु**—मांस का टुकड़ा; **विधि**—तरीकों के साथ; **रंगुला**—विनोदी; **सखीए**—हे सहेलियो; **लालु**—प्रिय; **नित**—प्रतिदिन; **रवै**—भोगता हें. विनति करता है; **सरवरु**—(संसार) सागर; **हँसु**—आत्मा, जीव; **कउल**—(सूर्य के प्रकाश में खिलने वाला) कमल पुष्प; **कवीआ**—(चन्द्र की चन्द्रिका में खिलने वाली) कुमुदिनी; **आपे**—आप ही; **वेखि**—देखकर; **विगसु**—खिलता है, प्रसन्न होता है।

टीका

१. वह परमात्मा स्वयं ही रसमय है, आप ही रस है और आप ही रस भोक्ता है।
   (रहाउ की पद्य-पंक्ति में इस का अर्थ समझाया गया है। जो कुछ है उसी से उत्पन्न हुआ है इसलिए एक प्रकार से सब उसका ही स्वरूप है।)

२. वह स्वयं ही नारी है, स्वयं ही शय्या है और स्वयं ही पति है।१।

३. मेरा स्वामी प्रेम में रंगा हुआ सर्व-व्यापक (भरपूर) होकर सभी में व्याप्त है।१। रहाउ।

४. वह आप ही मछेरा है, आप ही मछली है, आप ही पानी है और आप ही जाल है।

५. आप ही (जाल को भारी करने वाला लोहे का) मणका है, आप ही (मछली को फँसाने वाला) मांस का टुकड़ा है।२।

६. हे सखि, वह मेरा प्रियतम स्वयं ही अनेक प्रकार से यह लीला कर रहा है।

७. वह नित्य सौभाग्यवतियों (भक्तों) को भोगता (प्रेम-भाजन बनाता) हैं; परन्तु मेरी दयनीय दशा देख, (जो वियुक्त है)।३।

८. (हे असीम और लीलाकारी प्रभु) नानक (विस्मित होकर और अपनी

तुच्छता अनुभव करके) विनय करता है (विस्मित होकर अत्यंत नम्रता से होकर कहता है) तुम स्वयं ही सरोवर हो स्वयं ही कमल पुष्प हो और स्वयं ही वहां केलि करते हुए हंस हो।

६. तुम स्वयं ही कमल पुष्प हो, स्वयं ही कुमुदिनी हो और स्वयं ही (कमल और कुमुदिनी) को देखकर प्रसन्न होने वाले हो अर्थात् स्वयं ही सूर्य और चन्द्रमा हो।४/२५।

२६

१. **इहु तनु धरती बीजु करमा करो सलिल आपाउ सारिंग पाणी।**
२. **मनु किरमाणु हरि रिदे जंमाइ लै इउ पावसि पदु निरबाणी।१।**
३. **काहे गरबसि मूड़े माइआ।**
४. **पित सुतो सगल कालत्र माता तेरे होहि न अंति सखाइया।१। रहाउ**
५. **बिखै बिकार दुसट किरखा करे इन तजि आतमै होइ धिआई।**
६. **जपु तपु संजमु होहि जब राखे कमलु बिगसै मधु आस्रमाई।२।**
७. **बीस सपताहरो बासरी संग्रहै तीनि खोड़ा निद कालु सारे।**
८. **दस अठार मैं अपंरपरो चीनै कहै नानकु इव एकु तारै।३।१६।**

पद-अर्थ

तनु—शरीर; **धरती**—भूमि, कृषि; **करमा**—प्रतिदिन के कर्म; **सलिल**—जल; **आपाउ**—सींचने के लिए; **सारिंगपाणी**—जिनके हाथ में पृथ्वी है (परमात्मा); **रिदे**—हृदय में; **जंमाइ लै**—उगा लो; **पावसि**—पाएगा; **पद निरबाणी**—निर्वाणपद, मुक्ति; **गरबसि**—गर्व करता है; **सखाइया**—सखा, मित्र; **बिखै बिकार**—विषय विकारों का; **दुसट**—अभद्र, नीच; **किरखा कर**—उखाड़ दे (जला कर); **तजि**—छोड़कर; **आतमै**—आत्मस्थित; **संजमु**—मन को विकारों से रोकना; **होहि**—बन जाएं; **राखे**—रक्षक; **संग्रहै**—(नाम का) संग्रह करता; **तीनि खोड़ा**—तीन अवस्थाएं (बाल्य, तारुण्य और वार्धक्य); **काल**—मृत्यु; **सारे**—स्मरण रखता है; **दस**—चार वेद और छः शास्त्र; **अठार मै**—अठारह पुराणों में; **अपरंपरो**—अपरम्पार, परमात्मा; **चीनै**—खोजता है, पहचानता

है; **इव**=इस प्रकार; **इकु**=एक प्रभु; **तारै**=पार कर देता है, मुक्ति देता है।

टीका

१. (हे भाई) इस शरीर को भूमि बना, इसमें शुभ कर्मों का बीज-वपन कर और इसे परमात्मा के नाम के जल से सींच।

२. फिर मन को कृषक बना कर भगवान् को हृदय में उगा। इस प्रकार तू निर्दुःख अवस्था (अपवर्ग) को प्राप्त होगा।

३. हे मूर्ख, माया का गर्व करता है ?

४. पिता, पुत्र, पत्नी, माता, समस्त संसार (माया है) ये अन्त में तेरे साथी नहीं होंगे। रहाउ।

५. (जो मनुष्य) नलाई करके हृदय से दुष्ट विकारों को बलपूर्वक निकाल देता है और इनको त्याग कर अन्तरात्मा, का ध्यान करता है।

६. और जब जप, तप, संयम उसके रक्षक हो जाते हैं तब उसका हृदयकमल खिल जाता है और उससे आध्यात्मिक आनन्द रूपी मधु टपकने लगता है।

७. (जो मनुष्य) जीवन के सताइस नक्षत्रों में अर्थात शैशव, तारूण्य और वार्धक्य, इन समस्त अवस्थाओं में, मृत्यु को विस्मृत नहीं करता है, सदा ही नाम-धन का संचय करता है।

८. और चार वेद, छः शास्त्र और अठारह पुराणों में उस अपरम्पार परमात्मा को ही पहचानता है, नानक कहते है, उसको, इस प्रकार की जीवन-पद्धति के कारण, एक (अर्थात् अकालपुरुष) पार कर देता है। ३। २६।

२७

१. अमलु करि धरती बीजु सबदी करि सच की आब नित देहि पाणी।
२. होइ किरसाणु ईमानु जंमाइ लै भिसतु दोजक मूड़े एव जाणी।१।
३. मतु जाणसहि गली पाइआ।
४. माल कै माणै रूप की सोभा इतु बिधी जनमु गवाइआ।१। रहाउ।
५. ऐब तनि चिकड़ो इहु मनु मीडको कमल की सार नहीं मूलि पाई।
६. भउरु उसतादु नित भाखिआ बोले किउ बुझै जा नह बुझाई।२।

७. आखणु सुनणा पउण की बाणी इतु मनु रता माइआ ।
८. खसम की नदरि दिलहि पसिंदे जिनी करि एकु धिआइआ । ३ ।
९. तीह करि रखे पंजि करि साथी नाउ संतानु मतु कटि जाई ।
१०. नानकु आखै राहि पै चलणा मालु धनु कितकु संजिआही । ४ । २७ ।

पद-अर्थ

अमलु—कर्म; **सबदी**—गुरु का शब्द; **सच की आब**—सत्य जीवन से प्राप्त हुई सुन्दरता; **ईमान जंमाइ लै**—आत्म विश्वास को उत्पन्न कर; **भिसतु**—बहिश्त, स्वर्ग; **दोजकु**—दोज़ख, नरक; **मूड़े**—हे मूढ़; **मतु**—न; **गली**—बातों से; **माल कै माणै**—धन के अभिमान के कारण; **रूप**—सौन्दर्य के गर्व के कारण; **ऐब**—दोष, अशुभ कर्म; **तनि**—शरीर में; **मीडको**—मेंडक, दुर्दर; **कमल**—हरिरूप कमल; **मूलि**—नितान्त, सर्वथा **भउरु**—भ्रमर; **उसतादु**—गुरू; **भाखिआ**—भाषित, भाषण, उपदेश; **बूझै**—सोचे, समझे; **पउण की बाणी**—वायु के शब्द के समान निरर्थक; **रता**—रक्त, अनुरक्त, मत्त; **नदरि**—कृपा-दृष्टि; **दिलहि पसिंदे**—मनपसन्द, प्रिय; **तीह**—तीस दिन के रोज़े; **पंजि**—दिन में पांच समय की नमाज़; **नाउ शैतान**—जिसका नाम शैतान है; **कटि जाइ**—रोज़ों और नमाज़ों के प्रभाव को) काट जाए, व्यर्थ कर; **राहि पै चलणा**—(मृत्यु के) मार्ग में पड़ता ही है, संसार से उठ जाता; **संजिआही**—संचय कर रहा है ।

टीका

१. (हे क़ाजी) अपने शुभ कर्मों को भूमि बना, इस भूमि में गुरु के शब्द का बीज डाल,,और इसे सत्य जीवन से प्राप्त सुन्दरता के जल से सिक्त कर ।
२. (इस कृषि का) कृषक होकर अपने मन में विश्वास उत्पन्न कर । हे मूर्ख, इस प्रकार तुझे स्वर्ग-नरक की वास्तविकता का ज्ञान हो जाएगा ।
३. न समझ कि (सत्कर्मों से दूर रहते हुए) कोरी बातों से ही जीवन के रहस्यों का ज्ञान हो जाता है ।

४. मनुष्य माया के अभिमान में और रूप की शोभा के मद में जीवन व्यर्थ खो देता है। रहाउ।

५. अशुभ कर्म मानो शरीर में कर्दम भरा है; मन इस कर्दम में मेंडक है, जिसे शरीर में विद्यमान कमल (परमात्मा) का अणुमात्र भी ज्ञान नहीं है।

६. इस कमल (परमात्मा) का प्रेमी भ्रमर (गुरु) नित्य उपदेश भी देता रहता है, परन्तु समझे जब तक वह (भगवान) स्वयं इसको सद्बुद्धि नहीं देता है तब तक उसके उपदेश तत्व को कैसे समझ सकता है। २।

७. इस माया के अनुरागी मन से कुछ कहना या उसे कुछ सुनाना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार वायु की ध्वनि (एक कान में प्रविष्ट होकर दूसरे से निकल गई)।

८. जो लोग एक के (परमात्मा के) स्मरण में लगते हैं, उन पर प्रभु की कृपा होती है और वे उसे मन से प्रिय हैं। ३।

९. (हे क़ाजी, सुन) यदि तू तीस रोज़े रखता हो और पांच नमाज़े सदा तेरी साथी हों (अर्थात् तू पांचों नमाज़ें भी पढ़ता हो) तो भी देखना ऐसा न हो कि (मन में बैठा हुआ) शैतान तेरे (रोज़ों, नमाज़ों के) इन सत्कर्मों के गुण को नष्ट कर दे।

१०. नानक कहते हैं कि यदि तुझे अन्त में मृत्यु के मार्ग में अवश्य पड़ना है तो तू धन-सम्पति क्यों संचित कर रहा है? । ४ । २७ ।

(२८)

१. सोई मउला जिनि जगु मउलिआ हरिआ कीआ संसारो ।

२. आब खाकु जिनि बंधि रहाई धंनु सिरजणहारो । १ ।

३. मरणा मुला मरणा ।

४. भी करतारहु डरणा । । रहाउ ।

५. ता तू मुला ता तू काजी जाणहि नामु खुदाई ।

६. जे बहुतेरा पड़िआ होवहि को रहै न भरीऐ पाई । २ ।

७. सोई काजी जिनि आपु तजिआ इकु नामु कीआ आधारो ।

८. है भी होसी जाइ न जासी सचा सिरजणहारो । ३ ।

९. **पंज वखत निवाज गुजारहि पड़हि कतेब कुराणा ।**

१०. **नानकु आखे गोर सदेई रहिओ पीणा खाणा । ४ । २८ ।**

पद-अर्थ

मउला=मौला, मालिक, विश्व को पुष्पित करने वाला, हरा-भरा करने वाला; **मउलिआ**=पुष्पित किया; **आब**=पानी; **खाकु**=मिट्टी; **बंद रहाई**=जोड़कर रखा है; **भी**=सर्वदा; **खुदाई**=खुदा का, ईश्वरीय; **पड़िआ**=धार्मिक पुस्तकों का विद्वान; **भरीए पाई**=समय-ज्ञानार्थ जल में रखी 'पनघटी' भरी जानकर, श्वास समाप्त होने पर; **आपु**=आपा, अहन्ता, अहंकार; **तजिआ**=त्याग दिया; **आधारो**=आधार, आश्रय; **जाइ न जासी**=न जन्म लेता है, न जाएगा; **पंज वखत**=पांच समय; **निवाज**=नमाज़; **गुजारहि**=गुज़ारता है, पढ़ता है; **गोर**=कब्र, मृत्यु; **सदेई**=बुलाएगी; **रहिउ**=समाप्त हो जाएगा ।

टीका

१. मौला (मालिक, स्वामी) केवल वह (खुदा) है जिसने सम्पूर्ण जगत् को पुष्पित और हरा भरा किया हुआ है ।

२. वह सर्जनकर्ता धन्य हैं जिसने पानी और मिट्टी आदि तत्वों को समवेत करके उनसे जगत् की उत्पति की है । १ ।

३. हे भाई मुल्ला, अन्त में प्रत्येक को मरना है ।

४. अतः भगवान् से डरना चाहिए । रहाउ ।

५. तुझे मुल्ला अथवा काज़ी होने का अधिकार तब है जब तू खुदा के नाम को समझे ।

६. तू धार्मिक पुस्तकों का कितना ही विद्वान् हो, (मृत्यु से नहीं बच सकता) । जब मनुष्य के श्वासों की पनघटी भर जाती है तब वह यहां नहीं रह सकता । २ ।

७. वास्तविक काज़ी वह है जिसने अहन्ता का त्याग कर दिया है और एक मात्र उस हरि के नाम को अपने जीवन का आधार बना लिया है ।

८. जो अब है, वह भविष्य में भी होगा, जो न जन्मता है न मरता है,

जो सच्चा है और निखिल जगत् का प्रष्टा है ।३।

९. (हे काज़ी) तू पांच समय नमाज़ पढ़ता है, कुरान तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों को भी पढ़ता है ।

१०. परन्तु नानक तुझे समझाता है कि जब क़ब्र (मृत्यु) बुलाती है तब खाना-पीना समाप्त हो जाता है (अत: समय को नष्ट न होने दें) ।४/२८।

२९

१. एकु सुआनु दुइ सुआनी नालि ।
२. भलके भउकहि सदा बइआलि ।
३. कूड़ु छुरा मुठा मुरदारु ।
४. धाणक रूपि रहा करतार ।१।
५. मै पति की पंदि न करणी की कार ।
६. हउ बिगड़ै रूपि रहा बिकराल ।
७. तेरा एकु नामु तारे संसारु ।
८. मै एहा आस एहो आधारु ।१। रहाउ ।
९. मुखि निंदा आखा दिनु राति ।
१०. पर घरु जोही नीच सनाति ।
११. कामु क्रोधु तनि वसहि चंडाल ।
१२. धाणक रूपि रहा करतार ।२।
१३. फाही सुरति मलूकी वेसु ।
१४. हउ ठगवाड़ा ठगी देसु ।
१५. खरा सिआणा बहुता भारु ।
१६. धाणक रूपि रहा करतार ।३।
१७. मैं कीता न जाता हरामखोरु ।
१८. हउ किआ मुहु देसा दुसटु चोरु ।
१९. नानकु नीचु कहै वीचारु ।
२०. धाणक रूपि रहा करतारु ।४/२९।

पद-अर्थ

सुआनु=श्वान, कुत्ता (लोभ); **दुइ सुआनी**=दो कुतिया (आशा और तृष्णा); **भलके**=नित्य; **वइआलि**=प्रातः; **मुठा**=ठगा हुआ माल; **मुरदारु**=मुर्दा; **धाणक**=धानुष्क, धनुर्धारी, वे राजनियम विरूद्ध कर्मचारी, जंगली लोग जो छुरे, कुत्ते लेकर महाभीषण वेष में शिकार खेलते हैं, पथिकों को लूटते हैं और कई नीच कर्म करते हैं, सांसी नामक जाति के लोग; **पति की**=मालिक (भगवान् की); **पंदि**=(फारसी शब्द 'पन्द') शिक्षा; **बिगड़ै रूप**=बिघड़ा हुआ रूप, कुरूप; **बिकराल**=भयंकर; **जोही**=देखता हूं; **सनाति**=नीच जाति वाला; **फाही सुरति**=लोगों को फँसाने वाली मनोवृत्ति; **मलूकी वेसु**=फ़क़ीरी वेष, साधु वेष; **ठगवाड़ा**=ठगों का अड्डा; **ठगी**=ठगता हूँ; **खरा**=बहुत; **भारु**=पापों का बोझ; **किआ मुहु देसा**=किस मुंह से तेरे सामने उपस्थित होऊँगा।

टीका

१. (हे जगत-स्रष्टा, मेरे जीवन में व्याधों—जैसे समस्त अवगुण हैं। मेरा त्राण कैसे होगा ?) मेरे अन्दर लोभ रूपी कुत्ता रहता है, तथा आशा और तृष्णा दो कुतिया रहती हैं।

२. ये कुत्ते सदा भौंकते रहते है (अर्थात् मेरा जीवन लोभ, आशा और तृष्णा इन तीनों से अभिभूत रहता है।)

३. मानो (मेरे हाथ में) असत्य छुरा है (जिस से लोगों को मारता हूं) और मेरी अधर्म की कमाई मानो मुर्दा है जो मैं खाता हूं।

४. हे परमात्मा, मेरा जीवन इस प्रकार व्याधों के रूप में व्यतीत होता है।१।

५. मैं मालिक की शिक्षा के अनुसार नहीं चलता और न कोई शुभ कर्म करता हूं :

६. सत्य पूछिए तो मैं इसी कुरूप और विकराल रूप में रहता हूं।

७. (आशा की एक ही किरण है कि) एक तुम्हारा नाम समस्त संसार को मुक्ति दे देता है।

८. मेरा भी यही एक आश्रय है और यही मेरी आशा है।१। रहाउ।

९. मेरे मुंह से दिन-रात निन्दा ही निकलती है।

१०. नीच और कुजातीय मैं लूटने के विचार से पराए घर में झांकता रहता हूं।

११. मेरे शरीर में काम और क्रोध दो चांडाल रहते हैं।

१२. हे परमात्मा, इस प्रकार व्याधों के तुल्य मेरा जीवन व्यतीत होता है।२।

१३. यद्यपि मेरा वेष साधुओं का सा है तथापि मेरा ध्यान जीवों को फँसाने (ठगने) में रहता है।

१४. सच पूछिए तो मैं तो प्रवंचना निवास-स्थान बना हुआ हूं, लोगों को ठगता फिरता हूं।

१५. मैं जितना अधिक चतुर बनता हूं उतना ही अधिक पापों का भार उठाता हूं।

१६. हे परमात्मा, इस प्रकार मेरा जीवन व्याधों के सदृश व्यतीत होता है।३।

१७. मुझ कृतघ्न ने तुम्हारा किया उपकार नहीं समझा, मैं ऐसा अधर्म निरत हुं।

१८. मैं पापात्मा चोर तुम्हारी सभा में किस मुंह से उपस्थित होऊँगा ?

१९. नीच नानक तुम्हारे सम्मुख यह विचार रखता है—

२०. हे परमात्मा, मेरा समस्त जीवन व्याधों का सा है।४/१९।

३०

१. **एका सुरति जेते है जीअ।**

२. **सुरति विहूणा कोइ न कीअ।**

३. **जेही सुरति तेहा तिन राहु।**

४. **लेखा इको आवहु जाहु।१।**

५. **काहे जीअ करहि चतुराई।**

६. **लेवै देवै ढिल न पाई।१। रहाउ।**

७. **तेरे जीअ जीआ का तोहि।**

८. **कित कउ साहिब आवहि रोहि।**

९. **जे तू साहिब आवहि रोहि।**

१०. **तू ओना का तेरे ओहि।२।**

११. असी बोलविगाड़ विगाड़ह बोल ।

१२. तू नदरी अंदरि तोलहि तोल ।

१३. जह करणी तह पूरी मति ।

१४. करणी बाझहु घटे घटि ।३।

१५. प्रणवति नानक गिआनी कैसा होइ ।

१६. आपु पछाणै बूझै सोइ ।

१७. गुर परसादि करे बीचारु ।

१८. सो गिआनी दरगह परवाणु ।४/३०।

पद-अर्थ

सुरति=जीवन का ज्ञान; **जेते**=जितने भी; **विहूणा**=बिना, रिक्त; **राहु**=जीवन मार्ग; **लेखा इको**=एक ही रीति से; **आवहु जाहु**=जन्म मरण का चक्र चलता रहता है; **रोहि**=क्रोध में; **बोलविगाड़**=अधिक बोलने वाले; **नदरी**=कृपा दृष्टि से; **करणी**=शुभ कर्मो का जीवन; **मति**=बुद्धि; **प्रणवति**=विनय करता है ।

टीका

१. (परमात्मा ने) जितने जीव (उत्पन्न किए हैं) उन सब में एक ही जीवन ज्ञान-धारा बहती रहती है ।

२. और इस ज्ञान के बिना कोई भी जीव उत्पन्न नहीं किया गया ।

३. (परन्तु ज्ञान की कक्षाएं पृथक् पृथक् हैं) जिस कक्षा में मनुष्य का ज्ञान पहुंचा है उसी के अनुसार उसका जीवनमार्ग चलता है ।

४. एक ही रीति से माप होकर जन्म-मरण का चक्र बना रहता है । १ ।

५. हे जीव, तू क्योंकि वाक्-चातुर्य दिखलाता है? (उसी का अनुल्लंघनीय शासन चलता है ।)

६. वह आप ही ज्ञान देता है, आप ही ले लेता है और ऐसा करते हुए उसे कोई देर नहीं लगती । १ । रहाउ ।

७. (कर्मों के चक्र में इस प्रकार जीवों को पड़ा हुआ देख गुरु महाराज का हृदय करूणा से भर जाता है और तब वे परमात्मा के साथ

इस प्रकार बातें करते हैं) हे परमात्मा, ये जीव तुम्हारे हैं और तुम इनके हो ।

८. तब, हे स्वामी, तुम क्यों उन पर क्रोध करते दिखाई दे रहे हो ?

९. यदि तुम वस्तुत: क्रोध में हो (तो तुम्हारी कृपा हो जानी चाहिए) ।

१०. क्योंकि अन्तत: तुम उनके हो और वे तुम्हारे हैं । २ ।

११. (अब चित्र का अन्य पार्श्व समक्ष आ जाता है) कर्मों का फल अब कृपा के रुप में दिखाई देता है । (गुरु जी बोल उठते हैं) हम जीव बड़बोले हैं और व्यर्थ की बातें करते हैं ।

१२. तुम कृपालु हो और हमारे कर्मों को कृपालु होकर ही जांचते हो और ठीक तोल तोलते हो । तुम्हारा न्याय और तुम्हारी कृपा साथ-साथ चल रहे हैं ।

१३. जहां शुभ कर्म हैं वहां पूर्ण बुद्धिमता है ।

१४. अतएव शुभ कर्मों के बिना हानि ही हानि है ।

१५. नानक पूछता है कि ज्ञानी कौन होता है ?

१६. (ज्ञानी वही है) जो स्वयं को जानता है और इस प्रकार परमात्मा को पहचान लेता है ।

१७. जो मनुष्य गुरु की कृपा से ठीक विचारता है ।

१८. (वह) परमात्मा की सभा में प्रामाणिक समझा जाता है । ४ । ३० ।

(३१)

१. तू दरीआउ दाना बीना मैं मछुली कैसे अंतु लहा ।

२. जह जह देखा तह तह तू है तुझ ते निकसी फूटि मरा ।१।

३. न जाणा मेउ न जाणा जाली ।

४. जा दुखु लागै ता तुझै समाली । १ । रहाउ ।

५. त भरपूरि जानिआ मैं दूरि ।

६. जो कछु करी सु तेरै हदूरि ।

७. तू देखहि हउ मुकरि पाउ ।

८. तेरै कंमि न तेरै नाइ । २ ।

९. जेता देहि तेता हउ खाउ ।
१०. बिग्रा दरु नाही कै दरि जाउ ।
११. नानकु एकु कहै ग्ररदासि ।
१२. जीउ पिंडु सभ तेरे पासि । ३ ।
१३. ग्रापे नेड़े दूरि ग्रापे ही ग्रापे मंझि मिग्रानो ।
१४. ग्रापे वेखै सुणे ग्रापे ही कुदरति करे जहानो ।
१५. जो तिस भाव नानका हुकमु सोई परवानो । ४।३१ ।

पद-ग्रर्थ

दरीग्राउ=दरिया, समुद्र; **दाना**=ज्ञाता; **बीना**=द्रष्टा; **ग्रंतु लहा**=ग्रंत प्राप्त करना; **निकसी**=निकल कर, बाहर होकर; **फूटि मरा**=फूट फूट कर, तड़प तड़प कर मर जाऊं; **मेउ**=मत्स्यग्राही; **जाली**=जाल; **समाली**=याद करती हूं; **हदूरि**=समक्ष; **मुकरि पाउ**=मना कर देती हूं; **तेरे पासि**=तेरे हाथों में है; **मंझि मिग्रानो**=मध्य में; **कुदरति करे जहानो**=शक्ति द्वारा संसार उत्पन्न करता है ।

टीका

१. हे परमात्मा, तुम सागर के समान हो, सब कुछ जानने-बूझने वाले हो, मैं मछली के समान तुम्हारे भीतर रहती हूं ग्रतः तुम्हारा पार किस प्रकार पा सकती हूं ('दूसर होइ तां सोझी पाई') ।

२. (मुझे केवल इतना ज्ञान है कि) जिधर मेरी दृष्टि जाती है तुम ही दृष्टिगोचर होते हो । ग्रतएव तुमसे वियुक्त होकर मैं तड़प-तड़प कर मर जाती हूँ । १ ।

३. न मैं मछेरे को जानती हूं ग्रौर न जाल को (ग्रनजान ही पाशों में बन्द होती हूं) ।

४. परन्तु जब कभी मुझे (इनके द्वारा) कोई दुःख पहुंचता है तब मैं सहायता के लिए तुम्हें याद करती हूं । १ । रहाउ ।

५. (हे जगत् कर्ता) तुम सर्वत्र व्याप्त हो, मैंने ही तुम्हें दूर समझा हुग्रा है ।

६. मैं जो कुछ करता हूं वह तुमसे छिपा नहीं है, तुम्हारे समक्ष होता है ।

७. तुम मेरे समस्त (नीच कर्म) देखते हो परन्तु मैं अपने नीच कर्मों को स्वीकार नहीं करता हूँ।

८. न तो तुम्हारे किसी काम में लगा हूं और न ही तुम्हारे नाम में। २।

९. तुम जितना देते हो मैं उतना ही खा लेता हूं।

१०. तुम को छोड़ कर अन्य कोई ऐसा स्थान नही है जहां से मैं कुछ ले सकूं।

११. नानक यही एक विनय करता है।

१२. कि मेरी आत्मा और शरीर आप के हाथों में हैं। ६।

१३. प्रभु स्वयं ही निकट हैं, स्वयं ही दूर हैं और स्वयं ही मध्य में हैं।

१४. वह स्वयं ही सब कुछ देखता है, स्वयं ही सुनता हैं और अपनी शक्ति के साथ समग्र रचना करता है।

१५. (नानक) जो उसे अच्छा लगता है वही उसका आदेश है और उपयुक्त है। ४ ३१।

(३२)

१. कीता कहा करे मनि मानु।

२. देवणहारे कै हथि दानु।

३. भावै देइ न देई सोइ।

४. कीते कै कहिऐ किआ होइ। १।

५. आपे सचु भावै तिसु सचु।

६. अंधा कचा कचुनिकचु। १। रहाउ।

७. जा के रुख बिरख आराउ।

८. जेही धातु तेहा तिन नाउ।

९. फुलु भाउ फलु लिखिआ पाइ।

१०. आपि बीजि आपे ही खाइ। २।

११. कची कंध कचा विचि राजु।

१२. मति अलूणी फिका सादु।

१३. नानक आणे आवै रासि।

१४. विणु नावै नाही साबासि। ३। ३२।

पद-अर्थ

कीता—(परमात्मा का) बनाया हुआ; **मनि**—मन में; **मानुं**—अभिमान; **भावै**—जो उसे अच्छा लगे; **अंधा**—अज्ञानी जीव; **कचा**—अपरिपक्व, अनुपयोगी वस्तु; **कचुनिकचु**—कच्चों में कच्चा, सर्वथा कच्चा; **आराउ**—संवारता है; **धातु**—किस्म, (स्वभाव); **भाउ**—भावना; **लिखिआ**—कर्म अनुसार; **कंच**—जीवन की दीवार, जीवन निर्माण; **राज**—जीवन निर्माता मन; **अलूणी**—निर्लवण, रसहीन; **रासि**—यथावत्, निर्माण; **साबासि**—शाबास, साधुवाद।

टीका

१. परमात्मा का बनाया हुआ यह जीव अपने मन में किसका अभिमान करता है ?

२. (जो कुछ भी मनुष्य के पास है वह) दान है जो उस दानी दाता के हाथ से निकल कर आया है।

३. (उसके) बनाए हुए इस जीव के कहने (मांगने) से क्या होता है ?

४. उसे अभीष्ट हो तो वह यह दान दे, न हो तो न दे।

५. उस सत्यस्वरूप हरि को जो स्वयं अच्छा लगता है उसी को सत्य (यथार्थ) समझना चाहिए।

६. अज्ञानी जीव कच्चा (अनुपयोगी पदार्थ) है, सर्वदा कच्चा है।१। रहाउ

७. जिस माली परमात्मा के रूख वृक्ष (जीव) हैं वही इन वृक्षों को संवारने वाला है।

८. जो किसी वृक्ष की जाति (प्रकृति) होती है वही उसका नाम समझो (गुण कर्म और स्वभाव व्यक्तित्व को प्रकट करते हैं। इस कारण ये ही उसके नाम हैं)।

९. किसी के भीतर जैसी भावना का पुष्प है, वैसा ही फल लगता है (जैसी भावना है, वैसा ही फल होता है। यह ही कर्मों का नियम है)।

१०. अत: जीव स्वयं कर्मों का फल भोगता है।२।

११. जिस प्राणी के शरीर में निर्माण करने वाला राजा (मन) कच्चा (अकुशल) है उसका किया हुआ जीवन-निर्वाण भी अपरिपक्व ही होगा।

१२. जिसकी बुद्धि नीरस है, उसके जीवन का स्वाद भी नीरस होगा।

१३. (नानक) जब परमात्मा मनुष्य के जीवन को सँवारता हैं तभी आनन्द आता है (नाम का दान देकर परमात्मा रस प्रदान करता है)।

१४. नाम स्मरण के बिना किसी को ईश्वर की सभा में साधुवाद की प्राप्ति नहीं होती है।३/३२।

३३

१. **अछल छलाई नह छलै नह घाउ कटारा करि सकै।**
२. **जिउ साहिबु राखै तिउ रहै इसु लोभी का जीउ टलपलै।१।**
३. **बिनु तेल दीवा किउ जलै।१। रहाउ।**
४. **पोथी पुराण कमाईऐ।**
५. **भउ वटी इतु तनि पाईऐ।**
६. **सचु बूझणु आणि जलाईऐ।२।**
७. **इहु तेलु दीवा इउ जलै।**
८. **करि चानणु साहिब तउ मिलै।१। रहाउ।**
९. **इतु तनि लागै बाणीआ।**
१०. **सुखु होवै सेव कमाणीआ।**
११. **सभ दुनीआ आवण जाणीआ।३।**
१२. **विचि दुनीआ सेव कमाईऐ।**
१३. **ता दरगह बैसणु पाईऐ।**
१४. **कहु नानक बाह लुडाईऐ।४/३३।**

पद-अर्थ

अछल—न छली जाने वाली (माया); **छलाई**—छलने से; **घाउ**—भाव; **कटारा**—कटार, छुरा; **राखै**—रखता है; **लोभी**—लोभी जीव; **टलपलै**—चंचल रहता है; **इतु तनि**—इस शरीर रूपी दीपक में; **दीवा**—शरीर रूपी दीपक, मनुष्य जीवन का दीपक; **भउ**—भय; **वटी**—दीपक की बत्ती; **बूझणु**—ज्ञान; **चानणु**—आन्तरिक प्रकाश, ज्ञान; **बाणीआ**—बाणी, गुरु उपदेश; **बैसणु पाईऐ**—बैठना मिलता है; **बांह लुडाईऐ**—हर्ष में बगलें बजाते जाएँ।

टीका

१. अछलनीय माया छलने से छली नही जाती, न ही इसे कोई कटार काट सकती है (माया की शक्ति दुर्निवार है)।

२. (परन्तु प्राणियों के वश में क्या है वे तो कर्मो से निगडित हैं) जैसे परमात्मा उनको (अपने बनाए नियमों के अनुसार) रखता है उन्हें इसी प्रकार रहना पड़ता है। लोभी प्राणी का मन (माया के प्रभाव से) चंचल रहता है (फिर वह क्या करे।) ।१।

३. (इस लघु पद्य पंक्ति में गुरु-उपदेश का सार है। जीवन रूपी दीपक के लिए किस तेल की आवश्यकता है जिससे यह दीपक भली-भान्ति जलता रहे) तेल के बिना दीपक कैसे जलता रह सकता है। (दीपक जीवन है और इसमें तेल कौन सा ? यह आगे बतलाया गया है। रहाउ।

४. प्रथम पुराण आदि धार्मिक पुस्तकों का परायण हो (शरीर रूपी दीपक की परिपक्वता के लिए यह अपेक्षित है। अन्यथा इसमें तेल आदि कैसे पड़ेंगे ?)।

५. तत्पश्चात् इस शरीर रूपी दीपक में प्रभु-भय की बत्ती डाली जाय।

६. तदनन्तर सत्य-ज्ञान (रूपी तेल) भरकर इस दीपक को प्रज्वलित किया जाय ।२।

७. यह है तेल और इस प्रकार जलता है जीवन-दीपक।

८. यदि इस प्रकार जीवन जगमगा उठे तो परमात्मा (भीतर ही) मिल जाता है ।१। रहाउ।

९. यदि इस शरीर (जीवन) पर प्रथम गुरु-उपदेश अपना गुण दिखाए–

१०. और तदनन्तर उस उपदेश के अनुसार जीव सेवक होकर साधना करे तो उसे सुख प्राप्त होता है।

११. तब यह संसार नश्वर प्रतीत होने लगता है। अत: वह मनुष्य माया से प्रभावित नहीं होता है ।३।

१२. यदि संसार में दास होकर साधना की जाए।

१३. तो भगवान् की सभा में बैठना मिलता है।

१४. (नानक कहते हैं कि) भगवान् की सभा में सोल्लास प्रवेश करता है ।४/३३।

ओं सतिगुर प्रसादि ॥

सिरी रागु महला । घरु ।

अष्टपदीयाँ

१. आखि आखि मनु वावणा, जिउ जिउ जापै वाइ ।
२. जिसनो वाइ सुणाईऐ, सो केवडु कितु थाइ ।
३. आखण वाले जेतड़े सभि आखि रहे लिव लाइ ।१।
४. बाबा, अलहु अगम अपारु ।
५. पाकी नाई पाक थाइ सचा परवदिगारु । १ । रहाउ ।
६. तेरा हुकमु न जापी केतड़ा, लिखि न जाणै कोइ ।
७. जे सउ साइर मेलीअहि, तिलु न पुजावहि रोइ ।
८. कीमति किनै न पाईआ, सभि सुणि सुणि आखहि सोइ ।२।
९. पीर पैकामर सालक सादक सुहदे अउरु सहीद ।
१०. सेख मसाइक काजी मुला, दरि दरवेस रसीद ।
११. बरकति तिन कउ अगली, पड़दे रहनि दरूद ।३।
१२. पुछि न साजे पुछि न ढाहे पुछि न देवै लेइ ।
१३. आपणी कुदरति आपे जाणै, आपे करणु करेइ ।
१४. सभना वेखै नदरि करि, जे भावै तै देइ ।४।
१५. थावा नाव न जाणीअहि, नावा केवडु नाउ ।
१६. जिथै वसै मेरा पातिसाहु, सो केवडु है थाउ ।
१७. अंबड़ि कोइ न सकई, हउ किसनो पुछणि जाउ ।५।
१८. वरना वरन न भावनी, जे किसै वडा करेइ ।
१९. वडे हथि वडिआईआ, जै भावै तै देइ ।
२०. हुकमि सवारे आपणै, चसा न ढिल करेइ ।
२१. सभु को आखै बहुतु, बहुतु, लैणै कै वीचारि ।

२२. केवडु दाता आखीऐ, दे कै रहिआ सुमारि ।

२३. नानक तोटि न आवई, तेरे जुगह जुगह भंडार ।७।

पद-अर्थ

आखि-आखि—कह-कह कर; **वावण**—बजाना; **जापै**—दिखाई देता जाए; **रहे**—थक गए; **अलहु**—अल्लाह; परमात्मा; **अपारु**—अपार; **पाकी**—पवित्र; **नाई**—महिमा; **परवदिगारु**—पालन पोषण करने वाला; **सउ**—सौ; **शाइर**=कवि; **मेलीअहि**—एकत्र किए जाएं; **तिलु**—तिल मात्र; **पुजावहि**—पहुंचते हैं; **रोइ**—रोकर, यत्न कर कर के; **पीर**—गुरु; **पैकामर**—पैग़म्बर, ईश्वरीय सन्देह वाहक; **सालक**—मार्ग दर्शक; **सादक** – सत्यनिष्ट: **सुहदे**—सरल स्वभाव वाले लोग, अक्ल वाले फ़कीर; **अउरु**—और; **शहीद**—जो न्यौछावर हो चुके हैं; **मसाइक**—'शेख़' शब्द का बहु-वचन; **दर**—द्वार पर; **रसीद**—पहुंचे हुए; **सिद्ध**—पुरुष; **बरकति**—वृद्धि, दयावान; **अगली**—अधिक; **दरूद**—नमाज़ के पश्चात् की हुई प्रार्थना: **अंबड़ि**—पहुंचना; **वरन**—वर्ण, जाति; **चसा**—पलभर; क्षण भर; **लैणे**—देनों का लेना; **रहिआ सुमारि**—गणना समाप्त हो गई; **भंडार**—अन्नशाला, कृपा ।

टीक।

१. परमात्मा के गुणों का स्मरण कर के मन रूपी बाजे को बजाना चाहिए । (अर्थात् मन को उच्च ज्ञान के लिए प्रेरित करना चाहिए) और ज्यों-ज्यों यह ज्ञान होता जाता है त्यों-त्यों मन और अधिक बजाया जाता है ।

२. परन्तु इस प्रकार बजा कर यह जिस हरि को सुनाया जाता है उसकी गहराई का पता नहीं चलता अर्थात् यह ज्ञान नहीं होता कि वह कितना महान् है और कहां रहता है ?

३. उसकी महिमा के गायक अन्त में उसमें लीन होकर चुप हो गए ।

४. हे भाई, परमात्मा तक किसो की पहुंच नहीं है, उसकी पूर्व-पर-सीमा नहीं है ।

५. उसकी महिमा पवित्र है, उसका निवास क्षेत्र पवित्र है, वह सच्चा पालनहार है ।१। रहाउ ।

६. हे परमात्मा, तुम कितने अपार हो। इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। कोई इसे लिख कर नहीं बतला सकता।

७. यदि शतशः कवि एकत्र बुलाए जाएं तो वे अत्यधिक परिश्रम करने पर भी तिल मात्र वर्णन नहीं कर सकते।

८. कभी कोई तुम्हारा मूल्यांकन नहीं कर सका, तुम्हारे विषय में जो कुछ भी समाचार लोग सुनाते हैं समग्र सुना सुनाया है।२।

९. कई पीर, पैग़म्बर, मार्ग-दर्शक, सत्यनिष्ट, अलबेले फ़क़ीर और शहीद—

१०. कई शेख़, और अनेक शेख़, काज़ी, मुल्ला और परमात्मा के द्वार तक पहुंचे हुए फकीर।

११. और अनेक लोग जिन पर तुम्हारी बहुत कृपा होती है और जो सदा नतमस्तक होकर तुम्हारे सम्मुख प्रार्थना करते हैं (इन सब में कोई भी तुम्हारे गुणों की महत्ता का अनुभव नहीं कर पाता।

१२. परमात्मा किसी के परामर्श से न विश्व का निर्माण करता है, न इसका संहार, न किसी को देन देता है और न छीनता है।

१३. अपनी शक्ति का रहस्य वह आप ही जानता है और वह आप ही करण एवं कारण है।

१४. वह सभी को कृपा दृष्टि से देखता है और जिनको चाहे देन देता है।

१५. परमात्मा के नामों को कोई नहीं जानता और न यह पता लगता है कि सभी नामों में कौन सा नाम उसका विशेष नाम है।

१६. जिस स्थान पर मेरा राजा (परमात्मा) विराजमान है, वह स्थान कितना महान होगा।

१७. वहां कोई नहीं पहुंच सकता—तब मै उस स्थान के विषय में किस से पूछने के लिए जाऊं।

१८. यदि वर्णों में से किसी वर्ण को वह ऊंचा होने देता है तो इसका यह अर्थ नहीं कि कोई विशेष वर्ण अथवा जाति उसे प्रिय है।

१९. (वास्तविक तत्व यह हैं कि) उस महान् के हाथ में ही सारी बड़ाई है। वह जिसके ऊपर प्रसन्न होता है, उसी को बड़ाई दे देता है।

२०. अपने आदेश के अनुसार ही वह किसी को संवारता है और ऐसा करते हुए उसे देर नहीं लगती।

२१. परमात्मा से देन लेने के विचार से प्रत्येक प्राणी उस से बहुत-बहुत मांगता है।

२२. फिर उसे कितना महान दानी कहा जाय जो इतनी देनें देता है कि उनकी गणना नहीं हो सकती।

२३. (नानक कहो, हे प्रभु) युग-युगान्तरों से तुम्हारा भंडार चल रहा है तो भी उसमें कभी कमी नहीं हुई।

(२)

१. सभे कंत महेलीआ, सगलीआ करहि सीगारु।
२. गणत गणावणि आईआ, सूहा वेसु विकारु।
३. पाखंडि प्रेम न पाइऐ, खोटा पाजु खुआरु।१।
४. हरि जीउ इउ पिरु रावै नारि।
५. तुधु भावनि सोहागणी आपणी किरपा लैहि सवारि।१। रहाउ।
६. गुरसबदी सीगारीआ, तनु मनु पिर कै पासि।
७. दुइ कर जोड़ि खडी तकै, सचु कहै अरदासि।
८. लालि रती सच भै वसी, भाइ रती रंगि रासि।२।
९. प्रिअ की चेरी कांढीऐ, लाली मानै नाउ।
१०. साची प्रीति न तुटई, साचे मेलि मिलाउ।
११. सबदि रती मनु वेधिआ, हउ सद बलिहारै जाउ।३।
१२. साधन रंड न बैसई, जे सतिगुरु माहि समाइ।
१३. पिरु रीसालू नउतनो साचउ मरै न जाइ।
१४. नित रवै सोहागणी, साची नदरि रजाइ।४।
१५. साचु धड़ी धन माडीऐ, कापडु प्रेम सीगारु।
१६. चंदनु चीति बसाइआ, मंदरु दसवा दुआरु।
१७. दीपकु सबदि विगासिआ राम नामु उरहारु।५।
१८. नारी अंदरि सोहणी, मसतिक मणी पिआरु।
१९. सोभा सुरति सुहावणी, साचै प्रेमि अपार।
२०. विनु पिर पुरखु न जाणई साचे, गुर कै हेति पिआरि।६।
२१. निसि अंधिआरी सुतीए, किउ पिर बिनु रैणि विहाइ।

२२. अंकु जलउ तनु जालीअउ, मनु धनु जलिबलि जाइ ।
२३. जा धन कंति न रावीआ, ता बिरथा जोबनु जाइ ।७।
२४. सेजै कंत महेलड़ी; सूती बूझ न पाइ ।
२५. हउ सुती, पिरु जागणा, किस कउ पूछहु जाइ ।
२६. सतिगुरि मेली, भै वसी, नानक प्रेमु सखाइ ।८।२।

पद-अर्थ

महेलीआ—महिलाएं; **सगलीआं**—सभी; **गणत गणावणि**—(धार्मिक कर्मों की) संख्या का दिखावा, महत्ता; **सूहा**—लाल, माया का लाल रंग; **विकार**—बेकार, व्यर्थ; **पाजु**—व्याज, व्यपदेश, दिखावा; **रावै**—रमण करता है, भोगता है; **कर**—हाथ; **तकै**—देखती है; **लाली**—प्रिय पति में; **धाइ रति**—प्रेम में रंगी हुई; **रंगि**—प्रेम द्वारा; **रासि**—संवारी गई; **कांढीऐ**—गिनी जाती है; **लाली**—दासी; **बेधिआ**=विंध गया; **साधन**—स्त्री; **रंड**—विधवा; **रीसालू**—रसाल, रसपूर्ण, सुन्दर; **नउतनो**—नूतन; अभिनव, ताज़ा: **जाइ**—उत्पन्न होता है; **रजाइ**—रज़ा से, इच्छा से; **धड़ी**—सिर के केशों की पट्टियां; **धन**—नारी; **मांडीऐ**—मण्डित करे, सजाए; **चंदनु चीति बसाइआ**—उसको हृदय में बसाना चंदन है; **मंदरु दसवा दुआरु**—अपना निवास स्थान दशम द्वार को बनाए; **उरहारु**—कण्ठ का हार; **मणी**—रत्न (प्रेम मस्तक की मणि है); **निशि**—निशा, रात्रि; **रैणि**—रजनी, रात्रि; **अंक**—अंग; **सखाइ**—सखा, सहचर ।

टीका

१. वैसे सभी जिज्ञासु जन रूपी नारियां प्रभु-प्रियतम की पत्नियां कहलाती हैं और (उसे प्रसन्न करने के लिए) सभी श्रृंगार (धार्मिक कर्म काण्ड) भी करती हैं ।
२. परन्तु जो नारियां अपने श्रृंगार (धार्मिक कर्मों) की संख्या का दिखावा करने के लिए आई हैं उनका लाल वेष (लाल वेष माया का रंग हैं, पति सौभाग्य का रंग मजीठ है) व्यर्थ जाता है ।
३. प्रेम मूर्ति परमात्मा पाखण्ड करने से प्राप्त नहीं होता, (प्रत्युत) खोटा दिखावा क्लेशकारक सिद्ध होता है । १।
४. प्रियतम प्रभु सौभाग्यवतियों को ऐसे मानता है (जैसे आगे इस

'शबद' में बतलाया गया हैं। यह रहाउ का चरण है)।

५. हे प्रभु, तुम्हें सुहागिनें ही प्रिय हैं, उन्हें तुमने अपनी कृपा से संवार लिया है। (सुहागिनों के गुण आगे बतलाए गए हैं।रहाउ।

६. सुहागिन गुरु के शब्द (शिक्षा) द्वारा अपना श्रृंगार करती है और उसका तन-मन प्रभु को समर्पित होता है।

७. वह करबद्ध होकर प्रभु की कृपा की प्रतीक्षा करती है और उसकी प्रार्थना में सत्य होता है अर्थात् वह सत्य के दान की अभ्यर्थना करती है।

८. वह लाल (प्रिय पति) के प्रेम में रंगी है, उस से भीत रहती हुई कर्म करती है, वह प्रेम में रत है और प्रेम द्वारा संवारी जाती है।२।

९. प्रियतम की दासी वह गिनी जाती है जिसने अपने लिए लाली (दासी) का नाम अङगीकार कर लिया है।

१०. उसकी प्रीति सत्य है ऐसी स्थिर कि टूटती नहीं। यही प्रीति सच्चे प्रभु के साथ उसका मिलाप कराती है।

११. वह गुरु के शब्द में रंगी हुई है। उसका मन उपदेश से सिद्ध (प्रभावित) है। मैं उस सुहागिन पर सौ बार बलिहारी हूं।३।

१२. वह जीव रूपी नारी जो सद्गुरु के शब्द में लीन हो गई है कभी विधवा नहीं होती (अपने प्रियतम से वियुक्त नहीं होती)।

१३. प्रभु पति रस का स्त्रोत है और सदैव तरुण है। वह सच्चा परमात्मा न कभी उत्पन्न होता है और न मरता है।

१४. अपनी सच्ची कृपादृष्टि और अपनी इच्छा के अधीन रख कर वह नित्य ही सुहागिनों का मान बढ़ाता है।४।

१५. जो जीव रूपी नारी सत्य का सीमान्त संवारती है, प्रभु के प्रेम के वस्त्र पहन कर श्रृंगार करती है, . . .

१६. हृदय में उसका निवास रूप चंदन प्रयोग करती है और अपने दशम द्वार (उच्च सुरति) को उसके वास के लिए घर बनाती है, . . .

१७. जिसने उपदेश द्वारा हृदय रूपी मन्दिर में दीपक जलाया है और राम नाम के स्मरण का कण्ठ में हार सजाया है (वह सुहागिन है)।५।

१८. वह नारी अन्य नारियों में सुन्दरी गिनी जाएगी जिसके मस्तक पर प्रेम की मणि है, . . .

१९. जिसने सच्चे और अनन्त प्रभु के प्रेम में रहकर अपनी सुरति को सुन्दर और शोभायमान बना लिया है, ...

२०. और जो सच्चे गुरु के प्रेम में मग्न होकर प्रभु के प्रेम से अन्य किसी के प्रेम को नहीं जानती ।६।

२१. हे, (माया और अज्ञान की) घनान्धकारमयी रात्रि में सोती हुई नारी, प्रभु पति के बिना तेरी जीवन रात्रि किस प्रकार बीत सकती है ।

२२. उसके बिना तो शरीर का अंग अंग जलता है, शरीर जलता है, मन और धन भी जलते हैं ।७।

२३. यदि प्रभु पति ने जीव रूपी नारी का मान नहीं बढ़ाया तो उसका यौवन व्यर्थ जाता है ।

२४. मैं नारी की शय्या पर हूं और मेरा पति मेरे साथ ही है। परन्तु मुझे निश्चित सोई हुई को उसका पता नहीं लगा ।

२५. मैं सोई हुई हूं, प्रभु पति जागता है । मैं जाकर किस से पूछूं? (कि मैं किस प्रकार मोह-माया की नींद से जागूं)?

२६. (नानक) जो जीव रूपी नारी प्रभु से भीत रह कर जीवन-कर्तव्य पूर्ण करती है सद्‌गुरु ने उसे प्रभु से मिला दिया है, और तब प्रभु-प्रेम उसका सहायक बन जाता है ।८/२।

३

१. आपे गुण, आपे कथै, आपे सुणि वीचारु ।
२. आपे रतनु परखि तूं, आपे मोलु अपारु ।
३. साचउ मानु महतु तूं, आपे देवणहारु ।१।
४. हरि जीउ तूं करता करतारु ।
५. जिउ भावै तिउ राखु तूं, हरिनामु मिलै आचारु ।१। रहाउ ।
६. आपे हीरा निरमला, आपे रंगु मजीठ ।
७. आपे मोती ऊजलो, आपे भगत बसीठु ।
८. गुरु कै सबदि सलाहणा, घटि घटि डीठु अडीठु ।२।
९. आपे सागरु बोहिथा, आपे पारु अपारु ।
१०. साची वाट सुजाणु तूं, सबदि लघावणहारु ।

११. निडरिआ डरु जाणीऐ, बाझु गुरू गुबारु ।३।

१२. असथिरु करता देखीऐ, होरु केती आवै जाइ ।

१३. आपे निरमलु एकु तूं, होर बंधी धंधे पाइ ।

१४. गुरि राखे से उबर, साचे सिउ लिवलाइ ।४।

१५. हरि जीउ सवदि पछाणीऐ, साचि रते गुरवाकि ।

१६. तितु तनि मैलु न लगई, सचु धरि जिसु ओताकु ।

१७. नदरि करे सचु पाईऐ, बिनु नावै किआ साकु ।५।

१८. जिनी सचु पछाणिआ, सो सुखीए जुग चारि ।

१९. हऊमै त्रिसना मारि कै, सचु रखिआ उरधारि ।

२०. जगु महि लाहा एकु नामु, पाईऐ गुरु वीचारि ।६।

२१. साचउ वखरु लादीऐ, लाभु सदा सचु रासि ।

२२. साची दरगह बैसई, भगति सची अरदासि ।

२३. पति सिउ लेखा निबड़ै, रामनाम परगासि ।७।

२४. ऊचा ऊचउ आखीऐ, कहउ न देखिआ जाइ ।

२५. जह देखा तह एकु तूं; सतिगुरु दीआ दिखाइ ।

२६. जोति निरंतरि जाणीऐ नानक सहजि सुभाइ ।८।३।

पद-अर्थ

महतु—महत्व; **राखु**—बचा लो; **आचारु**—शुभ आचरण; **बसीठु**—दूत, मध्यगामी, वकील; **डीठु अडीठु**—जो गुप्त है, (वह प्रकट हो जाता है); **बोहिथा**—बोहित, जल-यान; **पारु आपारु**—वार-पार, इधर और उधर का किनारा, **वाट**—मार्ग; **गुबारु**—अन्धकार **असथिरू**—सदैव स्थिर रहने वाला; **उबरे**—बच गए; **साचि**—सत्य में; **गुरवाकि**—गुरू वाक्य (उपदेश) द्व;रा; **ओताकु**—बैठक, ठिकाना; **उरधारि**—हृदय में धारण करके; **वखरु**—वस्तु, सौदा; **कहउ**—किसी और से; **निरंतरी**—अत्यन्त अभ्यन्तर ।

टीका

१. प्रभु स्वयं ही गुण रूप है, स्वयं ही गुणों का व्याख्याता है, स्वय ही उस व्याख्या का श्रोता बनकर उस पर विचार करता है ।

२. हे प्रभु, तुम स्वयं ही रत्न हो, स्वयं ही रत्न के परीक्षक हो और स्वयं ही रत्नों का अपार मूल्य हो ।

३. हे सच्चे प्रभु, तुम स्वयं ही शोभा और महिमा के और तुम स्वयं ही इनके दाता हो ।१।

४. हे प्रभु, तुम ही स्रष्टा, निर्माता हो ।

५. जिस प्रकार भी हो सके तुम मुझे (माया,मोह से) बचा लो और नाम की कृपा करो । यही मेरे लिए विशेष शुभ जीवन—प्रकार है ।१। रहाउ ।

६. प्रभु स्वयं ही निर्मल हीरा है, स्वयं ही मजीठ का रंग है ।

७. स्वयं ही उज्ज्वल मोती है, स्वयं ही भक्तों का दूत है ।

८. गुरु के उपदेश द्वारा उसकी स्तुति प्रशंसा करके, घट-घट में व्याप्त, उस अदृश्य को प्रकट कर लिया है ।२।

९. हे प्रभु, तुम स्वयं ही समुद्र हो, स्वयं ही जलयान हो, स्वयं ही इस तथा उस ओर के दोनों तट हो ।

१०. तुम स्वयं ही वास्तविक मार्ग हो, स्वयं (मार्ग के) अभिज्ञाता हो । तुम स्वयं ही संसार-सागर से पार करने वाले हो ।

११. जो प्राणी प्रभु के भय से इस संसार-सागर में निर्भय हैं, उनको भीत जानना चाहिए जो गुरु हीन हैं वे घोर अन्धकार (अज्ञानता) में ठोकर खाते फिरते हैं ।३।

१२. इस संसार में सदा स्थिर रहने वाला तो केवल सृष्टि कर्ता ही है । अन्य सब प्राणी जन्म लेते हैं और मरते हैं ।

१३. हे प्रभु, एक तुम ही निर्लेप हो । शेष सभी जीव माया के धंधों में बंधे हुए हैं ।

१४. जिन्हें सद्गुरु ने बचाया है, वे सच्चे परमात्मा में सुरति जोड़ कर माया मोह से बच निकले हैं ।४।

१५. जो गुरु के वाक्य (उपदेश) द्वारा साथ में रमे हुए हैं उनको गुरु के उपदेश से परमात्मा की पहचान होती है ।

१६. गुरु कृपा से जिस मनुष्य की बैठक प्रभु के घर हो जाती है, उसके शरीर को (माया का) मल नहीं लगता ।

१७. जब परमात्मा की कृपा होती है तब सच्चे प्रभु की प्राप्ति होती है ।

(कृपा द्वारा नाम मिलता है) नाम से विहीन होकर प्रभु के साथ क्या संबंध बनेगा ।५।

१८. जिन प्राणियों ने सत्य (प्रभु) को जान लिया है, उन्हें शाश्वतिक आत्मानन्द प्राप्त हो जाता है ।

१९. वे अहन्ता और भौतिक भोगों की इच्छाओं को जीत कर सत्य (प्रभु) को हृदय में स्थिर करते हैं ।

२०. सांसारिक जीवन में केवल नाम का लाभ ही लाभ है और वह गुरु वाणी के मनन से मिलता है ।६।

२१. यदि नाम रूपी सच्ची वस्तु लाद कर ले जाई जाए, तो यह शाश्वतिक लाभ है, क्योंकि इसकी पूंजी सत्य है ।

२२. जो यह वस्तु लादता है वह प्रभु के सच्चे दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है । उसकी भक्ति सत्य है और प्रार्थना सत्य है ।

२३. प्रभु के दरबार में उसका लेखा आदर-सहित निपटता है, क्योंकि उसके हृदय में राम नाम का प्रकाश है ।७।

२४. परमात्मा उच्च से उच्च कहा जाता है परन्तु केवल कथनमात्र से उसके दर्शन नहीं हो जाते ।

२५. प्रभु, तुम सर्वत्र व्याप्त तो हो, परन्तु दर्शन केवल सच्चे गुरु ने ही कराए हैं ।

२६. (नानक) सभी में वर्तमान उस ज्योति के दर्शन सहज अवस्था में पहुंच कर स्वतः हो जाते हैं ।८।३।

४

१. मछुली जालु न जाणिआ, सरु खारा असगाहु ।
२. अति सिआणी सोहणी, किउं कीतो वेसाहु ।
३. कीते कारणि पाकड़ी, कालु न टलै सिराहु ।१।
४. भाई रे, इउं सिरि जाणहु कालु ।
५. जिउ मच्छी, तिउ माणसा पवै अचिंता जालु ।१। रहाउ ।
६. सभु जगु बाधो काल को बिनु गुर कालु अफारु ।
७. सचि रते से उबरे, दुबिधा छोडि विकार ।
८. हउ तिन कै बलिहारणै, दरि सचै सचिआर ।२।

९. सीचाने जिउं पंखीश्रा, जाली बधिक हाथि ।
१०. गुरि राखे से उबरे, होरि फाथे चोगे साथि ।
११. बिनु नावै चुणि सुटीअहि, कोई न संगी साथि ।३।
१२. सचो सचा आखीऐ, सचे सचा थानु ।
१३. जिनी सचा मंनिआ, तिन मनि सचु धिआनु ।
१४. मनि मुखि सूचे जाणीअहि, गुरमुखि जिना गिआनु ।४।
१५. सतिगुर अगै अरदासि करि, साजनु देइ मिलाइ ।
१६. साजनि मिलिऐ सुखु पाइआ, जमदूत मुए बिखु खाइ ।
१७. नावै अंदरि हउ वसां, नाउ वसै मनि आइ ।५।
१८. बाझु गुरू गुबारु है, बिनु सबदै बूझ न पाइ ।
१९. गुरमती परगासु होइ, सचि रहै लिव लाइ ।
२०. तिथै कालु न संचरै, जोती जोति समाइ ।६।
२१. तूं है साजनु तूं सजाणु, तूं आपे मेलणहारु ।
२२. गुर सबदी सालाहीऐ, अंतु न पारावारु ।
२३. तिथै कालु न अपड़ै, जिथै गुर का सबदु अपारु ।७।
२४. हुकमी सभे उपजहि, हुकमी कार कमाहि ।
२५. हुकमी कालै वसि है, हुकमी साचि समाहि ।
२६. नानक, जो तिसु भावै सो थीऐ, इना जंता वसि किछु नाहि ।८/४।

पद-अर्थ

सरु—सरोवर, सागर,; **खारा**—खारी, लावणिक; **असगाहु**—अस्वगाह्य बहुत गहरा; **बेसाहु**—विश्वास; **सिराहु**—सिर से; **अचिंता**—अचिन्तिततया, अचानक; **जालु**—मृत्यु; **अफारु**—अमिट; **उबरे**—बच गए; **दुबिधा**—द्वैत, अनन्यत्वहीनता; **सीचाने**—श्येन; **बधिक**—बधिक, व्याध; **चोगै**—दाने (जो पक्षियों को फंसाने के लिए बिखेरे जाते हैं); **साथि** साथी; **मनि मुखि**—मन और मुख के कारण; **बिखु**—विष; **नावै**—नामवान (परमात्मा) में; **परगासु**—प्रकाश; **संचरै**—प्रवेश करता है ।

टीका

१. मछली ने न जाल को समझा (कि यह मेरी मृत्यु है) और न खारे

गहरे सागर को (कि यह मेरा जीवन है)। यदि उसे समझ होती तो वह सागर को अपना जीवनाधार बनाए रखती और लोभ-वश जाल में न फंसती)।

२. महाबुद्धिमान और सुन्दर होकर भी इसने (जाल का) विश्वास क्यों किया ? (लोभ के कारण)

३. किए (लोभ) के कारण (जाल में) फंस गई। मृत्यु उसके सिर पर खड़ी थी जो टल नही सकती थी ।१।

४. हे भाई, तू भी मृत्यु को इसी प्रकार अपने सिर खड़ी समझ (जिस प्रकार मछली के सिर पर है)।

५. जिस प्रकार मछली जाल में पकड़ी जाती है उसी प्रकार माया का जाल अचिन्तितया सब मनुष्यों को पकड़ लेता है (यही जाल जन्म-मरण का कारण बना हुआ है) ।१। रहाउ ।

६. समस्त संसार काल के वश है। गुरु के बिना काल नहीं मिटता (इसका भाव यह है कि गुरु को शिक्षा द्वारा भगवान् में मिलकर मनुष्य काल रहित हो जाता है तदनन्तर न जन्म और न मृत्यु। वैसे सभी को मरना है। लोभी कालवश होकर मरते हैं और पुनः पुनः उत्पन्न होते रहते हैं, परन्तु त्यागी काल रहित होते हैं। समग्र 'शवद' की व्याख्या अन्तिम पद्य में है।

७. जिन जीवों ने द्वैत और मायाविकारों का त्याग कर के प्रेम किया है, वे (मृत्यु से बच गए हैं। वे जन्म-मरण के चक्र से भी बच निकले हैं)।

८. मैं उन पर वलिहारी होता हूं। वे प्रभु की सभा में सदाचारी ठहराये जाते हैं।२।

९. जैसे पक्षियों के लिए श्येन है अथवा व्याध के हाथ में पकड़ा हुआ जाल है (वैसे ही मायारत जीवों के लिए काल है)।

१०. गुरु जिनकी रक्षा करता है वे मनुष्य (काल से) बचते हैं। शेष सभी माया के भोज्य दानों के साथ काल के वश में आ जाते हैं।

११. जिनके पास नाम तहीं होता है वे चुन चुन कर प्रभु की सभा से निकाल दिए जाते हैं और उनका न कोई साथी होता है न कोई सहायक ।३।

१२. जो उस सत्य को सत्य ही मानते हैं, उनके मन में सत्य ध्यान उत्पन्न

होता है ।

१४. गुरु द्वारा (उस सत्य का) ज्ञान प्राप्त होता है वे मन एवं मुख से सत्य हो जाते हैं ।४।

१५. हे भाई, सद्गुरु के सम्मुख विनय कर कि वह प्रभु प्रियतम को मिला है।

१६. जिस प्रियतम के मिलने से सुख प्राप्त होता है और यमदूत (मृत्यु) विष खाकर (सदा के लिए) समाप्त हो जाते हैं (मृत्यु के ऊपर विजयी होने का यही यथार्थ साधन है) ।

१७. (तदनन्तर) जब मेरे मन में हरि का नाम बसता है तब उस नाम (परमात्मा) के मध्य में बस जाता है (तदनन्तर जन्म-मरण कोई नहीं रहता) ।५।

१८. गुरु के बिना प्राणी घोर अन्धकार (अज्ञानता) में रहता है। गुरु के उपदेश के बिना उसे ज्ञान-प्राप्ति नहीं होती है ।

१९. (जिस हृदय में) गुरु के उपदेश द्वारा प्रकाश होता है और सुरति प्रभु में लगती है, ...

२०. वहां काल की पहुंच नहीं होती और जावात्मा प्रभु-ज्योति में विलय को प्राप्त हो जाता है ।६।

२१. हे प्रभु, तुम ही मेरे सखा हो, तुम ही मेरे लिए चतुर (मार्ग प्रदर्शक) हो, तुम ही मुझे मिलाने वाले हो ।

२२. जिस प्रभु का न अन्त है, न पर अपर सीमा, गुरुपदेश से उसकी स्तुति प्रशंसा करनी चाहिए ।

२३. जिस हृदय में गुरु का महान् उपदेश रहता है, वहां मृत्यु की पहुंच नहीं होती ।७।

२४. प्रभु के आदेशानुसार ही प्राणी जन्म लेते हैं, और आदेशानुसार ही जीवन व्यवहार करते हैं ।

२५. कई प्राणी भगवान् के आदेश से ही काल के वशीभूत होते हैं, कई आदेश के अनुसार ही सत्य प्रभु में समा जाते हैं ।

२६. (नानक) जो कुछ उस प्रभु को अच्छा लगता है, वही होता है, प्राणियों के वश में कुछ नहीं है ।८/४।

५

१. मनि जूठै तनि जूठि है, जिहवा जूठी होइ ।

२. मुखि झूठे, झूठु बोलणा, किउंकरि सचा होइ ।
३. बिनु अभ सबदु न मांजीऐ, साचे ते सचु होइ ।१।
४. मुंधे, गुणहीणी सुखु केहि ।
५. पिरु रलीआ रसि माणसी, साचि सबद सुखु नेहि ।१। रहाउ ।
६. पिरु परदेसी जे थीऐ धन वांढी झूरेइ ।
७. जिउ जलि थोड़ै मछुली, करण पलाव करेइ ।
८. पिरु भावै सुखु पाईऐ, जा आपे नदरि करेइ ।२।
९. पिरु सालाही आपणा, सखी सहेली नालि ।
१०. तनि सोहै, मनु मोहिआ, रती रंगि निहालि ।
११. सबदि सवारी सोहणी, पिरु रावै गुण नालि ।३।
१२. कामणि कामि न आवई, खोटी अवगणिआरि ।
१३. न सुखु पेईऐ साहुरै, झूठि जली वेकारि ।
१४. आवणु वंञणु डाखड़ो, छोडी कंति वसारि ।४।
१५. पिर की नारि सुहावणी, मुती सो कितु सादि ।
१६. पिर कै कामि न आवई; बोले फादिलु बादि ।
१७. दरि घरि ढोई ना लहै, छूटी दूजै सादि ।५।
१८. पंडित वाचहि पोथीआ, ना बूझहि वीचारु ।
१९. अन कउ मती दे चलहि, माइआ का वापारु ।
२०. कथनी झूठी, जगु भवै रहणी सबदु सु सारु ।६।
२१. केते पंडित जोतकी बेढा करहि बीचारु ।
२२. वादि विरोधि सलाहणे, वादे आवणु जाणु ।
२३. बिनु गुर करम न छुटसी, कहि सुणि आखि वखाणु ।७।
२४. सभि गुणवंती आखीअहि, मै गुण नाही कोइ ।
२५. हरि वरु नारि सुहावणी, मै भावै प्रभु सोइ ।
२६. नानक सबदि मिलावड़ा, ना वेछोड़ा होइ ।८/५।

पद-अर्थ

अभ सबद—गुरु उपदेश का अम्भ (जल); **मुंधे**—हे मुग्धे; **केहि**—किसका; **वांढी**—परदेसिन; वियुक्त हुई; **करण पलाव**—शोक विलाप; **तनि**—

शरीर में; **निहालि**—निहारती है, देखती है; **वंवणु**—जाना; **डाखडो**—कठिन; **मुती**—त्यक्ता; **फादिलु**—फिज़ूल, व्यर्थ; **बादि**—निरर्थक; **छूटी**—परित्यक्त हुई है; **अन**—दूसरों को; **सारु**—श्रेष्ठ; **जोतकी**—ज्योतिषी; **बादि विरोधि सलाहणे**—जगड़ों और विरोधों में पड़कर प्रशंसा करते हैं; **वादे**—झगड़ों के कारण, कर्मों से कर्मों के बन्धन से।

टीका

१. यदि मन में असत्य है तो शरीर में असत्य होता है (इन्द्रियां दूषित रसों में पड़कर मलिन हो जाती हैं) और जिह्वा भी असत्य होती है असत्य भाषण से दूषित होती रहती है। यह तथ्य आगामी पद्य-पंक्ति में स्पष्ट किया गया हैं।

२. यदि मुख में असत्य है तो जिहवा से भी असत्य ही निकलेगा (ऐसी दशा में कोई शुचि कैसे हो सकता है)?

३. गुरु उपदेश रूपी जल के बिना मन का प्रक्षालन नहीं हो सकता। (गुरु का उपदेश सत्य परमात्मा के साथ जोड़ता है) सत्य परमात्मा से ही सत्य उत्पन्न होता है और इस प्रकार शुचि बना जाता है।) ।१।

४. हे जीव नारी, किसी निर्गुण नारी को सुख कहां?

५. परन्तु जिस जीव नारी ने सच्चे उपदेश द्वारा हरि के प्रेम में से सुख निकाल लिया है वह ही आनन्द में, उस (भगवान) के साथ प्रेम-क्रीड़ा कर सकती है। रहाउ।

६. यदि प्रभु प्रियतम जीव-नारी से दूर चला जाए तो वियुक्ता जीव नारी (उसी प्रकार) दुःखित होती है, — —

७. (जैसे) स्वल्प जल में मछली क्रन्दन करती है।

८. परन्तु यदि उसकी कृपादृष्टि हो जाए वह उस (भगवान) को प्रिय लगने लगे, तो वह सुख भोगती है ।२।

९. मैं सखी सहेलियों के मध्य बैठकर प्रियतम प्रभु की स्तुति प्रशंसा करती हूं।

१०. वह मेरे शरीर में (प्रकट होकर) शोभायमान है, उसने मेरा मन मोह लिया है, उसके प्रेम में रंगी हुई मै अब उसके दर्शन करती हूं।

११. गुरु उपदेश द्वारा संवारी गई प्रत्येक नारी सुन्दर होती है और गुणवती होकर पति के साथ रमण करती है ।३।

१२. (दूसरी ओर) खोटी और अवगुणों से भरी नारी का जीवन किसी प्रयोजन का नहीं होता है ।

१३. न उसे इस लोक में सुख मिलता है और न परलोक में । वह असत्य में जलती हुई व्यर्थ जीवन बिता देती है ।

१४. उसे जन्म-मरण का कठिन दुःख सहना पड़ता है, क्योंकि प्रभु पति ने उसे भुला और छोड़ दिया है ।४।

१५. जो नारी पति की भक्त होकर रहती है, उसका जीवन सुन्दर होता है । परन्तु जो प्रभु से वियुक्त है उसे जीवन का क्या आनन्द है ?

१६. वह प्रियतम के लिए किसी काम की नहीं है और वह जो कुछ बोलती है सब व्यर्थ और निरर्थक है ।

१७. उसे परमात्मा के घर द्वार से लगाव नहीं होता । वह मोह-माया में फंसकर प्रभु से वियुक्त है ।५।

१८. पंडित (विद्वान्) लोग धर्म पुस्तकें पढ़ते हैं, परन्तु उन के विचारों को यथावत् नहीं समझते ।

१९. दूसरों को उपदेश देते हुए वे इस संसार से चले जाते हैं । उनका यह समस्त उपदेश धन के लिए था ।

२०. यद्यपि वे विश्व को उपदेश देते फिरते हैं तथापि उनकी वाणी मिथ्या होती है (क्योंकि उनके आचार-विचार उत्तम नहीं हैं) जो उपदेश द्वारा ही संभव है ।६।

२१. अनेक पंडित और ज्योतिषी वेदों का मनन करते हैं ।

२२. पारस्परिक विवादों एवं विरोधों में पड़ कर उन वेदों में वर्णित सिद्धान्तों की प्रशंसा करते हैं और इन विवादों के कारण ही जन्म-मरण के चक्र में बद्ध रहते हैं ।

२३. परन्तु जब तक उन्हें गुरु का आश्रय प्राप्त नहीं होता है तब तक केवल कथन श्रवण अथवा निरुपण से वे कर्मों की कारा से नहीं छूट सकते हैं ।७।

२४. सभी नारियां गुणवती कही जाती हैं, परन्तु मुझ में तो कोई गुण नहीं है ।

२५. यदि मुझे प्रभु पति प्रिय लगने लगे तो वह मेरा प्रियतम है और मैं उसकी सुन्दर पत्नी ।

२६. (नानक) शब्द (गुरु शिक्षा) द्वारा ऐसा मिलाप होता है कि पुनः वियोग नहीं होता है ।८/५।

६

१. जपु तपु संजमु साधीऐ, तीरथि कीचै वासु ।
२. पुंन दान चंगिआईआ, बिनु साचे किआ तासु ।
३. जेहा राधे, तेहा लुणै, बिनु गुण जनमु विणासु ।१।
४. मुंधे, गुण दासी सुखु होइ ।
५. अवगण तिआगि समाइऐ, गुरमति पूरा सोइ ।१। रहाउ ।
६. विणु रासी वापारीआ, तके कुंडा चारि ।
७. मूल न बुझै आपणा, वसतु रही घरबारि ।
८. विणु वखर दुखु अगला, कूड़ि मुठी कूड़िआरि ।२।
९. लाहा अहिनिसि नउतना, परखे रतनु वीचारि ।
१०. वसतु लहै घरि आपणै, चलै कारजु सारि ।
११. वणजारिआ सिउ वणजु करि, गुरमुखि ब्रहमु बीचारि ।३।
१२. संतां संगति पाईऐ, जे मेले मेलणहारु ।
१३. मिलिआ होइ न विछुड़ै जिसु अंतरि जोति अपार ।
१४. सचै आसणि सचि रहै, सचै प्रेम पिआर ।४।
१५. जिनी आपु पछाणिआ, घर महि महलु सुथाइ ।
१६. सचे सेती रतिआ, सचो पलै पाइ ।
१७. त्रिभवणि सो प्रभु जाणीऐ, साचो साचै नाइ ।५।
१८. साधन खरी सुहावणी, जिनि पिरु जाता संगि ।
१९. महली महलि बुलाईऐ, सो पिरु रावे रंगि ।
२०. सचि सुहागणि सा भली, पिरि मोही गुण संगि ।६।
२१. भूली भूली थलि चड़ा, थलि चड़ि डूगरि जाउ ।
२२. बन महि भूली जे फिरा, बिनु गुर बूझ ना पाउ ।
२३. नावहु भूली जे फिरा, फिरि फिरि आवउ जाउ ।७।
२४. पुछहु जाइ पधाऊआ, चले चाकर होइ ।
२५. राजनु जाणहि आपणा, दरि घरि ठाक न होइ ।

२६. नानक, एको रवि रहिश्रा, दूजा अवरु न कोइ ।८/६।

पद-अर्थ

संजमु—इन्द्रियों का दमन; **तासु**—उसका (क्या लाभ); **राधे**—बीज बोया जाना है; **लुणे**—काटता है; **विणास**—नाश; **रासी**—राशि; **घरबारि**—घर के द्वार से ही; **वखरु**—सौदा; **अगला**—अधिक; **अहिनिसि**—दिन-रात; **नउतना**—नूतन; घर—हृदय; **सुथाइ**—उत्तम स्थान; **त्रिभवणि**—तीन लोकों में; **साधन**—नारी; **महली**—नारी; **थलि**—स्थल, भूमि; **डूगरि**—पर्वत; **पधाऊश्रा**—पथिकों- **रवि रहिआ**—रमा रहा है, व्याप्त है ।

टीका

१. यदि जप, तप और संयम की साधना करें तथा तीर्थ स्थानों पर निवास बना लें ।

२. यदि पुण्य दान और अन्य शुभ कर्म करें तो भी सच्चे परमात्मा को हृदय में बसाए बिना (इन सब का) क्या लाभ हो सकता है ?

३. कोई जो कुछ बोता है उसे वही कुछ काटना पड़ता है। सारवान् गुणों की प्राप्ति के बिना जीवन निष्फल चला जाता है ।१।

४. हे मुग्धे, जीव नारी, गुणों की सेविका बन कर ही आध्यात्मिक सुख प्राप्त किया जाता है ।

५. अवगुणों का त्याग कर के प्रभु में लीन हुआ जा सकता है परन्तु उस पूर्ण प्रभु का ज्ञान गुरु की शिक्षा द्वारा ही होता है ।१। रहाउ ।

६. जिस व्यापारी के पास (गुण रूपी) पूंजी (गुणा रासि बन पलै आंदी) ही नहीं वह चारों ओर देखता तो रहता है (परन्तु व्यापार किस का करें ?) मूलधन का उसे पता ही नहीं होता ।

७. अतः (नाम) वस्तु उसके घर में पड़ी रहती है, उसे उसकी सुध ही नहीं ।

८. उसे इस सौदे के बिना बहुत दुःख होता है । वह झूठी है, जो झूठ में ही ठगी जाती है ।२।

९. जो जीव विचार कर रत्न (नाम) को पहचान लेता है, उसे सर्वदा नए से नया लाभ होता जाता है ।

१०. वह अपने भीतर से (हृदय से) ही प्रभु को प्राप्त कर लेता है और जीवन का उद्देश्य पूर्ण कर के यहां से जाता है।

११. वह संतों के साथ नाम का व्यापार कर के प्रभु का विचार करता है।३।

१२. यदि मिलाने वाला प्रभु स्वयं (कृपा करके) मिलाना चाहे तो वह संतों की संगति द्वारा प्राप्त कर लिया जाता है।

१३. इस प्रकार जिसके भीतर से अपार ज्योति प्रकट हो जाए, वह प्रभु को मिलता है और पुनः कभी उससे वियुक्त नहीं होता है।

१४. वह सत्य आसन पर जा बैठता है, और प्रभु के प्रेम द्वारा, सत्य में रहता है।४।

१५. जिन्होंने अपने आप को जान लिया है उन्हें प्रभु का सुन्दर निवास स्थान इसी शरीर में मिल गया है।

१६. सत्य प्रेम में लीन हुए उनको परमात्मा मिल जाता है।

१७. उनको वह सत्य परमात्मा जो सत्य नाम के कारण सत्य है तीन लोकों में दिखाई पड़ता है।५।

१८. जो नारी प्रभु-पति को सदा अपने साथ रहने वाला जानती है वह पूर्णतया सुखी होती है।

१९. उसे प्रभु के महलों में बुला लिया जाता है और वह सप्रेम प्रियतम प्रभु के साहचर्य का आनन्द प्राप्त करती है।६।

२०. वह सत्य के कारण सुहागिन बनी है। वह उस हरि को प्रिय लगती है जिस हरि ने उसको गुणों से मोह लिया है।६।

२१. यदि हरि के भ्रम में मैं (नारी) पृथ्वी पर भ्रमण करूं, तदनन्तर पर्वतों पर जा चढ़ूं।

२२. और फिर वनों में फिरती रहूं, तो भी गुरु के बिना मिलाप का मार्ग नहीं मिलेगा।७।

२३. यदि मैं नाम को विस्मृत कर दूं तो सर्वदा जन्म-मरण के चक्र में बद्ध रहूंगी। ७।

२४. (प्रभु-प्राप्ति के लिए) हे जीव-नारी, परमात्मा के मार्ग के उन पथिकों से जो (उस) मार्ग के सेवक होकर चले हैं, जाकर पूछ—

२५. उनसे, जिन्होंने प्रभु को अपना स्वामी समझा है, अतएव जिनको उस द्वार पर कोई रोक टोक नहीं होती।

२६. (उनसे पता लगता हैं कि)(नानक) एक प्रभु की सर्वव्याप्त हो रहा है, अन्य कोई है ही नहीं। ८। १६।

७

१. गुर ते निरमलु जाणीऐ, निरमल देह सरीरु।
२. निरमलु साचो मनि वसै, सो जाणै अभ पीर।
३. सहजै ते सुखु अगलो, न लागै जम तीरु। १।
४. भाई रे, मैलु नाही निरमल जलि नाइ।
५. निरमलु साचा एकु तू, होरु मैलु भरी सभ जाइ। १। रहाउ
६. हरि का मंदर सोहणा, कीआ करणैहारि।
७. रवि ससि दीप अनूप जोति त्रिभवणि जोति अपार।
८. हाट पटण गड़ कोठड़ी, सचु सउदा वापार। २।
९. गिआन अंजनु भैभंजना, देखु निरंजन भाइ।
१०. गुपतु प्रगटु सभ जाणीऐ, जे मनु राखै ठाइ
११. ऐसा सतिगुरु जे मिलै, ता सहजे लए मिलाइ। ३।
१२. कसि कसवटी लाईऐ, परखै हितु चितु लाइ।
१३. खोटे ठउर न पाइनी, खरे खजाने पाइ।
१४. आस अंदेसा दूर करि, इंउ मलु जाइ समाइ। ४।
१५. सुख कउ मागै सभु को, दुखु न मागै कोइ।
१६. सुखै कउ दुखु अगला, मनमुखि बूझ न होइ।
१७. सुख दुख सम करि जाणीअहि, सबदि भेदि सुखु होई। ५।
१८. बेदु पुकारे वाचीऐ, बाणी ब्रहम बिआसु।
१९. मुनिजन सेवक साधिका, नामि रते गुणतासु।
२०. सचि रते से जिणि गऐ, हउ सद बलिहारे जासु। ६।
२१. चहु जुगि मैले, मलु भरे, जिन मुखि नामु न होइ।
२२. भगती भाइ विहूणिआ, मुहु काला पति खोइ।
२३. जिनी नामु विसारिया, अवगण मुठी रोइ। ७।
२४. खोजत खोजत पाइआ, डरु करि मिलै मिलाइ।
२५. आपु पछाणै, घरि वसै, हउमै त्रिसना जाइ।

२६. नानक, निरमल ऊजले, जो राते हरिनाइ । ८ । ७ ।

पद-अर्थ

निरमलु—पवित्र परमात्मा; **मनि**—मन में; **अभ**—हृदय की; **सहजे**—सहज (ज्ञान) की स्थिति में पहुंच कर; **जम तीरु**—यम का बाण; **नाइ**—स्नान करने से; **जाइ**—विलीन होना; **मंदरु**—शरीर, हृदय; **रवि**—सूर्य; **ससि**—चन्द्र; **पटण**—नगर; **गड़**—दुर्ग; **अंजनु**—सुरमा; **ठाइ**—ठिकाने पर, टिका कर; **कपि**—घिसा कर; **समाई**—समा जाती है, दूर होती है; **सम**—समान; **बिआसु**—व्यास ऋषि की रचनाएं; **साधिका**—साधना करने वाले; **जिणि**— जीत कर; **डरु करि**—परमात्मा का भय उत्पन्न कर के; **हरिनाइ**—हरि नाम में ।

टीका

१. गुरु की शिक्षा द्वारा निर्मल (पवित्र परमात्मा) का ज्ञान होता है। यह ज्ञान होने से (जीव का) मन-तन निर्मल हो जाता है ।

२. जब सत्य एवं निर्मल हरि हृदय में आकर प्रकट होता है, वह मनुष्य के मन की पीडा को समझता है (कि कौन से अध्यात्म-रोगों से आत्मा ग्रसित है और उन रोगों को दूर करता है) ।

३. (वह हृदय प्रकाशमान होकर सहजावस्था में पहुंच जाता है) और सहजावस्था में पहुंच जाने पर आध्यात्मिक महासुख उत्पन्न होता है, तदनन्तर यम का बाण नहीं लगता । १ ।

४. हे भाई, नाम के निर्मल जल में स्नान करने से हृदय का मल दूर हो जाता है ।

५. हे प्रभो ! निर्मल और सत्य एक तुम ही हो, और (तुम्हारे अतिरिक्त) अन्य सब मल ही मल हैं । रहाउ ।

६. मानवीय हृदय (शरीर) परमात्मा का सुन्दर मंदिर है जिसको कर्त्ता ने स्वयं बनाया है ।

७. इस हृदय (शरीर) में सूर्य और चन्द्र के समान उत्तम ज्योति का प्रकाश है—उस विशाल ज्योति का प्रकाश जो सम्पूर्ण संसार में प्रकाशमान है ।

८. इसी शरीर में हृदय, मस्तिष्क आदि दुकानें, नगर, दुर्ग और

कोठड़ियां हैं, जिनमें सत्य रूपी सौदे का व्यापार होता है। २।

९. ज्ञान का सुरमा (जो हृदय में हरि के निवास से मिलता है) भय नाश करता है (इस कथन की सत्यता तू) निरंजन (माया से अलिप्त हरि) के प्रेम में मग्न होकर देख ले।

१०. यदि तू मन एकाग्र करे तो परोक्ष, प्रत्यक्ष परमात्मा की परख हो जाए।

११. यदि ऐसा सदगुरु मिल जाए (जो स्वयं हरि के अनुकूल हो) तो वह सहज ही (ज्ञान देकर) हरि का मिलाप कर देता है। ३।

१२. परमात्मा जीव को (उस जीव के प्रेमाचरण के अनुसार) बड़े प्रेम और ध्यान के साथ अपनी कसौटी पर लगाकर परखता है।

१३. खोटे जीवों को उसके द्वार पर स्थान नहीं मिलता और खरे जीवों को भगवान् के भाण्डागार में स्थान मिल जाता है।

१४. यदि आशा और चिन्ता दूर कर लिए जाएं तो मल नष्ट हो जाता है। ४।

१५. सभी जीव सुख ही माँगते हैं। कोई भी दुःख की कामना नहीं करता है।

१६. परन्तु सुखों की आशा में रहने से दुःख बढ़ते है, मनोमुख व्यक्ति को इस बात की समझ नहीं होती।

१७. दुःख सुख को समान भाव से समझना चाहिए। गुरु के शब्द द्वारा विद्ध हो जाने से शाश्वत सुख मिल जाता है। ५।

१८. वेद को जो ब्रह्मा की वाणी है, अथवा व्यास को (अर्थात् उसकी रचनाओं, स्मृति और पुराणों को) सुनिए और पढ़िए—

१९. तो वे पुकार कर कहते हैं कि मुनि, सेवक, साधक सब ही गुणों के निधान हरि के नाम में अनुरक्त थे (और नाम द्वारा जीवन सफल कर गए थे।

२०. जो सच्चे को प्रेम करते हैं वे जीवन में सफल होते हैं। मैं उन पर सौ बार बलिहारी जाता हूं। ६।

२१. (दूसरी ओर वे) जिनके मुख में नाम नहीं है, चारों युगों में सदा ही मल से पूर्ण रहते हैं।

२२. भक्ति भावना के बिना (भगवान् के घर) मुंह काला होता है और प्रतिष्ठा चली जाती है।

२३. जिन्होंने नाम विस्मृत कर दिया है, वे अवगुणों से ठगे जाकर दुःखी होते हैं । ७ ।

२४. (जन्म-जन्मान्तरों से) खोजते हुए उसकी प्राप्ति हुई है परन्तु वह हरि उस के भय में रहने से मिला है ।

२५. जिसे आत्मज्ञान (कि मैं ज्योतिस्वरूप हूं) हो जाता है वह आत्म स्वरुप में बसता है, उसकी अहन्ता और तृष्णा की अग्नि बुझ जाती है ।

२६. (नानक) वे जीव निर्मल और पवित्र होते हैं, जो हरि नाम में रंगे जाते हैं । ८ । ७ ।

८

१. सुणि मन भूले, गुर की चरणी लागु ।
२. हरि जपि नामु धिआइ तू, जमु डरपै दुख भागु ।
३. दूखु घणों दोहागणी, किउ, थिरु रहे सुहागु । १ ।
४. भाई रे, अवरु नाही मै थाउं ।
५. मैं धनु नामु निधान है, गुरि दीआ बलि जाउ । १ । रहाउ ।
६. गुरमति पति, साबासि तिसु, तिस कै संगि मिलाउ ।
७. तिसु बिनु घड़ी न जीवऊ, बिनु नावै मरि जाउ ।
८. मैं अंधुले नामु न वीसरै, टेक टिकी घरि जाउ २ ।
९. गुरु जिनां का अंधुला, चेले नाहि ठाउ ।
१०. बिनु सतिगुर नाउ न पाईऐ, बिन नावै किआ सुआउ ।
११. आइ गइआ पछुतावणा, जिउ सुंवै घरि काउ । ३ ।
१२. बिन नावै दुखु देहुरी, जिंउ कलर की भीति ।
१३. तबलगु महलु न पाईऐ, जबलगु साचु न चीति ।
१४. सबदि रपै, घरु पाईऐ, निरबाणी पदु नीति । ४ ।
१५. हउ गुर पूछउ आपणे, गुर पुछि कार कमाउ ।
१६. सबदि सलाही, मनि वसै, हउमै दुखु जलि जाउ ।
१७. सहजे होइ मिलावड़ा, साचे साचि मिलाउ । ५ ।
१८. सबदि रते से निरमले, तजि काम क्रोधु अहंकारु ।
१९. नामु सलाहनि सद सदा, हरि राखहि उरधारि ।

२०. सौ किउ मनहु विसारीऐ, सम जीआ का आधारु । ६ ।
२१. सबदि मरै सो मरि रहै, फिरि मरै न दूजी वार ।
२२. सबदै ही ते पाईऐ, हरिनामे लगै पिआरु ।
२३. बिनु सबदै जगु भूला फिरै, मरि जनमै वारो वार । ७ ।
२४. सभ सालाहै आप कउ, वडहु वडेरी होइ ।
२५. गुर बिन आपु न चीनीऐ, कहे सुणे किआ होइ ।
२६. नानक, सबदि पछाणीऐ, हउमै करै न कोइ । ८ । ८ ।

पद-अर्थ

बावरे—पागल; **डरपै**—डरेगा; **घणो**—बहुत; **दोहागणी**—परित्यक्ताओं को; **थाउ**—आश्रय स्थान; **निधानु**—भाण्डागार; **बलि**—न्यौछावर; **अंधुल**—अज्ञानी; **टेक**—आश्रय; **ठाउ**—स्थान; **सुआउ**—मनोरथ; **देहुरी**—शरीर; **भीति**—दीवार; **रपै**—रंगे जाएं; **निरबाणी**—दुःखरहित अवस्था, तुरीय पद, मुक्ति; **उरधरि**—हृदय में धारण करके; **चीनीऐ**—पहचाना जाता है; **हउमै करै न कोइ**—अहंकार नहीं करता ।

टीका

१. हे मेरे विस्मरणशील असावधान मन; (मेरी ये बातें) सुन, गुरु की शरण में पड़ जा ।
२. हरि नाम का स्मरण और जप कर, तब यमराज तुझ से डरेगा और तेरे दुःख नष्ट हो जाएंगे ।
३. (तुझे भूलना नहीं चाहिए कि) प्रभु से वियुक्त स्त्रियों (परित्यक्ता नारियों) को बहुत दुःख सहना पड़ता है (अतः तू यह प्रयास कर कि) किसी प्रकार तेरा सौभाग्य सदा बना रहे ।
४. हे भाई, मेरा (कोई अन्य अवलम्ब नहीं है) ।
५. मेरे लिए (सब से उत्तम) धन नाम का कोष है । (यह कोष) मुझे गुरु ने दिया है, जिस पर मैं अनेकशः बलिहारी जाता हूं । १ । रहाउ
६. गुरु की दी मति (शिक्षा) से (ईश्वरीय सभा में) प्रतिष्ठा मिलती है । ऐसे गुरु को साधुवाद कहते हैं । उस गुरु के साथ ही मिला रहना चाहता हूं ।

७. गुरु के बिना मैं अल्पकाल भी नहीं जी सकता। (वह मुझे नाम प्रदान करता है) और नाम के बिना मेरी मृत्यु है।

८. मुझ अज्ञानी को नाम विस्मृत न हो जाए, जिस नाम के अवलम्ब से मैं अपने घर (आत्मस्वरूप में) पहुंचना चाहता हूं। २।

९. जिन शिष्यों का गुरु अन्धा (माया, मोह, अहंन्ता आदि के अन्धकार में) है, उन्हें भी आश्रय नहीं मिलता है।

१०. सद्गुरु के बिना नाम प्राप्त नहीं होता और नाम के बिना जीवन का मनोरथ किस प्रकार सिद्ध हो सकता है?

११. तदनन्तर वह संसार में आकर रिक्त हस्त पश्चाताप करता हुआ जाता है, जिस प्रकार सूने (उजड़े) घर से कौवा (खाली चला जाता है)। ३।

१२. नाम के बिना प्राणी का शरीर वैसे ही दुःख में नष्ट हो जाता है जैसे रेत की दीवार तिलशः क्षीण होती जाती है।

१३. परमात्मा के साक्षात् दर्शन तब तक नहीं होते जब तक सत्य (परमात्मा) हृदय में आकर नहीं बसता।

१४. गुरु के उपदेश में अनुरक्त होने से आत्मस्वरुप में वास होना है और शाश्वत मुक्ति की प्राप्ति होती है। ४।

१५. (अतः) मैं अपने गुरु से शिक्षा लूं और उसके अनुसार आचरण करुं।

१६. गुरु के उपदेश से प्रभु की स्तुति-प्रशंसा में लगूं, जिस से वह मेरे हृदय में आकर बसे और अहन्ता का दुःख नष्ट हो जाए।

१७. इस प्रकार सहजावस्था में पहुंचकर मुझे प्रभु का मिलाप हो—उस सच्चे (प्रभु) के साथ मेल केवल सत्य द्वारा ही होता है। ५।

१८. जो जीव गुरु की शिक्षा में रंगे जाते हैं, वे काम, क्रोध, अहंकार त्याग कर पवित्र हो जाते हैं।... ... ...

१९. वे सदा नाम की स्तुति करते हैं और प्रभु को हृदय में रखते हैं।

२०. जो प्रभु समस्त प्राणियों का अवलम्ब है उसे मन से कैसे विस्मृत किया जाए? । ६।

२१. जो प्राणी शब्द द्वारा अहंकार का नाश कर के मरता है, वह पुनः जन्मता-मरता नहीं है।

२२. जब नाम में अनुराग हो जाता है तब शब्द द्वारा हरि प्राप्त कर लिया जाता है।

२३. शब्द के बिना सांसारिक जीव भूले रहते हैं और जन्म-मरण के आवर्त में पड़े रहते हैं। ७।

२४. सभी आत्म प्रशंसा करते हैं और महान् से महान् होना चाहते हैं।

२५. (परन्तु) गुरु की शिक्षा के बिना स्वयं का ज्ञान नहीं होता; (केवल ज्ञान की बातें) कहने-सुनने से कुछ नहीं बनता।

२६. (नानक) जो शब्द द्वारा स्वयं को पहचानता है, वह अहन्ता से दूर रहता है। ८। ८।

९

१. बिनु पिर धन सीगारीऐ, जीबनु बादि खुआरु।

२. ना माणें सुखि सेजड़ी, बिनु पिर बादि सीगारु।

३. दूखु घणो दोहागणी, ना घरि सेज भतारु। १।

४. मन रे, राम जपहु, सुखु होइ।

५. बिनु गुर प्रेमु न पाईऐ, सबदि मिलै रंगु होइ। १। रहाउ

६. गुर सेवा सुखु पाईऐ, हरि वरु सहजि सीगारु।

७. सचि माणे पिर सेजड़ी, गूड़ा हेतु पिआरु।

८. गुरमुखि जाणि सिञाणीऐ, गुरि मेली गुण चारु। २।

९ सचि मिलहु वर कामणी, पिरि मोंही रंगु लाइ।

१०. मनु तनु साचि विगसिआ, कीमति कहणु न जाइ।

११. हरि वरु घरि सोहागणी, निरमल साचै नाइ। ३।

१२. मन महि मनुआ जे मरै, ता पिरु रावै नारि।

१३. इकतु तागै रलि मिलै, गलि मोतीअन का हारु।

१४. संत सभा सुखु ऊपजै, गुरमुखि नाम अधारु। ४।

१५. खिन महि उपजै, जिनि खपै, खिनु आवै खिनु जाइ।

१६. सबदु पछाणै रवि रहै, ना तिसु कालु संताइ।

१७. साहिबु अतुलु, न तोलीऐ, कथनि न पाइआ जाइ। ५।

१८. वापारी वणजारिआ, आए वजहु लिखाइ।

१९. कार कमावहि सच की, लाहा मिलै रजाइ।

२०. पूंजी साची गुरु मिलै, ना तिसु तिलु न तमाइ। ६

२१. गुरमुखि तोलि तोलाइसी, सचु तराजी तोलु ।
२२. आसा मनसा मोहणी, गुरि ठाकी सचु बोलु ।
२३. आपि तुलाए तोलसी, पूरै पूरा तोलु । ७ ।
२४. कथनै कहणि न छुटीऐ, ना पड़ि पुसतक भार ।
२५. काइआ सोच न पाईऐ बिनु हरि भगति पिआर ।
२६. नानक नामु न वीसरै, मेले गुरु करतार । ८ । ६ ।

पद-अर्थ

धन—जीव रूपी नारी; **वादि**—व्यर्थ; **दोहागणी**—पति से वियुक्त जीव रूपी नारी; **भतारु**—पति; **प्रेम**—पति; **रगु**—हर्ष; **गुण चारु**—गुणयुक्त आचरण; **विगसिआ**—विकसित हुआ; **रावै**—भोगे; **संताइ**—दुःखी करता है; **वजहु**—वेतन; **रजाइ**—आज्ञानुसार; **तिलु न तमाइ**—न धोखा न लालच; **तराजी**—तराजू; **सोच**—स्वच्छता, शारीरिक स्वच्छता ।

टीका

१. यदि कोई पतिहीन जीव रूपी नारी शृंगार करती रहे तो उसकी शृंगार की हुई युवावस्था व्यर्थ जाती है और वह दुःखित होती है ।
२. जब उसे प्रियतम की शय्या का आनन्द ही प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वह पति से पृथक है, तब उसका शृंगार व्यर्थ है ।
३. उस वियुक्ता नारी को महा कष्ट होता है क्योंकि उसके हृदय रूपी घर में पति का स्थान (पर्यंङ्क) ही नहीं है । १ ।
४. हे मेरे मन, राम नाम का स्मरण कर तभी तुझे आध्यात्मिक सुख मिलेगा ।
५. गुरु के बिना प्रेम स्वरूप प्रभु नहीं मिलता, और जब गुरु के उपदेश द्वारा वह भगवान मिल जाता है तो आनन्द ही आनन्द हो जाता है । रहाउ ।
६. गुरु की सेवा द्वारा आध्यात्मिक सुख प्राप्त होता है । फिर जब सहजावस्था में पहुंचकर शृंगार किया जाता है तब हरि वर मिल जाता है ।
७. सत्य में स्थित रहकर पति की सेज भोगी जा सकती है तब हरि से अगाध प्रेम हो जाता है ।

८. इस प्रकार गुरु द्वारा प्रभु जाना पहचाना जाता है। जब गुरु ने हरि के साथ मिला दिया तब समग्र गुणयुक्त आचार, सुलक्षणत्व, प्राप्त हो गया है। २।

९. हे जीव रूपी नारी ! सच्चे प्रभु में मिली रह। प्रभु ने स्वयं ही प्रेम कर के मोह लिया है।

१०. जीव रूपी नारी का मन तन सत्य द्वारा ऐसे खिल जाता है कि उसके मूल्य का अनुमान नहीं हो सकता है।

११. जिस हृदय में प्रभु प्रियतम आ जाता है, उस सुहागिन का हृदय सत्य नाम द्वारा निर्मल हो जाता है। ३।

१२. यदि मन में से मन का मरण हो जाए (अहन्त्व की भावना समाप्त कर दी जाए) तो नारी के साथ पति रमण करता है।

१३. फिर (पति और पत्नी दोनों इस प्रकार मिल जाते हैं जैसे मुक्तामाला कण्ठ से मिल जाती है।

१४. सन्तों की सभा से सुख प्राप्त होता है। गुरु द्वारा नाम मिलता है जो जीवन का अवलम्ब है।

१५. (नामहीन जीव के मन) की दशा यह होती है कि क्षण भर में इसमें उबाल उत्पन्न होते हैं और क्षण भर में शान्त हो जाते हैं। एक क्षण में आए, दूसरे क्षण में चले गए। ('कबहू जीअड़ा ऊभि चड़तु है, कबहू जाइ पइआले'।

१६. परन्तु जब मन को शब्द की पहचान हो जाती है, तब वह (प्रभु से) मिल जाता है। फिर उसे काल दुःख नहीं देता है।

१७. (इस मेल के होते हुए भी) अतुलनीय प्रभु को तोला नहीं जा सकता और न केवल कथनमात्र से उसको तोला जा सकता है। ५।

१८. हरि के व्यापारी संसार में की हुई सेवा (व्यापार) का वेतन पहले ही लेकर आते हैं (इस का विवरण आगामी चरण में है)।

१९. वे सत्य का व्यापार करते हैं और प्रभु की प्रसन्नता में रहते हैं। उनको यही लाभ प्राप्त होता है।

२०. उनको वह गुरु मिला है जिसे न धोखा दिया जा सकता है और न लालच। उस गुरु से उन्हें सच्ची पूंजी (नाम की भक्ति) मिलती है। ६।

२१. प्राणियों के कर्म सत्य की तुला से तोले जाएंगे। जो जीव गुरु के

सम्मुख हैं, वे उस तुला पर पूर्ण उतरते हैं।

२२. इसका कारण यह है कि उनकी आशा और तृष्णाओं को सत्य वाक गुरु रोक देता है (आशा तृष्णा ही प्राणी को मोहकर कुमार्ग पर डालती हैं।)

२३. वह स्वयं ही जीवों को तोलता है। उस पूर्ण प्रभु का तोल माप पूर्ण है। ७।

२४. केवल मात्र बातों से या बहुत सी पुस्तकों के पढ़ने से मनुष्य भव बन्धन से मुक्त नहीं होता है।

२५. और न ही केवल शारीरिक स्वच्छता (पवित्रता) से उसकी प्राप्ति होती है। वह तो भक्ति और प्रेम के द्वारा प्राप्त होता है।

२६. (नानक) जिसे गुरु भगवान् से मिला देता है वह नाम को कभी नहीं भूलता है। ८। ९।

१०

१. सतिगुरु पूरा जे मिलै, पाईऐ रतनु बीचारु।
२. मनु दीजै गुर आपणे, पाईऐ सरब पिआरु।
३. मुकति पदारथ पाईऐ अवगण मेटणहारु। १।
४. भाई रे, गुरु बिन गिआन न होइ।
५. पूछहु ब्रहमे नारदै, वेद बिआसै कोइ। १। रहाउ
६. गिआनु धिआनु धुनि जाणीऐ, अकथु कहावै सोइ।
७. सफलिओ बिरखु हरीआवला, छाव घणेरी होइ।
८. लाल जवेहर माणकी, गुर भंडारै सोइ। २।
९. गुर भंडारै पाईऐ, निरमल नाम पिआरु।
१०. साचो वखरु संचीऐ, पूरै करमि अपारु।
११. सुख दाता दुख मेटणो, सतिगुर असुर संघारु। ३।
१२. भवजलु बिखमु डरावणो, ना कंधी न पारु।
१३. ना बेड़ी ना तुलहड़ा, न तिसु वंझ मलारु।
१४. सतिगुरु भै का बोहिथा, नदरी पारि उतारु। ४।
१५. इकु तिलु पिआरा विसरै, दुखु लागै सुखु जाइ।
१६. जिहवा जलउ जलावणी, नाम न जपै रसाइ।

१७. घटु बिनसै दुखु अगलो, जमु पकड़ै पछुताइ । ५ ।
१८. मेरी मेरी करि गए, तनु धनु कलतु न आथि ।
१९. बिनु नावै धनु बादि है, भूलो मारगि आथि ।
२०. साचउ साहिबु सेवीऐ, गुरमुखि अकथो काथि । ६ ।
२१. आवै जाइ भवाईऐ, पइऐ किरति कमाइ ।
२२. पूरबि लिखिआ किउ मेटीऐ, लिखिआ लेख रजाइ ।
२३. बिनु हरिनाम न छुटीऐ, गुरमति मिलै मिलाइ । ७ ।
२४. तिसु बिनु मेरा को नहीं, जिसका जीउ परानु ।
२५. हउमै ममता जलि बलउ, लोभ जलउ अभिमानु ।
२६. नानक, सबदु वीचारीऐ, पाईऐ गुणी निधानु । ८ । १० ।

पद-अर्थ

रतनु वीचारु—विचार (ज्ञान) रूपी रत्न; **सरब पिआरु**—सब से प्रेम करने वाला परमात्मा; **ब्रहमे**—ब्रहमा को; **नारदै**—नारद ऋषि को; **वेद बिआसै**—वेदों वाले व्यास ऋषि को; **धुनि**—गुरु की वाणी की ध्वनि द्वारा; **सफ लिओ बिरखु**—हरा-भरा वृक्ष, गुरु; **साचो वखरु**—सच्ची वाणिज्य वस्तु, नाम; **संचीऐ**—संचित कीजिए; **असुर संघारु**—दैत्यों (काम आदि) का संहारक; **विखमु**—विषय, कठिन; **भवजलु**—समुद्र; **कंधी**—तट; **तुलहड़ा**—लकड़ी का तख्ता जो रस्सियों से बांध कर नदी पार करने के लिए नाव का काम देता है, बेड़ा; **वंझु**—वंश, बांस; पतवार; **मलारु**—मल्लाह; **भै का बोहिथा**—भवसागर पार करने के लिए वोहित, पोत; **जलावणी**—जलाने योग्य; **रसाइ**—आनन्द के साथ; **घटु**—शरीर; **अगलो**—बहुत; **कलतु**—कलतु, पत्नी; **बादि**—व्यर्थ; **आथि**—अर्थ माया; **किरति**—बार-बार किए कर्मों से उत्पन्न स्वभाव; **ममता**—ममत्व; **गुणी निधानु**—गुणों का कोष, प्रभु ।

टीका

१. यदि पूर्ण सद्गुरु का मिलाप हो जाए तो विचार (ज्ञान) रूपी रत्न प्राप्त होता है ।
२. यदि प्रेम और श्रद्धा के साथ अपने मन को उस गुरु की शरण में लगा दिया जाए तो प्रेम करने वाला वह प्रभु सब को मिल जाता है ।

३. (गुरु द्वारा ही) मुक्ति पदार्थ मिलता है; क्योंकि गुरु जीवन के समस्त अवगुणों का निवारक है । १ ।

४. हे भाई ! गुरु के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता ।

५. निस्सन्देह ब्रह्मा, नारद और व्यास से पूछ कर इस कथन की सत्यता ज्ञात कर लीजिए । १ । रहाउ ।

६. गुरु वाणी की ध्वनि से ज्ञान, ध्यान प्राप्त होते हैं । गुरु उस अकथनीय प्रभु को कथनीय बना देता है ।

७. गुरु हरित पत्रित और सान्द्र-छायाशाली एक वृक्ष है ।

८. गुरु के कोष (वाणी) से ही गुण रूपी मूल्यवान् पद्मराग, रत्न, मणिक्य प्राप्त होते हैं । २ ।

९. उस कोष (वाणी) से ही पवित्र नाम का प्रेम प्राप्त होता है ।

१०. पूर्ण महान् गुरु की कृपा से ही सत्य वस्तु (नाम) की भी प्राप्ति होती है ।

११. गुरु सुखों का दाता है, दु:खों का नाशक है और दैत्यों (कामादिक) का संहारक है । ३ ।

१२. यह संसार-सागर महा-दुस्तर और भयंकर है जिसके तट और पार का पता ही नहीं लगता ।

१३. इस सागर को पार करने के लिए न कोई नौका है, न बेड़ा है, न पतवार है, न नौका चालक है ।

१४. केवल सद्गुरु ही इस भवसागर के पार पहुंचाने वाला पोत है जो कृपा करके जीव को पार उतारता है । ४ ।

१५. जब क्षण मात्र के लिए भी प्रिय परमात्मा विस्मृत हो जाता है तब दु:ख आकर घेर लेता है और सुख चला जाता है ।

१६. अत: वह जीभ जो प्रेम पूर्वक नाम स्मरण नहीं करती, जलने योग्य है, और जल जानी चाहिए ।

१७. नामहीन शरीर का पात्र जब मग्न होता है (मृत्यु आती है) तब इसको दु:ख होता है, यम इसको आ पकड़ता है और यह पश्चाताप करता है । ५ ।

१८. ये प्राणी तन-धन और पत्नी को मेरा और मेरी कहते रहे, किन्तु इनमें से कोई भी मृत्यु के पश्चात् उनके साथ नहीं गया ।

१९. नाम-धन के बिना अन्य धन निरर्थक हैं । भौतिक धन के पीछे लगा

जीव भूला फिरता है।

२०. परन्तु यदि सत्य स्वामी हरि का स्मरण किया जाए तो गुरु कृपा से उस अकथनीय का भी कथन किया जा सकता है। (वह ज्ञान गोचर बनाया जा सकता है)। ६।

२१. अपने कर्मो से उत्पादित स्वभाव के अनुसार प्राणी जन्म-मरण के चक्र में बद्ध रहता है।

२२. पिछले कर्मो का लेखा, जो प्रभु की इच्छा के अनुसार लिखा जाता है, किस प्रकार मिटाया जा सकता है ?

२३. हरिनाम के बिना कोई भी इस चक्र से मुक्त नहीं हो सकता, और यह हरिनाम गुरु की शिक्षा से मिलता है। ७।

२४. (गुरु के उपदेश द्वारा ही ज्ञान होता है कि) प्रभु के अतिरिक्त, जिसने मुझे आत्मा और प्राण दिए हैं, मेरा कोई अवलम्ब नहीं है।

२५. यह मेरा अहंकार, ममत्व, लोभ और अभिमान समस्त जल जाएं (जिन्होंने मुझे प्रभु से वियुक्त कर रखा है)।

२६. (नानक) गुरु के शब्द को विचार कर ही गुणों के निधान प्रभु की प्राप्ति होती है। ८। १०।

११

१. रे मन, ऐसी हरि सिउ प्रीति करि, जैसी जल कमलेहि।
२. लहरी नालि पछाड़ीऐ, भी विगसै असनेहि।
३. जल महि जीअ उपाइ कै, बिनु जल मरणु तिनेहि। १।
४. मन रे किउं छूटहि बिनु पिआर।
५. गुरमुखि अंनरि रवि रहिआ, बखसे भगति भंडार। १। रहाउ
६. रे मन, ऐसी हरि सिउ प्रीति करि, जैसी मछुली नीर।
७. जिउ अधिकउ तिउ सुखु घणो, मनि तनि सांति सरीर।
८. बिनु जल घड़ी न जीवई, प्रभु जाणै अभ पीर। २।
९. रे मन, ऐसी हरि सिउ प्रीति करि, जैसी चात्रिक मेह।
१०. सर भरि थल हरिआवले, इक बूंद न पवई केह।
११. करमि मिलै, सो पाईऐ, किरतु पइआ सिरि देह। ३।
१२. रे मन, ऐसी हर सिउ प्रीति करि, जैसे जल दुध होइ।

१३. आवटणु आपे खवै, दुध कउ खपणि न देइ ।
१४. आपे मेलि विछुंनिआ, सचि वडिआई देइ । ४ ।
१५. रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि, जैसी चकवी सूर ।
१६. खिनु पलु वीद न सोवई, जाणै दूरि हजूरि ।
१७. मनमुखि सोझी न पवै, गुरमुखि सदा हजूरि । ५ ।
१८. मनमुखि गणत गवावणी करता करै सु होइ ।
१९. ता की कीमति ना पवै, जे लोचै सभु कोइ ।
२०. गुरमति होइ त पाईऐ, सचि मिलै सुखु होइ । ६ ।
२१. सचा नेहु न तुटई, जे सतिगुरु भेटै सोइ ।
२२. गिआन पदारथु पाईऐ, त्रिभवण सोझी होइ ।
२३. निरमलु नामु न वीसरै, जे गुण का गाहकु होइ । ७ ।
२४. खेलि गए से पंखणूं, जो चुगदे सर तलि ।
२५. घड़ी कि मुहति कि चलणा, खेलणु अजु कि कलि ।
२६. तिसु तूं मेलहि सो मिलै, जाइ सचा पिड़ु मलि । ८ ।
२७. बिनु गुर प्रीति न ऊपजै, हऊमै मैल न जाइ ।
२८. सोहं आपु पछाणीऐ, सबदि भेदि पतिआइ ।
२९. गुरमुखि आपु पछाणीऐ, अवर कि करे कराइ । ९ ।
३०. मिलिआ का किआ मेलीऐ, सबदि मिले पतीआइ ।
३१. मनमुखि सोझी ना पवै, वीछुड़ि चोटा खाइ ।
३२. नानक, दरु घरु एकु है, अवरु न दूजी जाइ । १० । ११ ।

पद-अर्थ

लहरी—लहरों के साथ; **पछाड़ीऐ**—धकेला जाता है; **विगसै**—खिलता है **असनेहि**—प्रेम में; **तिनेहि**—उनका; **नीर**—जल; **अधिकउ**—बहुत; **अभ**—हृदय की; **चात्रिक**—पपीहा; **केह**—किस काम; **किरतु**—किए कर्मों के अनुसार; **सिरि**—प्रत्येक को 'सिरि सिरि रिजकु संबाहे ठाकुरु'; **आवटणु**—उबाल; **खवै**—सहन करता है; **खपणि**—सूखना; **सूर**—सूर्य के साथ; **जाणै दूरि हजूरि**—दूर रहते सूर्य को निकट समझती है; **गणत**—हिसाब; **त्रिभवण**—तीनों लोकों की; **पंखणु**—पंछी (जीव); **चुगदे सर तलि**—संसार सरोवर में

आनन्द मानते थे; **खेलण**—जीवन-खेल; **पिडु**—मदान; **मलि**—मर्दन करके; जीत कर; **सोहं**—वह मैं हूं, अमेद; **पतीआइ**—विश्वास किए गए; **जाइ**—जगह, स्थान ।

टीका

१. हे मेरे मन, हरि से ऐसी (तीव्र) प्रीति कर जैसी कमल जल से करता है ।

२. यद्यपि वह जल तरंगों से भी पीटा जाता है, तथापि प्रेम में मग्न रहता हुआ वह विकसित ही होता रहता है ।

३. कमलों का जन्म भी जल से होता है और जल से बाहर उनका मरण होता है । १ ।

४. हे मेरे मन, तू प्रभु-प्रेम के बिना छूट नहीं सकता (मुक्त नहीं हो सकता) ।

५. प्रभु गुरु के भीतर वर्तमान है, और गुरु ही नाम-भक्ति के भाण्डागार प्रदान करता है । १ । रहाउ ।

६. हे मन, हरि से ऐसे प्रेम कर जैसे मछली पानी से करती है ।

७. पानी जितना अधिक होता है, उतने अधिक उसके मन, तन में सुख और शांति होते हैं ।

८. (वह) जल के बिना घड़ी भर नहीं जी सकती । (जैसे पानी उसके दुःखों का औषध है) वैसे ही प्रभु मानवीय हृदय की वेदना समझता है (और सुख देता है) । २ ।

९. हे मन, हरि से ऐसी प्रीति करो जैसे चातक स्वाति नक्षत्र की बूंद से करता है ; २ ।

१०. चाहे सरोवर जल से पूर्ण हों, और उसके कारण पृथ्वी शस्यश्यामला भी हो परन्तु यदि (स्वाति) बूंद चातक के मुख न पड़े तो यह समस्त जल उसके किस प्रयोजन का है ।

११. (सत्य हैं) कर्मों के अनुसार जो कुछ मिले वही प्राप्त किया जाता है । प्रत्येक मनुष्य की जो अपनी उपार्जना है उसके अनुसार ही शरीर (जीवन) चलता है । ३ ।

१२. हे मन, हरि से इस प्रकार प्रीति कर जिस प्रकार जल दूध से करता है ।

१३. उत्ताप से उद्बुद्बुदायमान होने पर वह स्वयं खपता (सूखता) है, परन्तु दूध को नहीं सूखने देता।

१४. (प्राणी प्रीति के मार्ग का अनुसरण क्यों नहीं करते) प्रभु जीवों को स्वयं ही (वियोग के नियमों के अनुसार) अपने आप से पृथक करता है, और फिर आप ही उनको (संयोग के नियमानुसार) सत्य में स्थित कर के प्रशंसनीय बनाता है। ४।

१५. हे मन, हरि से ऐसी प्रीति कर जैसी चक्रवाकी सूर्य से करती है।

१६. वह (प्रेमवश होकर) क्षण मात्र भी नहीं सोती है, और सूर्य चाहे कितनी ही दूर है वह उसे अपने समीप ही समझती है।

१७. मनोमुखों को उस परमात्मा का (जो सत्य के भीतर रहता है) ज्ञान नहीं होता, परन्तु गुरुमुख उसे सदा अपने पास समझते हैं। ५।

१८. मनोमुख लोग गणना में लगे हुए हैं फलों की आशा लगाए रहते हैं, परन्तु होता वही है जो कर्त्ता का आदेश है।

१९. चाहे सभी मिलकर इच्छा करें, उस आदेश के मूल्य का अवधारण नहीं हो सकता है।

२०. गुरु द्वारा शिक्षित होकर मूल्य का अनुमान किया जा सकता है (सच्चा हरि मिल जाता है) उस सत्यस्वरुप हरि के मिलने से सुख हो जाता है। ६।

२१. यदि सद्गुरु मिल जाए तो प्रभु से ऐसा निश्छल प्रेम हो जाता है जो फिर टूटता नहीं है।

२२. ज्ञान पदार्थ की प्राप्ति होती है जिसके द्वारा तीनों लोकों का ज्ञान हो जाता है।

२३. यदि मनुष्य (गुरु द्वारा समझाए) गुणों का ग्राहक हो जाए तो उसे पवित्र नाम कभी नहीं भूलता। ७।

२४. अनेक पक्षी (मनुष्य) जो संसार-सरोवर के तल पर चुगते (आनन्द मानते) थे, यहां से खेल-खेल कर चले गऐ हैं (मर गए हैं)।

२५. दूसरों को अभी या थोड़ी देर में चले जाना है, क्योंकि जीवन खेल तो एक दो दिन का ही है।

२६. हे प्रभु, जिसे तुम स्वयं अपने साथ मिलाओ तथा वह खेल का सच्चा मैदान जीत कर (सांसारिक बाज़ी जीतकर) यहां से जाता है। ८।

२७. गुरु प्रेम के बिना प्रभु-प्रेम उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि अहंता का असत्य दूर नहीं होता है।

२८. गुरु-शब्द-द्वारा विश्वस्त होकर शब्द से विद्ध होकर यह पहचान होती है कि वह मैं हूं। (जीव और परमात्मा एक है)।

२९. गुरु-द्वारा ही आत्म ज्ञान होता है (कि जीव परमात्मा का रुप है) गुरु के बिना कोई क्या करे ? । ९ ।

३०. जो गुरु के शब्द-द्वारा प्रभु से मिलें हैं, वे विश्वस्त हो गए हैं। तदनन्तर उनको किसी अन्य मिलाप की आवश्यकता नहीं रहती।

३१. (गुरु से विमुख हुए) मनमुखों को प्रभु का ज्ञान नहीं होता। वे उससे विमुख हो कर दुःखी रहते हैं।

३२. (नानक) जीव का आश्रय स्थान केवल प्रभु ही है। उसके लिए कोई अन्य स्थान नहीं है। १०। ११।

१२

१. मनमुखि भूलै भुलाईऐ, भूली ठउर न काइ।
२. गुर बिनु को न दिखावई, अंधी आवै जाइ।
३. गिआन पदारथु खोइआ, ठगिआ मुठा जाइ। १।
४. बाबा, माइआ भरमि भुलाइ।
५. भरमि भुली डोहागणी, ना पिरु अंकि समाइ। १। रहाउ।
६. भूली फिरै दिसंतरी, भूली ग्रिहु तजि जाइ।
७. भूली डूंगरि थलि चड़ै भरमै मनु डोलाइ।
८. धुरहु विछुंनी किउं मिलै, गरबि मुठी बिललाइ। २।
९. विछुड़िआ गुरु मेलसी, हरि रसि नाम पिआरि।
१०. साचि सहजि सोभा घणी, हरिगुण नाम अधारि।
११. जिउं भावै तिउं रखु तूँ, मैं तुझ बिनु कवनु भतारु। ३।
१२. अखर पड़ि पड़ि भुलीऐ, भेखी बहुत अभिमान।
१३. तीरथ नाता किआ करे, मन महि मैलु गुमानु।
१४. गुर बिनु किनि समझाईऐ, मनु राजा सुलतानु। ४।
१५. प्रेम पदारथु पाईऐ, गुरमुखि ततु वीचारु।
१६. साधन आपु गवाइआ, गुर कै सबदि सीगारु।

१७. घर ही सो पिरु पाइआ, गुर कै हेति अपारु । ५ ।

१८. गुर की सेवा चाकरी, मनु निरमलु सुखु होइ ।

१९. गुर का सबदु मनि वसिआ, हउमै विचहु खोइ ।

२०. नामु पदारथु पाइआ, लाभु सदा मनि होइ । ६ ।

२१. करमि मिलै ता पाईऐ, आपि न लइआ जाइ ।

२२. गुर की चरणी लगि रहु, विचहु आपु गवाइ ।

२३. सचे सेती रतिआ, सचो पलै पाइ । ७ ।

२४. भुलण अंदरि सभु को, अभुलु गुरू करतारु ।

२५. गुरमति मनु समझाइआ लागा तिसै पिआरु ।

२६. नानक, साचु न वीसरै, मेले सबदु अपारु । ८ । १२ ।

पद-अर्थ

मनमुखि—अपनी इच्छा के अनुकूल चलने वाली नारी; **भुलाईऐ**—भुलाई हुई; **ठउर**—स्थान; **मुठा**—लुटा हुआ; **डोहागणी**—परित्यक्ता नारी; **अंकि**—अंग के साथ; **दिसंतरी**—देशों में; **डूँगरि**—पर्वतों पर; **विछुंनी**—विछड़ी हुई; **गरबि मुठी**—अहंकार में ठगी हुई; **साचि**—सत्य द्वारा; **सहजि**—ज्ञान द्वारा; **भतारु**—पति; **अखर**—विद्या; **साधन**—नारी; **हेति**—हित के साथ, प्रेम से; **करमि**—कृपा द्वारा; **गुरू करतार**—कर्त्ता रूपी गुरु ।

टीका

१ मनोमुख जीव रूपी नारी माया के भ्रम में भूली फिरती है और इस प्रकार भूली हुई को कोई अवलम्ब नहीं है ।

२. गुरु के बिना उसे कोई सत्य मार्ग नहीं दिखाता । अज्ञान में फिरती हुई वह अन्धी जन्म-मरण में चक्कर काटती रहती है ।

३. (सत्य है) जिस किसी ने भी ज्ञान का पदार्थ खोया है वह (माया का) ठगा हुआ लुटा जाता है । १

४. हे भाई, माया कुमार्गमयी कर देती है ।

५. कुमार्गगामी, भूली हुई, जीव रूपी नारी प्रभु पति से वियुक्त जाती है और फिर उसका पति के साथ मिलाप नहीं होता । १ । रहाउ ।

६. भूली हुई वह देश देशान्तरों में फिरती रहती है, भूली हुई घर

छोड़ जाती है, ...

७. भूली हुई पर्वतों तथा स्थलों पर चढ़ती है, उस का मन भ्रान्त एवं चंचल रहता है।

८. वह प्रारम्भ से ही परमात्मा से वियुक्त है, और अब उस से कैसे मिले ? वह अपने अहंकार में ठगी हुई कराहती है। २।

९. पर वियुक्त जीवों को भी गुरु उनके भीतर गुरु नाम का आनन्द और प्रेम उत्पन्न कर के प्रभु से मिलाता है।

१०. (गुरु से प्राप्त) सत्य ज्ञान हरिगुण और नाम द्वारा उनकी बहुत शोभा हो जाती है।

११. हे प्रभु, तुम्हें जैसे भी अच्छा लगे मुझे (माया से) बचाओ। तुम्हारे अतिरिक्त मेरा रक्षक कौन है (कोई नहीं है)। १।

१२. कई लोग अक्षर (विद्या) पढ़ पढ़ कर भी कुमार्गगामी होते हैं, (गार्हस्थ्य त्याग कर) साधु वेष धारण करने से भी अहंकार में वास हो सकता है।

१३. यदि मन में अहंकार रूपी मल भरा है तो तीर्थ स्नान से भी क्या लाभ ?

१४. गुरु के बिना कोई नहीं समझाता, (धर्म, कर्म में लगा) मन अहंकार-वश राजा और सुलतान बना रहता है। ४।

१५. गुरु द्वारा ज्ञान विचार प्राप्त कर के हरि प्रेम का पदार्थ पाया जाता है।

१६. गुरु के शब्द द्वारा शृंगार कर के जीव रूपी नारी अहन्ता से मुक्ति पाती है।

१७. गुरु का प्रेम प्राप्त होने से उसे हृदय में अपार प्रभु पति मिला है। ५।

१८. गुरु का सेवक होकर सेवा करने से मन पवित्र होता है और जीव को सुख मिलता है।

१९. गुरु का शब्द उनके हृदय में रहता है और अहन्ता भीतर से निकल जाती है।

२०. तब नाम का पदार्थ प्राप्त होता है जिस से मन को सदा लाभ ही लाभ है। ६।

२१. जब हरि कृपा करे तभी उसे पाया जाता है। वह मनुष्य के किसी

बल से नहीं पाया जाता।

२२. (हे भाई) अपनी अहन्ता त्याग कर गुरु के चरणों से लगा रह (फिर कृपा हो जायगी)।

२३. सच्चे गुरु के प्रेम में अनुरक्त हो कर ही सच्चा प्रभु प्राप्त होता है। ७।

२४. प्रत्येक जीव प्रमादशील है। केवल स्रष्टा कर्त्ता रूप गुरु प्रमाद से शून्य है।

२५. जिस ने ऐसे गुरु की शिक्षा से अपने आप को समझा लिया है, उसी का प्रभु के साथ प्रेम हुआ है।

२६. (नानक) उसे फिर सत्यस्वरूप प्रभु विस्मृत नहीं होता। गुरु का असीम उपदेश प्रभु से मिला देता है। ८/१२।

१३

१. त्रिसना भाइआ मोहणी, सुत बंधप घर नारि।
२. धनि जोबनि जगु ठगिआ, लबि लोभि अहंकारि।
३. मोह ठगउली हउ मुई, सा वरतै संसारि। १।
४. मेरे प्रीतमा, मै तुझ बिनु अवरु न कोइ।
५. मैं तुझ बिनु अवरु न भावई, तूं भावहि सुखु होई। १। रहाउ
६. नामु सालाही रंग सिउ, गुर कै सबदि संतोखु।
७. जो दीसै सो चलसी, कूड़ा मोहु न वेखु।
८. वाट वटाउ आइआ, नित चलदा साथु देखु। २।
९. आखणि आखहि केतड़े, गुर बिनु बूझ न होइ।
१०. नामु वडाई जे मिलै, सचि रपै पति होइ।
११. जो तुधु भावहि से भले, खोटा खरा न कोइ। ३।
१२. गुर सरणाई छुटीऐ, मनमुख खोटी रासि।
१३. असटधातु पातिसाह की, घड़ीऐ सबदि बिगासि।
१४. आपे परखे पारखू, पवै खजान रासि। ४।
१५. तेरी कीमति ना पवै, सभि डिठी ठोकि वजाइ।
१६. कहणै हाथि न लभई, सचि टिकै पति पाइ।
१७. गुरमति तूं सलाहणा, होरु कीमति कहणु न जाई। ५।

१८. जितु तनि नामु न भावई, तिनु तनि हउमै वादु ।
१९. गुर बिनु गिआनु न पाईऐ, बिखिआ दूजा सादु ।
२०. बिनु गुण कामि न आवई, माइआ फीका सादु । ६ ।
२१. आसा अंदरि जंमिआ, आसा रस कस खाइ ।
२२. आसा बंधि चलाईऐ, मुहे मुहि चोटा खाइ ।
२३. अवगणि बधा मारीऐ, छूटै गुरमति नाइ । ७ ।
२४. सरबे थाई एकु तूं, जिउं भावे तिउ राखु ।
२५. गुरमति साचा मनि वसै, नामु भलो पति साधु ।
२६. हुउमै रोगु गवाईऐ, सबदि सचै सचु भाखु । ८ ।
२७. आकासी पातालि तूं त्रिभवणि रहिआ समाइ ।
२८. आपे भगती भाउ तूं, आपे मिलहि मिलाइ ।
२९. नानक, नामु ना वीसरै, जिउ भावै तिवै रजाइ । ९/१३ ।

पद-अर्थ

त्रिसना—इच्छा; **सुत**—पुत्र; **बंधप**—बान्धव; **ठगउली**—ठगमूरी बूटी, जिस से मनुष्य को चेतनाहीन कर के ठग लूटते हैं; **रंग**—प्रेम; **बाट**—मार्ग; **बटाउ**—पथिक; **रपै**—रंग जावे; **असट धातु**—आठ धातु (सोना, चांदी, तांबा, जिस्त, कली, लोहा, सिक्का, पीतल); **ठोकि बजाइ**—भली-भांति परख कर; **हाथु**—बांह; **वादु**—विवाद; **रस कस**—कषाय आदि रस, जैसे मधुर, लावणिक, तीक्षण, कषाय, अम्ल, कटु; **नाइ**—नाम द्वारा; **भाख**—कहो; **त्रिभवणि**—तीनों लोकों में; **भाउ**—प्रेम ।

टीका

१. पुत्र, बान्धवगण एवं घर की नारी के मोहवश जीव को मोहिनी माया की तृष्णा लगी है ।
२. धन, यौवन, लोभ-लालच और अहंकार ने समस्त संसार को ठगा है ।
३. माया-मोह की जिस ठग बूटी ने मुझे ठग लिया है, इसने सम्पूर्ण विश्व को ही ठगा हुआ है । १ ।
४. हे मेरे प्रिय प्रभु, तुम्हारे अतिरिक्त मेरा कोई अवलम्ब नहीं है ।
५. मुझे तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता जब तुम

अच्छे लगते हो तब सुख होता है। १। रहाउ।

६. गुरु के शब्द द्वारा संतोष धारण कर के मैं प्रेम पूर्वक प्रसिद्ध (हरि) की गुण-स्तुति करता हूँ।

७. यह दृश्यमान जगत् चलायमान है। अतः हे भाई, (पुत्र, सम्बन्धी और नारी के) मिथ्या मोह की ओर न देख।

८. समस्त संसार पथिक के समान है। साथियों को नित्य जाते हुए देख ले। २।

९. बातें करने वाले तो अनेक हैं, परन्तु गुरु के बिना (मोह से मुक्ति का) ज्ञान नही होता।

१०. यदि नाम और प्रभु स्तुति की देन मिल जावे तो सत्य (प्रभु) में अनुरक्त होता है और ईश्वरीय सभा में प्रतिष्ठा पाता है।

११. हे प्रभु, जो तुम्हें अच्छे लगते हैं, वे अच्छे हैं (अपनी किसी शक्ति से) कोई अभद्र भद्र नहीं होता है। ३।

१२. गुरु की शरण में जा कर ही माया, मोह से मुक्ति प्राप्त की जाती है। मनोमुख की पूजा ही सदोष है (उस से क्या लाभ होगा)?

१३. जैसे विविध प्रकार की आठों धातु राजा की अपनी होती हैं वैसे ही विविध प्रकार के मनुष्य परमात्मा के अपने हैं, परन्तु उनमें जो शब्द द्वारा निर्मित होते हैं वे जगत् में खिलते (सफल होते) हैं।

१४. प्रभु स्वयं ही सब को परखता है। शुद्ध होकर ही कोई जीव भाण्डागार में स्वीकृत होता है। ४।

१५. मैंने समीचीनतया समस्त संसार देखा है। हे प्रभु, तुम्हारा मूल्यांकन नहीं हो सकता।

१६. बातों से उस (प्रभु) का निवास स्थान ज्ञात नहीं होता है। यदि कोई उसमें पूर्ण उतरे तो वह प्रभु के यहां प्रतिष्ठा पाता है।

१७. केवल गुरु द्वारा तुम्हारी गुण स्तुति करने से (तुम्हारे मूल्य का अंकन होता है), अन्य किसी प्रकार नहीं। ५।

१८. जिस हृदय में नाम का प्रेम नहीं है, उस हृदय में अहन्ता और विवाद है।

१९. गुरु के बिना प्रभु ज्ञान नहीं होता। अन्य सब स्वाद विष हैं।

२०. माया का आनन्द रसहीन है। गुणरहित यह माया अनुपयोगी हैं। ६।

२१. यह जीव तृष्णा (आशा) के द्वारा उत्पन्न होता हैं और (जीवन में) तृष्णा से बंध कर (माया के) मधुर अम्ल रस भोगता है।

२२. तृष्णा का वंशवद होकर ही यह मरता है और पुनः पुनः (यम और जन्म मरण के आवर्त की) मुख पर चोटें खाता है।

२३. अवगुणों में बद्ध मारा जाता है (दण्ड भोगता है)। (माया और मृत्यु से) इसका मोक्ष गुरु द्वारा प्राप्त हुए नाम से ही होता है। ७।

२४. हे प्रभु, तुम सभी स्थानो में व्याप्त हो, जिस प्रकार तुम्हें अच्छा लगे उसी प्रकार मुझे बचा लो।

२५. गुरु द्वारा सत्य हरि मन में बसता है, उसका नाम उत्तम सहचर है और उत्तम प्रतिष्ठा है।

२६. नाम ही अहन्ता रोग को समाप्त करता है। अतः हे जीव, गुरु के सच्चे शब्द द्वारा उस सत्यस्वरूप हरि की स्तुति प्रशंसा कर। ८।

२७. हे प्रभु, तुम आकाश, पाताल और भवनों में व्याप्त हो।

२८. तुम स्वयं ही भक्ति देते हो, स्वयं ही प्रेम देते हो, स्वयं ही (जीवों को) अपने साथ मिला लेते हो।

२९. (नानक) प्रार्थना करो कि हे प्रभु, मुझे नाम न भूले जैसे तुम्हें अच्छा लगे वैसे तुम मुझे अपनी इच्छा के अनुसार रखो। ९/१३।

१४

१. राम नामि मनु बेधिआ, अवरु कि करी वीचारु।

२. सबद सुरति सुखु ऊपजै, प्रभ रातउ सुख सारु।

३. जिउ भावै तिउ राखु तूं, मैं हरिनामु अधारु। १।

४. मन रे, साची खसम रजाइ।

५. जिनि तनु मनु साजि सीगारिआ, तिसु सेति लिवलाइ।१। रहाउ

६. तनु बैसंतरि होमीऐ, इक रती तोलि कटाइ।

७. तनु मनु समधा जे करी, अनदिनु अगनि जलाइ।

८. हरिनामै तुलि न पुजई, जे लख कोटी करम कमाइ। २।

९. अरध सरीरु कटाईऐ, सिरि करवतु धराइ।

१०. तनु हैमंचलि गालीऐ, भी मन ते रोगु न जाइ।

११. हरिनामै तुलि न पुजई, सबुडिठी ठोकि वजाइ। ३।

१२. कंचन के कोट दतु करी, वहु हैवर गैवर दानु ।
१३. भूमि दानु गऊआ घणी, भी अंतरि गरबु गुमानु ।
१४. रामनामि मनु बेधिआ, गुरि दीआ सचु दानु । ४ ।
१५. मनहठ बुधी केतीआ, केते बेद बीचार ।
१६. केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोख दुआर ।
१७. सचहु उरै सभु को, उपरि सचु आचारु । ५ ।
१८. सभु को ऊचा आखीऐ, नीचु न दीसै कोइ ।
१९. इकनै भांडे साजिऐ, इकु चानणु तिहु लोइ ।
२०. करमि मिलै सचु पाइऐ, धुरि बखस न मेटै कोइ । ६ ।
२१. साधु मिलै साधू जनै, संतोखु वसै गुर भाइ ।
२२. अकथ कथा वीचारीऐ, जे सतिगुर माहि समाइ ।
२३. पी अंम्रितु संतोखिआ, दरगहि पैधा जाइ । ७ ।
२४. घटि घटि बाजै किंगुरी, अनदिनु सबदि सुभाइ ।
२५. विरले कउ सोझी पई, गुरमुखि मनु समझाइ ।
२६. नानक, नामु न वीसरै, छूटै सबदु कमाइ । ८/१४ ।

पद-अर्थ

बेधिआ—विद्ध; **सारु**—श्रेष्ट; **बैसंतरी**—अग्नि में; **होमीऐ**—होम किया जाए, अग्नि को अर्पण किया जाए; **रती तोलि**—रत्ती के तोल के समान; **समधा**—होम के लिए काष्ट; **अनदिनु**—प्रत्येक दिन; **अरध**—आधा-आधा; **करवतु**—करपत्र, आरा; **हैमंचलि**—हिमाचल पर्वत में; **कंचन**—सुवर्ण; **कोट**—दुर्ग; **दतु**—दान; **हैवर**—उत्तम हय, उत्तम घोड़े; **गैवर**—उत्तम, गयन्द, उत्तम हाथी; **भूमि**—पृथ्वी; **घणी**—बहुत सी; **गरबु**—अहंकार; **आचारु**—आचार; **करमि**—कृपा द्वारा; **भाइ**—प्रेम के भीतर; **पैधा**—प्रतिष्ठा के साथ, परिधान ले कर; **किंगरी**—वीणा; **सुभाइ**—प्रेम सहित ।

टीका

१. जब मेरा मन राम नाम ने बींध दिया है, फिर अब किसी अन्य विचार की क्या आवश्यकता है ?

२. गुरु शब्द के द्वारा सुरति जुड़ने से मुझे सुख मिला है, मैं प्रभु-प्रेम में अनुरक्त हो गया हूँ ? यही सर्वोत्तम सुख है ।

३. हे प्रभु,जैसे तुम्हें अच्छा लगे वैसे ही मुझे रखो । मुझे केवल हरिनाम का अवलम्ब चाहिए । १ ।

४. हे मेरे मन, प्रभु स्वामी की इच्छा सत्य है (उस इच्छा के अनुकूल रहना उचित है) ।

५. जिस हरि ने शरीर और मन को बना कर सुसज्जित किया (सुन्दर बनाया है) तू उस से प्रेम कर । १ । रहाउ ।

६. (नाम के अतिरिक्त शेष साधन व्यर्थ हैं) यदि शरीर रत्ती की तोल के समान काट-काट कर अग्नि में होम कर दिया जाए ।

७. यदि तन और मन को समिधा बना कर अहर्निश होम की अग्नि प्रज्वलित रखी जाए ।

८. यदि लाखों (करोड़ों ऐसे ही अन्य) कर्म किए जाएं तो भी वे कर्म नाम-स्मरण के समान नहीं हो सकते हैं । २ ।

९. यदि शरीर को आरे से सिर से पैर तक चिरवा कर उसके दो खण्ड करवा दिए जाएं ।

१०. और यदि शरीर हिमाचल पर्वत पर हिम में गला दिया जाए, तो भी मन से (अहन्ता) नहीं जाती ।

११. मैंने सब कुछ परख कर देख लिया है, हरि नाम की कक्षा को (कोई अन्य कर्म)नहीं पहुँचता । ३ ।

१२. और यदि में सुवर्ण निर्मित दुर्ग दान करूं और उत्तम घोड़े और हाथी दान करूं ।

१३. यहि मैं पृथ्वी पर बहुत सी गाएं भी दान करूं, तो भी (कुछ लाभ नहीं क्योंकि मन में इन कर्मो के किए जाने का अहंकार बना रहेगा ।

१४. गुरु ने मुझे यथार्थ (सत्य) दान दिया है (वह नाम दान है) और मेरा मन अब नाम से विद्ध हो गया है । ३ ।

१५. मन के हठ और बुद्धि के बल से कितने कर्म किए जाते हैं । कितने ही मनुष्य वेदों का विचार कर के (उनके अनुसार कर्म करते हैं) :-

१६. ये सभी (कर्म) अहन्ता उत्पन्न कर के जोवन के लिए बंधन रूप हो जाते हैं । गुरु की सहायता से मुक्ति का द्वार प्राप्त होता है ।

१७. परन्तु यह समस्त कर्म सत्य से निम्न हैं और सत्याचरण सत्य से भी ऊपर है। ५।

१८. सभी मनुष्य अच्छे हैं, नीच (अधम) कोई दिखाई ही नहीं देता।

१९. (कारण यह कि) एक प्रभु ने समस्त शरीर बनाए हैं और तीनों लोकों में (समस्त शरीरों में) एक ही ज्योति विद्यमान है।

२०. परन्तु जिस पर (प्रभु) कृपा करता है, उसे सत्य स्वरूप हरि मिलता है। सृष्टि के मूल भगवान से प्राप्त इस कृपा को कोई नहीं रोक सकता है। ६।

२१. जो साधु पुरुष गुरुमुखों की संगति में बैठता है उसे गुरु प्रेम के कारण संतोष प्राप्त होता है।

२२. यदि वह सच्चे गुरु में लीन हो जाए तो वह उसे अकथनीय हरि की कथा कहने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

२३. वह नाम रमणी अमृत पीकर तृप्त होता है और प्रभु की सभा में परिधान प्राप्त करके (ससम्मान) जाता है। ७।

२४. प्रत्येक हृदय में प्रभु की वीणा बज रही है (उसी का प्रकाश है) परन्तु इसका पता उसे लगता है जो सदा गुरु के शब्द और प्रभु के प्रेम में रहता है।

२५. यह तथ्य किसी विरले को गुरु शिक्षा से मन को समझाने के पश्चात ही अवबुद्ध होता है।

२६. (नानक) जिसे नाम विस्मृत नहीं होता, वह शब्द की साधना कर के (अहन्ता रोग से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। ८/१४।

१५

१. चिते दिसही धउलहर, बगे बंक दुआर।
२. करि मन खुसी उसारिआ, दूजै हेति पिआरि।
३. अंदरु खाली प्रेम बिनु ढहि ढेरी तनु छारु । १ ।
४. भाई रे, तनु धनु साथि न होइ ।
५. रामनामु धनु निरमलो गुरु दाति करे प्रभु सोइ । १ । रहाउ ।
६. रामनामु धनु निरमलो, जे देवै देवणहारु ।
७. आगै पूछ न होवई, जिसु बेली गुरु करतारु ।
८. आपि छडाए छूटीऐ, आपे बखसणहारु । २ ।

९. मनमुख जाणै आपणै, धीआ पूत संजोगु ।
१०. नारी देखि विगासीअहि, नाले हरखु सु सोगु ।
११. गुरमुखि सबदि रंगावले, अहनिसि रहिरसु भोगु । ३ ।
१२. चितु चलै वितु जावणो, साकत डोलि डोलाइ ।
१३. बाहरि ढूंढि विगुचीऐ, घर महि वसनु सुथाइ ।
१४. मनमुखि हउमै करि मुसी, गुरमुखि हउमै पलै पाइ । ४ ।
१५. साकत निरगुणआरिआ, आपणा मूल पछाणु ।
१६. रकतु बिंदु का इहु तनो, अगनी पासि पिराणु ।
१७. पवणै कै वसि देहुरी, मसतकि सचु नीसाणु । ५ ।
१८. बहुता जीवणु मंगीऐ, मुआ न लोड़ै कोइ ।
१९. सुखजीवणु तिसु आखीऐ, जिसु गुरमुखि वसिआ सोइ ।
२०. नाम विहूणे किआ गणी, जिसु हरि गुर दरसु न होइ । ६ ।
२१. जिउ सुपनै निसि भुलीऐ, जब लगि निद्रा होइ ।
२२. इउ सरपनि कै वसि जीअड़ा, अंतरि हउमै दोइ ।
२३. गुरमति होइ वीचारीऐ, सुपना इहु जगु लोइ । ७ ।
२४. अगनि मरै जलु पाईऐ, जिउ बारिक दूधै माइ ।
२५. बिनु जल कमल सु ना थीऐ, बिनु जल मीनु मराइ ।
२६. नानक, गुरमुखि हरिरसि मिलै, जीवा हरि गुण गाइ । ८ । १५ ।

पद-अर्थ

चिते—चित्रित हुए; **घउलहर**—राजमहल; **बगे**—श्वेत; **बंकदुआर**—बांके मकान; **छारु**—राख; **बेली**—मित्र; **संजोगु**—मेल; **विगासीअहि**—खिल जाते हैं; **हरख**—हर्ष; **सोगु**—शोक; **रंगावले**—रंगीले, रसिक; **अहिनिसि**—रात; **चितु चलै**—मन चंचल रहता है; **वितु जावणो**—धन जाने से; **साकत**—शक्ति का उपासक, माया मग्न; **विगुचीऐ**—क्लेश भोगता है; **सुथाइ**—(हृदय रूपी) शुभ स्थान पर; **मुसी**—लूटी गई; **मूलु**—मूलधन; **पिराणु**—(प्रयाण) जाना; **पवनै**—श्वास; **नीसाणु**—निशान, चिह्न; **विहूणे**—विहीन; **निसि**—रात्रि के समय; **सरपनि**—सर्पिणी, माया; **दोइ**—दूसरा भाव; **लोइ**—देखेगा; **मीनु मराइ**—मछली मर जाती है ।

टीका

१. यदि चित्रों से प्रसाधित प्रासाद हों और उनके श्वेत, बांके, सुन्दर द्वार भी हों (परन्तु यदि उनमें कोई न रहता हो तो वे निष्प्रयोजन है।)

२. उसी प्रकार यदि शरीर को महती सुरुचि से अलंकृत किया हो, परन्तु यह सब कुछ प्रभु को छोड़ कर अन्य (माया) के प्रेम में पड़कर किया हो—

३. तो समझो कि इस शरीर रूपी मंदिर का अभ्यन्तर शून्य है; क्योंकि इस श्रृंगार का प्रेरक प्रभु प्रेम में नहीं है। यह अन्त में खार हो जायेगा। १।

४. हे भाई, शरीर और धन सदा साथ नहीं रहते।

५. वास्तविक निर्मल धन राम नाम नहीं है जिसका दान वह गुरु प्रभु स्वयं करता है।

६. राम नाम रूपी धन निर्मल है; परन्तु वह उसी को मिलता है जिसे दाता प्रभु रूपी गुरु स्वयं देता है।

७. जिसका साथी जगत् कर्ता गुरु होता है उसे पुनः कर्मो का लेखा नहीं देना पड़ता।

८. यदि वह कृपालु स्वयं किसी को माया के मोह से बचाए तो जीव बचता है। २।

९. मनोमुख पुरुष पुत्री-पुत्रों को अपने जानता है। यह तो (प्रकृति का केवल) संयोग है।

१०. स्त्रियों को देखकर मनोमुख प्रसन्न हो जाते हैं। किन्तु उन्हें हर्ष और शोक दोनों ही संवेग आक्रान्त करते रहते हैं।

११. (दूसरी ओर) गुरमुख पुरुष शब्द के प्रेम में दिन रात रस का आनन्द प्राप्त करते हैं। ३।

१२. धन चले जाने से शक्ति के उपासक का मन भी अस्थिर हो जाता है और वह अशान्त रहता है।

१३. वास्तविक वस्तु (नाम धन) हृदय के सुन्दर स्थान के भीतर है, परन्तु मनोमुख उसे बाहर ढूंढ-ढूंढ कर दुःखी होता है।

१४. मनोमुख जीव रूपी नारी अहंकार में रहने से लूटी जाती है, किन्तु

गुरुमुख जीव रूपी नारी नाम रूपी धन प्राप्त कर लेती है । ४ ।

१५. हे गुणविहीन, शक्ति के उपासक, जीव अपने वास्तविक रूप को समझ (तेरा वास्तविक रूप आत्मा है । परन्तु तू केवल शरीर को देखता है)

१६. यह शरीर तो केवल रक्त और वीर्य से निर्मित है, जो अन्त में अग्नि की भेंट हो जायेगा ।

१७. यह केवल श्वासों के आश्रित है । परन्तु तेरे मस्तक पर एक अवि-चाल्य आदेश की मुद्रा अंकित है (उस का भी कुछ उद्योग कर । तू शरीर नहीं, आत्मा है जो उसी के आदेश के अनुसार कर्मों के चक्र से मुक्त होता है) । ५ ।

१८. प्रत्येक प्राणी दीर्घ जीवन की याचना करता है । मरण कोई नहीं चाहता है ।

१९. परन्तु सुखी जीवन उसी का है जिसके हृदय में गुरु की शिक्षा से नाम बसता है ।

२०. जो नाम विहीन है और हरि गुरु के दर्शनो से वंचित हैं उनके जीवन को क्या महत्व दूं । ६ ।

२१. जैसे रात्रि को स्वप्न में देखी हुई (वस्तुओं के सत् होने का) भ्रम हो जाता है और जब तक निद्रा रहती है वह भ्रम बना रहता है ।

२२. वैसे ही माया सर्पिणी के वशीभूत होकर जीव भ्रान्त रहता है और अहन्त तथा द्वैत में विचरता रहता है ।

२३. गुरु की शिक्षा प्राप्त कर के विचार किया जाए तो विश्व केवल स्वप्नवत् प्रतीत होगा । ७ ।

२४. जैसे जल डालने से अग्नि शान्त होती है, अथवा जैसे माता का दुग्ध मिलने से शिशु को शान्ति होती है—

२५. अथवा जैसे जल के बिना कमल का जीवन सम्भव नहीं, अथवा जैसे जल के बिना मछली की मृत्यु है—

२६. उसी प्रकार गुरु द्वारा हरि रस मिलने से मैं (नानक) शान्त और सुखी होता हूं और हरि गुण गान से मैं जीता हूं । ८ । १५ ।

१६

१. डूंगरु देखि डरावणो, पेईअड़ै डरीआसु ।

२. ऊचउ परवतु गाखड़ो, ना पउड़ी नितु तासु ।
३. गुरमुखि अंतरि जाणिआ, गुरि मेली तरीआसु । १ ।
४. भाई रे, भवजलु बिखमु डरांउ ।
५. पूरा सतिगुरु रसि मिलै, गुरु नतारे हरिनाउ । १ । रहाउ
६. चला चला जे करी, जाणा चलणहारु ।
७. जो आइआ सो चलसी, अमरु सु गुरु करतारु ।
८. भी सचा सालाहणा, सचै थानि पिआरु । २ ।
९. दर घर महला सोहणे, पके कोट हजार ।
१०. हसती घोड़े पाखरे, लसकर लख अपार ।
११. किसही नालि न चलिआ, खपि खपि मुए असार । ३ ।
१२. सुइना रुपा संचीऐ, मालु जालु जंजालु ।
१३. सभ जग महि दोही फेरीऐ, बिनु नावै सिरि कालु ।
१४. पिंडु पड़ै जीउ खेलसी, बदफैली किआ हालु । ४ ।
१५. पुता देखि विगसीऐ, नारी सेज भतार ।
१६. चोआ चंदनु लाईऐ, कापड़ु रूपु सीगार ।
१७. खेहू खेह रलाईऐ, छोडि चलै घरु बारु । ५ ।
१८. महर मलूक कहाईऐ, राजा राउ कि खानु ।
१९. चउधरी राउ सदाईऐ, जलि बलिऐ अभिमान ।
२०. मनमुखि नामु विसारिआ, जिउ डवि दधा कानु । ६ ।
२१. हउमै करि करि जाइसी, जो आइआ जग माहि ।
२२. सभु जगु काजल कोठड़ी, तनु मनु देह सुआहि ।
२३. गुरि राखे से निरमले, सबदि निवारी भाहि । ७ ।
२४. नानक, तरीऐ सचि नामि, सिरि साहा पातिसाहु ।
२५. मैं हरिनामु न वीसरे, हरिनामु रतनु वेसाहु ।
२६. मनमुख भउजलि पचि मुए, गुरमुखि तरे अथाहु । ८ । १६ ।

पद-अर्थ

डूंगरु—पर्वत; पेइअड़े—पिता का घर, इस लोक में; गाखड़ो—कठिन; तितु—वहां; तासु—उसकी; तरीआसु—में तर गई; भवजलु—संसार-सागर;

बिखमु—कठिन; **डराउ**—भयंकर; **रसि**—प्रसन्न होकर; **हरिनाउ**—हरि का नाम देकर; **भी**—तो भी; **सचै थानि**—सत्संग में; **कोट**—दुर्ग; **हसती**—हाथी; **पाखरे**—काठियां; **असार**—स्मरणहीन, अबोध, मूर्ख; **संचीऐ**—संचित कीजिए; **दोही**—दुहाई, डौंडी; **खेलसी**—खेल खेल लेगा, समाप्त कर देगा; **बदफैली**—दुष्कर्मियों का; **पुतां**—पुत्रों को देखकर; **चोआ**—इत्र; **खेहू खेह रलाईऐ**—शरीर की मिट्टी, मिट्टी में मिल जाती है; **घर बारु**—घर और इसकी सामग्री; **महर**—सरदार; **मलुक**—बादशा; **राउ**—राजा; **डवि दधा कानु**—दावानल (जंगल की अग्नि) से जला शरकाण्ड; **काजल**—सुरमा, कालिमा; **भाहि**—अग्नि; **सिरि**—शिरोमणि, महान्; **बेसाहु**—क्रीत किया है; **पवि**—दुःखी हो कर; **अथाह**—अगाध सागर (संसार)।

टीका

१. (जीव रूपी नारी इस संसार रूपी पितृ-गृह में बैठी है। वह समझती है कि प्रियतम कहीं दूर पर्वतों के पीछे है। पर्वतों के महाभयंकर रूप को देख-देख कर डर जाती है। उसके पास चढ़ने के लिए सीढ़ी नहीं है। वह किस प्रकार प्रियतम तक पहुंचे? उसको गुरु मिलता है जो उसे प्रियतम का वास उसके भीतर ही बतलाता है और मिलन करा देता है।) मैं पिता के घर बैठी हूं, भीषण पर्वतों को देख देख कर डर रही हूं।

२. पर्वत भी ऊंचा है और उस पर चढ़ना भी कठिन है, वहां पहुंचने के लिए मेरे पास कोई सीढ़ी भी नहीं है।

३. (परन्तु) गुरु की शिक्षा से मुझे ज्ञान हो गया है कि मेरा प्रियतम मेरे भीतर है। गुरु ने मुझे उस से मिला दिया है और संसार सागर से पार हो गई हूं।

४. हे भाई, संसार सागर (पार करना) कठिन है और भयंकर है।

५. यदि पूर्ण सद्गुरु प्रसन्न होकर मिल जाए तो वह हरि नाम प्रदान कर के पार कर देता है। १। रहाउ

६. यदि में प्रयाण (मृत्यु) को न भूलूं और संसार को नश्वर समझूं,

७. क्योंकि जो संसार में आया है उसे अवश्य चले जाना है, केवल एक गुरु, कर्ता, ही अमर (शाश्वत) है;

८ अतः मैं सच्चे स्थान (सत्संग) में अनुरक्त हो कर सच्चे प्रभु की स्तुति प्रशंसा में लगूं। २।

९. द्वार, घर और महल सुन्दर हों, सहस्रों पक्के दुर्ग हों।—

१०. हाथी, घोड़े, काठियां हों और कई लाख सेना हो।—

११. ये कभी भी किसी के नाथ नहीं गए। परन्तु मूर्ख लोग (इनके लिए) व्यर्थ में आयास कर-कर के मरते रहें हैं। ६।

१२. यदि सुवर्ण, रजत आदि सम्पति संचित करते रहें तो यह धन जीव को फंसाने का साधन बनेगा और उसके लिए दुःखदायक (जंजाल) सिदध होगा।

१३. अतः समस्त संसार में इस बात का ढिंढोरा पीटना चाहिए कि नाम के अतिरिक्त सब के सिर पर काल का डंडा बना रहेगा और सम्पति आदि कुछ भी कार्य साधक नहीं होंगे।

१४. जब आत्मा जीवन खेल समाप्त कर लेगी और शरीर पीत हो जाएगा तब नीच कर्म करने वालों की क्या दशा होगी ?। ४।

१५. पिता पुत्रों को देख कर और पति अपनी शय्या पर नारी को देख कर प्रसन्न होता है।

१६. लोग शरीर को इत्र और चदन लगाते हैं, वस्त्र वेष और शृंगार वस्तुओं से साधन करते हैं (और प्रसन्न होते हैं)

१७. परन्तु जब जीव घर बार त्याग चला जाता है तब शरीर की मिट्टी मिट्टी में मिल जाती है। ५।

१८. लोग सरदार, बादशाह, राजा, राव अथवा खान कहलाते हैं।

१९. चौधरी और राजा कहाते हैं और अहंकार की अग्नि से जलते फिरते हैं।

२०. इस मनोमुख जीव ने नाम विस्मृत कर दिया है। अतः उसकी दशा वन की अग्नि से दग्ध शरकाण्ड जैसी होती है। ६।

२१. जो भी संसार में आया है, अहंकार की खेल खेल कर चला जाएगा।

२२. यह संसार काजल की कोठरी के समान है, जो इसमें आया है उसका तन, मन और देह (माया की कालिख में) राख हो गया है।

२३. परन्तु जिनको गुरु ने बचाया है, वे पवित्र हो गए हैं क्योंकि, गुरु ने शब्द द्वारा उनकी तृष्णा अग्नि शान्त करदी है (और उनको सुखी कर दिया है)। ७।

२४. (नानक) उस महाराजों के महाराजधिराज प्रभु के सत्य नाम के बल

से संसार-सागर के पार हुआ जाता है।

२५. हे प्रभु, मुझे तुम्हारा नाम न भूले। यह मेरा क्रोत बहुमूल्य रत्न है।

२६. मनोमुख लोग संसार-सागर में (माया मोह के कारण) नष्ठ हो जाते हैं, परन्तु गुरमुख लोग संसार-सागर को पार कर जाते हैं।८/१६

१७

१. मुकामु करि घरि बैसणा नित चलणै की धोख।
२. मुकामु ता परु जाणीऐ जा रहै निहचलु लोक। १।
३. दुनीआ कैसि मुकामे।
४. करि सिदकु करणी खरचु बाधहु लागि रहु नामे। १। रहाउ
५. जोगी त आसणु करि बहै मुला बहै मुकामि।
६. पंडित वखाणहि पोथीआ सिध बहहि देवसथानि। २।
७. सुर सिध गण गंधरब मुनिजन सेख पीर सलार।
८. दरि कूच कूचा करि गए अवरे भि चलणहार। ३।
९. सुलतान खान मलूक उमरे गए करि करि कूचु।
१०. घड़ी मुहति कि चलणा दिल समझु तूं भि पहूँचु। ४।
११. सबदाह माहि वखाणीऐ विरला त बूझै कोइ।
१२. नानकु वखाणै बेनती, जलि थलि महीअलि सोइ। ५।
१३. अलाहु अलखु अगंमु कादरु करणहारु करीमु।
१४. सभ दुनी आवण जावणी, मुकामु एकु रहीमु। ६।
१५. मुकामु किसनो आखीऐ, जिसु सिसि न होवी लेखु।
१६. असमानु धरती चलसी मुकामु ओही एकु। ७।
१७. दिन रवि चलै, निसि ससि चलै, तारिका लख पलोइ।
१८. मुकामु ओही एकु है, नानक सचु बुगोइ। ८/७।

पद-अर्थ

मुकामु—पक्का निवास स्थान; **चलणै**—(यहां से) चले जाने की; **धोख**—चिन्ता, धक् धक्; **निहचल**—स्थिर; **लोक**—संसार; **सिदकु**—निष्ठा धारण करके; **सिध**—सिद्ध योगी; **देव सथानि**—देवताओं के मंदिर में;

सुर—देवगण; **गण**—शिव आदि के सेवक; **गंधरब**—गंधर्व, देवलोक के गायक; **मुनिजन**—मौन धारण करने वाले; **सलार**—सरदार; **दरि कूच**—कूच कर गए, क्रमशः चले गए; **अवरे**—भेष, अन्य; **मलूक**—बादशाह; **उमरे**—अमीर लोग; **मुहति**—मुहूर्त: दो घड़ी; **पहूचु**—वहां पहुँच जाने वाला; **सबदाह**—शब्द द्वारा; **कादरु**—कादिर, मालिक; **करीमु**—कृपा करने वाला; **रहीम**—दया करने वाला; **सिसि**—सिर पर (संस्कृत 'शिरसि') **रवि**—सूर्य; **निसि**—रात्रि; **ससि**—चन्द्रमा; **तारिका**—तारे; **पलोइ**—लोप हो जाते हैं; **वगोइ**—(फारसी 'बगोयद') कहता है ।

टीका

१. जीव अपने घर को पक्का निवास स्थान समझ कर घर में बैठा है, यद्यपि उसे यहां से एक दिन चले जाने की चिन्ता सदा लगी रहती है ।

२. इसको पक्का निवास स्थान कोई तब समझे, जब यह संसार स्थायी हो ।

३. यह जगत स्थायी निवास-स्थान कैसे हो सकता है । (अतः भविष्य की चिन्ता करनी चाहिए) ?

४. निष्ठावान् हो कर परलोक के लिए शुभ कर्म रूपी व्यय धन संचित करो और हरिनाम में लगे रहो । १ ।

५. योगी आसन मार कर बैठता है, मुल्ला तकिए में (किसी पीर की कब्र के स्थान में) बैठता है —

६. पण्डित (एक स्थान पर बैठा हुआ) पुस्तकों का विचार सुनाता है और सिद्ध लोग देवालय में डेरे लगाते हैं । २ ।

७. (परन्तु वे भूल जाते हैं कि) देव-वृन्द, सिद्ध लोग, शिव सेवक 'गण' गन्धर्व, मुनिजन, शेख, पीर और सरदार,—

८. ये सब यथाक्रम चले गए और दूसरे भी चले जाने वाले हैं । ३ ।

९. जब सुलतान, खान, बादशाह और धनी लोग यथाक्रम चले गए,—

१०. तब, हे मन, तू भी समझ कि घड़ी दो घड़ी में तुझे भी यहां से चले जाना है । ४ ।

११. गुरु-शब्द-द्वारा (यह वास्तविकता) कही गई है, परन्तु बिरले ही इसको समझते हैं ।

१२. नानक सविनय कहता है कि (शाश्वत केवल) वह हरि है जो जल, स्थल, भूमि और आकाश में व्याप्त है। ५।

१३. (अविचल) अल्लाह है जो गणना से परे हैं, पहुँच से रहित, प्रकृति का स्वामी है. सृष्टि कर्त्ता है और कृपालु है।

१४. वह दयास्वरूप परमात्मा ही स्थायी है। शेष समस्त संसार को क्षणभंगुर समझो।

१५. स्थायी केवल वह कहा जा सकता है जिसके मस्तक पर कर्मों के लेख नहीं (कर्मों का जन्म होता है तत्पश्चात् मृत्यु)।

१६. (यह निश्चित जानों कि) आकाश और पृथ्वी नष्ट होंगे, स्थायी केवल वही (प्रभु) है। ७।

१७. दिन का सूर्य चला जाएगा, रात्रि का चन्द्र चला जाएगा, लाखों तारे लुप्त हो जाएंगे।

१८. स्थायी केवल एक वह (प्रभु) ही है, (नानक) तू यह सत्य ('निर्भय होकर उच्च स्वर से) कह दे। ८/१७।

सिरी रागु महला १ घरु ३

१. जोगी अंदरि जोगीआ तूं भोगी अंदरि भोगीआ।

२. तेरा अंतु न पाइआ सुरगि मछि पइआलि जीउ। १।

३. हउ वारी हउ वारणै कुरबाणु तेरे नाव नो। १। रहाउ।

४. तुधु संसारु उपाइआ।

५. सिरे सिरि धंधे लाइआ।

६. वेखहि कीता आपणा करि कुदरति पासा ढालि जीउ। २।

७. परगटि पाहारै जापदा।

८. सभु नावै नो परतापदा,

९. सति गुर बाझु न पाइओ सभ मोही माइआ जालि जीउ। ३।

१०. सतिगुर कउ बलि जाईऐ।

११. जितु मिलिऐ परम गति पाईऐ।

१२. सुरिनर मुनिजन लोचदे सो सतिगुर दीआ बुझाइ जीउ। ४।

१३. सतसंगति कैसी जाणीऐ।

१४. जिथै एको नानु वखाणीऐ ।

१५. एको नामु हुकमु है नानक सतिगुरि दीआ बुझाइ जीउ । ५ ।

१६. इहु जगतु भरमि भुलाइआ ।

१७. आपहु तुधु खुआइआ ।

१८. परतापु लगा दोहागणी भाग जिना के नाहि जीउ । ६ ।

१९. दोहागणी किआ नीसाणीआ ।

२०. खसमहु घुथीआ फिरहि निमाणीआ ।

२१. मैले वेस तिना कामणी दुखी रैणि विहाइ जीउ । ७ ।

२२. सोहागणी किआ करमु कमाइआ ।

२३. पूरबि लिखिआ फलु पाइआ ।

२४. नदरि करे के आपणी आपे लए मिलाइ जीउ । ८ ।

२५. हुकमु जिना नो मनाइआ ।

२६. तिन अंतरि सबदु वसाइआ ।

२७. सहीआ से सोहागणी जिन सह नालि पिआरु जीउ । ९ ।

२८. जिना भाणे का रसु आइआ ।

२९. तिन विचहु भरमु चुकाइआ ।

३०. नानक सतिगुरु ऐसा जाणीऐ सो सभसै लए मिलाइ जीउ । १० ।

३१. सतिगुरि मिलिऐ फलु पाइआ ।

३२. जिनि विचहु अहकरणु चुकाइआ ।

३३. दुरमति का दुखु कटिआ भागु बैठा मसतकि आइ जीउ । ११ ।

३४. अंम्रितु तेरी बाणीआ ।

३५. तेरिआ भगता रिदै समाणीआ ।

३६. सुख सेवा अंदरि रखिऐ आपणी नदरि करहि निसतारि जीउ । १२ ।

३७. सतिगुरु मिलिआ जाणीऐ ।

३८. जितु मिलिऐ नामु वखाणीऐ ।

३९. सतिगुरु बाझु न पाइओ सभ थकी करम कमाइ जीउ । १३ ।

४०. हउ सतिगुर विटहु घुमाइआ ।

४१. जिनि भ्रमि भुला मारगि पाइआ ।
४२. नदरि करे जे आपणी आपे लए रलाइ जीउ । १४ ।
४३. तूं सभना माहि समाइआ ।
४४. तिनि करतै आपु लुकाइआ ।
४५. नानक गुरमुखि परगटु होइआ जा कउ जोति धरी करतारि जीउ । १५ ।
४६. आपे खसमि निवाजिआ ।
४७. जीउ पिंडु दे साजिआ ।
४८. आपणे सेवक की पैज रखीआ दुइ कर मसतकि धारि जीउ । १६ ।
४९. सभि संजम रहे सिआणपा ।
५०. मेरा प्रभु सभु किछु जाणदा ।
५१. प्रगटप्रतापु वरताइओ सभु लोकु करै जैकारु जीउ । १७ ।
५२. मेरे गुण अवगन न वीचारिआ ।
५३. प्रभि आपणा बिरदु समारिआ ।
५४. कंठि लाइकै रखिओनु लगै न तती वाउ जीउ । १८ ।
५५. मै मनि तनि प्रभू धिआइआ ।
५६. जीइ इछिअड़ा फलु पाइआ ।
५७. साह पातिसाह सिरि खसमु तूं जपि नानक जीवै नाउ जीउ ।१९।
५८. तुधु आपे आपु उपाइआ ।
५९. दूजा खेलु करि दिखलाइआ ।
६०. सभु सचो सचु वरतदा जिसु भावै तिसै बुझाइ जीउ । २० ।
६१. गुरपरसादी पाइआ ।
६२. तिथै माइआ मोहु चुकाइआ ।
६३. किरपा करि कै आपणी आप लए समाइ जीउ । २१ ।
६४. गोपी नै गोआलीआ ।
६५. तुधु आपे गोइ उठालीआ ।
६६. हुकमी भांडे साजिआ तूं आपे भंनि सवारि जीउ । २२ ।
६७. जिन सतिगुर सिउ चितु लाइआ ।

६८. तिनि दूजा भाउ चुकाइग्रा ।

६९. निरमल जोति तिन प्राणीआ ओइ चले जनमु सवारि जीउ । २३ ।

७०. तेरीग्रा सदा सदा चंगिग्राईग्रा ।

७१. मै राति दिहै वडिग्राईग्रा ।

७२. अणमंगिग्रा दानु देवणा कहु नानक सचु समालि जीउ ।२४।१।

पद-ग्रर्थ

जागी—योगी, त्यागी; **भोगी**—माया के पदार्थो का भोक्ता; **सुरगि**—स्वर्ग निवासी (देवता); **मछि**—मर्त्य लोक निवासी; **पइआलि**—पाताल निवासी; **नाव नो**—नाम से; **सिरे सिरि**—प्रत्येक सिर को, प्रत्येक प्राणी को; **पासा ढालि**—चौसर खेल कर; **परगटि**—प्रत्यक्ष; **पाहारै**—प्रसार; **परतापदा**—परितप्त होता है; **बलि**—बलिहारी; **गति**—पदवी; **सुरिनर**—दिव्यगुणशाली पुरुष; **मुनिजन**—मौनी पुरुष; **खुग्राइग्रा**—खो दिया, भुलाया; **परतापु**—प्रबल ताप; महान् दुःख; **दोहागणी**—परित्यक्ता नारियां; **धुथीआ**—वियुक्ता, मिलाप से अलग हुई; **रंणि**—रहने का प्रकार, जीवन; **विहाइ**—समाप्त होती है; **पूरबि**—पूर्वतन (परमात्मा द्वारा लिखा हुआ लेख); **सहीग्रा**—सहेलियां; **सहु**—शाह, पति; **ग्रहकरण**—ग्रहंकारी; **भागु**—सौभाग्य; **ग्रंम्रित**—ग्रमर करने वाली; **सुख-सेवा**—सुख दायक सेवा; **वखाणिए**—कहिए; **बिटहु**—से; **खसमि**—स्वामी ने; **निवाजिआ**—प्रशंसित किया; **पंज**—प्रतिष्ठा; **दुइकर**—दोनों हाथ; **संजम**—मर्यादा, नियन्त्रण; **बिरद**—धर्म, शुभ; **जीइ**—मन में; **दूजा**—द्वैत का; **चुकाइआ**—दूर किया, **नै**—नदी, यमुना नदी; **गोग्रालीग्रा**—गोपाल, कृष्ण; **गोइ**—गौ, पृथ्वी; **दूजा भाव**—द्वैत; **समालि**—स्मरण कर ।

टीका

१. हे प्रभु, योगियों के भीतर तुम स्वयं ही योगी होकर विद्यमान हो ग्रौर भोगियों के भीतर भोगी होकर (तुम्हारी यह लीला कितनी विचित्र है) ।

२. स्वर्ग, मर्त्य ग्रौर पाताल लोक में किसी को भी तुम्हारा ग्रंत नहीं मिला । १ ।

३. मैं तुम्हारे नामों पर न्यौछावर, बलिहारी और कुरबान होता हूं (जो कुछ मैं देखता हूं मुझे तुम्हारा ही नाम (रूप प्रकाश, प्रत्यक्ष दर्शन) होकर दिखाई देता है। (जेता कीता तेता नाउं, बलिहारी जाउ जेते तेरे नाव है।)

४. हे प्रभु, तुमने ही संसार उत्पन्न किया है।

५. और इसके प्रत्येक जीव को (उनके कर्मों के अनुसार) धंधों में लगाया है।

६. तुम स्वयं ही प्रकृति का निर्माण करके जीवों को चौसर की सारों के समान चला रहे हो और अपना बनाया हुआ खेल देख रहे हो। २।

७. वह प्रभु संसार के प्रसार में प्रत्यक्ष व्याप्त दिखाई देता है।

८. प्रत्येक जीव (ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञानपूर्वक) उसके नाम का इच्छुक है (सांसारिक पदार्थों के होते हुए भी यह आकांक्षा समाप्त नहीं होती)।

९. परन्तु सच्चे गुरु के बिना नाम प्राप्त नहीं होता और सब लोग माया के जाल में फंसे रहते हैं। ३।

१०. हे भाई, मैं सद्गुरु पर बलिहारी जाता हूं।

११. जिसके मिलाप से परम पदवी (मुक्ति) प्राप्त कर ली जाती है।

१२. जिसके (नाम के) लिए दिव्यगुणशाली पुरुष और मौनी जन इच्छा करते हैं, वह (नाम) सद्गुरु ने मुझे समझा दिया है। ४।

१३. कैसे जन-समुदाय को सत्संगति का नाम देना चाहिए?

१४. उसको, जहां केवल नाम की ही प्रशंसा की जाती है।

१५. (जीवन की सम्पूर्णता के निमित्त) एक नाम जपना ही आदेश है। (नानक) यह तथ्य सच्चे गुरु ने समझा दिया है। ५।

१६. यह जगत् भ्रम में भूला फिरता है।

१७. परन्तु हे प्रभु, तुमने स्वयं ही विश्व जीवों को जीवनमार्ग से पृथक कर दिया है।

१८. तुम से वियुक्त होकर जीव रूपी नारियां, जिनके भाग्य अच्छे नहीं, दुःखी हैं। ६।

१९. वियुक्ता दुर्भाग्यवतियों की क्या पहचान है? (उत्तर अगले पद में है)।

२०. जो प्रभु–पति से वियुक्त हो कर निराश्रय होकर भटकती फिरती हैं।

२१. उनका जीवन-वेष मलिन है (दुष्कर्म करती हैं) और उनकी रात्रि दुःखों में व्यतीत होती है। ७।

२२. सौभाग्यवतियों ने क्या कर्म किए हैं (जिनके कारण प्रभु-पति से अवियुक्त हैं।

२३. उन्होंने पूर्ववर्त्ती कर्मों का फल (मिलाप के रूप में) प्राप्त किया है।

२४. प्रभु ने कृपा करके उन्हें अपने साथ मिला लिया है। ८।

२५. जिनसे प्रभु अपना आदेश मनवा लेता है....

२६. उनके भीतर (पहले) गुरु शब्द का प्रवेश कराता है।

२७. वे बहिनें (सहेलियां) सौभाग्यवती हैं जिनके हृदय में प्रभु का प्रेम है। ९।

२८. जिन जीव रूपी नारियों को प्रभु की इच्छा अच्छी लगी है।—

२९. उनके अन्तः करण से अज्ञान दूर हो जाता है।

३०. (नानक) सद्गुरु को ऐसा समझो कि वह सब को प्रभु से मिला देता है।

३१. सद्गुरु से मिलने से यह फल मिलता है।

३२. कि वह प्राणी के हृदय से अहंकार दूर कर देता है।

३३. वह दुर्बुद्धि जनित दुःख नष्ट करता है। इस प्रकार प्राणी के मस्तक के भाग्य खुलते हैं। ११।

३४. हे प्रभु, तुम्हारी वाणी अमर कर देती है।

३५. इस (वाणी) का वास तुम्हारे प्रेमियों के हृदय में होता है।

३६. तुम अपनी कृपा से उनको सुखदायिनी अपनी सेवा में लगा लेते हो और उनका उद्धार कर देते हो। १२।

३७. गुरु का मिलाप तब समझना चाहिए, . . .

३८. जब उसके मिलन से नाम जपा जाए।

३९. सद्गुरु के बिना किसी को नाम प्राप्त नहीं हुआ। समग्र जगत् (तीर्थ, व्रत, नियमादि) अनेक कर्म कर करके थक गया है। १३।

४०. मैं सच्चे गुरु पर न्यौछावर जाता हूं।

४१. जिसने मुझ भूले-भटके, कुमार्गगामी को मार्ग पर लगा दिया है।

४२. यदि वह (गुरु) कृपा करे/तो वह प्रभु से मिला लेता है। १४।

४३. हे प्रभु, तुम समस्त प्राणियों में व्याप्त हो।

४४. परन्तु उस कर्त्ता ने अपने आपको छिपाया हुआ है।

४५. (नानक), (वह छिपा हुआ प्रभु) उस गुरु द्वारा प्रत्यक्ष हुआ है जिस गुरु में परमात्मा ने अपनी ज्योति रखी है। १५।

४६. प्रभु ने स्वयं ही अपने सेवक को महत्ता दी है।

४७. आप ही ने पहले आत्मा और शरीर देकर उसको बनाया है।

४८. (फिर) आप ही उसके मस्तक पर दोनों हाथ रख कर सेवक की प्रतिष्ठा रखी है। १६।

४९. (सेवक) संयम, नियंत्रण तथा अन्य चतुरताओं का त्याग कर बैठा है (वह प्रभु के आश्रित हो चुका है)।

५०. प्रिय प्रभु सेवक की समग्र मानसिक दशाएं जानता है।

५१. वह सेवक का प्रताप प्रत्यक्ष प्रकट कर देता है और सभी लोक उसका जय जयकार करते हैं। १७।

५२. प्रभु ने मेरे गुणों, अवगुणों का विचार नहीं किया :

५३. उसने अपने पूर्व विरद का स्वभाव निभाया है।

५४. उसने मुझे कण्ठ लगा कर (विकारों से) बचाया है, और मुझे (माया के हाथ से) लेशमात्र दुःखी नही होने दिया। १८।

५५. मैंने मन और तन से प्रभु का स्मरण किया है।

५६. जिसकी मेरे मन में इच्छा थी, मुझे वह नाम रूपी फल प्राप्त हो गया है।

५७. हे प्रभु, तुम राजों, महाराजों के शीर्षस्थ, तथा स्वामी हो। (नानक) जीव उसका नाम जपकर जीता है। १९।

५८. हे प्रभु, तुमने स्वयं ही अपने आपको उत्पन्न किया है (निर्गुण से ही सगुण उत्पन्न हुआ है।)

५९. तुमने ही संसार के खेल को द्वैत भाव करके दिखाया है।

६०. परन्तु समस्त रूपों में वह सत्य ही सत्य व्याप्त है। जिस पर उसकी कृपा होती है उसे (इस खेल के रहस्य को) समझा देता है। २०।

६१. जिस ने गुरु की कृपा से प्रभु का भेद प्राप्त किया है। . . . .

६२. उसके हृदय से माया का प्रम समाप्त हो गया है।

६३. प्रभु स्वयं ही कृपा कर के उसे अपने साथ मिला लेता है। २१।

६४. हे प्रभु, तुम स्वयं ही गोपी हो, स्वयं ही यमुना नदी हो, स्वयं ही गोपाल (कृष्ण) हो।

६५. तुमने स्वयं ही पृथ्वी (गोवर्धन पर्वत) को उठाकर रखा है।

६६. तुम अपनी आज्ञा के अनुसार बर्तन (प्राणी) उत्पन्न करते हो, स्वयं ही बर्तन तोड़ देते हो और स्वयं ही पुनः उत्पन्न कर देते। २२।

६७. जिन्होंने सच्चे गुरु से प्रेम लगाया है . . .

६८. उन्होंने माया का प्रेम समाप्त कर दिया है।

६९. उन जीवों के भीतर निर्मल प्रभु की ज्योति चमकती है और वे जन्म संवार कर यहां से जाते हैं। २३।

७०. हे प्रभु, तुम्हारे गुण और सद्धर्म शाश्वत हैं।

७१. (अतः) मैं दिन-रात इन गुणों की प्रशंसा करता रहता हूं।

७२. (नानक) प्रभु जीवों को मांगे बिना दान देता है। (अतः) उस सत्यस्वरूप को तू सदा अपने हृदय में बसाए रख। २४।

सिरी रागु पहरे* महला १

१. पहिलै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा हुकमि पइआ गरभासि

२. उरध तपु अंतरि करे वणजारिआ मित्रा खसम सेती अरदासि।

३. खसम सेती अरदासि वखाणै उरध धिआनि लिव लागा।

४. नामरजादु आइआ कलि भीतरि बाहुड़ि जासी लागा।

५. जैसी कलम वुड़ी है मसतकि तैसी जीअड़े पासि।

६. कहु नानक प्राणी पहिलै पहरै हुकमि पइआ गरभासि। १।

७. दूजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा विसरि गइआ धिआनु।

---

*इस वाणी में मनुष्य वह सार्थवाह माना गया है जो कहीं विदेश में रात्रि व्यतीत करता है और अपने वाणिजिक पदार्थों की रक्षा के हेतु रात्रि का एक-एक प्रहर जाग कर व्यतीत करता है। यहां मानव जीवन को रात्रि का एक नाम दिया गया है, तथा बाल्य आदि चार अवस्थाओं को चार प्रहरों का।

८. हथो हथि नचाईऐ वणजारिआ मित्रा जिउ जसुदा घरि कानु ।

६. हथो हथि नचाईऐ प्राणी मात कहै सुतु मेरा ।

१०. चेति अचेत मूड़ मन मेरे अंति नहीं कछु तेरा ।

११. जिनि रचि रचिआ तिसहि न जाणै मन भीतरि धरि गिआनु ।

१२. कहु नानक प्राणी दूजै पहरै विसरि गइआ धिआनु । २ ।

१३. तीजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा धन जोबन सिउ चितु ।

१४. हरि का नामु न चेतही वणजारिआ मित्रा बधा छूटहि जितु ।

१५. हरि का नामु न चेतै प्राणी बिकलु भइआ संगि माइआ ।

१६. धन सिउ रता जोबनि मता अहिला जनमु गवाइआ ।

१७. धरम सेती वापारु न कीतो करमु न कीतो मितु ।

१८. कहु नानक तीजै पहरै प्राणी धन जोबन सिउ चितु । ३ ।

१६. चउथै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा लावी आइआ खेतु ।

२०. जा जमि पकड़ि चलाइआ वणजारिआ मित्रा किसै न मिलिआ भेतु ।

२१. भेतु चेतु हरि किसै न मिलिओ जा जमि पकड़ि चलाइआ ।

२२. झूठा रुदनु होआ दोआलै खिन महि भइआ पराइआ ।

२३. साई वसतु परापति होई जिस सिउ लाइआ हेतु ।

२४. कहु नानक प्राणी चउथै पहरै लावी लुणिआ खेतु । ४ ।

पद-अर्थ

पहरै—प्रहर में; **रैणिकै**—जीवन रूपी रात्रि के; **गरभासि**—माता के पेट में; **उरध**—उलटा; **वखाणै**—कहे; **नामरजादु**—मर्यादाहीन; नग्न; **कलि**—संसार में; **बाहुड़ि**—पुनः; **वुड़ी**—वही है, चली है; **जसुदा**—यशोदा, जिसने कृष्ण जी को पाला था; **कानु**—कृष्ण; **नचाई ऐ**—खिलाया जाता है; **सुतु**—पुत्र; **अचेत**—अज्ञानी, मूर्ख; **भीतरि**—अन्दर; **विकलु**—व्याकुल, विकल हुआ; **मता**—मत्त; **अहिला**—आला (अरबी शब्द), उत्तम, उच्च; **करमु**—शुभ कर्म; **लावी**—कटाई करने वाला, यमराज; **चेतु**—हृदय का निश्चय; **रुदनु**—रोना; **हेतु**—प्रेम; **लुणिआ**—काट लिया ।

टीका

१. नाम का व्यापार करने के लिए आए हुए, हे जीव मित्र, जीवन रात्रि के प्रथम प्रहर में तूने प्रभु की आज्ञा के अनुसार माता के गर्भाशय में निवास किया।

२. हे वाणिजिक मित्र, तूने माता के उदर में उलटा लटक कर तप किया और प्रभु स्वामी से प्रार्थना की।

३. (यह वाणिजिक) प्रभु स्वामी से प्रार्थना करता है, उलटा लटक कर, प्रभु का स्मरण करता है और उसमें सुरति जोड़ता है।

४. यह निर्वस्त्र संसार में आता है, और निर्वस्त्र ही यहां से चला जाएगा।

५. जैसी लेखनी जीव के मस्तक पर चली है (प्रभु द्वारा लेख लिखा गया है) वही कुछ उसे प्राप्त हुआ है।

६. (नानक) जीवन के प्रथम प्रहर में प्रभु के आदेश के अनुसार जीव माता के उदर में निवास लेता है।

७. नाम का वाणिज्य करने के लिए आए हुए हे मित्र, जीवन-रात्रि के द्वितीय प्रहर में तेरा ध्यान प्रभु की ओर से उखड़ गया है।

८. (जन्म के पश्चात) जीव हाथों हाथ इस प्रकार नचाया, खिलाया जाता है, जैसे यशोदा के घर कृष्ण खिलाया जाता था।

९. (संबधियों के) हाथों में खिलाया जाता है और माता कहती है कि पुत्र मेरा है।

१०. मूर्ख, विवेक हीन, हे मेरे मन, प्रभु का स्मरण कर, अन्तिम समय कोई वस्तु तेरी नहीं रहेगी।

११. हे जीव, जिस प्रभु ने तेरी रचना की है, तू मन में उसका ज्ञान वरण कर के (ज्ञान प्राप्त करके) ध्यान नहीं करता।

१२. (नानक) हे जीव, जीवन के द्वितीय प्रहर में तेरा ध्यान प्रभु से हट गया। २।

१३. नानक के वाणिजिक हे मित्र, जीवन रात्रि के तृतीय भाग में तू धन-यौवन के रसों में मस्त हो गया।

१४. हे वाणिजिक मित्र, तू भगवान् के नाम का स्मरण नहीं करता, जिस से तू जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

१५. जीव हरि के नाम का स्मरण नहीं करता, माया में इतना मग्न है।

१६. धन और यौवन के उन्माद में रहने से यह उत्तम जन्म गंवा लेता है।

१७. धन, यौवन के उन्माद में धर्म से संबन्ध नहीं जोड़ता और न ही शुभ कर्म को अपना मित्र (साथी) बनाता है।

१८. (हे नानक, कह कि) जीवन रात्रि के तृतीय प्रहर में जीव धन यौवन में चित्त लगाए रखता है। ३।

१९. नाम का व्यापार करने के लिए आए हुए हे जीव मित्र, जीवन रात्रि के चतुर्थ प्रहर में तू (जीवन-क्षेत्र को) काटने के लिए आ पहुंचा।

२०. जब यमराज ने आकर जीवात्मा को पकड़ कर आगे कर लिया तब किसी को भी पता नहीं लगा कि यह क्या हुआ?

२१. जब यमराज ने पकड़ कर आगे कर लिया तब मृत्यु के रहस्यों और प्रभु के निश्चय का पता किसी को नहीं लगा।

२२. (मृत्यु के पश्चात् प्राणी के चतुर्दिक) सम्बन्धियों का मिथ्या रोना हुआ, और यह प्राणी (जिसे सब अपना कहते थे) अब पराया हो गया।

२३. जीव (धन और यौवन के उन्माद में) जो कर्म करता रहा था वही उसे परिणामस्वरूप मिले (उन्हीं का फल इसे भोगना पड़ा)।

२४. (नानक) हे जीव, जीवन-रात्रि के चतुर्थ प्रहर में यमदूतों ने आकर शरीर क्षेत्र को काट लिया। ४।

सिरी रागु महला १

१. पहिलै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा बालक बुधि अचेतु।

२. खीरु पीऐ खेलाईऐ वणजारिआ मित्रा मात पिता सुत हेतु।

३. मात पिता सुत नेहु घनेरा माइआ मोहु सबाई।

४. संजोगी आइआ किरतु कमाइआ करणी कार कराई।

५. रामनाम बिनु मुकति ना होई बूडी दूजै हेति।

६. कहु नानक प्राणी पहिलै पहरै छूटहिगा हर चेति। १।

७. दूजै पहरै रैणि के वणजारिआ मित्रा भरि जोबनि मै मति।

८. अहिनिसि कामि विआपिआ वणजारिआ मित्रा अंधुले नामु न चिति।

९. राम नामु घटि अंतरि नाही होरि जाणै रस कस मीठे ।
१०. गिआनु धिआनु गुण संजमु नाही जनमि मरहुगे झूठे ।
११. तीरथ वरत सुचि संजमु नाही करमु धरमु नहीं पूजा ।
१२. नानक भाइ भगति निसतारा दुबिधा विआपै दूजा । २ ।
१३. तीजै पहरै रैणि के वणजारिआ मित्रा सरि हंस उलथड़े आइ ।
१४. जोबनु घटै जरूआ जिणै वणजारिआ मित्रा आव घटै दिनु जाइ ।
१५. अंति कालि पछुतासी अंधुले जा जमि पकड़ि चलाइआ ।
१६. सभु किछु अपुना करि करि राखिआ खिन महि भइआ पराइआ ।
१७. बुधि विसरजी गई सिआणप करि अवगुण पछुताइ ।
१८. कहु नानक प्राणी तीजै पहरै प्रभु चेतहु लिव लाइ । ३ ।
१९. चउथै पहरै रैणि के वणजारिआ मित्रा बिरधि भइआ तनु खीणु ।
२०. अखी अंधु न दीसई वणजारिआ मित्रा कंनी सुणै न वैण ।
२१. अखी अंधु जीभ रसु नाही रहे पराकउ ताणा ।
२२. गुण अंतरि नाही किउ सुखु पावै मनमुख आवण जाणा ।
२३. खडु पकी कुड़ि भजै बिनसै आइ चलै किआ माणु ।
२४. कहु नानक प्राणी चउथै पहरै गुरमुखि सबदु पछाणु । ४ ।
२५. ओड़कु आइआ तिन साहिआ वणजारिआ मित्रा जरु जरवाणा कंनि ।
२६. इक रती गुण न समाणिआ मित्रा अवगण खड़सनि बंनि ।
२७. गुण संजमि जावै चोट न खावै न तिसु जंमणु मरणा ।
२८. कालु जालु जमु जोहि न साकै भाइ भगति भै तरणा ।
२९. पति सेती जावै सहजि समावै सगले दुख मिटावै ।
३०. कहु नानक प्राणी गुरमुखि छूटै साचे ते पति पावै । ५/२ ।

पद-अर्थ

बालक बुद्धि—बच्चों की सी बुद्धि, अनजान बुद्धि; **खीरु**—क्षीर, दूध; **सुतु**—पुत्र; **घनेरा**—अधिक; **सुबाई**—सब को; **संजोगी**—भाग्य के

कारण: **बूड़ी**—डूब गई, द्वैत भाव में; **मैं मति**—मद्य (यौवन) की मत्तता; **अहिनिसि**—दिनरात; **रस कस**—कषाय आसि छः रस; **संजमु**—इन्द्रियों का दमन, संयम; **सरि**—सरोवर पर, तात्पर्य, सिरपर; **हंसु**—हंस पक्षी, तात्पर्य श्वेत केश; **उलथड़े**—आ उतरे. **जरूआ**—जरा का वय, वार्धक्य; **आव**—आयु; **विसरजी**—त्यागी, विदा की; **खीणु**—क्षीण, कृश; **वैण**—वचन; **अखी अंधु**—आंखों के सम्मुख अंधेरा है; रहे **पराकउताणा**—उद्यम और शक्ति क्षीण हो गये; **खड़**—खेती; **कुड़िभजै**—कड़क कर टूटती है; **ओड़क**—अन्त; **साहिआ**—श्वासों का; **जरु**—वृद्धावस्था; **जरवाणा**—अत्याचारी; **कंनि**—कन्धे पर; **खड़सनि**—ले जाएगे; **गुण संजमि**—गुणों के और संयम (आत्म-नियंत्रण) के साथ; **काल**—मृत्यु; **जालु**—माया का जाल; **जोहि न साकै**—ताकते नहीं, देख नहीं सकते; **सहजि**—परम शान्ति में; **गुरमुखि**—गुरु द्वारा।

टीका

१. नाम का व्यापार करने के लिए गए हुए हे वाणिजिक मित्र, जीवन =रात्रि के प्रथम प्रहर में जीव की बुद्धि बाल बुद्धि है और यह (नाम के प्रति) निश्चिन्त रहता है।

२. (यह बालक) (माता का) दूध पीता है इसका मन खेलों में रमा रखा जाता है, और इस पुत्र के साथ माता पिता का गहरा प्रेम होता है।

३. माता-पिता का पुत्र के साथ भारी प्रेम होता है। यह माया का मोहजाल है जो समस्त संसार में व्याप्त है।

४. जीव (पूर्व कर्मो से उत्पन्न) भाग्य के अनुसार संसार में आता है और यहा आकर पूर्व कर्मो से बने स्वभाव के अनुसार कर्म करता है और पुन: उन कर्मों का फल उसे आगे कार्यरत करता है।

५. नाम-स्मरण के बिना मनुष्य की मुक्ति नहीं हो सकती। समस्त संसार द्वैत (माया) के प्रेम में मग्न है।

६. (नानक) हे जीव, तू जीवन के प्रथम प्रहर में नाम-स्मरण के बल से ही (माया-मोह से) मुक्त होगा। १।

७. नाम का व्यापार करने के लिए आए हुए हे वाणिजिक मित्र, जीवन-रात्रि के द्वितीय प्रहर में पूर्ण यौवन के कारण प्राणी की बुद्धि को मद्य का सा उन्माद अभिभूत कर लेता है।

८. दिन-रात काम (क्रीडा) में उन्मत्त रहता है। (काम में) अन्धे हुए को नाम विस्मृत हो जाता हैं।

९. राम-नाम हृदय में नहीं टिकता, और अनेक मधुर कषाय रसों के स्वाद पहचानता है (नाम-रस नहीं पहचानता)।

१०. असत्य (विकारों में लीन) हे जीव, तूने प्रभु को नहीं जाना, न उसमें सुरति जोड़ी, गुणयुक्त आचार का पालन नहीं किया। (अतः) तू जन्म-मरण के आवर्त में मग्न रहेगा।

११. हे जीव, तू तीर्थ, व्रत, शुद्धि, संयम और पूजा के धार्मिक कर्म भी नहीं करता।

१२. (नानक) प्रभु-भक्ति और प्रेम-द्वारा ही (कामादि से) मुक्ति मिलती है, अन्यथा द्विचिन्तता में रहने से तो माया का मोह ही चिपटता है। २।

१३. नाम का व्यापार करने के लिए आए हुए हे मित्र, जीवन-रात्रि के तृतीय प्रहर में (जीवन के) सरोवर पर, सिर पर हंस (श्वेतकेश) आ गए हैं।

१४. हे अन्धे (अज्ञानी) जीव जब यमराज पकड़ कर आगे कर लेगा तब, अन्तिम समय में, तू पछताएगा।

१५. युवावस्था क्षीण होती जाती है वार्धक्य विजयी होता जाता है। परन्तु दिनों के बीतने के साथ साथ आयु न्यून होती जाती है।

१६. वह सब कुछ, जिसे तूने अपना समझ कर, संभाल-संभाल कर रखा था, एक क्षण में पराया हो जाएगा।

१७. (माया-मोह में) बुद्धि मारी जाती है, चतुरता चली जाती है। अशुभ कर्म कर-कर के मनुष्य (अन्त में) पछताता है।

१८. (नानक), हे जीव, जीवन-रात्रि के तृतीय प्रहर में चित्त वृत्ति एकाग्र कर के परमात्मा का स्मरण कर। ३।

१९. नाम वाणिज्य करने के लिए आए हुए हे मित्र, जीवन-रात्रि के चतुर्थ प्रहर में मनुष्य वृद्ध हो जाता है और शरीर शिथिल।

२०. नेत्रों के सम्मुख अन्धकार आ जाता है; उनसे कुछ दिखाई नहीं देता, कानों से शब्द सुनाई नहीं देता है।

२१. नेत्र, ज्योतिहीन हो जाते हैं, जिहवा की रसन शक्ति नष्ट हो जाती, है उद्यम और शक्ति क्षीण हो जाते हैं।

२२. अपने अन्दर गुण होते नहीं, सुख कैसे प्राप्त हो ? मनोमुख पुरुष के लिए जन्म-मरण का चक्र बना रहता है ।

२३. जैसे पकी हुई फसल का तना कड़क कर टूट जाता है (वैसे ही बुढ़ापा आने पर शरीर नष्ट हो जाता है(। जीव संसार में आता है, चला जाता है । संसार की किसी वस्तु का क्या अभिमान किया जा सकता है ?

२४. (नानक) हे प्राणी जीवन-रात्रि के चतुर्थ प्रहर में (वृद्धावस्था में) गुरु द्वारा दिए शब्द को पहचान । ४ ।

२५. नाम का वाणिज्य करने के लिए आए हुए हे मित्र, जो श्वास मिले थे उनका अन्त आ गया, क्रूर वार्धक्य कन्धे पर नाचने लगा है ।

२६. हे वाणिजिक मित्र, जिसके हृदय में प्रभु-गुण नहीं टिके (उसने अवगुणों का जीवन व्यतीत किया है), उसके अपने अवगुण ही उसे बांध कर ले जाएंगे (कर्मों के चक्र में फिराएंगे) ।

२७. परन्तु जो जीव गुणों का और संयम का जीवन व्यतीत करके जाता है उसे यमराज के आघात नहीं सहने पड़ते हैं और वह जन्म-मरण के चक्र से निकल जाता है ।

२८. मृत्यु का जाल और यम का भय उसकी ओर देख भी नहीं सकते, प्रत्युत वह प्रभु-प्रेम और भक्ति के बल से पार हो जाता है ।

२९. वह यहां से मान सहित जाता है, जा कर स्थिर प्रभु में लीन हो जाता है और अपने समस्त दुःखों का नाश कर लेता है ।

३०. (नानक) प्रत्येक प्राणी गुरु की सहायता से ही (माया-मोह) से मुक्ति प्राप्त करता है, और सत्य-स्वरूप भगवान् से आदर पाता है । ५/२ ।

सिरी राग की वार, महला ४ (में से) सलोक म० १

१. दाति साहिब संदिआ किआ चलै तिसु नालि ।
२. इक जागंदे ना लहंनि इकना सुतिआ देइ उठालि । १ ।

पद-अर्थ

संदिआ—की; **चलै**—उपाय सफल होता है, यत्न सफल होता है; **लहंनि**—प्राप्त करते हैं, **उठालि**—उठा कर ।

टीका

१. सब देन स्वामी (परमात्मा) की हैं। उसके सम्मुख कोई बल प्रकट नहीं कर सकता।

२. उसकी देनें कई जागते जीवों को नहीं मिलतीं। परन्तु वह जिन्हें देना चाहते हैं उन सोते हुए जीवों को उठाकर वह जो देना होता है वह दे देता है। १।

महला

१. सिदकु सबूरीं सादिका सबरु तोसा मलाइकां।

२. दीदारु पूरे पाइसा थाउ नाही खाइका। २।

पद-अर्थ

सबूरी—सन्तोष, कृतज्ञता; **सादिका**—निष्ठावानों के पास; **तोसा**—मार्ग का खर्च, पाथेय; **मलाइकां**—मलक, देवता पुरुष, गुरुमुख; **दीदारु**—दर्शन; **पाइसा**—पाते हैं; **खाइकाँ**—केवल बातें बनाने वाले, गप्पी।

टीका

१. निष्ठावानों के पास बिश्वास और कृतज्ञता का पाथेय है और गुरुमुखों के पास सन्तोष का पाथेय है।

२. ये लोग पूर्ण, प्रभु, का दर्शन कर लेते हैं। परन्तु केवल बातें बनाने वालों को (प्रभु के घर) कोई स्थान नहीं मिलता। २।

सलोक महला

१. फकड़ जाती फकड़ु नाउ।

२. सभना जीआ इका छाउ।

३. आपहु जे को भला कहाए।

४. नानक तापरु जापै जा पति लेखै पाइ। १।

पद-अर्थ

फकड़—व्यर्थ; **नाउ**—यश, कीर्ति, गौरव; **छाउ**—आश्रय; **लेखै**—(हरि के) लेख में।

टीका

१. जाति (का अहंकार) व्यर्थ है। नाम (महान् होने) का अहंकार व्यर्थ है।

२. (क्योंकि) समस्त प्राणियों को एक प्रभु का आश्रय है।

३. यदि कोई अपने आपको (जाति अथवा कीर्ति के कारण) अच्छा कहलवाता है (तो वह अच्छा नहीं हो जाता है)।

४. (नानक) कोई अच्छा तब दिखाई दे सकता है जब उसकी प्रतिष्ठा (हरि के) लेखे में स्वीकृत हो।

सलोक महला

१. कुदरति करि कै वसिआ सोइ।

२. वखतु वीचरे सु बंदा होइ।

३. कुदरति है कीमति नहीं पाइ।

४. जा कीमति पाइ त कही न जाइ।

५. सरै सरीअति करहि बीचारु।

६. बिनु बूझे कैसे पावहि पारु।

७. सिदकु करि सिजदा मनु करि मखसूदु।

८. जिह धिरि देखा तिह धिरि मउजूदु।१।

पद-अर्थ

कुदरति—सृष्टि; **करि कै**—रचकर; **वखतु**—समय, जीवन समय; **बंदा**—दास; **सरै**—शरीअत, धर्मशास्त्र की मर्यादा; **पारु**—पारावार; **सिजदा**—नमाज़ के समय भूमि पर सिर रखकर नत होना; **मखसूदु**—मनोरथ; **धिरि**—पक्ष, दिशा, ओर; **मउजूदु**—विद्यमान्।

टीका

१. प्रभु सृष्टि की रचना रचकर स्वयं इसमें बस रहा है।

२. जो मनुष्य जीवन समय को (मनुष्य जन्म के उद्देश्य को) विचारता है, वह प्रभु का सेवक बन जाता है।

३. प्रभु प्रकृति में व्याप्त है। उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता।

४. यदि कोई उसका मूल्यांकन करने का यत्न करे भी, तो वह कुछ बता नहीं सकता।

५. जो मनुष्य केवल धर्मशास्त्रीय बातों का विचार करते हैं—

६. वे प्रभु को समझे बिना उसका क्या पारावार पा सकते है ?

७. हे भाई परमात्मा पर विश्वास रख। यही तेरा नमस्कार होना चाहिए। फिर मन को उसमें जोड़। यही तेरा जीवन-लक्ष्य होना चाहिए।

८. मैं तो जिधर भी देखता हूं उस ओर परमात्मा व्याप्त हुआ दिखाई देता है। १।

सलोक महला।

१. गलीं असी चंगीआ आचारी बुरीआह।

२. मनहु कुसुधा कालीआ बाहरि चिटवीआह।

३. रीसा करिहतिनाड़ीआ जो सेवहि दरु खड़ीआह।

४. नालि खसमै रतीआ माणहि सुखि रलीआह।

५. होदै ताणि निताणीआ रहहि निमानणीआह।

६. नानक जनमु सकारथा जे तिनकै संगि मिलाह। २।

पद-अर्थ

गलीं—बातों से; **आचारी**—कार्यों में; **बुरीआह**—नीच; **कुसुधा**—दोष युक्त; **कालीआं**—बुरा देखने वाली; **तिनाड़ीआं**—उनकी; **खड़ीआह**—खड़े हो कर; **रलीआह**—आनन्द, मौजें; **सकारथा**—सफल।

टीका

१. हम (जीव रूपी नारियां) बातों से अच्छी बनती हैं, परन्तु (यह कैसे हो सकता है जब हम कर्म में अच्छी नहीं हैं।

२. (हम) मन से खोटी और बुरा देखने वाली हैं, परन्तु बाहर से सुन्दर बनकर दिखलाती हैं।

३. (हम) उनका अनुकरण करती हैं, जो (प्रभु के सम्मुख) खड़ी हो कर उसके द्वार की सेवा कर रही हैं (दूसरे द्वारों पर नहीं

भटकती फिरतीं),—

४. (जो) प्रभु पति के प्रेम में अनुरक्त हैं और उसके मिलाप का आनन्द प्राप्त कर रही हैं,—

५. जो सबल हो कर भी निर्बल हैं। कारण, वे निरभिमान हो कर रहती हैं।

६. (नानक) हमारा जन्म तब ही सफल हो सकता है, जब हम उन सौभाग्यवतियों (सत्संग करने वाली स्त्रियों) की संगति में रहें। १।

सलोक महला।

१. कुबुधि डूमणी कुदइग्रा कसाइणि पर निन्दा घट चूहड़ी मूठी क्रोधि चंडालि।

२. कारी कढ़ी किग्रा थीऐ जां चारे बैठीआ नालि।

३. सचु संजमु करणी कारां नावणु नाउ जपेही।

४. नानक अगै ऊतम सेई जि पापां पंदि न देही। १।

पद-ग्रर्थ

कुबुधि—दुर्बुद्धि; **डूमणी**--डोम जाति की नारी; **कुदइग्रा**—निर्दयता; **घट**—हृदय की; **मुठी**—मुषित, ठगी हुई; **कारी**--रसोई के चौके की रेखाएं; **थीऐ**—होगा; **संजमु**---रसोई को चौके की पवित्रता; **पंदि**—शिक्षा (फारसी शब्द 'पंद')

टीका

१. (जीव के भीतर) दुर्बुद्धि डोमनी है, निर्दयता कसाइन है, मन के भीतर परनिन्दा का भाव भंगिन है और क्रोध जिसने जीव को कुमार्ग पर डाला हुआ है, चण्डालनी है।

२. रसोई के चौके की रेखाएं खींचने का क्या लाभ है, यदि (उपर्युक्त) ये चारों उस जीव के भीतर सदा उसके साथ हैं?

३. (जो जीव) सत्य को चौका पवित्र रखने की मुक्ति बनाते हैं, सत्कर्म को चौके की रेखाएं और नाम जपने को तीर्थों का स्नान बनाते हैं, ...

४. और जो किसी अन्य को पाप करने की शिक्षा नहीं देते (नानक) आगे, ईश्वर के घर, वे ही उत्तम गिने जाते हैं। १।

महला।

१. किम्रा हंसु किम्रा बगुला जा कउ नदरि करेइ।

२. जो तिसु भावै नानका कागहु हंसु करेइ। २।

टीका

१. जिस पर प्रभु कृपा करते हैं, चाहे वह बगुला (नीच पुरुष) हो और चाहे वह हंस (उत्तम पुरुष), (वे उसे आध्यात्मिक जीवन देकर ऊंचा कर देते हैं)।

२. यदि उस (प्रभु) को इस प्रकार अच्छा लगे तो वह किसी को कोवे से भी हंस बना देता है। २।

रागु माझ

ओं सतिगुर प्रसादि ॥

रागु माझ असटपदीआ महला। घरु।

१. सबदि रंगाए हुकमि सबाए।

२. सची दरगह महलि बुलाए।

३. सचे दीन दइम्राल मेरे साहिबा सचे मनु पतीम्रावणिआ। १।

४. हउ वारी जीउ वारी सबदि सुहावणिआ।

५. अम्रित नामु सदा सुख दाता गुरमती मंनि वसावणिम्रा।१।रहाउ

६. ना को मेरा हउ किसु केरा।

७. साचा ठाकुरु त्रिभवणि मेरा।

८. हउमै करि करि जाइ घणेरी करि म्रवगण पछोतावणिम्रा।२।

९. हुकमु पछाणै सु हरि गुण वखाणै।

१०. गुर कै सबदि नामि नीसाणै।

११. सभना का दरि लेखा सचै छूटसि नामि सुहावणिम्रा। ३।

१२. मनमुखु भूला ठउरु न पाए।

१३. जमदरि बधा चोटा खाए ।

१४. बिनु नावै को संगि न साथी मुकते नामु धिम्रावणिआ । ४ ।

१५. साकत कूड़े सचु न भावै ।

१६. दुविधा बाधा आवै जावै ।

१७. लिखिआ लेखु न मेटै कोई गुरमुखि मुकति करावणिम्रा । ५ ।

१८. पेईम्रड़े पिरु जातो नाही ।

१९. झूठि विछुंनी रोवै धाही ।

२०. अवगणि मुठी महलु न पाए अवगुण गुणि बखसाहणिम्रा । ६ ।

२१. पेईअड़ै जिनि जातो पिआरा ।

२२. गुरमुखि बूझै ततु बीचारा ।

२३. आवणु जाणा ठाकि रहाए सचै नाभि समावणिम्रा । ७ ।

२४. गुरमुखि बूझै अकथु कहावै ।

२५. सचे ठाकुर साचो भावै ।

२६. नानक सचु कहै बेनंती सचु मिले गुण गावणिआ ।८/१ ।

पद-अर्थ

सबदि—शब्द-द्वारा; **पतीआवणिम्रा**—विश्वास करता है; **सुहावणिम्रा**—सुन्दर; **केरा**—का; **त्रिभवणि**—तीनों भुवनों में; **घणेरी**—बहुत; **वरवाणै**—कहता है; **नीसाणै**—चिह्न के साथ, आज्ञापत्र के साथ; **मुकते**—मुक्त हैं; **साकत**—शक्ति के उपासक, मायारत; **दुविधा**—द्वैत; **पेईअड़े**—इस लोक में; **मुठी**—ठगी हुई; **ठाकि**—रोक कर ।

टीका

१. वे सब जिन्हें तुमने शब्द के द्वारा रंग कर अपने आदेश में (चलाया हैं)...

२. तुम्हारी सत्य सभा में, तुम्हारी अपनी सेवा में बुला लिए जाते हैं ।

३. सदा स्थिर रहने वाले, दीनों पर दया करने वाले हे मेरे स्वामी । तुमसत्यस्वरूप के प्रति उनका मन विश्वास से भर गया है । १ ।

४. मैं उन पर बलिहार जाता हुं जिन्होंने शब्द के बल से अपना जीवन सुन्दर बना लिया है ।

५. उन्होंने प्रभु का अमर करने वाला और सदा सुख देने वाला नाम, गुरु की शिक्षा के द्वारा मन में बसा लिया है । १ । रहाउ ।

६. सदा के लिए कोई भी मेरा नहीं और मैं भी किसी का नहीं हूं ।

७. केवल वह सत्य स्वामी मालिक (परमात्मा) मेरा है जो तीनों भुवनों में व्याप्त हो रहा है ।

८. बहुत से लोग तो अहंकार कर कर के यहां से चले जाते हैं, (अहंकार के कारण) नीच कर्म कर के पीछे पछताते हैं । २ ।

९. जो जीव प्रभु के आदेश को समझ जाता है, वह उसके गुणों की स्तुति में लगता है ।

१०. गुरु के शब्द के द्वारा नाम का आज्ञापत्र (लेकर वह ईश्वर की सभा में जाता है) ।

११. उस सत्य सभा में (कर्मों के अनुसार) सब का लेखा देखा जाता है और जो जीव नाम के द्वारा सुन्दर हो जाते हैं, वे ही मुक्त होते हैं । ३ ।

१२. मनोमुख पुरुष (अहंता के कारण) भूलता है और ईश्वरीय सभा में स्थान प्राप्त नहीं करता ।

१३. वह यमराज के द्वार पर बंधा हुआ (कर्मों का) दण्ड भोगता है ।

१४. नाम के अतिरिक्त किसी का कभी कोई संगी साथी नहीं होता । केवल नाम के उपासक लोग मुक्त होते हैं । ४ ।

१५. मिथ्यारत शाक्त (मायारत) को सत्य प्रिय नहीं लगता ।

१६. वह द्वैत में बद्ध होकर जन्म-मरण के चक्र में पतित रहता है ।

१७. (द्वैतभाव में किए गए उसके कर्मों का) लेखा मिट नहीं सकता । हां, गुरु की शरण में जाकर वह भी मुक्ति प्राप्त कर सकता है ।५।

१८. जिस जीव नारी ने पिता के घर (इस संसार) में प्रभु पति को नहीं जाना—

१९. वह मिथ्या मोह के कारण (प्रभु से) वियुक्त हो कर फूट-फूट कर रोती है ।

२०. उसे अवगुणों ने ठग लिया है और प्रभु के द्वार पर उसे स्थान नहीं मिलता । फिर भी उसके समस्त पाप गुणों के कारण क्षमा किए जा सकते हैं । ६ ।

२१. जिस जीव-नारी ने पिता के घर (इस संसार) में प्रभु को समझा है...

२२. उसने गुरु की कृपा से जीवन के वास्तविक विचार को (सार) को जान लिया है ।

२३. उसने जन्म-मरण को रोक दिया है (समाप्त कर दिया है) । क्योंकि वह सत्य नामवान् (प्रभु) में लीन हो गई है । ७ ।

२४. गुरु की कृपा से जीव अकथनीय प्रभु के गुणों को समझता है तथा अन्यों को प्रेरित कर के प्रभु की गुणस्तुति में लगाता है ।

२५. वह जीव सत्य प्राप्त करके सत्य हरि को प्रिय लगने लगता है । (क्योंकि), सत्य स्वामी को सत्य ही प्रिय लगता है ।

२६. (नानक) वह सत्य विनय करता है: सत्य प्रभु के गुण गाता है और सत्य प्रभु के साथ मिल जाता है । ४/१ ।

। ओं सतिनामु करता पुरखु गुर प्रसादि ।

माझ की वार तथा सलोक, महला ।

'मलक मुरीद तथा चंद्रहड़ा सोहीआ की धुनी गावणी ।'

यह वार माझ राग की है । इसकी समस्त (पउड़ियां गुरु नानक जी की रचित हैं और 'सलोक' भी पहले महले (गुरु जी) के लिखे हुए हैं । गुरु अर्जुन देव जी की शिक्षा है कि यह वार मलक मुरीद और चन्दड़ा सोहिआ की वार की प्रसिद्ध धुन' में गाई जाए ।

विज्ञप्ति:—इस वार में द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ महले (गुरु जी) के 'सलोक' भी हैं । वे यहां दे दिए गए हैं, परन्तु उनके पद अर्थ तथा उनकी नहीं दी गई है ।

सलोक महला १

१. गुरु दाता गुरु हिवै घरु गुरु दीपकु तिह लोइ ।

२. अमर पदारथु नानका मनि मानिऐ सुखु होइ । १ ।

पद-अर्थ

हिवै घरु—हिम का घर; **दीपकु**—दीपकु; **अमर पदारथु**—नाम वस्तु; **मनि**—मन में; **मानिऐ**—मन के विश्वस्त होने से ।

टीका

१. गुरु (नाम की) देन देने वाला है। गुरु हिम का घर है (शान्ति का स्रोत है)। गुरु तीनों लोकों में प्रकाश (ज्ञान का) करने वाला है।

२. (नानक) सदा स्थिर रहने वाली नाम वस्तु गुरु से मिलती है। जब इस नाम के बल से मन विश्वस्त हो जाता है तब शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है। १।

महला १

१. पहिलै पिआरि लगा थण दुधि।
२. दुजै माइ बाप की सुधि।
३. तीजै भया भाभी बेब।
४. चउथै पिआर उपंनी खेड।
५. पंजवै खाण पीअण की धातु।
६. छिवै कामु न पुछै जाति।
७. सतवै संजि कीआ घरवासु।
८. अठवै क्रोधु होआ तन नासु।
९. नावै धउले उभे साह।
१०. दसवै दधा होआ सुआह।
११. गए सिगीत पुकारी धाह।
१२. उडिआ हंसु दसाए राह।
१३. आइआ गइआ मुइआ नाउ।
१४. पिछै पतलि सदिहु काव।
१५. नानक मनमुखि अंधु पिआरु।
१६. बाझु गुरू डुबा संसारु। २।

पद-अर्थ

पिआरि—प्रेम से; **बेब**—बहिन; **उपंनी**—उत्पन्न हुई; **धातु**—रुचि; **संजि**—(धन) संचय करके; **कीआ घरवासु**—घर का वास बनाता है; **धउले**—श्वेत केश; **उभे साह**—उखड़े हुए श्वास, कठिन श्वास; **दधा**—

दग्ध होकर, जलकर; **सिगति**—संगी साथी; **धाह**—ढाह मार कर रोना; **हंसु**—जीवात्मा; **दसाए**—पूछता है; **मुइआ नाउ**—नाम भी समाप्त हो गया; **पतलि**—पत्तों की थाली जिस पर श्राद्ध के समय ब्राह्मणों के लिए भोजन रखते हैं; **सदिहु काव**—कौवों को बुलाकर खिलाते हैं; **अंधु पिआरु**—अन्धा प्रेम, मोह।

टीका

(प्राणी की समस्त अवस्थाएं नौ भागों में इस प्रकार विभक्त की गई हैं) :—

१. प्रथम, प्राणी प्रेम सहित मां के स्तनों के दूध में लगता है।

२. द्वितीय भाग में उसे माता पिता की पहिचान हो जाती है।

३. तृतीय, उसे भाई, भाभी, बहिन का ज्ञान हो जाता है।

४. चतुर्थ, उसमें खेलों के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है।

५. पंचम, उसके भीतर खाने-पीने की (भोगों की) रुचि उत्पन्न होती है।

६. षष्ठ, (उसके भीतर काम भड़कता है। और) काम, जाति-कुजाति नहीं देखता है।

७. सप्तम, उसमें धन-यौवन का प्रेम उत्पन्न होता है। वह घर का वास बनाता है (उसमें वास करता है)।

८. अष्टम, क्रोध प्रबल होकर उसके शरीर को निर्बल करता है।

९. नवम, केश श्वेत हो जाते हैं, श्वास भारी चलता है।

१०. दशम, (उसका) शरीर जलकर राख हो जाता है।

११. जो संगी साथी (श्मशान तक उसके साथ जाते हैं वे) फूट-फूट कर रोते हैं।

१२. जीवात्मा (शरीर से निकल कर) चला जाता है और आगे का मार्ग पूछता है।

१६. (इस प्रकार) जीव (संसार में) आता है, चला जाता है और अन्त में उसका नाम तक मिट जाता है।

१४. पीछे (सम्बन्धी) पत्तलें देते हैं और कौवों को बुला बुला कर भोजन खिलाते हैं।

१५. (नानक) मनोमुख मनुष्य का प्रेम अज्ञान-प्रधान प्रेम होता है (माता

पिता, सम्बन्धियों माया आदि के साथ प्रेम मिथ्या है)।

१६. गुरु की कृपा न होने से संसार इस मिथ्या प्रेम (मोह) में मग्न हो कर नष्ट हो रहा है। २।

महला।

१. दस बालतणि बीस रवणि तीसा का सुंदरु कहावै।
२. चालीसी पुरु होइ पचासी पगु खिसै सठी के बोढेपा आवै।
३. सतरि का मतिहीणु असीहाँ का विउहारु न पावै।
४. नवै का सिहजासणी मूलि न जाणै अपबलु।
५. ढंढोलिमु ढूढिमु डिठु मै नानक जगु धूए का धवलहरु। ३।

पद-अर्थ

दस—आयु के दस वर्ष; **बालतणि**—बचपन; **रवणि**—रमण करने योग्य अवस्था में, यौवनावस्था में; **पुरु**—पूर्ण युवा; **पगु खिसै**—पैर फिसलता है, दुर्बल होना प्रारम्भ होता है; **विउहारु**—काम काज के योग्य नहीं रहता; **सिहजासणी**—खाट पर आसन लगाए रहता है; **अपबलु**—दुर्बलता, **ढंढोलिमु**—मैंने ढूंढा है; **धवलहरु**—धवलघर, भवन।

टीका

१. दस वर्ष का मनुष्य बाल्य—दशा में होता है, बीस वर्ष का होकर यौवनावस्था में पहुंचता है और तीस वर्ष का सुन्दर कहलाता है।

२. चालीस बर्ष में वह पूर्ण युवा हो जाता है, पचास वर्ष से ऊपर उसका पैर खिसकने लगता है (दुर्बलता का प्रारम्भ हो जाता हैं) और साठ वर्ष से ऊपर वृद्धावस्था आ जाती है।

३. सत्तर वर्ष का हो जाने पर उसकी बुद्धि काम नहीं करती और अस्सी वर्ष का वह किसी काम काज के योग्य नहीं रहता।

४. नव्वें वर्ष का होकर जीव खाट पर आसन लगाए रखता है और ऐसी दुर्बलता आ जाती है कि वह पूर्णतया ही कुछ नहीं समझता।

५. (नानक) मैंने खोजा हैं, ढूंढा है और देखा है, यह संसार धूएं का भवन है (स्थिर रहने वाला नहीं है।)। ३।

पउड़ी ।

१. तूं करता पुरखु अंगमु है आपि स्रिसटि उपाती ।
२. रंग परंग उपारजना बहु बहु बिधि भाती ।
३. तूं जाणहि जिनि उपाईऐ सभु खेलु तुमाती ।
४. इकि आवहि इकि जाहि उठि बिनु नावै मरि जाती ।
५. गुरमुखि रंगि चलूलिआ रंगि हरि रंग राती ।
६. सो सेवहु सति निरंजनो हरि पुरखु बिधाती ।
७. तूं आपे आपि सुजाणु है वड पुरखु वडाती ।
८. जो मनि चिति तुधु धिआइदे मेरे सचिआ बलि बलि हउ तिन जाती । १ ।

पद-अर्थ

अंगमु—अगम्य; **उपाती**—उत्पन्न की; **रंग परंग**—अनेक रंगों की; **उपारजना**—उत्पन्न की; **तुमाती**—तेरा; **चलूलिआ**—गहरा लाल; **निरंजनो**—माया से अलिप्त; **बिधाती**—विधाता, स्रष्टा; **सुजाणु**—बुद्धिमान्; **जाती**—जाता हूं ।

टीका

१. हे प्रभु ! तुम स्रष्टा हो, सर्व-व्यापक हो; (तथापि) पहुंच से परे हो, तुम ने ही समस्त सृष्टि उत्पन्न की है ।
२. (यह रचना) तुम ने कई रंगों और जातियों की बनाई है और कई विधियों से बनाई हैं ।
३. जिसने यह संसार उत्पन्न किआ है वह तुम हो । इस रचना का भेद जानते हो । यह सब खेल तुम्हारा ही बनाया हुआ है ।
४. (इस रचना में) कोई उत्पन्न होते हैं, कोई मरते हैं और नाम विहीन ही चले जाते हैं ।
५. जो गुरु के सम्मुख हैं वे नाम में लगकर गहरे लाल हो गए हैं । वे हरि-प्रेम में अनुरक्त हैं ।
६. हे भाई ! उस प्रभु का स्मरण करो जो सदा स्थिर है, माया से अलिप्त है, सर्व-व्यापक है और समस्त जगत् का स्रष्टा हैं ।

७. हे प्रभु, तुम आप ही सर्वज्ञ हो, तुम महान् और उच्च हो।

८. हे मेरे सत्य प्रभु ! जो मन एकाग्र कर के तुम्हारा स्मरण करते हैं, मैं उन पर बलिहार जाता हूं।

सलोक महला १

१. **जीउ पाइ तनु साजिआ रखिआ बणत बणाइ।**

२. **अखी देखै जिहवा बोलै कंनी सुरति समाइ।**

३. **पैरी चलै हथी किरणा दिता पैने खाइ।**

४. **जिनी रचि रचिआ तिसहि न जाणै अंधा अंधु कमाइ।**

५. **जा भजै ता ठीकरु होवै घाड़त घड़ी न जाइ।**

६. **नानक गुर बिनु नाहि पति पति विणु पारि न पाइ। १।**

पद अर्थ

जिह्वा—जीभ; **कंनी**—कानों के द्वारा।

टीका

१. प्रभु ने प्राणी के शरीर में आत्मा डालकर शरीर को बनाया है। कितनी सुन्दर बनावट बनाकर इसे सजाया है।

२. प्राणी आंखों से देखता है, जीभ से बोलता है और कानों से सुनकर ध्यान लगाता है।

३. यह पैरों से चलता है, हाथों से काम करता है और प्रभु का दिया हुआ खाता और पहनता है।

४. जिस प्रभु ने यह शरीर बनाया था, उसे यह पहचानता ही नहीं। यह मूर्ख मूर्खों के कार्य करता है।

५. जब शरीर का बर्तन फूटता में, यह ठीकरा हो जाता है और पुनः यह बनाया नहीं जा सकता।

६. (नानक) गुरु की शरण के बिना जीव को ईश्वर के घर प्रभु पति का मिलाप नहीं होता, और इस मिलाप के बिना इसका उद्धार नहीं होता। १।

महला २

१. दंदे थावहु दिता चंगा मनमुखि ऐसा जाणीऐ ।

२. सुरति मति चतुराई ताकी किआ करि आखि वखाणीऐ ।

३. अंतरि बहिकै करम कमावै सो चहु कुंडी जाणीऐ ।

४. जो धरमु कमावै तिस धरम नाउ होवै पापि कमाणै पापी जाणीऐ ।

५. तूं आपि खेल करहि सभि करते किआ दूजा आखि वखाणीऐ ।

६. जिचरु तेरी जोति तिचरु जोति विचि तूं बोलहि विणु जोती कोई किछु करिहु दिखा सिआणीऐ ।

७. नानक गुरमुखि नदरी आइआ हरि इको सुघड़ु सुजाणीऐ । २ ।

पउड़ी—२

१. तुधु आपे जगतु उपाइकै तुधु आपे धंधे लाइआ ।

२. मोह ठगउली पाइकै तुधु आपहु जगतु खुआइआ ।

३. तिसना अंदरि अगनि हैं नह तिपतै भुखा तिहाइआ ।

४. सहसा इहु संसारु है मरि जंमै आइआ जाइआ ।

५. बिनु सतिगुर मोहु न तुटई सभि थके करम कमाइआ ।

६. गुरमती नामु धिआईऐ सुखि रजा जा तुधु भाइआ ।

७. कुलु उधारे आपणा धंनु जणेदी माइआ ।

८. सोभा सुरति सुहावणी जिनि हरि सेती चितु लाइआ । २ ।

पद अर्थ

ठगउली—ठग-बूटी; **खुआइआ**—भुलाया है; **तिसना**—तृष्णा, लोभ; **तिपतै**—तृप्त होता; **माइआ**—माता; **सुरति**—ध्यान, सूझ-बूझ ।

टीका

१. हे प्रभु ! तुमने आप ही जगत् उत्पन्न करके इसको (मोह-माया के) जंजाल में मग्न कर दिया है ।

२. तुम ने आप ही मोह की ठग-बूटी खिला कर जगत् को भ्रान्त कर रखा है ।

३. जगत् के हृदय के अन्दर तृष्णा की अग्नि जल रही है। अतः यह भूखा-प्यासा रहता है और कभी तृप्त नहीं होता।

४. यह संसार भ्रम रूप है। इस भ्रम में पड़े जीव जन्म ग्रहण करते और मरते रहते हैं।

५. सत्य गुरु के बिना मोह नष्ट नहीं होता है। जीव अन्य कर्म कर कर के हार गए हैं।

६. जब गुरु की शिक्षा के द्वारा नाम स्मरण किया जाता है और प्रभु की कृपा होती है तब इसे सुख मिलता है और इसकी तृप्ति हो जाती है।

७. तब यह अपने समस्त कुल को भी बचा लेता है। धन्य है इसकी जन्मदात्री माता।

८. जिसने हरि-प्रभु की लगन लगाई है उसकी संसार में शोभा होती है तथा उसकी सूझ-बूझ सुन्दरहो जाती है। २।

श्लोक महला २

१. **अखां बाझहु वेखणा विणु कंना सुनणा।**
२. **पैरा बाझहु चलणा विणु हथा करणा।**
३. **जीभै बाझहु बोलणा इउं जीवत मरणा।**
४. **नानक हुकमु पछाणि कै तउ खसमै मिलणा। १।**

महला २

१. **दिसै सुणीऐ जाणीऐ साउ न पाइआ जाइ।**
२. **रुहला टुंडा अंधुला किउ गलि लगै धाइ।**
३. **भै के चरण कर भाव के लोइण सुरति करेइ।**
४. **नानक कहै सिआणीए इव कंत मिलावा होइ। २।**

पउड़ी ३

१. **सदा सदा तूं एकु है तुधु दूजा खेलु रचाइआ।**
२. **हउमै गरबु उपाइ कै लोभु अंतरि जंता पाइआ।**
३. **जिउ भावै तिउ रखु तू सभ करे तेरा कराइआ।**
४. **इकना बखसहि मेलि लैहि गुरमती तुधै लाइआ।**

५. इकि खड़े करहि तेरी चाकरी विणु नावै होरु न भाइआ ।
६. हरु कार वेकार है इकि सची कारै लाइआ ।
७. पुतु कलतु कुटंबु है इकि अलिपतु रहे जो तुधु भाइआ ।
८. ओहि अंदरहु बाहरहु निरमले सचै नाइ समाइआ । ३ ।

पद-अर्थ

गरबु—अहंकार; **लोभु**—लालच; **कलतु**—पत्नी; **अलिपतु**—अलिप्त ।

टीका

१. हे प्रभु ! तुम सदा ही एक हो । तुमसे पृथक दिखाई देता हुआ संसार का यह तमाशा भी तुम्हारी ही रचना हैं ।

२. तुम ने स्वयं ही अहंकार, गर्व उत्पन्न किए हैं और जीवों के भीतर लोभ डाला है ।

३. समस्त जीव, अन्ततोगत्वा, तुम्हारे द्वारा प्रेरित हो कर कर्म कर रहे हैं । अत: जैसे तुम्हें अच्छा लगे वैसे ही इन्हें बचा लो ।

४. तुम कृपा कर के कितने ही जीवों को अपने साथ मिला लेते हो । तुम उन्हें गुरु की शिक्षा में लगा देते हो ।

५. कितने ही जीव सावधानी से तुम्हारी सेवा में लग्न रहते हैं । उन्हें तुम्हारे नाम के अतिरिक्त और कुछ अच्छा नहीं लगता है ।

६. तुमने कुछ को सत्य (नाम जपने के) कार्य में लगा दिया है । इस कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्य उनको निष्फल प्रतीत होते हैं ।

७. वे जीव, जो तुम्हें अच्छे लगते हैं, पुत्र, पत्नी और कुटुम्ब के मोह से ऊपर रहते हैं ।

८. वे सत्य नाम में लीन होकर अन्दर बाहर से निर्मल हो जाते हैं । ३ ।

सलोक महला ।

१. सीइने कै परबति गुफा करी कै पाणी पइआलि ।
२. कै विच धरती कै आकासी उरधि रहा सिरि भारि ।
३. पुरु करि काइआ कपड़ु पहिरा धोवा सदा कारि ।
४. बगा रता पीअला काला वेदा करी पुकार ।

५. होइ कुचीलु रहा मलु धारी दुरमति मति विकार ।

६. ना हउ ना मै ना हउ होवा नानक सबदु वींचारि ।

पद-अर्थ

सुईने कै--सोने के; **कै**--अथवा, चाहे; **उरधि**--उलटा लटक कर; **पुरु**--पूर्ण करके, भर कर; **कारि**--कार्य में; **कुचीलु**--मलिन (जैनियों के समान); **मलुधारी**--मलिन रहने वाला; **दुरमति**--खोटी बुद्धि; **विकार**--व्यर्थ कार्य ।

टोका

१. चाहे मैं (एकान्त में दीर्घ समाधि लगाने के लिए) सोने के पर्वत, सुमेरु पर, जा कर गुफा बनाऊं, और चाहे पाताल के पानी में --

२. चाहे पृथ्वी पर, चाहे आकाश में, उलटा लटकता रहूं --

३. चाहे मैं (बहुत कपड़े पहनने वालों के समान, शरीर पर बहुत कपड़े पहन लूं और कपड़े धो-धो कर पहनता रहूं, इस कार्य में सदा लगा रहूं --

४. चाहे मैं श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण वर्ण के वेदों को उच्च स्वर से पढ़ूं (गायत्री मन्त्र के पंचम पटल में वेदों के वर्ण वर्णित हैं । सामवेद हीरकसदृश, ऋग्वेद पीत, यजुर्वेद रक्त और अथर्ववेद सुरमे के समान कृष्ण ।)

५. और चाहे (जैनमताबलम्दियों के समान) गन्दा और मलिन रहूं । ये समस्त (कर्म) खोटी बुद्धि से उत्पन्न हुए हैं और व्यर्थ हैं ।

६. (नानक) (मैं केवल यह चाहता हूं कि) शब्द के विचार द्वारा अहं (अहंभावना) का सदा के लिए नाश हो जाय । १ ।

महला १

१. वसत्र परवालि परवाले काइआ आपे संजमि होवे ।

२. अंतरि मैलु लगो नहीं जाणै बाहरहु मलि मलि धोवै ।

३. अंधा भूलि पपइआ जम जाले ।

४. वसतु पराई अपुनी करि जानै हउमै विच दुखु घाले ।

५. नानक गुरमुखि हउमै तुटै ता हरि हरि नामु धिआवै ।
६. नामु जपे नामो आराधे नामै सुखि समावै । २ ।

पद-अर्थ

वसत्र—वस्त्र; **परवालि**—प्रक्षालन कर के; **संजमि**—स्वच्छता करने वाला; **घाले**—पाता है ।

टीका

१. यदि कोई जीव नित्य वस्त्र धो कर शरीर को भी धोता है और इस प्रकार अपने आप को पवित्र समझता है ।—
२. उसे भीतर के (मन के) मल का ज्ञान ही नहीं । वह केवल बाहर से ही शरीर का मल काटता रहता है ।
३. यह अज्ञानी भूल कर यमों के जाल में (जन्म-मरण के चक्र में) पड़ा रहता है ।
४. यह जीव परकीय वस्तु (शरीर) को स्वकीय समझता है और इस ममत्व अर्थात् अहन्त्व के कारण दुःख पाता है ।
५. (नानक) यदि गुरु के उपदेश द्वारा इसकी अहंभावना का नाश हो जाए तो यह नाम स्मरण में लगता है ।
६. फिर यह नाम जपता है, नाम-स्मरण करता है और नाम-द्वारा सुख में मग्न रहता है । २ ।

पउड़ी ४

१. काइआ हंसि संजोगु मेलि मिलाइआ ।
२. तिन ही कीआ विजोगु जिनि उपाइआ ।
३. मूरखु भोगे भोगु दुख सबाइआ ।
४. सुखहु उठे रोग पाप कमाइआ ।
५. हरखहु सोगु विजोगु उपाइ खपाइआ ।
६. मूरख गणत गणाइ झगड़ा पाइआ ।
७. सतिगुर हथि निबेड़ु झगड़ु चुकाइआ ।
८. करता करे सु होगु न चलै चलाइआ । ४ ।

पद-अर्थ

हंसि—अर्थात्, आत्मा; **हरखहु**—हर्ष से; **झगड़ा**—(कर्मों का) झगड़ा: **निबेड़ु**—समाप्त करना।

टींका

१. प्रभु ने आप ही शरीर और जीवात्मा का मिलाप कर के इन्हें समवेत किया है।

२. जिस प्रभु ने यह संयोग किया था उसी ने इनका वियोग भी निश्चित कर दिया है।

३. (अज्ञान में मग्न हुआ) यह मूर्ख जीव माया के भोग भोगता है और समस्त दुःख संग्रह करता है।

४. भोगों के सु आस्वादन के रोग उत्पन्न होता है क्योंकि ये भोग पापों से उत्पन्न होते हैं।

५. भोगों के हर्ष से शोक और वियोग उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार प्रभु जीव को देही बना कर दुःखी करता है।

६. (प्रभु के आश्रित होने की उपेक्षा कर के) यह अज्ञानी जीव कर्मों के लेखों में पड़ कर (अपने गले में) कर्मों का पाश डालता है।

७. इस पाश को समाप्त करने की शक्ति सद्गुरु के हाथ में है। केवल वही इस पाश को समाप्त करता है।

८. जीव के अपने बल से कुछ नहीं होता। स्रष्टा को जो इष्ट होता है वही होता है। ४।

सलोक महला १

१. कूड़ु बोलि मुरदारु खाइ।

२. अवरी नो समझावणि जाइ।

३. मुठा आपि मुहाए साथै।

४. नानक ऐसा आगू जापै। १।

पद-अर्थ

मुरदारु—अर्थात् परकीय धन; **मुठा**—मुक्ति, ठगा हुआ; **मुहाए**—

मुषित करवाता है, ठगवाता है; **जाप**—दिखाई देता है, प्रकट होता है ।

टीका

१. (जो नेता) असत्य बोल-बोल कर दूसरों का धन अपने अधिकार में कर लेता है—

२. और (अपना यह आचार होते हुए भी) दूसरों को शिक्षा देता फिरता है, —

३. (समझो कि) वह आप तो लूटा जा रहा है साथ ही साथियों (शिष्यों) को भी लुटवा रहा है,

४. (नानक) ऐसा नेता (अन्त में) अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो जाना है । १ ।

महला ४

१. जिस दे अंदरि सचु है सो सचा नामु सचु अलाए ।
२. ओहु हरि मारगि आपि जलदा होरना नो हरि मारगि पाए ।
३. जो अगै तीरथु होइ ता मलु लहै छपड़ि नातैं सगवी मलु लाए ।
४. तीरथु पूरा सतिगुरू जो अनदिनु हरि हरि नामु धिआए ।
५. ओहु आपि छुटा कुटंब सिउ दे हरि हरि नामु सभ स्रिसटि छडाए
६. जन नानक तिसु बलिहारणैं जो आपि जपैं अवरा नामु जपाए ।२।

पउड़ी ५

१. इकि कंद मूलु चुणि खाहि वणखंडि वासा ।
२. इकि भगवा वेसु करि फिरहि जोगी संनिआसा ।
३. अंदरि त्रिसना बहुतु छादन भोजन की आसा ।
४. बिरथा जनमु गवाइ न गिरही न उदासा ।
५. जम कालु सिरहु न उतरैं त्रिबिधि मनसा ।
६. गुरमती कालु न आवै नेड़ैं जा होवै दासनि दासा ।
७. सचा सबदु सचु मनि घर ही माहि उदासा ।
८. नानक सतिगुरु सेवनि आपणा से आसा ते निरासा । ५ ।

पद-अर्थ

कंद मूल—गाजर मूली आदि के सदृश्य खाद्य वस्तुएं; **वणखंडि**—जंगलों में; **छादन**—वस्त्र; **गिरही**—गृहस्थ; **त्रिबिधि**—त्रिगुणात्मक माया।

टीका

१. कई मनुष्य गाजर मूलियाँ आदि सदृश खाद्य वस्तुएं उखाड़ कर खाते हैं और जंगलों में रहते हैं।

२. कई गैरिक वस्त्र पहिन कर योगी, संन्यासी बने फिरते हैं।

३. (फिर भी) उनके मन में अन्न वस्त्र की प्रबल क्षुधा रहती है।

४. इस प्रकार ये अपना जन्म निष्फल गंवा लेते हैं। फिर न ये गृहस्थी रहे और न त्यागी।

५. त्रिगुणात्मक (रजोगुण-तमोगुण, सत्वगुण मयी) माया के लोभी इन लोगों के लिए जन्म-मरण का चक्र बना रहता है।

६. गुरु की शिक्षा प्राप्त कर के यदि कोई गुरु के दासों का दास बन जाए तो मृत्यु उसके निकट नहीं आती।

७. उसके हृदय में गुरु का सत्य शब्द और सत्य स्वरूप प्रभु बस जाते हैं। फिर गृहस्थी होते हुए भी वह त्यागी है।

८. (नानक) जो जीव सद्गुरु के आदेश के अनुसार चलते हैं वे सांसारिक इच्छाओं से उपरत हो जाते हैं।५।

सलोकु महला १

१. जे रतु लगै कपड़ै जामा होइ पलीतु ।
२. जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमलु चीतु ।
३. नानक नाउ खदाइ का दिलि हछै मुखि लेहु ।
४. अवरि दिवाजे दुनी के झूठे अमल करेहु । १ ।

पद-अर्थ

रतु—रक्त; **पलीतु**—अपवित्र; **दिलि हछै**—अच्छे हृदय से, पवित्र हृदय से; **दिवाजे**—टीप टाप, श्रृंगार, सांसारिक दिखावे।

टीका

१. यदि वस्त्र को रक्त लग जाए तो वस्त्र अपवित्र समझा जाता है (ऐसा वस्त्र पहन कर नमाज़ पढ़ी जाती है)

२. परन्तु जो मनुष्य मनुष्यों का रक्त ही पी जाते हैं (अन्याय और अत्याचार से उनके अधिकार हड़प कर के अधर्म के धन का उपयोग) उनका हृदय कैसे पवित्र रह सकता है। (इस हृदय से नमाज़ पढ़ी हुई कैसे स्वीकृत होगी।)

३. (नानक) खुदा (प्रभु) का नाम, पवित्र हृदय से उच्चरित कर—

४. नहीं तो तुम्हारे शेष समस्त कर्म सांसारिक दम्भ माने जाएंगे। तुम यह समझो कि तुम समस्त मिथ्या कर्म कर रहे हो। १।

महला १

१. जा हउ नाही ता किआ आखा किहु नाही किआ होवा।

२. कीता करणा कहिआ कथना भरिआ भरि भरि धोवां।

३. आपि न बुझा लोक बुझाई ऐसा आगू होवा।

४. नानक अंधा होइ कै दसे सभसु मुहाए साथै।

५. अगै गइआ मुहे मुहि पाहि सु ऐसा आगू जापै। २।

पद-अर्थ

किहु—कुछ; **भरिआ भरि भरि**—पापों से परिपूर्ण; **सभसु**—समस्त; **मुहाए**—ठगवाता है; **मुहे मुहि पाहि**—(चपत) मुंह पर पड़ते हैं; **जापै**—दिखाई देता है, वास्तविक रूप में प्रकट हो जाता है।

टीका

१. जब मैं कुछ हूँ ही नही (आध्यात्मिक स्तर पर मेरा कोई अस्तित्व ही नहीं बना) तब मैं दूसरों को क्या बताऊँ (क्या उपदेश करूं), जब मेरे पास कुछ भी नहीं (मुझ में कोई गुण नहीं) तो जगत के सम्मुख मैं क्या होकर दिखूं?

२. (मेरी अपनी शक्ति यह है कि) मैं वह करता हूँ जो जगत् ने किया है। मैं वह कहता हूं जो जगत् ने कहा हैं। मैं पापों से परिपूर्ण हूं।

(दूसरों को कुछ बतलाने से पहले) इन पापों को तो धो डालूं।

३. मुझे स्वयं तो कुछ ज्ञान नहीं परन्तु लोगों को मैं उपदेश कर रहा हूं, मैं नेता हूँ।

४. (नानक) जो आप अन्धा हो (जैसे मैं हूं) और दूसरों को मार्ग बतलाता हो, वह समग्र साथियों को ही ठगवा देता है।

५. आगे, प्रभु के घर उसके मुंह पर (चपत, धिक्कार) पड़ते हैं तब ऐसा नेता (अपने वास्तविक रूप में) प्रकट होता है। २।

पउड़ी ६

१. माहा रुती सभ तूं घड़ी मूरत वीचारा।

२. तूं गणतै किनै न पाइओ सचे अलख अपारा।

३. पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा।

४. नाउ पड़ीऐ नाउ बुझीऐ गुरमती वीचारा।

५. गुरमती नामु धनु खटिआ भगती भरे भंडारा।

६. तिरमलु नामु मंनिआ दरि सचै सचिआरा।

७. जिस दा जीउ पराणु है अंतरि जोति अपारा।

८. सचा साहु इकु तूं होरु जगतु वणजारा। ६

पद-अर्थ

मूरत—मूहूर्त, दो घड़ी, **गणतै**—गणना के द्वारा।

टीका

१. हे प्रभु, समस्त मास, ऋतुएं घड़ी और मुहूर्तों में मैंने तुम्हारा ही मनन किया है। इस विचार पर मैने तिथियों दिनों आदि का नियम नहीं लगाया।

२. हे सत्य प्रभु! गणना के द्वारा तुम्हें कोई नहीं प्राप्त कर सका। तुम अलक्ष्य और अपार हो।

३. उस शिक्षित को मूर्ख समझना चाहिए जिसके पास विद्या तो है परन्तु जिसके भीतर लोभ और अहंकार है।

४. अतः हे जीव! गुरु की शिक्षा के द्वारा नाम को समझना चाहिए।

ग्रौर नाम का विचार करना चाहिए तथा नाम की ही साधना करनी चाहिए।

५. जिन्होंने गुरु की शिक्षा के द्वारा नाम-धन का संग्रह किया है, उनके भाण्डागार भक्ति से पूर्ण हैं।

६. उन्होंने पवित्र नाम को माना है ग्रौर सत्य प्रभु के द्वार पर उनके मुख भास्वर रहते हैं।

७. शरीर ग्रौर श्वास जिस प्रभु की देन हैं उसकी ग्रपार ज्योति ही सबके भीतर बसती है।

८. हे प्रभु। तुमही वास्तविक श्रेष्ठी हो। ग्रन्य समस्त लोग वस्तु प्राप्त करने के लिए इस जगत् में वणिक हो कर आए हैं, (उन्हें नाम का वाणिज्य ही करना चाहिए)। ६।

सलोकु महला।

१. मिहर मसीति सिदकु मुसला हकु हलालु कुराणु।
२. सरभ सुँनति सीलु रोजा होलु मुसलमाणु।
३. करणी कावा सचु पीरु कलमा करम निवाज।
४. तसबी सा तिसु भावसी नानक रखै लाज। १।

पद-ग्रर्थ

मिहर—दया; **मुसला**—नमाज़ पढ़ने के लिये नीचे बिछाने की चटाई; **सरम**—शर्म, लज्जा; **सीलु**—अच्छा स्वभाव; **काबा**—मक्के के भीतर मुसलमानों का मुख्य मन्दिर; **निवाज**—नमाज़; **तसबी**—जप की माला।

टीका

१. (हे मुसलमान बन्धु)। तू दया को मस्जिद बना, प्रभु के अस्तित्व के निश्चय को मुसल्ला बना ग्रौर शुभ कमाई को कुरान बना।

२. तू विकारों से लज्जा मानने को सुन्नत ग्रौर सुशीलता को रोज़ा जान। तू इस प्रकार का मुसलमान बन।

३. तू उच्च कर्म को काबा बना, सत्य को पीर मान ग्रौर व्यवहार को नमाज़ ग्रौर कलमा समझ।

४. जो कुछ उस प्रभु को ग्रच्छा लगता है, उसमें प्रसन्न रहने को तू

जप-माला बना (नानक) प्रभु ऐसे मुसलमान की लज्जा की रक्षा करता है। १।

महला १

१. **हकु पराइआ नानका उसु सूअर उसु गाइ।**
२. **गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न खाइ।**
३. **गली भिसती न जाईऐ छुटै सचु कमाइ।**
४. **मारण पाहि हराम महि होइ हलालु न जाइ।**
५. **नानक गली कूड़ीई कूड़ो पलै पाइ। २।**

पद-अर्थ

उसु—मुसलमान के लिए; **उसु**—हिन्दू के लिए; **हामा**—हां, सिफारिश; **मुरदारु**—अधर्म की कमाई; **भिसति**—स्वर्ग; **छुटै**—मुक्त होता है; **मारण**—मसाले।

टीका

१. (नानक) परकीय वस्तु पर अपना अधिकार जमाना मुसलमान के लिए सूअर खाने के समान है और हिन्दू के लिए गौ।
२. (हिन्दू का) गुरु अथवा (मुसलमान का) पीर प्रभु के घर किसी की सिफारिश तब ही करता है जब कोई मनुष्य परकीय वस्तु पर अन्याय से अपना अधिकार नहीं करता है।
३. केवल बातों से कोई मनुष्य स्वर्ग में नहीं पहुँचता है। वहां सत्य की कमाई से ही छुटकारा होता है /
४. यदि हराम (अधर्म की कमाई का धन) में (केवल बातों के) मसाले डाले जाएं तो वह हलाल (धर्म की कमाई का धन) नहीं हो सकता।
५. (नानक) मिथ्या बातों से मिथ्या ही मिलता है। २।

महला १

१. **पंजि निवाजा वखत पंजि पंजा पंजे नाउ।**
२. **पहिला सचु हलाल दुइ तीजा खैर खुदाइ।**
३. **चउथी नीअति रासि मनु पंजवी सिफती सनाइ।**
४. **करणी कलमा आखि कै ता मुसलमाणु सदाइ।**
५. **नानक जेते कूड़िआर कूड़ै कूड़ी पाइ। ३।**

पद-अर्थ

हलाल—धर्म की कमाई; **खैर**—कुशल की प्रार्थना; **सनाइ**—महता; **करणि**—धर्म से धनोपार्जन; **पाइ**—शक्ति ।

टीका

१. मुसलमानों की दैनिकी पांच नमाज़ें हैं, उनके पांच ही नियत समय हैं और पांच ही उनको नाम दिए गए हैं (नमाज़े सुबह, नमाज़े येशीन, नमाज़े दीगर, नमाज़े शाम, नमाज़े खुफतन) ।

२. (ये सब शुभ हैं) । परन्तु ये नमाज़ें वास्तविक मुसलमान बनने के लिए हैं । यदि यह नहीं, तो कुछ भी नहीं । पहली नमाज़ सत्य पर दृढ़ रहना है; दूसरी नमाज़ नेक कमाई है, तीसरी परमात्मा से सब की भलाई मांगना है—

३. चौथी नमाज़ मनोवृति और मन को निर्मल रखना है, पांचवीं प्रभु की प्रशंसा और उसकी महिमा का गान है ।

४. फिर यदि वह उच्च कर्म रूपी कलमा पढ़े तो मुसलमान कहलाने का अधिकारी होता है ।

५. (नानक) इस प्रकार की नमाज़ों और कलमों के विना जितने भी मुसलमान हैं सब अवास्तविक मुसलमान हैं; झूठ की शक्ति भी झूठी होती है । ३ ।

पउड़ी ७

१. इकि रतन पदारथ वणजदे इकि कचै दे वापारा ।

२. सतिगुरि तुठै पाईअनि अन्दरि रतन भंडारा ।

३. विणु गुर किनै न लधिआ अंधे भउकि मुए कूड़िआरा ।

४. मनमुख दूजै पचि मुए न बूझहि वीचारा ।

५. इकसु बाझहु दूजा को नहीं किसु अगै करहि पुकारा ।

६. इकि निरधन सदा भउकदे इकना भरे तुजारा ।

७. विणु नावै होरु धनु नाही होरु विखिआ सभु छारा ।

८. नानक आपि कराए करे आपि हुकमि सवारणहारा । ७ ।

पद-अर्थ

तुठै—दयालु होने से; **पचि मुए**—दुःखी हो कर मरते हैं; **तुजारा**—कोष ।

टीका

१. कई जीव नाम रूपी रत्न पदार्थ मोल लेते हैं और कई लोग माया—जन्य पदार्थ रूपी कांच का व्यापार करते हैं ।

२. रत्नों के कोष (भंडार) तो मनुष्य के अन्दर ही हैं । परन्तु ये सद्गुरु के कृपालु होने से प्राप्त होते हैं ।

३. गुरु के अतिरिक्त किसी अन्य को ये भंडार नहीं मिले। अनेक मिथ्या-रत अज्ञानी लोग निष्फल रोते-रोते मर गए हैं।

४. गुरु के प्रति उदासीन रहने वाले, द्वैत में पड़े हुए जीव नष्ट हो गए हैं । वे नाम के विचार को नहींसमझ सके ।

५. ये मनोमुख लोग अपने दुःखों की पुकार किस के समीप करें। प्रभु के अतिरिक्त कोई अन्य है नहीं (जो उनको पुकार सुने) ।

६. कई नाम हीन निर्धन लोग द्वार-द्वार बिलखते फिरते हैं । परन्तु किननों (गुरुमुखों) के हृदय नाम रूपी कोषों से परिपूर्ण हैं ।

७. नाम के अतिरिक्त कोई अन्य सत्य धन नहीं है । माया-जन्य अन्य समस्त धन राख के समान है ।

८. (नानक) (वह प्रभु रत्नों और कांच का व्यापार करने वालों में व्याप्त होकर) आप ही सब कुछ कर रहा हैं, आप ही उनसे सब कुछ करवा रहा है । वह अपने आदेश के द्वारा सब को संवारने वाला है । ७ ।

सलोकु महला १

१. मुसलमाणु कहावणु मुसकलु जा होइ ता मुसलमाणु कहावै ।
२. अवलि अउलि दीनु करि मिठा मसकलु माना मालु मुसावै ।
३. होई मुसलिमु दीन मुहाणै मरण जीवन का भरम चुकावै ।
४. रब की रजाइ मने सिर उपरि करता मंने आपु गवावै ।
५. तउ नानक सरब जीआ मिहरंमति होइ त मुसलमाणु कहावै ।

पद-अर्थ

अवलि—पहले; **अउलि**—औलिआ, नवी, ईश्वर-दूत; **मसकल**—लोहे आदि का मल उतार देने वाला हथियार; **माना**—समान; **मुसावै**—लुटा दे; **मुहाणै**—नेता; **मिहरंमति**—सया करे।

टीका

१. (हे मुसलमान बन्धु) मुसलमान कहलवाना कठिन है। यदि वास्तविकतया कोई मुसलमान बने तो मुसलमान कहलवाए।

२. (वास्तविकतया मुसलमान ऐसे बनता है) पहले नबी का उपदिष्ट धर्म उसे प्रिय लगे, फिर वह अपना द्रव्य-धन (अभाव-ग्रस्तों में) वितीर्ण करे (और इस प्रकार धन के अहंकार का मल उतारे) जिस प्रकार मसकले की सहायता से ज़ंग उतार दिया जाता है।

३. धर्म के नेता के निर्देशन के अनुसार वास्तविक मुसलमान बने और इस प्रकार जन्म-मरण रूपी भ्रमण समाप्त कर दें।

४. प्रभु का आदेश, प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृत करे, प्रभु को स्रष्टा माने और अपना अहंकार त्याग दे।

५. समस्त जीवों पर दया करे (नानक यह सब कुछ होवे) तो कोई अपने आपको मुसलमान कहलवाए। १।

महला ४

१. परहरि काम क्रोधु झूठु निंदा तजि माइआ अहंकारु चुकावै।
२. तजि कामु कामिनी मोहु तजै ता अंजन माहि निरंजनु पावै।
३. तजि मानु अभमानु प्रीति सुत दारा तजि पिआस आस राम लिव लावै।
४. नानक साचा मनि वसै साच सबदि हरिनामि समावै। २।

पउड़ी ८

१. राजे रयति सिकदार कोइ न रहसीओ।
२. हट पटण बाजार हुकमी ढहसीओ।
३. पके बंक दुआर मूरखु जाणै आपणे।
४. दरबि भरे भंजार रीते इकि खणे।

५. ताजी रथ तुखार हाथी पाखरे ।
६. बाग मिलख घर बार किथै सि आपणे ।
७. तंबू पलंग निवार सराइचे लालती ।
८. नानक सच दातारु सिनाखतु कुदरती । ८ ।

पद-अर्थ

सिकदार—सरदार; **पटण**—नगर; **बंक**—बांके; सुन्दर; **दरबि**—पदार्थों से; **रीते**—रिक्त; **खणे**—क्षण में; **ताजी**—अश्व; **तुखार**—ऊंट; **पाखरे**—लोहे का झूला, काटी; **सराइचे**—कनातें; **लालती**—अतलस, कीमखाब, एक बहुमूल्य वस्त्र; **सिनाखतु**—पहिचाना जाता है ।

टीका

१. राजा प्रजा, सरदार, कोई भी (सदा) नहीं रहेगा ।
२. हाट, नगर, बाजार, सब परमात्मा के नियम के अनुसार (अन्त में) नष्ट हो जाएंगे ।
३. सुन्दर पक्के घर जिन्हें अज्ञानी मनुष्य अपने समझता है (सब नष्ट हो जाते हैं) ।
४. धन और पदार्थों से पूर्ण भाण्डागार एक क्षण में रिक्त हो जाते हैं ।
५. अश्व, रथ, ऊंट, हाथी और उनकी काठियां — ।
६. उद्यान, देश और घर-द्वार,
७. तम्बू, निवारी-पलग, अतलसी कनातें—जिन्हें मनुष्य अपनी वस्तुएं समझता था, वे अब कहां हैं ।
८. (नानक) इन समस्त देनों का दाता केवल सत्य प्रभु आप ही है और उस दाता की पहिचान उसकी रची प्रकृति की वस्तुओं से होती है ।८।

सलोकु महला १

१. नदीआ होवहि धेणवा सुंभ होवहि दुधु घीउ ।
२. सगली धरती सकर होवै खुसी करे नित जीउ ।
३. परबतु सोइना रुपा होवै हीरे लाल जड़ाउ ।
४. भी तूं है सलाहणा आखण लहै न चाउ । १ ।

पद-अर्थ

धेणवा—धेनुएं, गौएं; **सुंभ**—स्त्रोत; **आखण**—गुण कथन करने का।

टीका

१. मेरे लिए गौओं के दूध की नदियां बहने लगें और दूध तथा घी के स्त्रोत फूट पड़ें।

२. यदि समग्र पृथ्वी शक्कर की (राशि) हो जाय, इन पदार्थों को देख कर मेरा मन सदा प्रसन्न हो—

३. यदि मैं सुवर्ण और रजत के उस पर्वत का स्वामी होऊं जो हीरों तथा लालों से जड़ा भी हो—

४. तो भी (हे प्रभु) मैं इतका त्याग कर के तुम्हारी गुणस्तुति करता रहूंगा। क्योंकि, तुम्हारी प्रशंसा करते हुए मेरा चाव नही उतरता।१।

महला १

१. भार अटारह मेवा होवै गरुड़ा होइ सुआउ।

२. चंदु सूरज दुइ फिरदे रखीअहि निसचलु होवै थाउ।

३. भी तूं है सालाहणा आखण लहै न चाउ। २।

पद-अर्थ

भार अठारह—समग्र वनस्पतियां (पुराना विचार है कि प्रत्येक वृक्ष, पोधे का एक-एक पत्ता लेकर—सब को तोलें तो १८ भार परिमाण बनेगा। एक भार कच्चे पांच मन के तुल्य है); **गरुड़ा**—मृदु, मुंह में एक दम घुल जाने वाला रसीला भोजन; **सुआउ**—स्वाद; **फिरदे रखीअहि**—फिरते हुए रोक कर (मेरी सेवा में) लगा दिथ जाएं।

टीका

१. यदि मेरे लिए समस्त वनस्पति वर्ग मेवा बन जाए और इसका स्वाद भी बहुत रसीला हो।

२. यदि मेरा निवास स्थान ऐसा निश्चल हो कि चन्द्र एवं सूर्य मेरी सेवा में संलग्न हो जाएं।

३. हे प्रभु ! तो भी मैं (इनके भोग की उपेक्षा कर के) तुम्हारी ही गुणस्तुति करता रहूंगा। क्योंकि, तुम्हारी प्रशंसा करते हुए मेरा चाव नही उतरता। २।

महला १

१. जे देहै दुखु लाईऐ पाप गरह दुइ राहु।

२. रतु पीणे राजे सिरै उपरि रखीअहि एवै जापै भाउ।

३. भी तूँ है सालाहणा आखण लहै न चाउ। ३।

पद-अर्थ

देहै—शरीर को; **पाप गरह**—राहु और केतु, पापों के दोनों ग्रहों; **भाउ**—प्रेम।

टीका

१. यदि राहु और केतु दो पाप-ग्रहों के कारण मेरे शरीर को दुःख लग जाए—

२. यदि क्रूर राजा मेरे सिर पर खड़े किए गए हों—यदि तुम्हारा प्रेम मेरे लिए इस प्रकार भी प्रकट हो,—

३. हे प्रभु ! तो भी मैं इनका भय न मान कर तुम्हारी ही गुणस्तुति करता रहूंगा। क्योंकि तुम्हारी प्रशंसा करते हुए मेरा चाव नही उतरता। ३।

महला।

१. अगी पाला कपड़ु होवै खाणा होवै वाउ।

२. सुरगै दीआ मोहणीआ इसतरीआ होवनि नानक सभो जाउ।

३. भी तू है सालाहणा आखण लहै न चाउ। ४।

टीका

१. यदि अग्नि का ताप और शरत का हिम (मुझे दुःख देने के स्थान पर) मेरे लिए वस्त्रों का कार्य करें, और मेरे भोजन के लिए वायु ही पर्याप्त हो,—

२. यदि स्वर्ग की सुन्दर नारियां भी मुझे प्राप्त हों, परन्तु (नानक) ये समस्त पदार्थ नश्वर हैं।

३. मैं इन के भोग की उपेक्षा करके तुम्हारी ही गुणस्तुति करता रहूंगा। क्योंकि तुम्हारी प्रशंसा करते हुए मेरा चाव नहीं उतरता।४।

पउड़ी ६

१. बदफैली गैबाना खसमु न जाणई।
२. सो कहीऐ देवाना आपु न पछाणई।
३. कलहि बुरी संसारि वादे खपीऐ।
४. विणु नावै वेकारि भरमे पचीऐ।
५. राह दोवै इक जाणै सोई सिझसी।
६. कुफर गोअ कुफराणै पइआ दझसी।
७. सभ दुनीआ सुबहानु सचि समाईऐ।
८. सिझै दरि दीवानि आपु गवाईऐ। ६।

पद-अर्थ

बदफैली—नीच कर्म; **गैबाना**—छिपकर; **कलहि**—कलह, झगड़ा; **वादे**—झगड़े में; **पचीऐ**—नष्ट हों; **राह**—मार्ग; **सिझसी**—सिद्धि प्राप्त करना; **कुफर गोअ**—मिथ्या भाषी; **दझसी**—दग्ध होगा, जलेगा; **सुबहानु**—मुबारक, शुभ।

टीका

१. जो मनुष्य छिप कर नीच कर्म करता है वह उस प्रभु को जानता ही नहीं, जो सर्वत्र विद्यमान है और जिस से कुछ छिप नहीं सकता।

२. उसे अपने स्वरूप का ही ज्ञान नहीं। उस मनुष्य को तो पागल ही कहना उचित है।

३. संसार में (नीच कर्मों से) नीच कलह उत्पन्न होती है और कलह में संसार नष्ट होता रहता है।

४. नाम के बिना मनुष्य पापों और मनोरथों में नष्ट होता है।

५. जीवन के मार्ग तो दोनों हैं—एक परमात्मा का और एक माया का (राह दोवै खसमु एको जाणु) सफल वह मनुष्य होता है जो एक प्रभु को पहिचान लेता है।

६. परन्तु मिथ्या-भाषी मनुष्य, असत्य के जीवन में पड़ा हुआ जलता रहता है।

७. यह समस्त संसार उसके लिए शुभ है जो सत्य में लीन हो गया है।

८. वह अहन्त्व मिटाकर प्रभु के घर सफल होता है। ६।

सलोकु महला।

१. सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ।
२. नानक अवरु न जीवै कोइ।
३. जे जीवै पति लथी जाइ।
४. सभु हरामु जेता किछु खाइ।
५. राजि रंगु मालि रंगु रंगि रता नचै नंगु।
६. नानक ठगिआ मुठा जाइ।
७. विणु नावै पति गइआ गवाइ। १।

पद-अर्थ

रंगु—प्रेम; **नचै नंगु**—निर्लज्ज; **मुठा**—मुषित, वञ्चित, ठगा।

टीका

१. (वास्तव में) वही मनुष्य जीता है जिसके मन में प्रभु बस रहा है।

२. (नानक) (यह निश्चित जान कि) अन्य कोई भी नहीं जीता है।

३. (यदि नामहीन पुरुष शारीरिक) रूप से जीता भी है तो ईश्वर के घर प्रतिष्ठा खोकर जीता है।

४. और उसका खाना-पीना (जिसके आश्रय से वह जीता है) समस्त अधर्म की वस्तुएं हैं।

५. जो राज्य के प्रेम से अथवा किसी अन्य प्रेम से मत्त है, वह (समझो) निर्लज्ज होकर नृत्य कर रहा है।

६. (नानक) ऐसा मनुष्य ठगा जा रहा है, लुटा जा रहा है।

७. नाम के बिना वह यहां से प्रतिष्ठा खोकर जाता है।

महला ।

१. किआ खाधै किआ पैधै होइ ।
२. जा मनि नाही सचा सोइ ।
३. किआ मेवा किआ घिउ गुडु मिठा किआ मैदा किआ मासु ।
४. किआ कपडु किआ सेज सुखाली कीजहि भोग बिलासु ।
५. किआ लसकर किआ नेब खवासी आवै महली वासु ।
६. नानक सचे नाम विणु सभे टोल विणासु । २ ।

पद-अर्थ

पैधै—पहनने का; **नेब**—नायब, प्रतिनिधिभूत सहायक; **खवासी**—राज़-भृत्य; **टोल**—शोभा की वस्तुएं ।

टीका

१. ऐसे खाने और ऐसे पहनने का क्या लाभ है ?—
२. यदि वह सत्य (सदा स्थिर प्रभु) मन में नहीं वसा ।
३. क्या हुआ यदि फल, घृत, मिष्ठान्न गुड़ मैदा और मांस आदि पदार्थ भोग लिए ?
४. क्या हुआ यदि सुन्दर वस्त्र (पहन लिए), कोमल बिस्तरों पर (सो लिया) भोग विलास कर लिए ?
५. क्या हुआ यदि सेना, नायब और सेवक रख लिए और महलों में वास कर लिया ?
६. (नानक) सत्य नाम के बिना ये समस्त वस्तुएं क्षणिक हैं । २ ।

पउड़ी—१०

१. जाती दै किआ हथि सचु परखीऐ ।
२. महुरा होवै हथि मरीऐ चखीऐ ।
३. सचे की सिरकार-जुगु जुगु जाणीऐ ।
४. हुकमु मंने सिरदारु दरि दीबाणीऐ ।
५. फुरमानी है कार खसमि पठाइआ ।

६. **तबलबाज बीचार सबदि सुणाइआ ।**
७. **इकि होऐ असवार इकना साखती ।**
८. **इकनी बधे भार इकना ताखती । १० ।**

पद-अर्थ

महुरा—विष; **सिरकार**—शासन, राज्य में; **फुरमानी**—आज्ञा में, सेवा में; **पठाइआ**—भेजा; **तबलबाज**—नगारा बजाने वाला (गुरु); **साखती**—तैयार हो गए; **ताखती**—दौड़ पड़ें ।

टीका

१. (प्रभु के द्वार पर) जाति का पक्षपात नहीं होता । वहां केवल सत्य की परीक्षा होती है ।

२. (मिथ्या व्यवहार समस्त मनुष्यों के लिए हानिकारक है जेसे) यदि किसी की हथेली पर विष रख दिया जाए, और वह उसे खा ले तो वह अवश्य मरेगा ।

३. सत्य (अविनाशी) प्रभु के राज्य में (यही नियम) युग-युगान्तरों से चला आ रहा है (कि मिथ्या व्यवहार विष है और सत्य व्यवहार अमृत है) ।

४. प्रभु के घर वह प्रनिष्ठित हुआ है जिसने उसका आदेश माना है, जाति के कारण कोई नहीं ।

५. प्रभु ने जीव को संसार में इस हेतु भेजा है कि वह उसके आदेश में रहकर कर्म करे ।

६. नगाड़ची अर्थात् गुरु ने शब्द के द्वारा यही विचार (जगत् को) सुनाया है ।

७. (इस शब्द को सुन कर) कई लोग (इस मार्ग पर चलने के लिए) सन्नद्ध हो गए हैं और कई सन्नद्ध हो रहे हैं—

८. बहुत से लोगों ने असबाद लाद लिया है, और कई लोग दौड़ पड़े हैं । १० ।

सलोकु महला ।

१. **जा पका ता कटिआ रही सु पलरि वाड़ि ।**
२. **सणु कीसारा चिथिआ कणु लइआ तनु झाड़ि ।**

३. **दुइ पुड़ चक्की जोड़ि कै पीसरण आइ बहिठु ।**

४. **जो दरि रहे सु उबरे नानक अजबु डिठु ।**

पद-अर्थ

पलरि—दाने के बिना तना, पुराल, पराल, पलाल; **सरण**—सहित; **कीसारा**—गेहूं आदि की बाल के तीक्षण कांटे; **करणु**—दाने; **बहिठु**—बैठे हैं; **दरि**—द्वार पर, अर्थात् चक्की की कीली के समीप ।

टीका

१. जब (गेहूं का पोधा) पक गया तब इसकी बाल काट ली गई । इसकी पुराल (शुष्क नाल) और खेत की बाड़ पीछे रह गई ।

२. कांटों के साथ बालों को गाह बारीक कर दिया गया और दाने निकाल लिए गए ।

३. चक्की के दो पाटों को जोड़ कर दाने पीसने वाले आ बैठे ।

४. (नानक) यह अद्भुत तमाशा देखा गया है कि जो दाने चक्की की कीली के साथ लग गए वे पिसने से बच गए (जो परमात्मा के द्वार पर रहते हैं, वे बच जाते हैं । १ ।

महुला ।

१. **वेखु जि मिठा कटिआ कटि कुटि बधा पाइ ।**

२. **खुंढा अंदरि रखिकै देनि सु मल सजाइ ।**

३. **रसु कसु टटरि पाईऐ तपै तै विललाइ ।**

४. **भी सो फोगु समालीऐ दिचै आग जालाइ ।**

५. **नानक मिठै पतरीऐ वेखहु लोका आइ । २ ।**

पद-अर्थ

मिठा—अर्थात् गन्ना; **बधा पाइ**—पूलियों के रूप में रस्सियों से बांध लिया गया; **खुंढा**—गन्ना पेलने के कोल्हू के बेलने; **मल**—मल्ल, पहिलवान (अर्थात् कृषक); **सजाइ**—अर्थात् पेलते हैं; **रसु कसु**—निष्कृष्ट रस; **टटरि**—टट्टर में, कड़ाह में; **विललाइ**—रोता है; **मिठै पतरीऐ**—माधुर्य के कारण कष्ट भोग रहा है ।

टीका

१. (हे बन्धु !) देख, गन्ना काटा गया और छिल छाल कर रस्सियों से (पूलियों में) बांधा गया।

२. फिर कोल्हू के बेलनों में रख कर उस (असहाय को) पहलवानों (किसानों) ने मानों दण्ड दिया (पेला)।

३. गन्ने का रस बडे कड़ाह में डाला गया। वह अग्नि के सेक से तपता है और मानों रोता है।

४. गन्ने का छिलका भी इकट्ठा किया जाता है और वह भी आग में जलाया जाता है।

५. हे लोगों ! मीठे के कारण गन्ने की जो दशा हुई है आकर उसे देखो (गन्ने में मधुरता अर्थात् खांड रहती है) उसे प्राप्त करने के लिए लोग गन्ने को पीड़ित करते हैं। इसी प्रकार, जिस जीव के भीतर माया रहती है उसे भी कष्ट सहन करने पड़ते हैं। २।

पउड़ी—११

१. इकना मरणु न चिति आस घणेरिआ।
२. मरि मरि जंमहि नित किसै न केरिआ।
३. आपनड़ै मनि चिति कहनि चंगेरिआ।
४. जमराजै नित नित मनमुख हेरिआ।
५. मनमुख लूण हाराम किआ न जाणिआ।
६. बधे करनि सलाम खसम न भाणिआ।
७. सचु मिलै मुखि नामु साहिब भावसी।
८. करसनि तरवति सलामु लिखिआ पावसी। ११।

पद-अर्थ

केरिआ—योग्य; **हेरिआ**—देखा; **किआ**—किया हुआ नहीं जानता।

टीका

१. कितने ही जीव ऐसे हैं जो बड़ी-बड़ी आशाएं बनाए जाते हैं, उन्हें मृत्यु का ध्यान भी नहीं होता।

२. वे नित्य जन्मते-मरते रहते हैं, वे किसी के मित्र नहीं होते है ।
३. क्योंकि वे अपने मन और विचारों में अपने आप को अच्छा समझते रहते हैं ।
४. ऐसे मनुष्य को (दण्ड देने के लिए) यमराज सदा देखता रहता है ।
५. ये मनोमुख लोग धर्मपराङ्मुख लोग हैं । वे लोग प्रभु के कृतज्ञ नहीं होते हैं ।
६. ये विवशतावश उस (परमात्मा) को प्रणाम करते हैं । अत: प्रभु को अच्छे नहीं लगते हैं ।
७. जिसके मुख में नाम हैं, वह सत्य स्वरूप प्रभु को प्राप्त कर लेता है और उसे अच्छा लगता है ।
८. तख्त् पर बैठे हुए उसको सब लोग प्रणाम करते हैं और वह प्रभु की ओर से लिखे फल को प्राप्त करता है । ११ ।

सलोकु महला ।

१. मछी तारु किआ करे पंखी किआ आकासु ।
२. पथर पाला किआ करे खुसरे किआ घर वासु ।
३. कुते चंदनु लाईऐ भी सो कुती धातु ।
४. बोला जे समझाईऐ पड़ीअहि सिम्रिति पाठ ।
५. अंधा चानणि रखीऐ दीवे बलहि पचास ।
६. चउणे सुइठा पाईऐ चुणि चुणि खावे घासु ।
७. लोहा मारणि पाईऐ ढहै न होइ कपास ।
८. नानक मूला एहि गुण बोले सदा विणासु । १ ।

पद-अर्थ

तारू—गहरा पानी; **धातु**—स्वभाव; **चउणे**—चौपाए, गौएं आदि; **मारणि**—अहरन पर कूटा जाए; **विणासु**—विनाश ।

टीका

१. गहरा पानी मछली को क्या लाभ पहुंचा सकता है । (मछली का क्या बदल सकता है, वह मछली ही रहती है) । पानी की गहराई

का मछली पर प्रभाव नहीं। पक्षी को आकाश क्या लाभ पहुंचा सकता है? उसका महा विस्तार पक्षी पर क्या प्रभाव डालता है? वह मुक्त आकश में फिरता हुआ भी पक्षी ही है।

२. शैल्य पाषाण पर प्रभाव नहीं डालता है। (पाषाण पाषाण ही रहता है) नपुंसक पर घर में रहने का कोई प्रभाव नहीं।

३. कुत्ते पर चन्दन लेप कर दिया जाए तो भी उसका स्वभाव कुत्ते जैसा ही रहता है।

४. यदि वधिर को शिक्षा दी जाए अथवा उसके समीप स्मृतियों का पाठ किया जाए तो उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

५. अन्धे को प्रकाश में बैठा दिया जाए और उसके समीप कई दीपक जला दिए जाएं तो उसके लिए अन्धकार ही रहता है।

६. यदि पशुओं के आगे सोना डाल दिया जाए तो वे उसे नहीं खाएंगे। वे तो उलट-पुलट कर, चुन-चुन कर, घास ही खाएंगे।

७. यदि अहरन पर रख कर लोहा कूटा जाए तो वह कपास के समान कोमल चूर्ण होता है।

८. (नानक) मूर्ख की भी यही प्रकृति है कि वह जब अपने स्वभाव के अनुसार बोलता है तब उसका परिणाम अशुभ ही होता है। १।

महला—१

१. कैहा कंचनु तुटै सारु।
२. अगनी गंढु पाए लोहारु।
३. गोरी सेती तुटै भतारु।
४. पुती गंढु पवै संसारि।
५. राजा मंगै दितै गंढु पाइ।
६. भुखिआ गंढु पवै जा खाइ।
७. काला गंढु नदीआ मीह झोल।
८. गंढु परीतो मिठे बोल।
९. वेदा गंढु बोले सचु कोइ।
१०. मुइआ गंढु नेकी सतु होइ।
११. एतु गंढि वरतै संसारु।

१२. **मूरख गंढ पवै मुहि मार ।**

१३. **नानकु आखे एहु बीचारु ।**

१४. **सिफती गंढु पवै दरबारि । २ ।**

पद-अर्थ

सारु—लोहा; **गोरी**—नारी; **मीह झोल**—प्रबल वृष्टि ।

टीका

१. यदि कांस्य, सुवर्ण अथवा लोहा टूट जाए,— —

२. तो लुहार आग से जोड़ लगा देता है।

३. यदि नारी पति से विमुक्त हो जाए,— —

४. तो संसार में पुत्रों के द्वारा उनका दोबारा पुन: मिलन हो जाता है ।

५. यदि राजा (प्रजा में वैमनस्य हो जाए) और राजा (कर) मांगे तो कर देने से उसका प्रजा के साथ मेल हो जाता है ।

६. यदि कोई भूखा हो तो खाने से वह पुन: जीवन से संयुक्त हो जाता है ।

७. यदि अकाल के समय नदियां सूखी हों तो प्रबल वर्षा से नदियों का पानी से पुन: मेल हो जाता है ।

८. (यदि दो प्राणियों का परस्पर मनोमालिन्य हो तो) प्रेम-सिक्त मधुर वचनों से पुन: उन का मिलाप हो जाता है ।

९. (यदि वेद आदि धार्मिक ग्रन्थों के प्रति अरुचि हो तो) सत्य भाषण से पुन: (उनके प्रति) रुचि उत्पन्न हो कर उनसे मेल हो जाता है ।

१०. मर कर भी जीवों का संसार के साथ सम्बन्ध बना रहता है, यदि वे उपकार के कार्य और दान करके संसार से गए हों ।

११. इस प्रकार के मिलाप से संसार चलता है ।

१२. परन्तु कभी-कभी मूर्ख के मुंह पर चोट पड़ने से भी उस से हुआ वियोग नष्ट होकर उस से मिलाप हो जाता है ।

१३. (अब) नानक एक उत्तम ज्ञान की बात कहता है—

१४. प्रभु की गुणस्तुति में लगने से प्रभु के घर मिलाप सम्पन्न होता है । २ ।

पउड़ी—१२

१. आपे कुदरति साजि क आपे करे बीचारु ।

२. इकि खोटे इकि खरे आपे परखणहारु ।

३. खरै खजानै पईअहि खोटे सटीअहि बाहरवारि ।

४. खोटे सची दरगह सुटीअहि किसु आगै करहि पुकार ।

५. सतिगुर पिछै भजि पवहि एहा करणी सारु ।

६. सतिगुर खोटिअहु खरे करे सबदि सवारणहारु

७. सची दरगह मंनीअनि गुर कै प्रेम पिआरि ।

८. गणत तिना दी को किआ करे जो आपि बखसे करतारि । १२ ।

पद-अर्थ

सार—श्रेष्ठ ।

टीका

१. परमात्मा आप ही रचना करके आप ही उसकी संभाल करता है ।

२. (यहां) कई जीव खोटे हैं, कई खरे हैं । परमात्मा आप ही खोटे खरे की परख करने वाला है ।

३. अच्छे जीवों को उसके कोष में संभाला जाता है और खोटे बाहर फेंक दिए जाते हैं ।

४. जब खोटों को सत्यस्वरुप ईश्वर के घर से निकाला जाता है तब वे किसके आगे जाकर पुकार करेंगे (कोई अन्य आश्रय है ही नहीं) ।

५. उन खोटों के लिए उत्तम कर्म यही है कि वे सद्गुरु की शरण में जाएं ।

६. सद्गुरु खोटों को खरा कर देता है, वह अच्छी शिक्षा के द्वारा जीवों के संभालने में समर्थ है ।

७. (खोटे भी) गुरु के प्रेम वश सत्य-स्वरुप ईश्वर के घर स्वीकृत हो जाते हैं ।

८. (क्योंकि) जिन्हें परमात्मा ने स्वयं क्षमा कर दिया है उनसे कोई (कर्मों का) क्या लेखा मांगेगा । १२ ।

सलोक महला ।

१. **हम जेर जिमी दुनीआ पीरा मसाइका राइआ ।**

२. **मे रवदि बादिशाहा अफजू खुदाइ ।**

३. **एक तूही एक तुही ।**

पद-अर्थ

हम—समस्त; **जेर**—नीचे; **मसाइका**—शेख, महान्, सरदार; **मे रवदि**—जाता है; **अफजू**—अतिरिक्त, अवशिष्ट ।

टीका

१. पीर, शेख, राम आदि समस्त जगत् (अन्त में) भूमि के नीचे हो जायगा, भूमिसात् हो जाएगा ।

२. यहां से बादशाह भी चले जाते हैं । शेष केवल परमात्मा रह जाता है ।

३. हे प्रभु । केवल तुम ही स्थायी हो । एक तुम ही स्थायी हो । १ ।

महला १

१. **न देव दानवा नरा ।**

२. **न सिध साधिका धरा ।**

३. **असति एक दिगरि कुई ।**

४. **एक तुई एक तुई । २ ।**

पद-अर्थ

धरा—पृथ्वी पर टिका रहा; **असति**—अस्ति, है, रहता है ।

टीका

१. न देवता, न दानव, न मनुष्य—

२. न सिद्ध, न साधक, कोई भी यहां, पृथ्वी पर, नहीं रहता है ।

३. रहता केवल एक है, और कोई नहीं रहता है ।

४. हे प्रभु । केवल तुम रहते हो, एक तुम रहते हो । २ ।

महला ।

१. न दादे दिहंद ग्रादमी ।

२. न सपत जेर जिमी ।

३. असति एक दिगरि कुई ।

४. एक तुई एक तुई । ३ ।

पद-ग्रर्थ

दादे दिहंद—न्याय करने वाले; **सपत**—सात पाताल ।

टीका

१. न न्याय करने वाले (न्यायाधीश) सदा स्थिर हैं ।—

२. न पृथ्वी के नीचे सात पाताल स्थिर हैं ।

३. स्थिर एक ही है, ग्रन्य कोई नहीं ।

४. हे प्रभु ! केवल तुम ही स्थिर हो, एक तुम ही स्थिर हो । ३ ।

महला ।

१. न सूर ससि मंडलो ।

२. न सपत दीप नह जलो ।

३. ग्रंन पउरा थिरु न कुई ।

४. एकु तुई एकु तुई । ४ ।

पद-ग्रर्थ

सूर—सूर्य; **ससि**—चन्द्रमा: **मंडलो**—आकाश; **दीप**—पृथ्वी के भाग **जलो**—जल; समुन्द्र ।

टीका

१. न सूर्य, न चन्द्रमा, न ग्राकाश,—

२. न पृथ्वी ग्रौर सात खंड, न समुद्र,

३. न ग्रग्नि, न वायु—कोई भी स्थिर नहीं है ।

४. हे प्रभु ! स्थिर केवल तुम हो, स्थिर एक तुम ही हो । ४ ।

महला ।

१. **न रिजकु दसत आ कसे ।**

२. **हमा रा एकु आस वसे ।**

३. **असति एकु दिगरि कुई ।**

४. **एकु तुई एकु तुई । ५ ।**

पद-अर्थ

दसत—हस्त; **हमारा**—सबके लिए; **वसे**—पर्याप्त है ।

टीका

१. जीवों का भोजन किसी अन्य के हाथ में नहीं है ।

२. सबके लिए उसकी आशा पर्याप्त है ।

३. वही स्थिर है, अन्य कोई नहीं ।

४. हे प्रभु ! स्थिर केवल तुम हो, स्थिर एक तुम हो । ५ ।

महला ।

१. **परंदए न गिराह जर ।**

२. **रखत आब आस कर ।**

३. **दिहंद सुई ।**

४. **इक तुई एक तुई । ६ ।**

पद-अर्थ

परंदए—पक्षी; **गिराह**—पल्ले (पास); **जर**—धन; **आब**—पानी ।

टीका

१. पक्षियों के पास कोई धन नहीं होता ।

२. वे वृक्षों और जल का आश्रय लेते हैं ।

३. देने वाला वही है ।

४. हे प्रभु । देने वाले एक तुम हो, देने वाले एक तुम हो । ६ ।

महला ।

१. नानक लिलारि लिखिआ सोइ ।
२. मेटि न साकै कोइ ।
३. कला धरै हिरै सुइ ।
४. एकु तुई एकु तुई । ७ ।

पद-अर्थ

लिलारी—ललाट पर, मस्तक पर; **कला**—शक्ति; **हिरै**—हरण करता है, छीन लेता है ।

टीका

१. (नानक) जीव के मस्तक पर जो कुछ उस (प्रभु) की ओर से लिखा हुआ होता है,—
२. उसे कोई नहीं मिटा सकता है ।
३. वही जीव के भीतर शक्ति भरता है और वही छीनता भी है ।
४. हे प्रभु, (जीवों को शक्ति देने वाले और छीनने वाले, केवल तुम हो, केवल एक तुम हो । ७ ।

पउड़ी—१३

१. सचा तेरा हुकमु गुरमुखि जाणिआ ।
२. गुरमती आपु गवाइ सचु पछाणिआ ।
३. सचु तेरा दरबारु सबदु नीसाणिआ ।
४. सचा सबदु वीचारि सचि समाणिआ ।
५. मनमुख सदा कूड़िआर भरमि भुलाणिआ ।
६. विसटा अंदरि वासु सादु न जाणिआ ।
७. विणु नावै दुखु पाइ आवण जाणिआ ।
८. नानक पारखु आखि जिनि खोटा खरा पछाणिआ । १३ ।

पद-अर्थ

आपु—अहंकार; **विसटा**—विष्ठा, मल ।

टीका

१. हे प्रभु, तुम्हारा आदेश सत्य (अविचाल्य) है, परन्तु इसका ज्ञान गुरु की शिक्षा से होता है।

२. जब गुरु के उपदेश से मनुष्य अहंकार नष्ट करता है तब वह सत्य (स्वरूप प्रभु) का ज्ञान प्राप्त करता है।

३. हे प्रभु। तुम्हारी सभा सदा स्थिर है। इस सभा तक पहुंचने के लिए गुरु के उपदेश (की उपार्जना) यात्रा-पत्र है।

४, जिन्होंने सत्य शब्द पर विचार किया है, वे सत्य में लीन हो गए हैं।

५. परन्तु जो लोग गुरु से विमुख हैं वे सदा मिथ्या में रत रहते हैं और अज्ञान में भूले फिरते हैं।

६. इनका निवास मल में ही रहता है। इनको शब्द के आनन्द का ज्ञान नहीं होता है;

७. ये नाम के बिना दुःख पाते हैं और जन्म-मरण के चक्र में रहते हैं।

८. (नानक) पारख, परख करने वाला, प्रभु स्वयं है जो सत् असत् का विवेक करता है। १३।

सलोकु महला १

१. **सीहा बाजा चरगा कुहीआ एना खवालै घाह।**

२. **घाहु खानि तिना मासु खवाले एहि चलाए राह।**

३. **नदीआ विचि टिबे देखाले थली करे असगाहु।**

४. **कीड़ा थापि देई पातिसाही लशकर करे सुआह।**

५. **जेते जीअ जीवहि लै साहा जीवाले ता कि असाह।**

६. **नानक जिउं जिउं सचे भावै तिउं तिउं देइ गिराह। १।**

पद-अर्थ

सीहा—सिंहों; **चरगा**—एक मांसाहारी पक्षी; **कुहीआ**—कुही, एक शिकारी पक्षी; **असगाह**—अस्ववगाहय, दुरवगाह, गहरा पानी; **कि असाह**—शाह की क्या आवश्यकता है; **गिराह**—ग्रास, तात्पर्य जीविका।

टीका

१. (यदि चाहे तो प्रभु) सिंहों श्येनों, चरगों और कुहियों को (जो मांसाहारी हैं) घास खिला दे।

२. और जो घास खाने वाले पशु हैं उन्हें मांस खिला दे। वह यह अद्‌भुत रीति चला सकता है।

३. (वह चाहे तो) नदियों के स्थान पर टीले कर दे और (चाहे तो) मरुस्थलों को गहरा सागर बना दे।

४. (वह चाहे तो)कीड़े (साधारण मनुष्य) को राजा कर दे और (चाहे तो) सेनाओं सहित राजा को राख (नष्ट) कर दे।

५. जितने जीव हैं, श्वास लेकर जीते हैं, परन्तु यदि वह किसी को जीवित रखना चाहे तो उसे श्वासों की भी क्या आवश्यता है ?

६. (नानक) उस सत्य (सदा स्थिर) प्रभु को जैसे अच्छा लगता है वह वैसे ही प्रत्येक प्राणी को जीविका देता है। १।

महला १

१. इकि मासहारी इकि त्रिणु खाहि।
२. इकना छतीह अंम्रित पाहि।
३. इकि मिटीआ महि मिटिआ खाहि।
४. इकि पउण सुमारी पउण सुमारि।
५. इकि निरंकारि नाम आधारि।
६. जीवै दाता मरै न कोई।
७. नानक मुठे जाहि नाही मनि सोइ। २।

पद-अर्थ

मासहारी—मांस खाने वाले; **त्रिणु**--तृण, घास; **पउण-सुमारि**—साँसों की गणना करने वाले (प्राणायाम करने वाले)।

टीका

१. कई जीव मांस खाने वाले हैं, कई घास खाने वाले हैं।

२. कई जीवों को समस्त प्रकार के भोजन सुलभ हैं।

३. कई मिट्टी में पड़े, मिट्टी खाते हैं।

४. कई श्वासों की गणना करने वाले (प्राणायामी) श्वासों की गणना करते रहते हैं।

५. कई निराकार प्रभु, की उपासना करने वाले नाम के आश्रय से जीते हैं (और यही उनके जीवन का आधार बनाता है।)

६. उन सबमें से कोई मरता नहीं। क्योंकि, उनका दाता प्रभु सदा जीता है जो उनका आधार है।

७. (नानक) वे ही प्रताडित होते हैं, जिनके मन में नाम नहीं होता है। २।

पउड़ी—१४

१. पूरे गुर की कार करमि कमाईऐ।
२. गुरमती आपु गवाइ नामु धिआईऐ।
३. दूजी कारै लगि जनमु गवाईऐ।
४. विणु नावै सभ विसु पैझे खाईऐ।
५. सचा सबदु सालाहि सचि समाईऐ।
६. विणु सतिगुरु सेवे नाही सुखि निवासु फिर फिरि आईऐ।
७. दुनीआ खोटी रासि कूड़ु, कमाईऐ।
८. नानक सचु खरा सालाहि पति सिउ जाईऐ। १४।

पद-अर्थ

करमि—कृपा के द्वारा; **विसु**—विष।

टीका

१. पूर्ण गुरु की बताई हुई साधना तब की जाती है जब प्रभु की कृपा होती हैं।

२. गुरु के उपदेश से अहंकार नष्ट कर के नाम का स्मरण किया जाता है।

३. नाम का त्याग करके अन्य कार्यों में मग्न रहने से जन्म निष्फल जाता है।

४. नाम-स्मरण के बिना जो खाया जाता है और जो पहिना जाता है वह समस्त विष के समान है।

५. (क्योंकि नाम–शून्य मनुष्य परमात्मा से दूर) चले जाते हैं और उनकी आध्यात्मिक मृत्यु हो जाती है।

६. सद्गुरु की सेवा के बिना सुख का जीवन नहीं मिलता और जन्म-मरण बना रहता है।

७. धन सम्पति नश्वर पूंजी है। इस से मिथ्या वस्तुएं मोल ली जाती हैं।

८. (नानक) वास्तविक सत्य प्रभु की गुणस्तुति करने से मनुष्य प्रतिष्ठा के साथ ईश्वर के घर जाता है। १४।

सलोकु महला।

१. तुधु भावै ता वावहि गावहि तुधु भावै जलि नावहि।
२. जा तुधु भावहि ता करहि बिभूता सिङी नादु वजावहि।
३. जा तुधु भावै ता पड़हि कतेबा मुला सेख कहावहि।
४. जा तुधु भावै ता होवहि राजे रस कस बहुतु कमावहि।
५. जा तुधु भावै तेग वगावहि सिर मुंडी कटि जावहि।
६. जा तुधु भावै जाहि दिसंतरि सुणि गला धरि आवहि।
७. जा तुधु भावै नाइ रचावहि तुधु भाणे तूं भावहि।
८. नानकु एक कहै बेनंती होरि सगले कूड़ु कमावहि। १।

पद-अर्थ

वावहि—बाजे बजाते हैं; **करहि बिभूता**—विभूति मलते हैं; **मुंडी**—गरदन से; **नाइ**—नाम में; **रचावहि**—लगते हैं।

टीका

१. जब तुम्हें ऐसे अच्छा लगता है तब कई मनुष्य साज बजाते हैं और कई जल (तीर्थों) में स्नान करते हैं।

२. तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही कई लोग शरीर पर विभूति मलते हैं और (योगी होकर) शृंगी बजाते हैं।

३. तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही कई लोग पुस्तकें पढ़ते हैं और मुल्ला तथा शेख़ कहलाते हैं।

४. तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही कई लोग राजा बनते हैं और कषाय आदि रसों का स्वाद लेते हैं।

५. तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही कई लोग तलवार चलाते हैं और सिर गरदनों से काट दिए जाते हैं।

६. तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही कई लोग विदेश जाते हैं, वहां के समाचार सुनकर अपने देश में वापिस आते हैं।

७. तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही कई लोग प्रेमसहित नाम-स्मरण में लीन होते हैं, तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही चलने से वे तुम्हें अच्छे लगते हैं।

८. (नानक) एक प्रार्थना करता है कि (तुम्हारे नाम के बिना) अन्य सब लोग झूठ का व्यापार करते हैं। १।

महला।

१. जा तूं वडा सभि वडिआंईआ चंगै चंगा होई।

२. जा तूं सचा ता सभ को सचा कूड़ा कोइ न कोई।

३. आखणु वेखणु बोलणु चलणु जीवणु मरणा धातु।

४. हुकमु साजि हुकमै विचि रखै नानक सचा आपि। २।

पद-अर्थ

धातु—चलायमान, नश्वर, माया; **जा**—जब।

टीका

१. क्योंकि जब तुम महान् हो तब समस्त महत्ताएं (तुम से निकली हैं)। अच्छे से अच्छा ही निकलता हे।

२. जब तुम आप सत् हो तब सब कोई सत् है। कोई भी असत् नहीं हो सकता।

३. (जब एक, ईश्वर, विस्मृत कर दिया जाता है तब) समस्त प्राणी वचन में, अवलोकन में, भाषण में, जीवन में, मृत्यु में माया का विकार (अनित्य) हो जाते हैं।

४. (सत्य यह है) (नानक कि) वह सत्य (सदा स्थिर) प्रभु आप ही आदेश करके समस्त जीवों को अपने आदेश में चला रहा है। (जो मनुष्य इस तत्व को भूल जाता है वह परमात्मा के खेल को माया का खेल समझ लेता है)। २।

पउड़ी—१५

१. सतिगुरु सेवि निसंगु भरमु चुकाईऐ ।

२. सतिगुरु आखै कार सु कार कमाईऐ ।

३. सतिगुरु होइ दइआलु त नाम धिआईऐ ।

४. लाहा भगति सुसारु गुरमुखि पाईऐ ।

५. मनमुखि कूड़ु गुबारु कूड़ु कमाईऐ ।

६. सचे दै दरि जाइ सचु चवांईऐ ।

७. सचै अंदरि महलि सचि बुलाईऐ ।

८. नानक सचु सदा सचिआरु सचि समाईऐ । १५ ।

पद-अर्थ

निसंगु—निःशंक; **सारु**—श्रेष्ठ; **चवाँईऐ**—बोलिए।

टीका

१. विश्वास के साथ सद्गुरु की सेवा में लग कर (शरण लेकर) मन की भ्रान्ति दूर होती है।

२. सद्गुरु जिस कार्य का आदेश करे वही कार्य करना चाहिए।

३. सतिगुरु यदि कृपा करके नाम की देन दे तो नाम-स्मरण करना चाहिए।

४. गुरु की शिक्षा से भक्ति (नाम-स्मरण) का श्रेष्ठ फल प्राप्त किया जाता है।

५. गुरु से विमुख होने पर मिथ्या ज्ञान और अज्ञान बने रहते हैं और मिथ्या ही मोल लिया जाता है।

६. यदि सत्य गुरु के द्वार पर जाकर सत्य नाम का उच्चारण किया जाए।

७. तो सत्य प्रभु के घर बुला लिया जाता है।

८. (नानक) जिसके पास सदा सत्य है वह सदाचारी है और वह सत्य में ही लीन हो जाता है। १५।

सलोकु महला।

१. कलि काती राजे कासाई धरमु पंखा करि उडरिआ।

२. कूड़ु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ।

३. हउ भालि विकुंनी होई।

४. आधेर राहु न कोई।

५. विचि हउमै करि दुखु रोई।

६. कहु नानक किनि विधि गति होई। १।

पद-अर्थ

कलि—कलियुग; **काती**—छुरी; **पंख करि**—पंख लगा कर; **कह**—कहां; **विकुंनी**—व्याकुल; **गति**—मुक्ति की अवस्था, छुटकारा।

टीका

१. कलियुग रूपी छुरी है, राजा रूपी कसाई है, धर्म (रूपी पक्षी) पंख लगा कर उड़ गया है।

२. असत्य अमावस्या के अन्धकार के तुल्य व्याप्त हो रहा है, सत्य रूपी चन्द्रमा कहीं चढ़ा हुआ दिखाई नहीं देता है।

३. मैं इस सत्य-चन्द्रमा को खोज-खोज कर व्याकुल हो गई हूं।

४. अन्धकार में मार्ग दिखाई नहीं देता है।

५. सृष्टि, अहंकार के कारण दुःखी हो रही है।

६. (नानक) अब इस अन्धकार से मुक्ति किस प्रकार प्राप्त हो। १।

महला ३

१. कलि कीरति परगटु चानणु संसारि।

२. गुरमुखि कोई उतरै पारि।

३. जिस नो नदरि करे तिसु देवै।

४. नानक गुरमुखि रतनु सो लेवै। २।

पउड़ी—१६

१. भगता तै सैसारीआ जोड़ु कदे न आइआ ।

२. करता आपि अभुलु है न भुलै किसै दा भुलाइआ ।

३. भगत आपे मेलिअनु जिनी सचो सचु कमाइआ ।

४. सैसारी आपि खुआइअनु जिनि कूड़ु बोलि बोलि बिखु खाइआ ।

५. चलण सार न जाणनी कामु करोधु विसु वधाइआ ।

६. भगत करनि हरि चाकरी जिनी अनदिनु नामु धिआइआ ।

७. दासनिदास होइ कै जिनी विचहु आपु गवाइआ ।

८. ओना खसमै कै दरि मुख उजले सचै सबदि सुहाइआ । १६ ।

पद-अर्थ

सैसारीआ—माया-ग्रसित सांसारिक व्यक्ति; **खुआइअनु**—खो दिया है, भुला दिया है; **अनदिनु**—प्रतिदिन, सदा ।

टीका

१. भक्तों और मायानुरागियों का मेल कभी नहीं हुआ (दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते) ।

२. (परन्तु) स्रष्टा प्रभु भूल नहीं करता है । यदि कोई मनुष्य उसे भूल में डालने का यत्न करे तो वह भूल में नही पड़ता है ।

३. (यह उसकी अपनी ही इच्छा है कि एक ओर) उसने भक्तों को, जिन्होंने सत्य नाम की साधना की है, अपने साथ मिला लिया है—

४. (और दूसरी ओर) उसने माया रसिकों को, जो असत्य बोल-बोल कर अधर्म से अर्जित भोग भोगते हैं, आप ही भूल में डाल रखा है ।

५. उन (मायारसिकों) को मृत्यु का ध्यान ही नहीं है, और वे काम-क्रोध रूपी विष का अर्जन कर रहे हैं ।

६. (यह उसकी अपनी ही इच्छा है कि) भक्त उसकी सेवा कर रहे हैं और सदा उसके नाम में लग्न रहते हैं ।

७. वे प्रभु के सेवकों के सेवक बन कर अपने भीतर का अहंकार मिटा लेते हैं ।

८. इनके मुख स्वामी प्रभु के द्वार पर कान्तिमान रहते हैं । वे सत्य शब्द के कारण सुन्दर लगते हैं । ६ ।

सलोक महला १

१. सबाही सालाह जिनी धिश्राइश्रा इक मनि ।
२. सेई पूरे साह वखतै उपरि लड़ि मुए ।
३. दूज बहुते राह मन कीआ मती खिडीश्रा ।
४. बहुतु पए श्रसगाह गोते खाहि न निकलहि ।
५. तीजै मुही गिराह भुख तिखा दुइ भउकीश्रा ।
६. खाधा होइ सुआह भी खाणे सिउ दोसती ।
७. चउथै आई ऊंघ श्रखी मीटि पवारि गइश्रा ।
८. भी उठि रचिश्रोनु वादु मै वरहिश्रा की पिडह बधी ।
९. सभे वेला वखत सभि जे अठी भउ होइ ।
१०. नानक साहिबु मनि वसै सचा नावणु होइ । १ ।

पद-ग्रर्थ

सवाही—प्रातः काल, ब्रहम मुहूर्त; **सालाह**—स्तुति; **वखतै**—समय पर; **दूजै**—द्वितीय प्रहर; दिन चढ़ने पर; **श्रसगाह**—अथाह, समुद्र; **मुही गिराह**—मुंह में रोटी; **भउकीश्रा**—भभक उठती है; **ऊंध**—तन्द्रा, निद्रा; **पवारि**—परलोक, मर कर पुनः जीवित हो जाना; **वादु**—विवाद; **पिडह**—अखाड़ा, दर्शकों की भीड़ ।

टीका

१. जो प्राणी ब्रह्ममुहूर्त में प्रभु की स्तुति करते हैं श्रौर एकाग्र मन से उसकी स्तुति करते हैं ।—
२. वे पूर्ण धनी हो जाते हैं । उन्होंने उचित समय पर श्रपने मन से संघर्ष करके (श्रात्म-बल रूपी धन राशि संचित कर ली है) ।
३. द्वितीय प्रहर में (दिन चढ़ने पर) मन की वृत्तियां बिखर जाती हैं श्रौर मन कई दिशाश्रों में दौड़ता फिरता है ।—
४. तब बहुत से लोग संसार-सागर में ऐसी डुबकी खाते हैं कि फिर इस से पार नही हो सकते हैं ।
५. तृतीय प्रहर में, जीव खाने के कार्य में लग जाता है तब क्षुधा श्रौर तृष्णा दोनों चमक उठती हैं ।

६. पहला खाया हुआ भस्म हो जाता हैं तब और खाने के लिए इच्छा होती है।

७. चतुर्थ प्रहर में जीव को निद्रा आ जाती है। वह आंखें बन्द करके ऐसे सोता है मानों परलोक में चला गया हो।

८. वह फिर उठता है और वे ही धन्धे आरम्भ कर देता है—जैसे दर्शकों की भीड़ लगा कर तमाशा करने वाले (या दवा बेचने वाले) के समान इसे यहां सैकड़ों वर्ष टिके रहना है।

९. (हे मित्रों, उपर्युक्त विचार का सार यह है कि आठों प्रहर प्रभु का भय हृदय में रहे तो सब समय पवित्र है और प्रभु को स्वीकृत होता है।

१०. (नानक) यदि इस प्रकार स्वामी प्रभु हृदय में बस जाए तो सच्चा स्नान होता है, आध्यात्मिक पवित्रता प्राप्त होती है।

महला २

१. सेई पूरे साह जिनी पूरा पाइआ।
२. अठी वेपरवाह रहिनि इकतै रंगी।
३. दरसनि रूप अथाह विरले पाईअहि।
४. करमि पूरे पूरा गुरु पूरा जाका बोलु।
५. नानक पूरा जे करे घटै नाही तोलु। २।

पउड़ी—१७

१. जा तूं ता किआ होरि मैं सचु सुणाईऐ।
२. मुठी धंधै चोरि महलु न पाईऐ।
३. एनै चिति कठोरि सेव गवाईऐ।
४. जितु घटि सचु न पाइ सु भंनि घड़ाईऐ।
५. किउंकरि पूरै वटि तोलि तुलाईऐ।
६. कोटि न आखै घटि हउमै जाईऐ।
७. लईअनि खरे परखि दरि बीनाईऐ।
८. सउदा इकतु हटि पुरै गुरि पाईऐ। १७।

पद-अर्थ

एनै—इसने; मुठी—ठगी गई है; दरि बीनाईऐ—बुद्धिमान प्रभु के द्वार पर।

टीका

१. मैं सत्य कहता हूं कि यदि (हे प्रभु) तुम मेरे साथ हो तो मुझे किसी जन्म की क्या आवश्यकता है?

२. (परन्तु) जो जीव रूपी नारी धंधे रूपी चोर के द्वारा ठग ली गई है, वह तुम्हारे द्वार तक नहीं पहुंचती।

३. उसने की हुई सेवा, अपने कठोर चित्त के कारण, व्यर्थ खो दी है!

४. जिस हृदय में (प्रभु) ने सत्य नहीं डाला उसे तोड़ कर पुनः पुनः बनाना पड़ता है (उसे जन्म-मरण के चक्र में पड़कर उसमें से निकलना पड़ता है)।

५. वह (हृदय) (हरि) के पूर्ण बाटों से किस प्रकार तुल सकता है।

६. परन्तु अहंभावना चली जाए तब उसे कोई तोल में न्यून नहीं कहता है।

७. निर्दोष जीव बुद्धिमान प्रभु के द्वार पर परख लिए जाते हैं।

८. परन्तु वह पुण्यवस्तु जो प्रभु के द्वार पर स्वीकृत होती है, केवल गुरु की दुकान से मिलती है। १७।

सलोक महला २

१. अठी पहरी अठ खंड नावा खंडु सरीरु।
२. तिसु विचि नउ निधि नामु एकु भालहि गुणी गहीरु।
३. करमवंती सालाहिआ नानक करि गुरु पीरु।
४. चउथै पहरि सबाह कै सुरतिआ उपजै चाउ।
५. तिना दरीआवा सिउ दोसती मनि मुखि सचा नाउ।
६. ओथै अंम्रित वंडीऐ करमी होइ पसाउ।
७. कंचन काइआ कसीऐ वंनी चड़ै चड़ाउ।
८. जे होवै नदरि सराफ की बहुड़ि न पाई ताउ।

९. सती पहरी सतु भला बहीऐ पड़िश्रा पासि ।
१०. श्रोथै पापु पुंनु बीचारीऐ कुड़ै घटै रासि ।
११. श्रोथै खोटे सटीश्रहि खरे कीचहि साबासि ।
१२. बोलणु फादलु नानका दुखु सुखु खसमै पासि । १ ।

महला २

१. पउणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु ।
२. दिनसु राति दुइ दाई दाइश्रा खेलै सगल जगतु ।
३. चंगिआईश्रा बुरिआईश्रा वाचे धरमु हदूरि ।
४. करमी श्रापो श्रापणी के नेड़ै के दूरि ।
५. जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि ।
६. नानक ते मुख उजले होर केती छुटी नालि । २ ।

पउड़ी—१८

१. सचा भोजनु भाउ सतिगुर दसिश्रा ।
२. सचे ही पतीश्राइ सचि विगसिआ ।
३. सचै कोटि गिरांइ निजघरि वसिश्रा ।
४. सतिगुरि तुठै नाउ प्रेमि रहसिश्रा ।
५. सचै दै दीबाणि कूड़ि न जाईऐ ।
६. झूठो झूठु वरवाणि सु महलु खुश्राईऐ ।
७. सचै सबदि नीसाणि ठाक न पाईऐ ।
८. सचु सुणि बुझि वखाणि महलि बुलाईऐ । १८ ।

पद-श्रर्थ

भाउ—प्रेम; **पतिश्राइ**—विश्वास किया; **रहसिश्रा**—खिला, प्रसन्न हुआ; **खुआईऐ**—खोया जाता है; **नीसाणि**—निशान, यात्रानुमति पत्र; **वखाणि**—कहकर ।

टीका

१. जिस मनुष्य को सद्गुरु ने प्रभु-प्रेम रूपी वास्तविक (श्राध्यात्मिक) भोजन बतला दिया है,—

२. वह सत्य प्रभु के विश्वास से पूर्ण हो जाता है और उस सत्य में स्थित रहकर प्रसन्न रहता है।

३. वह उस सत्य स्वरूप प्रभु में निवास करता है जो उसके लिए स्थायी कोट (दुर्ग) तथा ग्राम बन जाता है।

४. सद्‌गुरु के प्रसन्न होने से नाम की प्राप्ति होती है, और तब जीव प्रभु प्रेम में खिलता है।

५. सत्य प्रभु की सभा में मिथ्या के द्वारा नहीं पहुंचा जा सकता है।

६. मनुष्य मिथ्या ही मिथ्या बोलकर सत्य प्रभु के घर की प्राप्ति से बंचित हो जाता है।

७. परन्तु यदि किसी के पास सत्य शब्द का प्रमाण पत्र हो तो कोई उसे प्रभु के घर में प्रवेश करने से नहीं रोक सकता।

८. सत्य प्रभु का नाम सुनने, समझने और कहने से मनुष्य उस प्रभु के द्वार पर बुला लिया जाता है। १८।

सलोकु महला १

१. पहिरा अगनि हिवै घरु बाधा भोजनु सारु कराई।
२. सगले दूख पाणी करि पीवा धरती हाक चलाई।
३. धरि ताराजी अंबरु तोली पिछै टंकु चड़ाई।
४. एवडु वधा मावा नाही सभसै नथि चलाई।
५. ऐता ताणु होवै मन अंदरि करीभि आखि कराई।
६. जेवडु साहिबु तेवड दाती दे दे करे रजाई।
७. नानक नदरि करे जिसु उपरि सचि नामि वडिआई। १।

पद-अर्थ

पहिरा—पहिन लूं; **हिवै**—हिम में, **बाधा**—बांधूं, बनाऊं; **सारु**—लोहा; **हाक**—हांक के आगे कर लूं; **ताराजी**—तराजू; **अंबरु**—आकाश; **टंकु**—चार माशे का बाट; भावां-समाऊं; **रजाई**—रजा वाला, स्वेच्छाशाली।

टीका

१. यदि मैं अग्नि पहिन लूं, हिम में घर बना लूं और लोहे को भोजन

बना लूं, —

२. यदि मैं समस्त दुःख जल के समान पी लूं (सुगमता से सहन कर लूं), समस्त पृथ्वी को हांक के आगे कर लूं,—

३. यदि मैं समग्र आकाश को तराजू में रख कर और पीछे चार माशे का बाट रख कर तोल लूं,

४. यदि मैं इतना बड़ा बन जाऊं कि कहीं समा ही न सकूं और यदि मैं सब लोगों को नाथ कर अपने आगे कर लूं,—

५. यदि मेरे मन में इतनी शक्ति हो कि जो चाहूं सो करूं और दूसरों से कराऊं, ...

६. तो भी कोई बड़ी बात नहीं। जितना महान् वह स्वामी है इतनी महान् ही उसकी देन हैं। यदि स्वेच्छाशाखो वह प्रभु चाहे तो मुझे अन्य भी अनन्त देनें दे सकता है।

७. (नानक) जिस जीव पर प्रभु कृपा करता है उसे सत्य नाम के द्वारा प्रत्येक महत्ता दे देता है । १ ।

महला २

१. आखणु आखि न रजिआ सुनणि न रजे कंन ।

२. अखी देखि न रजीआ गुण गाहक इक वंन ।

३. भुखिआ भुख न उतरै गली भुख न जाइ ।

४. नानक भुखा ता रजै जा गुण कहि गुणी समाइ । २ ।

पउड़ी—१९

१. विणु सचे सभु कूड़ कूड़ु कमाईऐ ।

२. विणु सचे कूड़िआरु बंनि चलाईऐ ।

३. विणु सचे तनु छारु छारु रलाईऐ ।

४. विणु सचे सउ भुख जि पैझै खाईऐ ।

५. विणु सचे दरबारु कूड़ि न पाईऐं ।

६. कूड़ै लालचि लगि महलु खुआईऐ ।

७. सभु जगु ठगिओ ठगि आईऐ जाईऐ ।

८. तन महि त्रिसना अगि सबदि बुझाईऐ । १९ ।

पद-अर्थ

छारु—राख; **महलु**—दरबार; **त्रिशना**—इच्छाएं ।

टीका

१. सत्य प्रभु के नाम के बिना समस्त मिथ्या है, अन्य समस्त अर्जन मिथ्या वस्तु का अर्जन है ।

२. सत्य प्रभु के नाम के बिना जीव मिथ्याचारी रहता है, यम के दूत उसे बांध कर ले जाते हैं ।

३. सत्य प्रभु के नाम के बिना शरीर राख (व्यर्थ) है और अन्त में राख में ही मिल जाता है ।

४. सत्य प्रभु के नाम के अभाव में जो खाया जाता है, जो पहिना जाता है, वह सब कुछ तृष्णा ही तृष्णा है ।

५. सत्य प्रभु के नाम के बिना प्रभु के द्‌वार की प्राप्ति नहीं होती है । मिथ्याचार के द्‌वारा उस घर में प्रवेश नहीं मिलता है ।

६. माया के मिथ्या लोभों में पड़ कर जीव प्रभु के घर में प्रवेश से वन्चित हो जाता है ।

७. माया ठगिनी ने समस्त संसार ठग लिया है और संसार जन्म-मरण के चक्कर काट रहा है ।

८. शरीर में तृष्णा की अग्नि रहती है जो केवल गुरु के शब्द से ही शान्त हो सकती है । १९ ।

सलोक महला १

१. नानक गुरु संतोखु रुखु धरमु फुलु फल गिआनु

२. रसि रसिआ हरिआ सदा पकै करमि धिआनि ।

३. पति के साद खादा लहै दाना कै सिरि दानु । १ ।

पद-अर्थ

रसि रसिआ—प्रेम से सींचा; **पकै**—पका है; **दाना कै सिरि दानु**—दानों के मध्य में शिरोभूत दान, सर्वोत्तम दान ।

टीका

१. हे नानक, सन्तोष स्वरुप (सन्तोष की मूर्ति) गुरु वृक्ष के समान है जिसे धर्म का फूल लगता है और ज्ञान का फल।

२. प्रेम-जल से सींचा हुआ यह वृक्ष सदा हरा-भरा रहता है और प्रभु की कृपा से, उस प्रभु के ध्यान द्वारा, उसका फल पकता है।

३. यह फल जीवों के लिए सर्वोत्तम दान है। परन्तु इसका आनन्द तब प्राप्त होता है जब यह पति अर्थात् प्रभु के प्रेमास्वादन में पहुंच कर खाया जाता है। १।

महला १

१. सुइने का बिरखु पत पवाला फुल जवेहर लाल।
२. तितु फल रतन लगहि मुखि भाखित हिरदै रिदै निहालु।
३. नानक करमु होवै मुखि मसतकि लिखिआ होवै लेखु।
४. अठि सठि तीरथ गुर की चरणी पूजै सदा विसेखु।
५. हंसु हेतु लोभु कोपु चारे नदीआ अगि।
६. पवहि दझहि नानका तरीऐ करमी लगि। २।

पद अर्थ

बिरखु—वृक्ष; **पत**—पत्ते; **परवाला**—प्रवाल, मूंगा; **करम**—कृपा; **विसेखु**—विशेष; **हंसु**—हिंसा **हेतु**—मोह; **कोपु**—क्रोध; **दझहि**—जलते हैं। **करमी**—कृपा के द्वारा।

टीका

१. (गुरु) सुवर्ण का वृक्ष है, उसके पत्र प्रवाल-खण्ड हैं, उसके पुष्प जवाहर तथा लाल हैं।

२. उस पर रत्नों के फल लगते हैं। ये रत्न उसके मुख से निकले वचन हैं और उस हृदय से आए हैं जो सदा विकसित रहता है।

३. (नानक) जिस जीव के मुख पर उसकी कृपा की मुद्रा अंकित हो और अच्छे भाग्यों का लेख हो।

४. वह गुरु के चरणों को अठारह तीर्थों से श्रेष्ठ मान कर सदा उनकी पूजा करता है।

५. (संसार में) हिंसा, मोह, लोभ और क्रोध ये चार अग्नि की नदियां हैं।

६. उनमें जो जीव पड़ते हैं, जल जाते हैं, परन्तु (नानक) प्रभु की कृपा के द्वारा गुरु के चरण पकड़ कर मनुष्य इन नदियों के पार हो जाता है। २।

पउड़ी २०

१. **जीवदिआ मरु मारि न पछोताईऐ ।**

२. **झूठा इहु संसारु किनि समझाईऐ ।**

३. **सचि न धरै पिआरु धंधै धाईऐ ।**

४. **कालु बुरा खै कालु सिरि दुनीआईऐ ।**

५. **हुकमी सिरि जंदारु मारे दाईऐ ।**

६. **आपे देइ पिआरु मंनि वसाईऐ ।**

७. **मुहतु न चसा विलंमु भरीऐ पाईऐ ।**

८. **गुर परसादी बुझि सचि समाईऐ । २० ।**

पद-अर्थ

मारि—मार कर, तृष्णा को मार कर; **बुरा खै कालु**—बुरी तरह नाश करने वाला काल; **जंदारु**—हठी, क्रूर; **दाईऐ**—दाव लगा कर; **विलंमु**—विलम्ब; **पाईऐ**—जीवन की पाई (पडौप) आयु। (पाई, पादिका अर्थात् चतुर्थांश जिसे तोल के पुराने परिमाणों में पंजाबी में 'पडौप' कहते हैं।

टीका

१. (हे जीव तू तृष्णा को) मार कर जीते हुए ही मर जिस से तुझे (मृत्यु के पश्चात) पश्चाताप न हो।

२. किसी विरले को ही यह ज्ञान होता है कि संसार मिथ्या है।

३. (तृष्णा-वश जीव) सत्य से प्रेम नही करता और मायिक धन्धों में पड़ा रहता है ।

४. (उसे ध्यान नहीं रहता कि) संसार की घोर रीति से नष्ट करने वाला काल सब के सिर पर खड़ा है ।

५. प्रभु के आदेश के अनुसार यह हठी यमराज सबके सिर पर खड़ा रहता है और दाव लगाकर मारता है ।

६. प्रभु स्वयं ही (जीव को) अपना प्रेम देता है और स्वयं आकर मन में बसता है (तब न तृष्णा रहती है और न काल की भीति) ।

७. जब किसी के जीवन की शक्ति मर जाती है तब यहां से चलने में उसे तनिक भी देर नहीं लगती ।

८. परन्तु गुरु की कृपा से सत्य को समझ कर मनुष्य सत्य में लीन हो जाता है और जन्म-मृत्यु से रहित हो जाता है । २० ।

सलोक महला १

१. तुमी तमा विसु अकु धतूरा निमु फलु ।

२. मनि मुखि वसहि तिसु जिसु तूं चिति न आवही ।

३. नानक कहीऐ किसु हंढनि करमा बाहरे । १ ।

पद-अर्थ

मनि—मन में; **मुखि**—मुंह में; **हंढनि**—फिरते हैं, भटकते हैं ।

टीका

१. तुम्बी, तुम्बे, विषैले आक, धतूरे और नीम-फल (की कटुता)

२. (जब जीव के) मन में और मुंह में बसती है, जिसे, हे प्रभु ! तुम याद नहीं आते हो ।

३. (नानक) ये मन्दभाग्य मनुष्य भटक रहे हैं । इनका वृतान्त प्रभु के अतिरिक्त अन्य किस से कहा जाए (वह प्रभु ही इनकी रक्षा करें । १ ।

महला ।

१. मति पंखेरू किरतु साथि कब उतम कब नीच ।

२. कब चंदनि हुकमि चलाईऐ साहिब लगी रीति ।

३. नानक हुकमि चलाईऐ साहिब लगी रीति । २ ।

पद-अर्थ

पंखेरू—पक्षी की भांति उड़ने वाला; **किरतु**—पिछले कर्मों के अनुसार बना हुआ स्वभाव; **रीति**—मर्यादा ।

टीका

१. (मनुष्य की) बुद्धि पक्षी के समान है, उसके कर्म (पिछले कर्मों के अनुसार बना हुआ स्वभाव) उसके साथी हैं। अतः यह बुद्धि पक्षी कभी उत्तम और कभी नीच होकर चलता है ।

२. कभी यह चन्दन पर जाकर बैठता है, कभी आक की डाली पर और कभी संसार से विरक्त होकर प्रभु की प्रीति में लीन हो जाता है ।

३. (नानक) प्रभु ही सब जीवों को अपनी आज्ञा में चला रहा है आरम्भ से उसकी रीति चली आ रही है । २ ।

पउड़ी २१

१. केते करहि वखाण कहि कहि जावणा ।

२. वेद कहहि वखिआण अंतु न पावणा ।

३. पड़िऐ नाही भेदु बुझिऐ पावणा ।

४. खटु दरसन कै भेखि किसै सचि समावणा ।

५. सचा पुरखु अलखु सबदि सुहावणा ।

६. मंने नाउ बिसंख दरगह पावणा ।

७. खालक कउ आदेसु ढाढी गावणा ।

८. नानक जुगु जुगु एकु मंनि वसावणा ।

पद-अर्थ

खटु दरसन—छः वेष (योगी, जंगम, संन्यासी, बौद्ध, जैन, बैरागी) **किसै**—किसी एक ने; **बिसख**—संख्याहीन, असंख्य, उत्पन्न करने वाला

प्रभु; **आदेसु**—प्रणाम ।

टीका

१. अनन्त लोग प्रभु के गुणों का वर्णन करते हैं और कर-कर के चले जाते हैं ।

२. वेद (शास्त्र) आदि धार्मिक ग्रन्थ भी उसके गुणों का वर्णन करते है; परन्तु किसी ने उनका अन्त नहीं पाया ।

३. पुस्तकें पढ़ने से उसका ज्ञान नहीं होता है (ऊंची सुरति में जाकर) जानने से उसका ज्ञान होता है ।

४. योगी संन्यासी आदि छः वेषों में भी कोई एक सत्य प्रभु में लीन हो पाता है ।

५. सत्य प्रभु है तो अलक्ष्य परन्तु गुरु के शब्द के द्वारा वह मनोहर दिखाई देने लगता है ।

६. जो उस अनन्त प्रभु के नाम को मानता (पूजता) है, वह उस प्रभु के घर पहुंचता है ।

७. वह मनुष्य स्वामी प्रभु को प्रणाम करता है, उसका गायक होकर उसके गुण गाता है ।

८. और (नानक) उस युग-युगान्तर से एक समान रहने वाले प्रभु को मन में बसा लेता है । २१ ।

सलोक महला २

१. मन्त्री होइ अठूहिआ नागी लगै जाइ ।
२. आपण हथी आपणै दे कूचा आपे लाइ ।
३. हुकमु पाइआ धुरि खसम का अती हू धका खाइ ।
४. गुरमुख सिउ मनमुखु अड़ै डुबै हकि निआइ ।
५. दुहा सिरिआ आपे खसमु वेखै करि विउपाइ ।
६. नानक एवै जाणीऐ सभ किछु तिसहि रजाइ । १ ।

महला २

१. नानक परखे आप कउ ता पारखु जाणु ।

२. रोगु दारु दोव बुझै ता वैदु सुजाणु ।

३. वाट न करई मामला जाणै मिहमाणु ।

४. मूलु जाणि गला करे हाणि लाए हाणु ।

५. लबि न चलई सचि रहै से विसटु परवाणु ।

६. सरु संधे आगास कउ किउ पहुचै बाणु ।

७. अगै ओहु अगंमु है वाहेदड़ु जाणु । २ ।

पउड़ी २२

१. नारी पुरख पिआरु प्रेम सीगारिआ ।

२. करनि भगति दिनु राति न रहनी वारीआ ।

३. महला मंझि निवासु सबदि सवारीआ ।

४. सचु कहनि अरदासि से वेचारीआ ।

५. सोहनि खसमै पासि हुकमि सिधारीआ ।

६. सखी कहनि अरदासि मनहु पिआरीआ ।

७. बिनु नावै धिगु वासु फिटु सु जीविआ ।

८. सबदि संवारीआसु अंम्रितु पीविआ । २२ ।

पद-अर्थ

वारीआ—रोकी जाती हैं, मना की जाती हैं; **सिधारीआ**—चली जाती हैं; **सवारीआसु**—उसने संवारा है ।

टीका

१. जिन जीव रूपी नारियों का प्रभु पति से प्यार है, वे प्रेम शृंगार से सजी हुई हैं ।

२. वे दिनरात्रि प्रभु की भक्ति करती हैं, और ऐसा करने से रोकी नहीं जाती हैं ।

३. गुरु के शब्द से संवारी होने के कारण उन्हें प्रभु के महलों में निवास मिलता है ।

४. वे बेचारी (विनम्र जीव रूपी नारियां) जब प्रार्थना करती हैं तब केवल सत्य माँगती हैं ।

५. वे प्रभु के पास बैठी शोभित होती हैं और जहां उसकी आज्ञा हो वहां चली जाती हैं।

६. वे मन से प्रभु को प्यार करने वाली हैं और उसके सम्मुख सखी (सेवक) भावना से प्रार्थना करती हैं।

७. (वे समझती हैं कि) नाम के बिना संसार में रहना निन्दनीय है और जीना धिक्करणीय है।

८. उस प्रभु ने शब्द के द्वारा उन्हें संवारा है और उन्होंने अमृत-पान किया है। २२।

सलोकु महला।

१. मारू मीहि न त्रिपतिआ अगी लहै न भुख।

२. राजा राजि न त्रिपतिआ साइर भरे कि सुक।

३. नानक सचे नाम की केती पुछा पुछ। १।

पद-अर्थ

मारु—रेतीली भूमि; **साइर**—सागर या समुन्द्र; **सक**—सूखा।

टीका

१. मरुस्थल वर्षा से कभी तृप्त नहीं होते हैं (ईंधन के लिए) अग्नि की क्षुधा कभी शान्त नही होती है।

२. राजा राज्य करके कभी तृप्त नहीं हुआ; समुन्द्र उधर भरते हैं और इधर सूख जाते हैं (उनकी जल की क्षुधा कभी शान्त नहीं होती है)

३ (इसी प्रकार) (नानक) सत्य नाम के लिए कितनी भूख होती है? इसकी क्या पूछ है। (वह बताई नहीं जा सकती)। १।

महला २

१. निहफलं तसि जनमसि जावतु ब्रहम न बिंदते।

२. सागरं संसारसि गुरपरसादी तरहि के।

३. करण कारण समरथु है कहु नानक बीचारि।

४. कारणु करते वसि है जिनि कल रखी धारि। २।

पउड़ी—२३

१. **खसमै कै दरबारि ढाढी वसिआ ।**

२. **सचा खसमु कलाणि कमलु विगसिआ ।**

३. **खसमहु पूरा पाइ मनहु रहसिआ ।**

४. **दुसमन कढे मारि सजण सरसिआ ।**

५. **सचा सतिगुरु सेवनि सचा मारगु दसिआ ।**

६. **सचा सबद्दु बीचारि कालु बिधउसिआ ।**

७. **ढाढी कथै अकथु सबदि सवारिआ ।**

८. **नानक गुण गहि रासि हरि जीउ मिले पिआरिआ । २३ ।**

पद-अर्थ

ढाढी—स्तुति करने वाला; **कलाणि**—यशोगान करने से; **पूरा**—पूर्णता; **कमलु**—अर्थात् हृदय: **विगसिआ**—खिला; **रहसिआ**—प्रसन्न हुआ; **सरसिआ**—सरस हुए; प्रमुदित हुए; **विध उसिआ**—विध्वस्त किया, नष्ट किया; **गुण गहि**—गुण ग्रहण कर के ।

टीका

१. प्रभु की स्तुति करने वाला प्राणी सदा प्रभु के घर निवास करता है।

२. सत्य स्वामी की स्तुति करने से उसका हृदय रूपी कमल खिला रहता है।

३. प्रभु से पूर्णता प्राप्त कर के वह मन में प्रसन्न रहता है।

४. वह (कामादिक) शत्रुओं को मार कर अन्दर से निकाल देता है। तब सज्जन, उसकी ज्ञान-इन्द्रियां, खिल पड़ती हैं।

५. ये इन्द्रियां अब उस सत्य सद्गुरु की सेवा में लगती हैं जिस ने जीवन का सत्य मार्ग दिखलाया है।

६. स्तुति गायक ने सत्य शब्द को विचार कर मृत्यु को मार लिया है।

७. गुरु शब्द के द्वारा संवारा गया यह स्तुति गायक उस अकथनीय प्रभु का कथन करता है।

८. (नानक) वह गुणों का भण्डार ग्रहण कर के प्रिय प्रभु में मिल जाता है। २३ ।

सलोकु मः १

१. खतिअहु जंमे खते करनि त खतिआ विचि पाहि ।
२. धोते मूलि न उतरहि जे सउ धोवण पाहि ।
३. नानक बखसे बखसीअहि नाहि त पाही पाहि । १ ।

पद-अर्थ

खते—खता, भूल, पाप; **पाही पाहि**—जूते लगेंगे ।

टीका

१. (जीवों ने) पापों के कारण जन्म ग्रहण किया और वे यहां भी पाप ही करते हैं । तब ही (इसी हेतु) वे आगे भी पापों में पड़े रहते हैं ।
२. चाहे सो बार धोए जाएं, ये पाप केवल धोने से (तीर्थ स्नानों से) तनिक भी नहीं उतरते हैं ।
३. (नानक) यदि प्रभु क्षमा करे तो ये (पाप) क्षमा किये जा सकते हैं; अन्यथा जूते ही पड़ते हैं । १ ।

मः १

१. नानक बोलणु झखणा दु.ख छडि मंगिअहि सुख ।
२. सुखु दुखु दुइ दरि कपड़े पहिरहि जाइ मनुख ।
३. जिथै बोलणि हारीऐ तिथै चंगी चुप । २ ।

पद-अर्थ

झखणा—व्यर्थ बोलना, माथा पच्ची ।

टीका

१. (नानक) जो दु:ख छोड़ कर सुख मांगता है, यह बोलना (मांगना) व्यर्थ माथापच्ची है ।
२. सुख और दु:ख दोनों बस्त्र हैं जो प्रभु के द्वार से मिलते हैं और जिन्हें सब मनुष्य पहिनते हैं ।

३. अतः जिसके सम्मुख बोलने (आपत्ति अथवा विरोध करने) से अन्त को हार ही खानी हो उसके सम्मुख चुप रहना ही अच्छी बात है (सुख-दुःख परमात्मा की इच्छा के अनुसार हैं और अटल हैं। अतः ईश्वरेच्छा को शिरोधार्य करना ही अच्छा है। २।

पउड़ी २४

१. चारे कुंडा देखि अंदरु भलिआ।

२. सचै पुरखि अलखि सिरजि निहालिआ।

३. उझड़ि भुले राह गुरि वेखालिआ।

४. सतिगुर सचे वाहु सचु समालिआ।

५. पाइआ रतनु घराहु दीवा बालिआ।

६. सचै सबदि सलाहि सुखीए सच वालिआ।

७. निडरिआ डरु लगि गरबि सि गालिआ।

८. नावहु भुला जगु फिरै बेतालिआ। २४।

पद-अर्थ

अलखि—अलक्ष्य; **सिरजि**—बनाकर; **निहालिआ**—देखा, ध्यान किया **घराहु**—घर से, अन्दर से; **दीवा**—ज्ञान रूपी दीपक; **बेतालिआ**—बेतालों (भूतों) के समान।

टीका

१. जिस मनुष्य ने चारों ओर देखने के पश्चात् अपने अन्दर देखा है—

२. (उसे ज्ञात होता है कि) सत्य और अलक्ष्य प्रभु ने संसार को बनाया है और वह ही इसकी संभाल करता है (उसे यह सृष्टि प्रभु की अपनी क्रीड़ा दिखाई देती है)।

३. कुमार्ग पर भटके हुए मनुष्यों को यह मार्ग गुरु ने दिखाया है (यह दृष्टि गुरु ने ही दी है।)

४. वह सद्गुरु धन्य है जिसकी शिक्षा से मनुष्य सत्य प्रभु को मन में संभालता है।

५. सत्य गुरु ज्ञान का दीपक मनुष्य के अन्दर जला देता है। तब अन्दर

से ही नाम-रत्न मिल जाता है ।

६. (गुरु के) सत्य शब्द के द्वारा प्रभु की स्तुति करके मनुष्य सुखी और सत्यवान् हो जाता है ।

७. परन्तु जो प्रभु के भय से शून्य हैं उन्हें भय अधिक खाता है; वे अहंकार में पड़े हुए नष्ट होते हैं ।

८. प्रभु के नाम को भूला हुआ जगत् भूतों के समान, कुरूपतया फिरता है । २४ ।

सलोकु महला ३

१. भै विचि जंमै भै मरै भी भउ मन महि होइ ।

२. नानक भै विचि जे मरै सहिला आइआ सोइ । १ ।

महला ३

१. भै विणु जीवै बहुतु बहुतु खुसीआ खुसी कमाइ ।

२. नानक भै विणु जे मरै मुहि कालै उठि जाइ । २ ।

पउड़ी २५

१. सतिगुरु होइ दइआलु त सरधा पूरीऐ ।

२. सतिगुरु होइ दइआलु न कबहूं झूरीऐ ।

३. सतिगुरु होइ दइआलु ता दुखु न जाणीऐ ।

४. सतिगुरु होइ दइआलु ता हरि रंगु माणीऐ ।

५. सतिगुरु होइ दइआलु ता जम का डरु केहा ।

६. सतिगुरु होइ दइआलु ता सद ही सुखु देहा ।

७. सतिगुरु होइ दइआलु ता नवनिधि पाईऐ ।

८. सतिगुरु होइ दइआलु ता सचि समाईऐ । २५ ।

पद-अर्थ

सरधा—श्रद्धा, विश्वास, भरोसा; देहा—शरीर को ।

टीका

१. यदि सद्गुरु की कृपा हो जाए तो (मनुष्य के हृदय में) प्रभु के प्रति पूर्ण श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है।

२. यदि सद्गुरु की कृपा हो जाए तो (मनुष्य) कभी परिदेवना नहीं करता।

३. थदि सद्गुरु की कृपा हो जाए तो (मनुष्य) कभी दुख को नहीं जानता।

४. यदि सद्गुरु की कृपा हो जाए तो (मनुष्य) प्रभु के प्रेम में मत्त रहता हैं।

५. यदि सद्गुरु की कृपा हो जाए तो मनुष्य को यम का भय नहीं होता।

६. यदि सद्गुरु की कृपा हो जाए तो मनुष्य के शरीर को सदा सुख ही रहता है।

७. यदि सद्गुरु की कृपा हो जाए तो मानो समस्त कोष मिल जाते हैं।

८. यदि सद्गुरु की कृपा हो जाए तो मनुष्य सत्य प्रभु में लीन हो जाता हैं।

सलोक महला।

१. सिरु खोहाइ पीअहि मलवाणी जूठा मंगि मंगि खाही।
२. फोलि फदीहति मुहि लैनि भड़ासा पाणी देखि सगाही।
३. भेडा वागी सिरु खोहाइनि भरीअनि हथ सुआही।
४. माऊ पीऊ किरतु गवाइनि टबर रोवनि धाही।
५. ओना पिंडु न पतलि किरिआ न दीवा मुए किथाऊ पाही।
६. अठसठि तीरथ देनि न ढोई व्रहमण अन्नु न खाही।
७. सदा कुचील रहहि दिनु राती मथै टिके नाही।
८. झुंडी पाइ बहनि निति मरणै दड़ि दीबाणि न जाही।
९. लकी कासे हथी फुंमण अगों पिछी जाही।
१०. न ओइ जोगीनओइ जंगम ना ओइ काजी मुंला।
११. दयि विगोए फिरहि विगुते फिटा वतै गला।

१२. जीग्रा मारि जीवाले सोई ग्रवरु न कोई रखै ।
१३. दानहु तै इसनानहु वंजे भसु पई सिरि खुथै ।
१४. पाणी विचहु रतन उपंने मेरु कीग्रा माधाणी ।
१५. ग्रठसठि तीरथ देवी थापे पुरबी लगै बाणी ।
१६. नाइ निवाजा नातै पूजा नावनि सदा सुजाणी ।
१७. मुईआ जीवदिग्रा गति होवै जा सिरि पाईऐ पाणी ।
१८. नानक सिर खुथे सैतानी एना गल न भाणी ।
१९. वुठै होइऐ होइ बिलावलु जीग्रा जुगति समाणी ।
२०. वुठै ग्रंनु कमादु कपाहा सभसै पड़दा होवै ।
२१. वुठै घाहु चरहि निति सुरही साधन दही विलोवै ।
२२. तितु धिइ होम जग सद पूजा पइऐ कारजु सोहै ।
२३. गुरू समुंदु नदी सभि सिखी नातै जितु वडिआई ।
२४. नानक जे सिर खुथे नावनि नाही ता सत चटे सिरि छाई । १ ।

पद-ग्रर्थ

खोहाई—बाल उखड़वा कर; **मलवाणि**—मलिन जल, धोवन; **फदीहति**—फज़ीहत, अपमान, विष्ठा; **भड़ासा**—वर्षा ऋतु में भूमि से निकलने वाली गर्म हवा के समान गर्म हवा, भड़ास, उष्मा; **सुग्राही**—राख के साथ; **किरतु**—काम-काज; **कुचील**—मलिन वस्त्र वाले; **टिके**—तिलक; **झुंडी**—मुंह तक चादर लपेट कर; **दीबाणि**—दीवान, सभा; **लकी**—कमर के साथ, कमर से; **कासे**—प्याले; **फंमण**—चोरियाँ; **ग्रगो पिछी**—पंक्ति में; **जंगम**—शिव के उपासकों का एक चलने फिरने वाला वर्ग जो घन्टी बजाते हुए मांगते फिरते हैं; **दयि विगोए**—दई मारे, दैवहतक; **विगुते**—दुःखी, नष्ट; **फिटा वतै गला**—समस्त समूह ही बिगड़ा हुआ है; **वंजे**—शून्य रहता है; **भसु**—राख; **मेरु**—सुमेरु पर्वत; **नाइ**—नहाने से, स्नान कर के; **सुजाणी**—बुद्धिमान, चतुर; **गति**—मुक्ति; **वुठै**—वर्षा होने से; **बिलावलु**—हर्ष; **सुरही**—गोए; **साधन**—नारी; **विलोवै**—मथे; **धिइ**—घी के द्वारा; **सात चटे**—सात मुट्ठियां।

टीका

विज्ञप्ति:—जैनी, जीव-हिंसा के भ्रम में ग्रतिमलिन रूप में रहते हैं।

गुरु ने इस भ्रान्त विचार की आलोचना हास्य रस में इस प्रकार की है ।

१. (जैनी लोग) सिर के बाल उखड़वा कर, मलिन पानी पीते हैं और जूठी रोटी मांग कर खाते हैं । (कि जीव हिंसा न हो जाए) ।

२. अपनी विष्ठा को उलटते पलटते हैं (कि उसमें कोई जीव न मर जाए) और इस प्रकार मुख को गन्दा करने वाली (गन्दी हवा) लेते हैं, पानी देख कर संकोच करते हैं ।

३. भेड़ों के समान सिर के बाल उखड़वाते हैं, (बाल उखाड़ने के लिए) हाथ राख से लथपथ कर लेते हैं (जिस से बाल सुगमता से उखड़ सकें) ।

४. माता-पिता वाला कामकाज छोड़ देते हैं और (इस हेतु उनके) परिवार दहाड़ मारकर रोते हैं ।

५. (वे जब मरते हैं) न उनके लिए कोई मरणानन्तर के संस्कार (दाह, श्राद्ध) करवाता है, न क्रिया न दीपक होता है, पता नहीं वे मरे हुए कहां जाकर गिर पड़ते हैं ?

६. (हिन्दुओं) के अड़सठ तीर्थ भी इन्हें आश्रय नहीं देते है (ये तीर्थों पर भी नहीं जाते हैं और ब्राह्मण इनका अन्न नहीं खाते हैं । (ये ब्राह्मणों की भी सेवा नहीं करते हैं) ।

७. ये दिन-रात सदा ही मलिन रहते हैं । इनके माथे पर तिलक भी नहीं होता है ।

८. सदा मुंह तक चादर लपेट कर बैठते हैं जैसे किसी मरण के शोक में बैठे हैं, ये किसी सभा समागम में भी नहीं जाते ।

९. कमर से प्याले बांधे रहते हैं, हाथों में जीव हिंसा के भय से चौरियां लिए रहते हैं और आगे-पीछे एक पंक्ति में चलते हैं ।

१०. इनका रहन-सहन न योगियों के समान हैं, न जंगमों के और न काजियों अथवा मुल्लाओं के ।

११. ये परमात्मा से भी पृथक हैं । दुःखी हुए फिरते हैं । इनका समस्त आवा ही ऊत गया ।

१२. (ये नहीं) समझते कि जीवों को मारने और जिलाने वाला एक प्रभु है, अन्य कोई उन्हें जीवित नहीं रख सकता ।

१३. (जीव हिंसा के भ्रम में पड़ कर ये जीविकोपार्जन नहीं करते । अतः)

दान कहां से दें, और स्नान से भी वंचित रहते हैं। राख पड़े ऐसे लुंचित केश सिर पर।

१४. (ये पानी से स्नान नहीं करते न ही स्वच्छ पानी पीते हैं, ये पानी की महत्ता नहीं समझते कि) पानी में से ही देवताओं ने सुमेरु पर्वत को मंथन दण्ड बनाकर चौदह रत्न निकाले थे।

१५. (पानी की महिमा से ही) देवताओं ने अड़सठ तीर्थ स्थापित किए यहां पर्व लगते हैं और कथा वार्ताएं होती हैं।

१६. नहा कर ही नमाज़ पढ़ी जाती है, नहा कर ही पूजा की जाती है, बुद्‌धिमान पुरुष सदा स्नान करते हैं।

१७. जन्म और मरण के समय सिर पर पानी डालने से ही गति हुई समझी जाती है।

१८. (नानक) ये लुंचित शिरः केश शैतान ऐसे विपरीत मार्ग पर चल रहे हैं कि इन्हें स्नान की बात अच्छी ही नहीं लगती।

१९. वृष्टि होने से समस्त जीवों को आनन्द होता है। समस्त जीवों के जीवित रहने का आधार पानी ही है।

२०. वृष्टि होने से अन्न उत्पन्न होता है, गन्ना उगता है, कपास होती है जिस से सबके लिए पर्दा (वस्त्र) बनता है।

२१. वृष्टि होने से ही घास होती है जिसे गोएं चरती हैं (और उनसे प्राप्त हुआ दूध) स्त्री मथती है।

२२. (घी बनता है) उस घी से ही सदा होम यज्ञ, पूजा होती है, और इस प्रकार जीवन का कार्य पूर्ण होता है।

२३. (ये एक अन्य स्नान से भी वंचित रहते हैं) गुरु मानों समुद्र है, उसकी शिक्षा मानों नदियां हैं, इन (नदियों) में नहाने से (ईश्वरीय घर) प्रशंसा मिलती है।

२४. (नानक) यदि ये लुन्चित शिरः केश लोग (इस समुद्र में भी) स्नान नहीं करते हैं तो इनके सिर पर राख की सात मुट्ठियां पड़ें। १।

महला २

१. **अगीं पाला कि करे सूरज केही राति।**

२. **चंद अनेरा कि करे पउण पाणी किआ जाति।**

३. धरती चीजी कि करे जिसु विचि सभु किछु होइ ।
४. नानक ता पति जाणीऐ जा पति रखै सोइ । २ ।

पउड़ी—२६

१. तुधु सचे सुबहानु सदा कलाणिआ ।
२. तूं सचा दीवाणु होरि आवण जाणिआ ।
३. सचु जि मंगहि दानु सि तुधै जेहिआ ।
४. सचु तेरा फुरमानु सबदे सोहिआ ।
५. मंनिऐ गिआनु धिआनु तुधै ते पाइआ ।
६. करमि पवै नीसानु न चलै चलाइआ ।
७. तूं सचा दातारु नित देवहि चड़हि सवाइआ ।
८. नानकु मंगै दानु जो तुधु भाइआ । २६ ।

पद-अर्थ

सुबहानु—आश्चर्यजनक रूप, विस्मयकारक रूप; **कलाणिआ**—गाया; **दीबाणु**—दीवान लगाने वाला, शासक; **सवाइआ**—और अधिक ।

टीका

१. हे सत्य प्रभु । मैं तुम्हें सदा शोभायमान कहकर गाता हूं ।
२. तुम ही वास्तविक शासक हो, अन्य समस्त शासक उत्पन्न होते और मरते रहते हैं ।
२. हे सत्य शासक । जो तुमसे सत्य का दान (नाम-दान) मांगते हैं, वे तुम्हारे समान सत्य हो जाते हैं ।
४. तुम्हारा आदेश सत्य है जो गुरु के ज्ञान द्वारा प्रकाशित होता है ।
५. गुरु-शब्द के मानने से तुम्हारे पास से ही ज्ञान और उच्च सुरति की प्राप्ति होती हे ।
६. तेरी कृपा से उन्हें ऐसा मुद्रा-अङ्क मिलता है जो मिट नहीं सकता है ।
७. तुम सदा कृपालु हो । तुम नित्य अधिक से अधिक कृपा करते रहते हो ।

८. (नानक) तुम्हारे द्वार से वह दान मांगता है जो तुम्हें अच्छा लगता है और वह है तुम्हारी इच्छा में रहने का दान। २६।

सलोकु महला २

१. दीखिआ आखि बुझाइआ सिफती सचि समेउ।
२. तिन कउ किआ उपदेसीऐ जिन गुरु नानक देउ। १।

महला १

१. आपि बुझाए सोई बूझै।
२. जिसु आपि सुझाए तिसु सभु किछु सूझै।
३. कहि कहि कथना माइआ लूझै।
४. हुकमी सगल करे आकार।
५. आपे जाणै सरब वीचार।
६. अखर नानक अखिओ आपि।
७. लहै भराति होवै जिसु दाति। २।

पद-अर्थ

लूझै—जलता है; **अखर**—अक्षर, अनश्वर; **अखिओ**—अक्षय्य; **भरति**—भ्रान्ति, भ्रम ;

टीका

१. जिसे प्रभु आप समझा दें वही समझता है।
२. वह जिसे आप समझा देता है उसे समस्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है।
३. (यदि उपर्युक्त ज्ञान न हो तो) केवल परमात्मा के विषय में बातें करना माया में ही जलना है ;
४. प्रभु समस्त जीव-जन्तु आप ही अपने आदेश के अनुसार उत्पन्न करता है।—
५. और उनके विषय में प्रत्येक बात जानता है।
६. (नानक) वह आप ही है अच्युत आप ही हैं अनश्वर।
७. उस अविनाशी प्रभु से जिस मनुष्य को बुद्धि की देन मिलती है उस

के भ्रम दूर हो जाते हैं। २।

पउड़ी—२७

१. **हउ ढाढी वेकारु कारै लाइआ।**

२. **राति दिहै कै वार धुरहु फुरमाइआ।**

३. **ढाढी सचै महलि खसमि बुलाइआ।**

४. **सची सिफति सालाह कपड़ा पाइआ।**

५. **सचा अंम्रित नामु भोजनु आइआ।**

६. **गुरमती खाधा रजि तिनि सुखु पाइआ।**

७. **ढाढी करै पसाउ सबदु वजाइआ।**

८. **नानक सचु सालाहि पूरा पाइआ। २७।**

पद-अर्थ

ढाढी—स्तुति-गायक; **वार**—स्तुति; **कपड़ा**—राजा से प्राप्त (आदर-सूचक) वस्त्र; **पसाउ**—प्रसार करना, प्रचार करना।

टीका

१. मैं एक निकम्मा भाट हूं; परन्तु अब प्रभु ने मुझे अपने काम में लगा दिया है।

२. मुझे आदि से आदेश मिला है (उसने मुझे आदेश दिया है) कि दिन हो अथवा रात, यशोगान करो।

३. स्वामी ने मुझे (भाट) को अपनी सभा में बुलाया था—

४. और मुझे सत्य स्तुति रूपी राज-प्रसादीय परिधान दिया था।

५. में उसकी सभा से सत्य (स्थिर रहने वाला) और अमर करने वाला नाम-भोजन लेकर आया हूं।

६. जिसने गुरु की शिक्षा से इस नाम रूपी भोजन को खाया हैं उसे सुख प्राप्त हो गया है।

७. अब मैं भाट इसी नाम का प्रचार करता हूं और प्रभु का शब्द संसार को सुनाता हूं।

८. (नानक) सत्य प्रभु की स्तुति करके उसी पूर्ण प्रभु की प्राप्ति हो जाती है। २७।

रागु गउड़ी

१. ਔसतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरतिअजूनी सैभं गुरप्रसादि ।।

रागु गउड़ी गुआरेरी महला। चउपदे दुपदे

१. भउ मुचु भारा वडा तोलु।
२. मनमति हउली बोले बोलु।
३. सिरि धरि चलीऐ सहीऐ भारु।
४. नदरी करमी गुर बीचारु। १।
५. भै बिनु कोइ न लंघसि पारि।
६. भै भउ राखिआ भाइ सवारि। १। रहाउ।
७. भै तनि अगनि भखै भै नालि।
८. भै भउ घड़ीऐ सबदि सवारि।
९. भै बिनु घाड़त कचुनिकच।
१०. अंधा सचा अंधी सट। २।
११. बुधी बाजी उपजै चाउ।
१२. सहस सिआणप पवै न ताउ।
१३. नानक मनमुखि बोलणु वाउ।
१४. अंधा अखरु वाउ दुआउ। ३। १।

पद-अर्थ

भउ—भय; **मुचु**—भारी, बहुत भारी; **भउ**—भयपूर्ण जीवन; **भाइ**—प्रेम के साथ; **भखै**—जलती है, अधिक जलती है; **कचुनिकच**—सर्वथा कच्ची; **सचा**—सांचा; जिसमें कोई चीज़ ढाली जाती है; **सट**—चोट; **बुधी**—मनोमुख पुरुष की चातुर्यवती बुद्धि; **बाजी**—सांसारिक खेल; **चाउ**—चाव, उत्साह, हर्ष; **वाउ**—व्यर्थ; **अखरु**—बचन बातें।

टीका

१. हरि का भय बहुत भारी है, इसका बोझ अधिक है (इस भय को उठाना अर्थात् हरि के भय में रहना सरल नहीं। प्रथम योग्यता प्राप्त करनी पड़ती है, जैसा आगे जाकर बतलाया गया है।)

२. दूसरी ओर मनोमुख की मति हलकी है और (हलका) बोल बोलती है (मनोमुख पुरुष ओछा है, उसके बचन ओछे हैं। वह व्यर्थ की बातें मारता है। भार कौन से गुणों से उठाए।)

३. परन्तु यह भार सहर्ष सिर पर उठा कर चला जा सकता है और (सुगमता से वह) सहा जा सकता है,—

४. यदि प्रभु की कृपा से गुरु का उपदेश प्राप्त हो जाए। १।

५. प्रभु के भय के बिना कोई कभी संसार-सागर से पार नहीं होता।

६. प्रभु के भय में रहकर उस से उत्पन्न हुआ भय वाला जीवन प्रभु प्रेम के बल से संभाला हुआ रखा जाता है। रहाउ। १।

७. प्रभु के भय की सहायता से शरीर के भीतर ज्ञानरूप एक अग्नि उद्दीप्त होती है।

८. फिर भय वाला यह जीवन प्रभु-भय में रहकर गुरु के शब्द की सहायता से संवार कर घड़ा जाता है।

९. प्रभु भय के बिना जो जीवन बनता है वह सर्वथा कच्चा रहता है।

१०. वह जीवन जिस सांचे में घड़ा जाता है वह सांचा अन्ध है (उस से कोई आदर्श जीवन उत्पन्न नहीं होता है), फिर उसे चोटें भी अन्धाधुन्ध (किसी योजना के बिना) पड़ती हैं। २।

११. (मनोमुख पुरुष की चतुर) मति सांसारिक खेल में पड़ी, हर्ष से भरी रहती है।

१२. सहस्त्रों चतुराइयां करने पर भी उस मति को ज्ञान रूपी अग्नि का ताप नहीं लगता (और जीवन ढलता नहीं)।

१३. (नानक) मनोमुख मनुष्य का बोल व्यर्थ (कच्चा) होता है।

१४. उसकी बातें बेसुरी हैं जो व्यर्थ जाती हैं। ३। १।

२

१. **डरि घरु घरि डरु डरि डरु जाइ**

२. सो डरु केहा जितु डरि डरु पाइ ।

३. तुधु बिनु दूजी नाही जाइ ।

४. जो किछु वरतै सभ तेरी रजाइ । १ ।

५. डरीऐ जे डरु होवै होरु ।

६. डरि डरि डरणा मन का सोरु । १ । रहाउ

७. ना जीउ मरै न डूबै तरै ।

८. जिनि किछु कीआ सो किछु करै ।

९. हुकमे आवै हुकमे जाइ ।

१०. आगै पाछै हुकमि समाइ । २ ।

११. हंसु हेतु आसा असमानु ।

१२. तिसु विचि भूख बहुतु नै सानु ।

१३. भउ खाणा पीणा आधारु ।

१४. विणु खाधे मरि होहि गवार । ३ ।

१५. जिस का कोइ कोई कोइ कोइ ।

१६. सभु को तेरा तूं सभना का सोइ ।

१७. जा के जीअ जंत धनु मालु ।

१८. नानक आखणु बिखमु बीचारु । ४ । २ ।

पद-अर्थ

डरि—भय के कारण; **घरु**—अपना स्वरूप; **जाइ**—स्थान; **हंसु**—हिंसा; क्रूरता; **हेतु**—मोह; **असमानु**—अहंकार; **नै सानु**—नदी के समान; **बिखमु**—कठिन ।

टीका

१. प्रभु के भय से अपने घर (स्वरूप) की पहचान होती है । फिर हृदय में वह भय मिट जाता है और उस भय के कारण अन्य समस्त भय नष्ट हो जाते हैं ।

२. (क्योंकि) प्रभु के उस भय का मूल्य क्या हुआ जिस भय के हृदय में होते हुए अन्य भय निकट आ सकें ।

३. हे प्रभु । (भय से बचने के लिए) तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई स्थान

नहीं ।

४. (यहां) सब कुछ तुम्हारे आदेश के अनुसार ही हो रहा है, (फिर किसी अन्य का भय कैसा ।) । १ ।

५. (किसी अन्य भय से) डरना तब ही उचित है जब उस भय की अपनी कोई सत्ता नहीं (समस्त खेल प्रभु के आदेश के अनुसार हो रहा है ।)

६. किसी अन्य भय से भीत हो कर व्यर्थ ही भीत फिरना अपने मन का ही कोलाहल है (मन से उत्पन्न खेल है जिसका अपना कोई अस्तित्व) । १ । विश्राम ।

७. (प्रभु के आदेश के बिना) न कोई जीव मरता है, न कोई डूबता है और न कोई पार होता है ।

८. जिस प्रभु ने उसे उत्पन्न किया है वही उसके लिए सब कुछ करने वाला है ।

९. उस आदेश में ही वह जन्म लेता है, आदेश में ही मरता है ।

१०. पहले अथवा पीछे वह आदेश में समा जाता है । २ ।

११. (प्रभु के भय के बिना जीव के भीतर) क्रूरता, मोह, तृष्णा और अहंकार बढ़ते हैं ।

१२. उसके भीतर प्रबल तृष्णा, भूख होती है जो (सूखी) नदी के समान पानी मांगती रहती है ।)

१३. प्रभु का भय ही जीवन का आध्यात्मिक आधार और आश्रय होता है ।

१४. इस भय के बिना जीव सांसारिक भय में मर-मर कर दुःखी होते हैं । ३ ।

१५. (हे प्रभु । तुम्हारे बिना) यदि किसी का कोई आश्रय है तो कभी विरला ही होता है ।

१६. (परन्तु) तुम सदा सबके हो और सब तुम्हारे हैं ।

१७. जिस प्रभु के बनाए हुए समस्त जीव–जन्तु हैं और जिसका समग्र धन माल हैं—

१८. (नानक) उसकी लीला–कृतियों का वर्णन कठिन है । ४/२ ।

(३)

१. **माता मति पिता संतोखु ।**

२. **सतु भाई करि एहु विसेखु । १ ।**

३. **कहणा है किछु कहणु न जाइ ।**

४. **तउ कुदरति कीमति नहीं पाइ । १ । रहाउ ।**

५. **सरम सुरति दुइ ससुर भए ।**

६. **करणी कामणि करि मन लए । २ ।**

७. **साहा संजोगु वीआहु विजोगु ।**

८. **सचु संतति कहु नानक जोगु । ३ । ३ ।**

पद-अर्थ

सचु—सत्य; **विसेखु**—विशेष; उत्तम; **तउ**—तेरी; **दुइ ससुर**—सास ससुर; **कामणि**—नारी; **संजोगु**—सत्संगति का मिलाप; **विजोगु**—संसार से विरक्ति; **संतति**—संतान ।

टीका

१. (प्रकृति ने जीव को जन्म देकर माता, पिता, भगिनी,, भ्राता एवं अन्य सम्बन्धियों के मध्य लाकर खड़ा कर दिया है । यह कैसे हुआ है? यह समझ में नहीं आता (परन्तु हे मेरे मन, तू अपने सम्बन्ध ऐसे बनाए तो तेरा यहां आना सफल है) । हे मेरे मन, 'उच्च बुद्धि' को अपनी माता बना, सन्तोष को अपना पिता बना ।

२. 'सत्य' को अपना भ्राता बना । यह तेरा श्रेष्ठ भ्राता है । १ ।

३. हे प्रभु, तुम्हारी शक्ति के बिषय में कुछ कहना चाहता हूं । परन्तु वह अकथनीय है ।

४. इसका मूल्य नहीं आंका जा सकता । १ । रहाउ ।

५. हे मन, 'श्रम' (उद्यम) और 'सुरति' उच्च ज्ञान को सास और ससुर बना ।

६. और शुभ कर्म को पत्नी बना । २ ।

७. सत्संगति में जाने (संयोग) को अपने विवाह का 'लग्न' समझ और जगत् से विरक्ति को अपना विवाह हुआ समझ ।

८. 'सत्य' को अपनी संतान बना। (नानक, कह कि) इस प्रकार का समस्त सम्बन्ध यथार्थ है। ३। ३।

(४)

१. पउणै पाणी अगनी का मेलु।
२. चंचल चपल बुधि का खेलु।
३. नउ दरवाजे दसवा दुआरु।
४. बुझु रे गिआनी एहु बीचारु। १।
५. कथता बकता सुनता सोई।
६. आपु बीचारे सु गिआनी होई। १। रहाउ।
७. देही माटी बोलै पउणु।
८. बुझु रे गिआनी मूआ है कउणु।
९. मूई सुरति बादु अहंकारु।
१०. ओहु न मूआ जो देखणहारु। २।
११. जै कारणि तटि तीरथ जाही।
१२. रतन पदारथ घट ही माही।
१३. पड़ि पड़ि पंडितु बादु वखाणै।
१४. भीतरि होदी वसतु न जाणै। ३।
१५. हउ न मूआ मेरी मुई बलाइ।
१६. ओहु न मूआ जो रहिआ समाइ।
१७. कहु नानक गुरि ब्रहमु दिखाइआ।
१८. मरता जाता नदरि न आइआ। ४।

पद-अर्थ

चपल—एक स्थान पर न ठहरने वाली; **नउ दरवाजे**—नौ द्वार (दो नेत्र, दो नासिका पुट, दो कर्ण, एक मुख, दो मल-मार्ग); **बकता**—वक्ता; **सुरति**—जीवन-ज्ञान; **तटि**—तट, तीर; **बादु**—विवाद; **दसवां दुआरु**—उच्च आत्मिक स्थिति जिसमें प्रभु के दर्शन होते हैं; **बलाइ**—अज्ञानता का धिक्कार।

टीका

१. (हे जीव, यह शरीर) वायु, जल, अग्नि आदि तत्वों के सङ्घात से

बना है।

२. (यह सत्य है कि) इसमें एक चंचल और चपल बुद्धि अपना कौतुक रच रही है।

३. इस शरीर के नौ द्वार (प्रकट) हैं परन्तु एक दशम द्वार भी है।

४. हे ज्ञानी जीव, इस बात का विचार कर कि वह कहां है और वहां कैसे पहुंचा जाए ? । १।

५. वचन तथा वक्ता वह स्वयं है और श्रोता भी स्वयं (प्रभु) ही है।

६. परन्तु जो अपने आत्मा को विचारता है, उसे इस बात का ज्ञान होता है, वह ज्ञानी हो जाता है। १। रहाउ।

७. यह शरीर मिट्टी है। इसमें वायु बोलती है (यह वायु के बल से बोलता है। जब पवन समाप्त हो जाती है तब यह बोलना भी रह जाता है। इस को मर गया कहते हैं)।

८. हे ज्ञानवान् पुरुष ! समझ, कौन मरता है ?

९. बस जीवन-बुद्धि मरती है अहन्त्व और अहंकार मरते हैं।

१०. जो द्रष्टा आत्मा है, वह नहीं मरती (उसकी पहचान कर)। २।

११. जिस (प्रभु) के लिए जीव तीर्थों के तटों पर भटकते फिरते हैं।

१२. वह प्रभु रूपी रत्न भीतर ही रहना है।

१३. पण्डित युस्तकें पढ़-पढ़ कर चर्चा करता रहता है।

१४. परन्तु भीतर स्थित (प्रभु रत्न) को नहीं समझता। ३।

१५. (अब मुझे बोध हो गया है कि, मेरे शरीर के मरने से मेरी मृत्यु नहीं हुई, मेरी अज्ञानता की विपत्ति नष्ट हुई है।

१६. समस्त जीवों में व्याप्त प्रभु कभी नही मरता।

१७. (नानक कह कि) गुरु ने नुझे सभी के भीतर व्याप्त ब्रह्म के दर्शन करा दिए हैं।

१८. अब मुझे कोई मरता सिखाई ही नहीं देता। ४। ४।

(५)

१. सुणि सुणि बूझै मानै नाउ।

२. ता कै सद बलिहारै जाउ।

३. आपि भुलाए ठउर न ठाउ।

४. तूं समझावहि मेलि मिलाउ। १।
५. नामु मिलै चलै मैं नालि।
६. विनु नावै बाधी सभ कालि। १। रहाउ।
७. खेती वणजु नावै की ओट।
८. पाप पुंनु बीज की पोट।
९. काम-क्रोध जीअ महि चोट।
१०. नामु विसारि चले मनि खोट। २।
११. साचे गुर की साची सीख।
१२. तनु मनु सीतलु साचु परीख।
१३. जल पुराइनि रस कमल परीख।
१४. सबदि रते मीठे रस ईख। ३।
१५. हुकमि संजोगी गड़ि दस दुआर।
१६. पंच वसहि मिलि जोति अपार।
१७. आपि तुलै आपे वणजार।
१८. नानक नामि सवारणहार। ४। ५।

पद-अर्थ

ठउर—स्थान, आश्रय; **कालि**—मृत्यु ने; **पोट**—पोटली; **सीख**—शिक्षा; **परीख**—परख; **पुराइनि**—नीलोत्पल; **रस**—पानी, रस; **ईख**—गन्ने का रस; **गड़ि**—गढ़, दुर्ग।

टीका

१. जो मनुष्य प्रभु नाम सुनता और मानता है,—
२. मैं उस पर सदा बलिहारी जाता हूं।
३. परन्तु जो प्रभु-नाम से दूर रहता है, उसका घर-द्वार नहीं होता।
४. हे प्रभु, तुम जिसे नाम समझा देते हो उसे मिलाप भी करा देते हो। १।
५. यदि नाम मिल जाए तो मृत्यु के पश्चात् भी मेरे साथ चलता है।

(सहायक होता है)।

६. नाम से हीन सम्पूर्ण सृष्टि को काल (मृत्यु) ने अपने पाश में बद्ध कर रखा है। १। रहाउ।

७. नाम के अवलम्ब से कर्मों के अनुसार कृषि का कार्य चलता है. (इस में नाम का ही बीज डालना चाहिए)।

८. परन्तु जीवों ने पाप-पुण्य-रूपी बीज की पोटली जोड़ रखी है। (वे नाम के स्थान पर पाप-पुण्य का बीज-बपन करते हैं)।

९. उनके आत्मा पर काम क्रोध आदि चोट लगाते रहते हैं।

१०. नाम विस्मृत करके वे यहां से अपने अन्त-करण में दोष लेकर चले जाते हैं। २।

११. जिन्होंने सत्य गुरु की सत्य शिक्षा प्राप्त कर ली है,—

१२. उनका तन—मन शीतल रहता है; क्योंकि, उनको सत्य की परख प्राप्त हो जाती है।

१३. वे संसार में ऐसे रहते हैं जिस प्रकार जल में नीलोत्पल, अथवा जल में कमल, रहता है।

१४. उनको शब्द (नाम, वाणी) का आनन्द प्राप्त हुआ है और उनका जीवन गन्ने के रस के समान मीठा हो जाता है। ३।

१५. प्रभु के आदेश से पूर्व-कर्मों के अनुसार दस द्वार वाले (शरीर) दुर्ग में,

१६. (सन्त) कामादि विकारों से बचकर प्रभु—मिलन की स्थिति में रहते हैं।

१७. वहां प्रभु स्वयं ही व्यापारी है और स्वयं ही सौदा होकर तुलता है।

१८. (नानक) प्रभु स्वयं ही सन्तों को नाम से जोड़कर उनका जीवन संवार देता है। ४। ५।

६

१. जातो जाइ कहा ते आवै।

२. कह उपजै कह जाइ समावै।

३. किउं बाधिओ किउं मुकती पावै।

४. किउ अबिनासी सहिज समावै । १ ।
५. नामु रिदै अंम्रितु मुखि नामु ।
६. नरहर नामु नरहर निहकामु । १ रहाउ ।
७. सहजे आवै सहजे जाइ ।
८. मन ते उपजै मन माहि समाइ ।
९. गुरमुखि मुकतो बंधु न पाइ ।
१०. सबदु बीचारि छुटै हरिनाइ । २ ।
११. तरवर पंखी बहु निसि बासु ।
१२. सुख दुखीआ मनि मोह विणासु ।
१३. साझ बिहाग तकहि आगासु ।
१४. दह दिसि धावहि करमि लिखिआसु । ३ ।
१५. नाम संजोगी गोइलि थाटु ।
१६. काम क्रोध फूटै बिखु माटु ।
१७. बिनु वखर सूनो घरु हाटु ।
१८. गुर मिलि खोले बजर कपाट । ४ ।
१९. साधु मिलै पूरब संजोग ।
२०. सचि रहसै पूरे हरि लोग ।
२१. मनु तनु दे लै सहजि सुभाइ ।
२२. नानक तिन कै लागउ पाइ । ५ । ६ ।

पद-अर्थ

जातो जाइ—जन्मता मरता है; **नरहर**—परमात्मा; **तरवर**—वृक्ष; **पंखी**—पक्षी; **निसि बासु**—रात्रि का बसेरा; **साझ**—संध्या, सायम्; **बिहाग**—प्रातः; **गोइलि**—गौओं के चरने के लिए वर्षा ऋतु में; **नदी**—तट पर हरी घास की भूमि, **थाटु**—रचना; **माटु**—मटकी; **बजर कपाट**—वज्र कपाट, कड़े तख्ते; **पूरब संजोग**—प्राक्तन कर्मों के कारण; **रहसै**—खिले ।

टीका

१. जीव जन्मता है, मरता है, (परन्तु) यह कहां से आता है ?

२. यह किस प्रकार उत्पन्न होता है और जाकर कहां विलीन हो जाता है।

३. किस प्रकार जन्म-मरण के चक्र में पड़ता है और किस प्रकार इससे मुक्त हो जाता है ?

४. किस प्रकार सहजावस्था में पहुंचकर सदा-स्थिर प्रभु में लीन हो जाता है ?

५. जिस मनुष्य के हृदय और मुख में हरि का नाम बसता है,—

६. उसे हरि का नाम उस हरि के समान ही कामनारहित कर देता है (कामना से ही जीव कर्मों के चक्र में पड़ता है और जन्म-मरण के आवर्त्त में पड़ा रहता है)। १। रहाउ।

७. ईश्वरीय नियमों के अनुसार (कर्मों के बन्धन में पड़कर) जीव आता है और जाता है)।

८. मन के संकल्प-विकल्पों के कारण जीव जन्म ग्रहण करता है और मन की कामनाओं में ही मग्न रहता है।

९. गुरु द्वारा कामनाओं के प्रभाव से बच जाता है और फिर बंधनों में नहीं पड़ता।

१०. वह शब्द को विचार कर हरिनाम-द्वारा मुक्त होता है। २।

११. जिस प्रकार रात्रि में विश्राम के लिए अनेक पक्षी वृक्षों पर आ बैठते हैं,—

१२. (वैसे ही जीव संसार रूपी वृक्ष पर आए हैं) कोई दुःखी है, कोई सुखी हैं, कोई मन में मोह होने के कारण नष्ट होते हैं।

१३. जैसे पक्षी सन्ध्या के समय वृक्षों पर आ टिकते हैं और प्रात.काल आकाश की ओर देखते हैं कि कब सूर्योदय हो और हम उदरपूर्ति के लिए उड़ें।

१४. उसी प्रकार जीव लिखित कर्मों के अनुसार दसों दिशाओं में भटकते फिरते हैं। ३।

१५. जो जीव नाम में अनुरक्त हैं, वह संसार को गोचर क्षेत्र की रचना के समान क्षणिक विश्राम-स्थल समझते हैं।

१६. उनके हृदय की काम-क्रोध की विषमयी मटकी मग्न हो जाती है।

१७. परन्तु जो नाम-हीन हैं उनकी हृदय रूपी दूकान शून्य रहती है।

१८. गुरु से मिलकर ही अज्ञानता के वज्र कपाट खुलते हैं। ४।

१६. जिन्हें पूर्व सुकृत के कारण श्रेष्ठ गुरु मिलता है,—
२०. वे पूर्ण पुरुष सदा-स्थिर प्रभु में मिलकर खिल जाते हैं।
२१. वे अपना तन-मन सहज-स्वभाव गुरु को समर्पित कर देते हैं।
२२. (नानक) मैं उनके चरणों का स्पर्श करता हूं। ५। ६।

(७)

१. कामु क्रोधु माइग्रा महि चीतु।
२. झूठ विकारि जागै हित चीतु।
३. पूंजी पाप लोभ की कीतु।
४. तरु तारी मनि नामु सुचीतु। १।
५. वाहु वाहु साचे म तेरी टेक।
६. हउ पापी तूं निरमलु एक। १। रहाउ।
७. ग्रगनि पाणी बोलै भड़ वाउ।
८. जिहवा इंद्री एकु सुग्राउ।
६. दिसटी विकारी नाही भउ भाउ।
१०. ग्रापु मारे ता पाए नाउ। २।
११. सबदि मरै फिरि मरणु न होइ।
१२. बिनु मूए किउं पूरा होइ।
१३. परपंचि विग्रापि रहिग्रा मनु दोइ।
१४. थिरु नाराइणु करेसु होइ। ३।
१५. बोहिथि चड़उ जा ग्राव वारु।
१६. ठाके बोहिथ दरगह मार।
१७. सचु सालाही धंनु गुरदुआरु।
१८. नानक दरि घरि एकंकारु। ४। ७।

पद-ग्रर्थ

हित—हित के साथ, चाव के साथ, उत्साह; **तरु**—छोटी नाव; **तारी**—नौका; **सुचीतु**—पवित्र; **भड़ वाउ**—प्राण भड़-भड़ करके; **सुग्राउ**—स्वाद; **ग्रापु**—ग्रपमान, अहंकार; **मुए**—ग्रहंन्ता से मुक्त; **परपंचि**—माया के, छल में; **दोइ**—द्वैत में; **बोहिथि**—वोहित पर, पोत पर; **ठाके**—रोके गए।

टीका

१. हे प्रभु, मेरा मन काम, क्रोध और माया (के प्रेम) में मग्न है।

२. यह मिथ्या विकारों में उत्साह से लगता है।

३. इसने पाप और लोभ की राशि एकत्र की है।

४. (इसे विस्मृत हो जाता है कि) हरि के पवित्र नाम को मन में बसाना संसार-सागर से पार होने के लिए तरणि है, नौका है।१।

५. हे सत्य प्रभु, मैं तुम पर न्यौछावर हूं। मुझे (कामादि से बचने के लिए) तुम्हारा ही अवलम्ब है।

६. मैं पापी हूं, केवल एक तुम ही पवित्रकारी हो। १।

७. जीव के भीतर अग्नि और जल के संयोग से श्वास भड़-भड़ करके बोलते हैं। (जिस प्रकार जल और अग्नि के मेल से भड़-भड़ होती है वैसे ही अग्नि और जल के इस शरीर से शुभ;अशुभ वचन निकलते रहते हैं)।

८. जिह्वा और अन्य इन्द्रियों को अपना-अपना स्वाद है।

९. दृष्टि विकारों की ओर लगी होने से, न प्रभु का भय है न प्रेम है।

१०. यदि जीव अहन्त्व को समाप्त करे, तभी नाम प्राप्त हो (और जीवन सुखमय होकर चलता जाए)। २।

११. जो जीव गुरु-शब्द में लगकर अहन्त्व को समाप्त कर देता है, उसका मरण नहीं होता (उसके जन्म-मरण दोनों मिट जाते हैं)।

१२. और अहन्त्व से मुक्त हुए बिना कोई पूर्णता तक कैसे पहुंच सकता है?

१३. मन माया के प्रपंच और द्वैत में बद्ध रहता है।

१४. जिस को परमात्मा स्थिर करता है, वह ही स्थिर होता है। ३।

१५. मैं (संसार-सागर से पार होने के लिए) नाम रूपी जलयान पर तब चढ़ूँ जब मेरी बारी आए (जलयान पर चढ़ने के लिए मनुष्य-जन्म मेरी बारी है। मुझे इस अवसर का लाभ उठाना है)।

१६. जो नाम रूपी जलयान पर चढ़ने से रोके गए हैं, उनको प्रभु की सभा में मार पड़ती है।

१७. गुरु का द्वार धन्य है, जहां मैं सत्य स्वरूप प्रभु की प्रशंसा करता हूं।

१८. (नानक) गुरु के द्वार पर रहने से हृदय में ही प्रभु के दर्शन होते हैं। ४। ७।

१. उलटिओ कमलु ब्रहमु बीचारि ।

२. अंम्रितधार गगनि दस दुआरि ।

३. त्रिभवण बेधिआ आपि मुरारि । १ ।

४. रे मन मेरे भरमु कीजै ।

५. मनि मानिऐ अंम्रित रसु पीजै । १ । रहाउ ।

६. जनमु जीति मरणि मनु मानिआ ।

७. आपि मूआ मनु मन ते जानिआ ।

८. नजरि भई घरु धर ते जानिआ । २ ।

९. जतु सतु तीरथ मजनु नामि ।

१०. अधिक बिथारु करउ किसु कामि ।

११. नर नाराइण अंतरजामि । ३ ।

१२. आन मनउ नउ पर घर जाउ ।

१३. किसु जाचउ नाही को थाउ ।

१४. नानक गुरमति सहजि समाउ । ४ । ८ ।

पद-अर्थ

कमलु—हृदय रूप कमल; **गगनि दस दुआरि**—दसवें द्वार रूपी आकाश में; **त्रिभवणु**—समस्त संसार; **घरु**—हृदय; **मजनु**—तीर्थ स्थान; **अधिक**—बहुत; **अंतरजामि**—आन्तरिक बातों को जानने वाला; **आन**—अन्य; **जाचउ**—मागूं; **सहिज**—सहज में, अनायास ।

टीका

१. भगवान् को विचारकर मेरा हृदथ रुपी कमल, जो उलटा पड़ा था, अब सीधा हो गया है ।—

२. और नाम की अमृतधारा मेरे दशम् में बस रही है ।

३. (मुझे अब ज्ञात हुआ है कि) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में स्वयं परमात्मा व्याप्त है ।

४. हे मेरे मन, शंका न कर ।

५. यह निश्चित है कि जब (नाम द्वारा) मन विश्वास से भर जाता है तब नाम-अमृत के रस का आनन्द मिलता है ।

६. मैंने जन्म जीत लिया है (अब जन्म नहीं लेना पड़ेगा, मैं जन्म-मरण पर विजयी हो गया हूं। क्योंकि, जीवित भाव की ओर से मृत्यु से और अहन्त्व की ओर से मृत्यु से) अब मेरा मन परिचित हो गया है ("अब कैसे मरउ मरनि मन मानिआ, मरि मरि जाते जिन राम न जानिआ")

७. अहन्त्व के मरने से मन को मन से ही समझ हुई है (वास्तविक आत्मस्वरूप का ज्ञान अन्दर मन से ही हुआ है।)

८. प्रभु की कृपा होने से वास्तविक आत्मस्वरूप का बोध हृदय रूपी घर से ही हो गया है। २।

९. परमात्मा के नाम में अनुरक्त होना ही अब मेरे लिए इन्द्रियनिग्रह, सत्याचरण और तीर्थस्थान है।

१०. मैं अब किस प्रकार इन्द्रियनिग्रह, सत्याचरण, तीर्थस्नान आदि का विस्तार करूं ?

११. जब कि परमात्मा मेरी आन्तरिक वृत्तियों (भावनाओं) को जानता है। ३।

१२. यदि प्रभु के अतिरिक्त कोई अन्य मेरे लिए मान्य हो तो मैं उसके समीप जाऊं।

१३. मैं अन्य किस स्थान की कामना करूं, जब प्रभु के अतिरिक्त अन्य कोई स्थान है ही नहीं।

१४. (नानक) गुरु की शिक्षा के द्वारा मै अनायास उसमें लीन हो गया हूं। ४। ८।

(९)

१. सतिगुरु मिलै सु मरणु दिखाए।

२. मरण रहण रसु अंतरि भाए।

३. गरबु निवारि गगन पुरु पाए। १।

४. मरणु लिखाइ आए नहीं रहणा।

५. हरि जपि जापि रहणु हरि सरणा। १। रहाउ।

६. सतिगुरु मिलै न दुबिधा भागै।

७. कमलु बिगासि मनु हरि प्रभ लागै।

८. जीवतु मरै महा रसु आगै। २।

९. सतिगुरि मिलिऐ सच संजमि सूचा।
१०. गुर की पउड़ी ऊचो ऊचा।
११. करमि मिलै जम का भउ मूचा। ३।
१२. गुर मिलिऐ मिलि अंकि समाइआ।
१३. करि किरपा घरू महलु दिखाइआ।
१४. नानक हउमै मारि मिलाइआ। ४। ९।

पद-अर्थ

गरबु निवारि—अहंकार दूर करके; **दुविधा**—दो ओर मन हो जाना; **कमल**—हृदय कमल; **संजमि**—संयम; **मूचा**—कट जाता है; **अंकि**—अंग के साथ, गोद में; **धरु**—हृदय।

टीका

१. यदि सद्गुरु मिल जाए तो वह मनुष्य को (अहन्त्व) से मुक्ति प्राप्त करने की रीति बतला देता है।
२. इस प्रकार मर कर संसार में रहने का आनन्द यही है कि उस मनुष्य को अन्तरात्मा प्रिय लगने लगता है।
३. सद्गुरु उस का अहंकार दूर करके उसका वास दशम द्वार में कर देता है। १।
४. प्रत्येक प्राणी मृत्यु का लेख लिखाकर यहां आता है। यहां किसी को भी सदा नहीं रहना है।
५. परन्तु एक जीवन शाश्वत है; यदि यह जीबन प्रभु की शरण में प्रभु का जाप करता हो।
६. सद्गुरु के मिलाप से मनुष्य की दुविधा समाप्त होती है।
७. उसका हृदय-कमल खिल जाता है और मन हरि प्रभु से संलग्न हो जाता है।
८. वह जीवित ही अहन्त्व को त्याग देता है, और प्रभु मिलन का आनन्द उसे प्रत्यक्ष मिलता है। २।
९. सद्गुरु के मिलाप से सत्याचरण द्वारा पवित्र हो जाता है।
१०. गुरु की बतलाई सीढ़ी (पद्धति) पर चलने से आध्यात्मिकतय ऊंचा

चढ़ा जाता है ।

११. प्रभु की कृपा से गुरु मिलता है ! उसके मिलने से यम का भय समाप्त हो जाता है । ३ ।

१२. यदि गुरु मिल जाए तो जीव प्रभु की गोद में जा बैठता है ।

१३. वह कृपा करके, प्रभु का निवास-स्थान हृदय-घर में ही प्रकट कर देता है ।

१४. (नानक) गुरु मनुष्य का अहन्त्व दूर करके, उसे प्रभु से मिला देता है । ४ । ५ ।

(१०)

१. किरतु पइआ नह मेटै कोइ ।
२. किआ जाणा किआ आगै होइ ।
३. जो तिसु भाणा सोई हूआ ।
४. अवरु न करणै वाला दूआ । १ ।
५. ना जाणा करम केवड तेरी दाति ।
६. करमु धरमु तेरे नाम की जाति । १ । रहाउ ।
७. तू ऐवडु दाता देवणहारु ।
८. तोटी नाही तुधु भगति भंडार ।
९. कीआ गरबु न आवै रासि ।
१०. जीउ पिंडु सभु तेरै पासि । २ ।
११. तू मारि जीवालहि बखसि मिलाइ ।
१२. जिउ भावी तिउ नामु जपाइ ।
१३. तू दाना बीना साचा सिरि मेरै ।
१४. गुरमति देइ भरोसै तेरै । ३ ।
१५. तन महि मैलु नाही मनु राता ।
१६. गुर बचनी सचु सबदि पछाता ।
१७ तेरा ताणु नाम की वडिआई ।
१८. नानक रहणा भगति सरणाई । ४ । १० ।

पद-अर्थ

किरतु—कर्मों की कमाई, अनेक जन्मों में किए कर्मों का सामूहिक प्रभाव जो मन पर पड़ता है; **गरबु**—अहंकार; **दाना**—ज्ञाता; **बीना**—देखने वाला; **राता**—भक्ति में रंगा हुआ ।

टीका

१. कर्मों की कमाई को जिसे मैंने अन्तःकरण में संचित किया है, कोई मिटा नहीं सकता है ।

२. मैं क्या जानता हूं कि मेरे साथ आगे क्या होगा (क्योंकि) मैं कर्मों के संस्कारों के वश में हूं) ?

३. जो प्रभु को अच्छा लगा है वह हो मेरे साथ पहले होता आया है (उसके नियमों के अनुसार मैं अपने किए हुए कर्मों का फल भोगता आया हूं) ।

४. उसके अतिरिक्त कोई अन्य कर्त्ता नहीं है । १ ।

५. परन्तु मैं नहीं जानता कि कर्म कितने महान् हैं, जब कि मुझे पता है कि तुम्हारी देन कितनी बड़ी है ? (जब तुम कृपा करके नाम की देन देते हो तब कर्मों के समस्त लेख समाप्त हो जाते हैं) ।

६. (पवित्र) कर्म-धर्म तुम्हारे नाम से उत्पन्न होते हैं । रहाउ ।

७. तुम नाम की देन के दाता इतने महान दानी हो,—

८. तुम्हारे भाण्डागारों में नाम रूपी भक्ति की कोई न्यूनता नहीं है ।

९. (यह देन प्राप्त करने के लिए) अहंकार करने से कुछ लाभ नहीं हो सकता है ।

१०. मन और तन सब तुम्हें अर्पित करने पड़ते हैं । २ ।

११. तुम ही अहन्त्व मार कर आध्यात्मिक जीवन दे देते हो और अपनी कृपा से अपने साथ मिला लेते हो ।

१२. तुम्हें जैसा भी अच्छा लगे तुम मुझ से अपना नाम जपाओ,

१३. सत्यस्वरूप तुम मेरे हृदय के ज्ञाता और मेरे कर्मों के द्रष्टा हो । तुम सदैव मेरे शीश पर स्थित हो ।

१४. तुम सद्बुद्धि देकर (मुझे बचालो), मैं तुम्हारे ही आश्रित हूं ।

१५. जिनका मन नाम में अनुरक्त है—उनके हृदय में मल नहीं रहनी

(अतः कर्मों का समस्त प्रभाव नष्ट हो जाता है)।

१६. उन्होंने गुरु-शब्द द्वारा तुम सत्य को पहचान लिया है।...

१७. उनको तुम्हारा बल है। यह तुम्हारे नाम की ही महत्ता है।...

१८. (नानक) वे तुम्हारी शरण में आकर तुम्हारी भक्ति में लीन रहते हैं। ४। १०।

११

१. जिनि अकथु कहाइआ अपिओ पीआइआ।
२. अन भै विसरे नाति समाइआ। १।
३. किआ डरीऐ डरु डरहि समाना।
४. पूरे गुर कै सबदि पछाना। १। रहाउ।
५. जिस नर नामु रिदै हरि रासि।
६. सहजि सुभाइ मिले साबासि। २।
७. जाहि सवारै साझ बिआल।
८. इत उत मनमुख बाधे काल। ३।
९. अहिनिसि राम रिदै स परे।
१०. नानक राम मिले भ्रम दूरे। ४। ११।

पद-अर्थ

अपिओ—अमृत; **अन भै**—अन्य भय; **सहजि सुभाइ**—स्वतः अनायास; **साबासिअ**—आदर; **सवारै**—(माया की निद्रा में) रख देता है; **साझ**—सायंकाल; **बिआल**—प्रातः; **अहिनिसि**—दिन-रात्रि।

टीका

१. जिस गुरु ने (कृपा करके मुझसे) अकथनीय परमात्मा का कथन करा दिया है और मुझे नाम-अमृत पिला दिया है—

२. उसने मुझे नाम में अनुरक्त कर दिया हैं। अब मेरे अन्य समस्त भय दूर हो गए हैं (एक प्रभु का भय रह गया है)। १।

३. अब मुझे डरने की कोई आवश्यकता नहीं, मेरे अन्य भय परमात्मा के भय में तब ही लीन हो गए,—

४. जब मैंने पूर्ण गुरु के शब्द द्वारा परमात्मा को समझ लिया । रहाउ।

५. जिस मनुष्य के हृदय में राम नाम की पूंजी है,—

६. उसे अनायास ही हरि की सभा में आदर मिलता है । २ ।

७. जिन मनोमुखों को परमात्मा स्वयं प्रातः साथ (माया की नींद में) सुला देता है,

८. वे यहां-वहां मृत्यु के पाश में (जन्मते-मरते) रहते हैं । ३ ।

९. परन्तु जिन (गुरु-मुखों) के हृदथ में दिन रात राम रहता है, उन्होंने पूर्णता प्राप्त कर ली है ।—

१०. (नानक) उनको प्रभु का मिलाप हो गया हैं और उनकी सब भटकनें समाप्त हो गई हैं । ४ । ११ ।

(१२)

१. जनमि मरै त्रै गुण हितकारु ।

२. चारे वेद कथहि आकारु ।

३. तीनि अवसथा कहहि वखिआनु ।

४. तुरीअवसथा सतिगुर ते हरिजानु । १ ।

५. रामभगति गुर सेवा तरणा ।

६. बाहुड़ि जनमु न होइ है मरणा । १ । रहाउ ।

७. चारि पदारथ कहै समु कोई ।

८. सिम्रिति सासत पंडित मुखि सोई ।

९. बिन गुरु अरथु बीचारु न पाइआ ।

१०. मुकति पदारथु भगति हरि पाइआ । २ ।

११. जा कै हिरदै वसिआ हरि सोई ।

१२. गुरमुखि भगति परापति होई ।

१३. हरि की भगति मुकति आनंदु ।

१४. गुरमति पाए परमानंदु । ३ ।

१५. जिनि पाइआ गुरि देखि दिखाइआ ।

१६. आसा माहि निरासु बुझाइआ ।

१७. दीना नाथु सरब सुख दाता ।

१८. नानक हरि चरणी मनु राता । ४ । १२ ।

पद-अर्थ

हितकारु—हितकारी; **मोह**—मग्न; **आकारु**—दृश्यमान जगत्; **तीनि अवसथा**—त्रिगुणीय अवस्था, सत्व गुण, रजोगुण, तमोगुण; **तुरीअवसथा**—चतुर्थ अवस्था, सहजावस्था; **बाहुड़ि**—पुनः; **चारि पदारथ**—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

टीका

१. त्रिगुणात्मक संसार के नाम में मग्न जीव जन्मता-मरता रहता है।

२. उसे चारों वेद भी प्रत्यक्ष जगत् का ही वर्णन करते (दिखाई देते) हैं।

३. और तीनों गुणों की अवस्थाओं का ही वर्णन करते (दिखाई देते) हैं। (तीनों गुणों के प्रेमी को वेदों में भी केवल त्रिगुणीय संसार का वर्णन प्राप्त होता है। उसकी अपनी रुचि ही ऐसी है। 'वेदां महि नामु उत्तम' भी है। परन्तु उसकी ओर उसकी दृष्टि नहीं जाती)।

४. (हे अज्ञानी जीव) गुरु की सहायता से चतुर्थ (सहज) अवस्था में पहुंचकर हरि की पहचान कर।१।

५. हे जीव, गुरु की शरण में जाकर, प्रभु-भक्ति द्वारा, संसार-सागर उत्तीर्ण किया जाता है।

६. तत्पश्चात् न जन्म होता है, न मरण।१। रहाउ।

७. प्रत्येक प्राणी चार पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) प्राप्त करने की चर्चा करता है।

८. परन्तु (मुक्ति पदार्थ) के अर्थ और विचार का ज्ञान गुरु के बिना प्राप्त नहीं होता है।

९. स्मृतियों में, शास्त्रों में, और विद्वानों के मुखों से भी इन पदार्थों का ही वर्णन होता है।

१०. यह पदार्थ (गुरु-शरण में पड़कर) भक्ति-द्वारा प्राप्त होता है।२।

११. जिस जीव के हृदय में प्रभु बसा है।—

१२. उसे गुरु-द्वारा भक्ति प्राप्त है।

१३. इस प्रभु-भक्ति द्वारा वह मुक्ति का आनन्द प्राप्त करता है।—

१४. और गुरु की शिक्षा से परमानन्द की दशा प्राप्त कर लेता है।३।

१५. जिसे भी प्रभु मिला है, उसे गुरु ने, प्रथम आप देखकर, दिखाना है।
१६. उस गुरु ने उसे सांसारिक आशाओं में रहते हुए आशारहित होकर रहने का ज्ञान कराया है।
१७. (उसे समस्त सुख मिल जाते हैं)। क्योंकि उसके भीतर प्रभु आ बसा है, प्रभु दीनों का नाथ और सर्वसुखदाता है।—
१८. (नानक) उसका मन प्रभु चरणों में अनुरक्त रहता है। ४। १२।

१३

(गउड़ी चेती)

१. अंम्रित काइआ रहै सुखाली बाजी इहु संसारो।
२. लबु लोभु मुचु कूड़ु कमावहि भारो।
३. तूं काइआ मैं रुलदी देखी जिउ धर उपरि छार। १।
४. सुणि सुणि सिख हमारी।
५. सुक्रितु कीता रहसी मेरे जीअड़े बहुड़ि न आवै वारी।१। रहाउ।
६. हउ तुधु आखा मेरी काइआ तूं सुणि सिख हमारी।
७. निंदा चिंदा करहि पराई झूठी लाइतबारी।
८. वेलि पराई जोहहि जीअड़े करहि चोरी बरिआरी।
९. हंसु चलिआ तूं पिछै रहीएहि छुटड़ि होईअहि नारी। २।
१०. तूं काइआ रहीअहि सुपनंतरि तुधु किआ करम कमाइआ।
११. करि चोरी में जा किछु लीआ ता मनि भला भाइआ।
१२. हलति न सोभा पलति न ढोई अहिला जनमु गवाइआ। ३।
१३. हउ खरी दुहेली होई बाबा नानक मेरी बात न पुछै कोई।१। रहाउ।
१४. ताजी तुरकी सुइना रुपा कपड़ केरे भारा।
१५. किस ही नालि न चले नानक झड़ि पए गवारा।
१६. कूजा मेवा मै सभ किछु चाखिआ इकु अंम्रितु नामु तुमारा। ४।
१७. दे दे नीव दिवाल उसारी भस मंदर की ढेरी।
१८. संचे संचि न देई किस ही अंधु जाणै सभ मेरी।
१९. सोइन लंका सइन माड़ी संपै किसै न केरी। ५।
२०. सुणि मूरख मंन अजाणा।

२१. **होगु तिसै का भाणा । १ । रहाउ ।**

२२. **साहु हमारा ठाकुरु भारा हम तिसके वणजारे ।**

२३. **जीउ पिंडु सभ रासि तिसै की मारि आपे जीवाले ।६।१/१३।**

पद-अर्थ

अंम्रित—अपने आप को अमर जानने वाली; **सुखाली**—सुखों में मग्न, निश्चिन्त; **बाजी**—खेल; **मुचु**—बहुत; **धर**—धरा, भूमि; **छारो**—राख; **सिख**—शिक्षा; **सुक्रित**—शुभ काम; **लाइतबारी**—चुगली; **वेलि**—नारी; **जोहहि**—देखता है; **हंसु**—जीवात्मा; **सुमनंतरि**—स्वप्न में; **हलति**—यह लोक; **पलति**—परलोक; **अहिला**—आला, उत्तम; **दुहेली**—दुःखी; **ताजी**—घोड़े; **झड़ि झड़ि पए**—रह गए; **कूजा**—कूज़ा मिसरी; **संचे**—संचित करता है; **संपै**—संपदा; **जीउ**—आत्मा ।

टीका

१. (जीव अपने मन से बातें करता है । कभी काया को संबोधन करता है, कभी स्वयं को और कभी आप काया होकर अपनी दुर्बलताएं प्रकट करता है) अपने आपको स्थिर समझने वाला यह शरीर सुखों में मत्त है (इसे ज्ञात नहीं कि) यह समस्त संसार (चार दिन की) क्रीड़ा है ।

२. हे काया, तू लोभ-लालच और मिथ्या में वहुत अधिक प्रवृत्त है और पापों की भारी गठरी उठा रही है ।

३. मैंने तुम जैसी अनेक ठोकरें खाती देखी हैं जैसे भूमि पर धूलि राख पड़ी रहती है । १ ।

४. हे काया, मेंरी सीख (ध्यान से) सुन ।

५. हे मेरे जीवन, तेरा कोई शुभ कर्म ही तेरा देगा (परन्तु यदि तूने यूं ही जन्म गँवा दिया) तो पुनः (मानव जन्म के रूप में) अन्य अवसर तुझे नहीं मिलेगा । १ । रहाउ ।

६. हे मेरी काया, मैं तुझे शिक्षा देता हूँ, तू (ध्यान से) सुन ।

७. तू पराई निन्दा के चिन्तन में लगी है और मिथ्या पिशुनता करती है।

८. हे जीव, तू पर-नारी की ओर (कुदृष्टि से) देखता है और चोरी असत्कर्म करता है ।

९. हे काया, जब जीवात्मा चला जायेगा तब तू पीछे रह जायगी और तेरी दशा परित्यक्ता नारी की सी होगी । २ ।

१०. हे काया, तू माया-निन्द्रा में मग्न रही और तुझे अपने कुकर्मों का पता ही नहीं लगा ।

११. जब मैं चोरी, ठगी से कुछ ले आता था तब मुझे अच्छा लगता था ।

१२. परन्तु इस प्रकार न तो इस लोक में मेरी शोभा हुई और न मुझे परलोक में आश्रय मिला । यह उत्तम जन्म व्यर्थ ही चला गया । ३ ।

१३. (काया होकर जीव कहता है) (नानक) मैं बहुत दुःखी हूँ । अब मेरी कोई बात भी नहीं पूछता । १ ।

१४. अरबी और तुरकी घोड़े, सोने चांदी और कपड़ों के भार,—

१५. (नानक) ये किसी के साथ नहीं गए । प्रत्युत हे मूर्ख मन, ये सब यहीं रह जाते हैं ।

१६. मैंने मिश्री और फल, सब के स्वाद देखे हैं, परन्तु अमृत का रस केवल नाम में है । ४ ।

१७. नीवें रख-रख कर मकान की दीवारें बनाई गईं । परन्तु अन्त में ये सब राख का ढेर हो गईं ।

१८. यह जीव माया संचित करता है, संचित करके किसी को देता भी नहीं । मूर्ख समझता है कि यह मेरी है ।

१९. परन्तु जैसे रावण की सोने की लंका और सोने के महल नहीं रहे, उसी प्रकार समझो कि माया भी किसी की होकर नहीं रहेगी । ५ ।

२०. हे मूर्ख अनजान मन, सुन :

२१. उस परमात्मा की इच्छा के अनुसार जगत् के कार्य चलेंगे । (सब पदार्थ यहीं रह जायेंगे । १ । रहाउ ।

२२. हमारा स्वामी, प्रभु, महान् हैं । हम उसके व्यापारी हैं (नाम का व्यापार करने आए हैं) ।

२३. यह जीवात्मा और यह शरीर उस हरि की प्रदान की हुई पूंजी हैं जो स्वयं ही मारता है और स्वयं ही जीवन देता है । ६ । १३ ।

१४

१. अवरि पंच हम एक जना किउ राखउ घर बारु मना ।

२. मारहि लूटहि नीत नीत किसु आगै करी पुकार जना । १ ।

३. **स्त्री राम नामा उचरू मना ।**

४. **श्रागै जम दलु बिखमु घना । १ । रहाउ ।**

५. **उसारि मड़ोली राखे दुआरा भीतरि बैठी साधना ।**

६. **अम्रित केल करे नित कामणि अवरि लुटनि सु पंच जना । २ ।**

७. **ढाहि मड़ोली लूटिश्रा देहुरा साधन पकड़ी एक जना ।**

८. **जम डंडा गलि संगलु पड़िआ भागि गए से पंच जना । ३ ।**

९. **कामणि लोड़े सुइना रूपा मित्र लुड़ेनि सु खाद्‌धाता ।**

१०. **नानक पाप करे तिन कारणि जासो जम पुरि बाधाता ।४।२।१४।**

पद-अर्थ

अवरि—अपर अन्य, प्रतिपक्ष में आए विरोधी; **जम दलु** —यम के दूतों का समूह; **बिखमु घना**—बहुत कठिन, अधिक विषम; **मड़ोली**—मठ अर्थात् शरीर; **दुआरा—**द्‌वारा (नासिका, मुख); **साधना**—स्त्री; **अम्रित**—अपने आप को अमर जानने वाली; **केल**—केलि, खेल; **लुड़ेनि**—चाहते हैं; **खाधाता**—खाना-पीना; **बाधाता**—बँधा हुआ ।

टीका

१. हे मेरे मन, मेरे शत्रु (कामादि, पांच हैं) मैं अकेला हूँ, मैं अपने घर वार को इनसे कैसे बचाऊँ (आत्मिक गुणों की रक्षा कैसे करूं ?)

२. ये पांचों मुझे नित्य मारते लूटते हैं। मैं किसके सम्मुख दु:ख निवेदन करूं ?

३. हे मेरे मन, राम नाम का स्मरण कर।

४. सामने परमनिर्दय यमदूतों का समूह आता हुआ दिखाई देता है (मृत्यु आ रही है) । १ । रहाउ ।

५. परमात्मा ने शरीर रूपी घर बनाया है, इसके नौ द्‌वार भी रक्खे हैं। इसमें जीव रूपी नारी बैठी है।

६. यह जीव रूपी नारी अपने आप को अमर जानकर संसार के खेल तमाशों में लगी रहती है और कामादि पांचों शत्रु (इसकी पूंजी) लूटते रहते है । २ ।

७. (अन्त में यमदूतों ने) शरीर रूपी घर को ध्वस्त करके इसे लूट

लिया; जीव रूपी नारी अकेली पकड़ी गई ।

८. यम का डंडा सिर पर लगा, यम की शृंखला गले में पड़ गई। पाँचों प्राणी भी भाग गए (जिसे लूटते थे उसका अन्तिम समय में साथ छोड़ गए) । ३ ।

९. (जीवित) जीव की स्त्री इससे सोना चांदी मांगती रही और मित्र खाने-पीने के आकांक्षी रहे ।

१०. (नानक) जीव इनके लिए पाप करता रहा । अतएव अतंत में) यह जीव धकेल कर यमनगरी को भेजा जाता है । ४ । २ । १४ ।

१५

१. मुँद्रा ते घट भीतरि मुंद्रा कांइआ कीजै खिथाता ।

२. पंच चेले वस कीजहि रावल इहु मनु कीजै डंडाता । १ ।

३. जोग जुगति इव पावसिता ।

४. एकु सबदु दूजा होरु नासति कंद मूलि मनु लावसिता ।१। रहाउ ।

५. मूंडि मुंडाइऐ जे गुरु पईऐ हम गुरू कीनी गंगाता ।

६. त्रिभवण तारणहारू सुआमीं एकु न चेतसि अंधाता । २ ।

७. करि पटंबु गली मनु लावसि संसा मूलि न जावसिता ।

८. एकसु चरणीजे चितु लावहि लबि लोभि की धावसिता । ३ ।

९. जपसि निरंजनु रचसि मना ।

१०. काहे बोलहि जोगी कपटु धना । १ । रहाउ ।

११. काइआ कमली हंसु इआणा मेरी मेरी करत बिहाणीता ।

१२. प्रणवति नानकु नागी दाझै फिरि पाछै पछुताणीता । ३ । १५ ।

पद अर्थ

खिथाता—कन्या, साधुओं की गुदड़ी; **पंच चेले**—पंच ज्ञानेन्द्रियां, **रावल**—जोगी; **डंडाता**—डंडा; **नासति**—नहीं है; **कंदमूल**—जड़ें, जैसे गाजर, मूली; **मूँडि**—सिर; **गंगाता**—गंगा; **त्रिभवण**—तीन लोक, समस्त संसार; **पटंबु**—पाखंड; **धना**—बहुत; **बिहाणीता**—बीत जाती है; **प्रणवति**—विनय करता है; **नागी दाझै**—नग्न जलती है ।

टीका

१. वास्तविक मुद्राएं ये हैं कि हृदय में मुद्राएं पहनी जाएं (भाव यह कि क्षुद्र वासनाएं नष्ट की जाएं, उन पर नियंत्रण किया जाए) शरीर को नश्वर समझना, यह कन्था है।

२. हे जोगी, पांचों ज्ञानन्द्रियों को शिष्य बना कर अपने वश में कर और इस मन को डंडा बना (मन को विश्वास से भरकर डंडे के समान दृढ़ बना)।

३. हे जोगी, योग साधने की रीति इस प्रकार प्राप्त होगी—

४. प्रभु-गुरु का ही शब्द स्थिर है। अन्य शब्द जो तू अपने अन्दर सुनता है, नश्वर है। वह शब्द तेरे जीवन का आधार बनेगा, जिस प्रकार कंदमूल को तूने शरीर का आधार बना रखा है। १ : रहाउ।

५. यदि (गंगा के तीर पर) सिर मुंडाने से गुरु धारण किया जाता है (जैसे तुम धारण करते हो) तो हमने (मन का मल काटने वाले) गुरु को ही गंगा समझा है।

६. तीनों लोकों (समस्त संसार) के उद्धारक एक स्वामी को यह अन्धा (योगी) स्मरण नहीं करता। २।

७. हे जोगी, तू पाखंड करके बातों से ही लोगों का मन प्रसन्न करता है, परन्तु तेरा अपना भ्रम नष्ट नहीं हुआ।

८. यदि तू एक परमात्मा के चरणों में हृदय जोड़े तो क्यों लोभ-लालच में दौड़ता फिरे ?। ३।

९. तू मन लगाकर उस माया-हीन प्रभु को जप।

१०. हे जोगी, अधिक प्रवंचना, छल आदि की बातें किसलिए करता है ? । १ । रहाउ।

११. शरीर पागल है, जीव अज्ञानी है। अहंकार में ही समस्त आयु बीत जाती है।

१२. (नानक) जब (पदार्थ छोड़कर) शरीर (अकेला) नग्न जलता है तब, उस समय, पश्चाताप होता है। ४। ३। १५।

१६

१. अउखध मंत्र मूलु मन एकै जेकरि द्रिड़ि चितु कीजै रे।

२. जनम जनम के पाप करम के काटनहारा लीजै रे । १ ।

३. मन एको साहिबु भाई रे ।

४. तेरे तीनि गुणा संसारि समावहि अलखु न लखणा जाई रे । । १ । रहाउ ।

५. सकर खंडु माइआ तनि मीठी हम तउ पंड उचाई रे ।

६. राति अनेरी सूझसि नाही लजु टूकसि मूसा भाई रे । २ ।

७. मनमुखि करहि तेता दुखु लागै गुरमुखि मिलै वडाई रे ।

८. जो तिनि कीआ सोई होआ किरतु न मेटिआ जाई रे । ३ ।

९. सुभर भरे ना होवहि ऊणे जो राते रंगु लाई रे ।

१०. तिन की पंक होवै जे नानकु तउ मूड़ा किछु पाई रे ।४।४।१६।

पद-अर्थ

अउखध—औषध; **मूल**—जड़ी बूटी, दवा; **उचाई**—उठाई है; **राति अनेरी**—अविद्या का जीवन; **लजु**—श्वास रूपी रज्जु; **मूसा**—चूहा; **किरतु**—किए कर्मों का सामूहिक प्रभाव; **सुभर भरे**—पूर्णतया पूर्ण, आकण्ठ पूर्ण; **ऊणे**—रिक्त; **पंक**—चरणधूलि; **मूड़ा**—मूढ, मूर्ख ।

टीका

१. हे मन, यदि तू दृढ़ता (दृढ़ विश्वास) से स्मरण करे तो (तेरे समस्त रोगों के नाश के लिए) औषध, मंत्र और जड़ी-बूटी केवल प्रभु-नाम ही है ।

२. अतः तू जन्म-जन्मान्तरों में किए दुष्कर्मों को नष्ट करने के लिए उस पापों के नाशक प्रभु का नाम लेता रह । १ ।

३. हे मन, एक स्वामी परमात्मा ही सब का सहायक है । (उसकी शरण में जा) ।

४. तेरी इन्द्रियां तो त्रिगुणीय संसार में ही लगी हैं । परन्तु वह परोक्ष परमात्मा इस प्रकार नहीं देखा जाता । (वह तीनों गुणों से ऊपर चौथे पद में पहुँचने पर प्राप्त हो जाता है) । १ । रहाउ ।

५. हम जीवों को माया शक्कर-खांड के समान मीठी लग रही है । इस माया के कारण ही हमने पापों की गठरी उठाली है ।

६. हमारा जीवन अज्ञानता में बीत रहा है। श्वास रूपी रज्जु को मृत्यु रूपी चूहा काट रहा है। २।

७. मनो-मुखता से (अपनी इच्छा से) जितने भी कर्म किए जाते हैं, उनसे बहुत दुःख प्राप्त होता है। गुरु-मुखता से (गुरु की शिक्षा के अनुसार चलने से) ही भगवान् की सभा में प्रतिष्ठा मिलती है।

८. जो प्रभु करता है वही होता हैं। कृत कर्मों से किसी के जो संस्कार बनते हैं, वे मिट नहीं सकते। (ये भगवान् के नियमों के अनुसार बनते हैं। अतः भगवान् का ही आदेश चल रहाहै।)। ३।

९. जो प्रभु-नाम में अनुरक्त हैं, वे परिपूर्ण जीवन वाले हैं। वे रिक्त कभी नहीं होते।

१०. (नानक) यदि हमारा मूर्ख मन उनके चरणों की धूलि बन जाए तो इसको भी कुछ प्राप्ति हो जाए। ४। ४। १६।

(१७)

१. कत की माई बापु कत केरा किदू थावहु हम आए।
२. अगनि बिब जल भीतरि निपजे काहे कमि उपाए। १।
३. मेरे साहिबा कउणु जाणै गुण तेरे।
४. कहे ना जानी अउगण मेरे। १। रहाउ।
५. केते रुख बिरख हम चीने केते पसू उपाए।
६. केते नाग कुली महि आए केते पंख उडाए। २।
७. हट पटण बिज मंदर भंनै करि चोरी घरि आवै।
८. अगहु देखै पिछहु देखै तुझ ते कहा छपावै। ३।
९. तट तीरथ हम नव खंड देखे हट पटण बाजारा।
१०. लै कै तकड़ी तोलनि लागा घट ही महि वणजारा। ४।
११. जेता समुंदु सागरु नीरि भरिआ तेते अउगण हमारे।
१२. दइआ करहु किछु मिहर उपावहु डुबदे पथर तारे। ५।
१३. जीअड़ा अगनि बराबरि तपै भीतरि वगै काती।
१४. प्रणवति नानकु हुकमु पछाणै सुखु होवै दिनु राती।६।५।१७।

पद-अर्थ

कत की—कब की; **अगनि**—माता के उदर की अग्नि; **बिब**—पिता

के वीर्य के बुलबुले; **निपजै**—उत्पन्न हुए; **चीने**—देखे, जन्म धारण किए; **नाग कुली**—सर्पों के वंश; **पंख उड़ाए**—पक्षी बने; **हट**—दुकानें; **पटण**—बाज़ार; **बिज मंदर**—पक्के घर; **भंनै**—सन्धिच्छेद करता है, सेंध मारता है; **तट**—नदियों के तीर; **बणजारा**—वाणिजिक, जीव; **भीतरि**—अन्दर, हृदय के भीतर; **काती**—(तृष्णा की) छुरी ।

टीका

१. (हे प्रभु, हम अपने अवगुणों के कारण अनेक योनियों में दीर्घकाल तक भटके हैं। हमें क्या पता है कि) किस काल की माता हमारी माता है, किस काल का पिता हमारा पिता है; किस-किस स्थान पर होते हुए हम अब यहां आए हैं ?

२. हमारा जन्म माता के उदर की अग्नि में पिता के वीर्य के बुद्बुद से हुआ है। परन्तु जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें जन्म दिया है वह हमें ज्ञात नहीं है ।

३. हे मेरे स्वामी प्रभु, तुम्हारे गुण कोई नहीं वर्णन कर सकता ।

४. (दूसरी ओर) मेरे अवगुणों का भी कोई अन्त नहीं (अतः तुम्हारे साथ मेरा मेल संभव नहीं, और मेल के बिना जन्म-मरण का चक्र समाप्त नहीं होता । १ । रहाउ ।

५. (योनियों में भटकते हुए) हमने कितनी ही बार बृक्ष का रूप धारण किया है, कितनी ही बार पशु-जन्म लिया है ।

६. कितनी ही बार हम सर्पों के कुल में आए हैं, कितनी ही बार पक्षी बनकर उड़े हैं । २ ।

७. (यह कैसे हुआ ? पापों का फल भोगा । यह अवश्य भोगना पड़ता है। उस सर्वज्ञ की दृष्टि से कोई पाप छिप नहीं सकता) दुकानों में, बाजार और पक्के घरों में सेंध लगाकर चोर चोरी करता है और चोरी करके, घर आकर चोरी की वस्तुएं संचित करता है ।

८. आगे पीछे देखकर अपने दुष्कर्म को छुपाना चाहता है; परन्तु तुमसे किस प्रकार कुछ छिपाया जा सकता है ? । ३ ।

९. (हमने बहुत टक्करें मारी हैं) नदियों के तटों पर बने तीर्थों की यात्रा की है, नव खंड पृथ्वी का भ्रमण किया है और नगरों के हाट-बाज़ार देखे हैं ।

१०. (परन्तु अब विश्वास हो गया है कि) हमारे कर्मों को परखने-तोलने वाला साहु प्रभु हमारे हृदय में स्थित है। (वह वहां बैठा हमारे कर्मों की परख कर रहा है। उसकी दृष्टि से कोई कैसे छिपा रह सकता है। ?)। ४।

११. हे प्रभु, समुन्द्र में जितना पानी है, उतने हरारे अवगुण हैं।

१२. तुम स्वयं ही दया करो, कृपा करो, तुम सदा पापों के भार से डूबने वाले पत्थर तुल्य मनुष्यो को बचाते रहे हो। ५।

१३. हे प्रभु, मेरी आत्मा अग्नि के समान तप रही है, मेरे हृदय में तृष्णा की छुरी चल रही है।

१४. (फिर मैं क्या करूं ? उत्तर यह है) (नानक) जो जीव तुम्हारे आदेश को समझ लेता है, उसे शाश्वत सुख प्राप्त होता है।६।५।१७।

(१८)

गउड़ी वैरागणि

१. रैणि गवाई सोइ कै दिवसु गवाइआ खाइ।

२. हीरे जैसा जनमु है कउडी बदले जाइ। १।

३. नामु न जानिआ राम का।

४. मूड़े फिरि पाछै पछुताहि रे। १। रहाउ।

५. अनता धनु धरणी धरे अनत न चाहिआ जाइ।

६. अनत कउ चाहन जो गए से आए अनत गवाइ। २।

७. आपण लीआ जे मिलै ता सभु को भागठु होइ।

८. करमाउपरि निबड़ै जे लोचै सभु कोइ। ३।

९. नानक करणा जिनि कीआ सोई सार करेइ।

१०. हुकमु न जापी खसम का किसै वडाई देइ। ४। १। १८।

पद-अर्थ

अनता धनु—अनन्त धन; **धरणी धरे**—भूमि में दबाता है; **अनत**—अनन्त प्रभु; **भागठु**—भाग्य वाला; **जापी**—ज्ञात होता है।

टीका

१. (हे जीव, तू) रात सोकर गवां देता हैं और दिन खाने-पीने के भोगों

में)।

२. तेरा यह हीरे जैसा बहुमूल्य मनुष्य-जन्म कौड़ियों के मूल्य में जा रहा है। १।

३. (हे मूर्ख), तूने राम-नाम को नहीं समझा (स्मरण नहीं किया)।

४. समय व्यतीत हुआ समझ, और तुझे बाद में पश्चाताप होगा।१।रहाउ।

५. जो (जीव) बहुत धन भूमि में दबाता है (संचित करता है), वह उस अनन्त प्रभु को प्रेम नहीं कर सकता; (माया का मोह और प्रभु-प्रेम एकत्र नहीं रहते)।

६. जिसको भी बहुत अधिक माया की इच्छा है, वह अनन्त प्रभु को गवांकर यहां से लौटा है। २।

७. यदि अपनी शक्ति से धन-पदार्थ का मिल जाना सम्भव हो तो प्रत्येक मनुष्य भाग्यवान (धनी) हो जाए।

८. कर्मों के अनुसार ही बात का निर्णय होता है, चाहे कोई कितनी ही इच्छा करे (कि मेरी अपनी इच्छा के अनुसार हो)। ३।

९. (नानक) जिस प्रभु ने समस्त संसार बनाया है, वही (अपने आदेश के अनुसार) इसकी संभाल करता है।

१०. उनके आदेश का ज्ञान नहीं होता कि उसे महत्ता किसको देनी है। (वह जिसे चाहे महत्ता दे सकता है)। ४। १। १८।

(१९)

१. **हरणी होवा बनि बसा कंद मूल चुणि खाउ।**

२. **गुरपरसादी मेरा सहु मिलै वारि वारि हउ जाउ जीउ। १।**

३. **मैं बनजारनि राम की।**

४. **तेरा नामु वखरु वापारु जी। १। रहाउ।**

५. **कोकिल होवा अंबि बसा सहजि सबद बीचारु। रहाउ।**

६. **सहजि सुभाइ मेरा सहु मिलै दरसनि रूपि अपारु। २।**

७. **मछुली होवा जलि बसा जीअ जंत सभि सारि।**

८. **उरवारि पारि मेरा सहु वसै हउ मिलउगी बाह पसारि। ३।**

९. **नागनि होवा धर वसा सबदु वसै भउ जाइ।**

१०. **नानक सदा सोहागणी जिन जोती जोति समाइ। ४। २। १९।**

पद-अर्थ

कंद मूल—पुष्प और जड़ें; **बनजारनि**—व्यापार करने वाली, व्यापारिन; **वखरू**—सौदा; वस्तु; **कोकिल**—कोयल; **सहजि**—ज्ञान-द्वारा; **सहजि सुभाइ**—सहज और प्रेम की दशा में; **दरसनि**—दर्शनीय, सुन्दर; **रूपि**—रूपवान, सुन्दर; **सारि**—पता (खबर) लेता है; **धर**—धरा, भूमि ।

टीका

१. (चाहे कहीं होऊँ और किसी वेष में होऊँ मै प्रभु की ही बनजारिन हूं) यदि मैं मृगी होऊँ, वन में रहूं और कंदमूल चुन कर खाती फिरूं (तो भी में गुरु की शरण में जाकर प्रभु की खोज करूंगी) ।

२. यदि गुरु-कृपा से मेरा भगवान् मुझे मिल जाए तो मैं उस पर पुनः पुनः न्यौछावर होती जाऊँगी । १ ।

३. मैं प्रभु की बनजारिन होकर आई हूं ।

४. हे प्रभु, तुम्हारा नाम मेरा सौदा हैं । मैं तुम्हारे नाम का ही व्यापार करती हूं । १ । रहाउ ।

५. यदि मैं कोयल होऊँ और आम पर वास करूं तो मैं ज्ञान-द्वारा गुरु शब्द का विचार करूंगी—

६. जिससे सहज और प्रेम की दशा में पहुंची हुई को मेरा अपार, सुन्दर और दर्शनीय प्रभु मिल जाए । २ ।

७. यदि मैं मछली होऊँ और जल में बसती होऊँ तो मैं उस प्रभु को स्मरण करूंगी जो स्वयं ही समस्त जीव-जन्तुओं के सुख-दुःख का ध्यान रखता है ।

८. वह मेरा प्रिय पति प्रभु आर-पार, प्रत्येक स्थान पर रहता है । मैं महाहर्ष से बांहें फैला कर उससे मिलूंगी । ३ ।

९. यदि मैं सर्पिणी होऊँ और पृथ्वी में रहती होऊँ, (तो मैं यत्न करूंगी कि) प्रभु का शब्द मेरे मन में बस जाए जिससे मेरे समस्त भय समाप्त हो जाएँ ।

१०. (नानक) जिन जीव रूपी नारियों की ज्योति प्रभु-ज्योति में समा जाती है, वे शाश्वत-सौभाग्य-शालिनी होने का आनन्द प्राप्त करती हैं । ४ । २ । १९ ।

(२०)

गउड़ी पूरबी दीपकी

१. जै घरि कीरति आखीऐ करते का होइ बीचारो ।
२. तितु घरि गावहु सोहिला सिवरहु सिरजणहारो । १ ।
३. तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला ।
४. हउ वारी जाउ जितु सोहिलै सदा सुखु होइ । १ । रहाउ ।
५. नित नित जीअड़े समालीअनि देखैगा देवणहारु ।
६. तेरे दानै कीमति न पवै तिसु दाते कवणु सुमारु । २ ।
७. संबति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेलु ।
८. देहु सजण आसीसड़ीआ जिउ होवै साहिब सिउ मेलु । ३ ।
९. घरिघरि एहो पाहुचा सदड़े नित पवंनि ।
१०. सदणहारा सिमरीऐ नानक से दिह आवंनि । ४ । १ । २० ।

पद-अर्थ

जै घरि—जिस घर में; **कीरति**—स्तुति प्रशंसा; **समालीअनि** - संभाले जाते हैं; **देखैगा**—संभाल करेगा; **दानै**—दान की; **सुमारु**—गणना, लेखा; **संबति**—संवत्, वर्ष; **साहा**—सौभाग्य का समय; **पाहुचा**—परलोक जाने का बुलावा; **दिह**—दिन ।

टीका

१. (गुरु-मुख जीव रूपी नारी प्रभु प्रियतम के साथ विवाह के लिए तैयारी करती है। वह योग्यता प्राप्त करके उस पति की स्वीकृति चाहती है। अतः अपने मन से इस प्रकार बातें करती है) जिस घर (सत्संगति) में प्रभु की स्तुति-प्रशंसा की जाती है और स्रष्टा के गुणों पर विचार किया जाता है—
२. हे मेरे मन, तू उसी घर मे मिलकर प्रभु का यश गा, संसार के स्रष्टा उस प्रभु का स्मरण कर । १ ।
३. हे मेरे मन, तू मेरे निर्भय प्रभु की स्तुति-प्रशंसा कर ।
४. जिसके गुण-गान से शाश्वत सुख प्राप्त होता है मैं उस पर

न्यौछावर हूं । १ । रहाउ ।

५. वह प्रभु सदा जीवों की रक्षा करता आया है, वह दाता सदा ही सबका ध्यान रखता भी रहेगा ।

६. हे प्रभु, तुम्हारी देनों का ही मूल्यांकन नहीं हो सकता, कोई तुम दाता का तो क्या मूल्यांकन कर सकता है ? । २ ।

७. प्रभु के देश जाने का मेरा संवत समय (मृत्यु का समय निश्चित है), हे मेरे सत्संगियों, मेरे सिर में तेल डालो, (जैसे विवाह से पूर्व 'बान' की प्रथा के अनुसार कन्या के सिर में डाला जाता है। यह शुभ शकुन है) ।

८. तथा मुझे आशीष दो, जिससे प्रियतम प्रभु से मेरा मिलाप हो। (यद्यपि वधू यह योग्यता प्राप्त कर चुकी है जिससे उसे प्रभु-वर के साथ मिलन हो जाने का विश्वास है तथापि सहेलियों से आशीष चाहती है । यहां वर मृत्यु नहीं, प्रभु है । मृत्यु तो निमन्त्रण भेजने वाले का केवल निमन्त्रण है जो सब के लिए एक समान है। परन्तु विवाह सभी का नहीं होगा केवल उसी का होगा जिसने विवाह की शर्तें पूरी कर ली हैं) । ३ ।

९. प्रभु के देश जाने का (मृत्यु रूप) निमन्त्रण प्रत्येक घर में पहुंचता है । ये निमन्त्रण प्रतिदिन आते हैं ।

१०. हे सहेलियो, आओ, निमन्त्रण भेजने वाले उस प्रभु का स्मरण करें, (नानक) (मृत्यु समय के) वे दिन हम सभी के लिए आते हैं । ४ । १ । २० ।

एक ओं सतिनामु करता पुरखु गुर प्रसादि ।

गउड़ी अशटपदीआ (अष्टपदीपद्यगुम्फ) महला १

(गउड़ी गुआरेरी)

(१)

१. **निधि सिधि निरमल नामु बीचारु ।**

२. **पूरन पूरि रहिआ बिखु मारि ।**

३. **त्रिकुटी छूटी बिमल मझारि ।**

४. **गुर की मति जोइ आई कारि । १ ।**

५. इन विधि राम रमत मनु मानिआ।
६. गिआन अंजनु गुर सबदि पछानिआ । १ । रहाउ ।
७. इकु सुखु मानिआ सहजि मिलाइआ ।
८. निरमल बाणी भरमु चुकाइआ ।
९. लाल भए सूहा रंगु माइआ ।
१०. नदरि भई बिखु ठाकि रहाइआ । २ ।
११. उलट भई जीवत मरि जागिआ ।
१२. सबदि रवे मनु हरि सिउ लागिआ ।
१३. रसु संग्रहि बिखु परहरि तिआगिआ ।
१४. भाइ बसे जम का भउ भागिआ । ३ ।
१५. साद रहे बादं अहंकारा ।
१६. चितु हरि सिउ राता हुकमि आपारा ।
१७. जाति रहे पति के आचारा ।
१८. द्रिसटि भई सुखु आतम धारा । ४ ।
१९. तुझ बिनु कोइ न देखउ मीतु ।
२०. किसु सेवउ किसु देवउ चीतु ।
२१. किसु पूछउ किस लागउ पाइ ।
२२. किसु उपदेसि रहा लिव लाइ । ५ ।
२३. गुर सेवी गुर लागउ पाइ ।
२४. भगति करी राचउ हरिनाइ ।
२५. सिखिआ दीखिआ भोजन भाउ ।
२६. हुकमि संजोगी निजधरि जाउ । ६ ।
२७. गरब गतं सुख आतम धिआना ।
२८. जोति भई जोती माही समाना ।
२९. लिखतु मिटै नहीं सबदु नीसाना ।
३०. करता करणा करता जाना । ७ ।
३१. नह पंडितु नहु चतुरु सिआना ।
३२. नह भूले नह भरमि भुलाना ।
३३. कथउ न कथनी हुकमु पछाना ।
३४. नानक गुरमति सहजि समाना । ८ । १ ।

पद-अर्थ

निधि सिधि—निधियां और सिद्धियां, भंडार और चमत्कारों की शक्ति; **बिखु**—विष, माया; **त्रिकुटी**—त्रिगुणात्मक माया; **बिमल**—निर्मल, पवित्र हरि; **मझारि**—मध्य में; **जीइ**—जीव के लिए; **कारि**—उपयोगी, लाभदायक; **लाल भए**—लाल रंगे गए (प्रेम में लीन हो गए); **उलट**—जीवन में परिवर्तन आया है; **परिहरि**—दूर करके; **भाइ**—प्रेम में; **रहे**—समाप्त हो गए; **बादं**—झगड़े; **जाति**—जात-पात; **पति के आचार**—लोक-लाज के लिए किए गए कर्म; **दीखिआ**—दीक्षा। **संजोगी**—जुड़कर; **गतं**—दूर हो गया; **जोति भई**—प्रकाश हो गया; **लिखतु**—प्रारम्भ से लिखा हुआ; **कथउ न कथनी**—बातें नहीं करता।

टीका

१. (गुरु की शिक्षा से) मैं निर्मल प्रभु के नाम के विचार में लग्न हूं। यही मेरे लिए समस्त निधियां और सिद्धियां हैं।

२. अब मुझे माया रूपी विष को नष्ट करके पूर्ण परमात्मा सर्वत्र व्याप्त दिखाई दे रहा है।

३. अब निर्मल प्रभु में मेरा वास हो गया है और मुझे त्रिगुणात्मक माया से मोक्ष की प्राप्ति हो गई है।

४. गुरु-द्वारा प्रदान की हुई शिक्षा इस प्रकार मेरे आत्मा के लिए लाभदायक सिद्ध हुई है। १।

५. इस रीति से (जिसका प्रसंग अष्ठपदी में है) राम-नाम स्मरण करने से मेरा मन विश्वस्त हो गया है।

६. गुरु-शब्द-द्वारा मुझे ज्ञान का अंजन प्राप्त हो गया है, जिसके द्वारा मैंने प्रभु को पहचाना है। १। रहाउ।

७. मुझे ज्ञान ने प्रभु के साथ जोड़ दिया है और मुझे एक सुख (जिस सुख जैसा दूसरा कोई सुख नहीं है) प्राप्त हो गया है।

८. गुरु की पवित्र वाणी के द्वारा मेरी अज्ञानता दूर हो गई है।

९. मैंने माया के रंग को कुसुम्भ के रंग के समान अस्थायी जान लिया है और अपने आप को नाम के रंग में रंग लिया है।

१०. मुझ पर प्रभु की कृपा हुई है जिससे मैंने माया के विषय को रोक

लिया है । २ ।

११. मेरी सुरति माथा से हट गई है, जीवित भाव (अहन्त्व) को मारकर मैं आध्यात्मिकतया प्रबुद्ध हो गया हूं ।

१२. शब्द-द्वारा स्मरण करता हुआ मेरा मन हरि से जुड़ गया है ।

१३. मैने नाम-रस संचित किया है, और माया-विष को दूर फेंक कर सदा के लिए त्याग दिया है ।

१४. अब मैं हरि के प्रेम में अनुरक्त हो गया हूं और यम-दूतों का भय दूर हो गया है । ३ ।

१५. (नाम में लगने से) मेरे माया के स्वाद, कलह और अहंकार समाप्त हो गए हैं ।

१६. मेरा चित्त प्रभु के रंग में रंग गया है और उस अपार का आदेश-वर्ती हो गया है ।

१७. जाति और लोकलाज के लिए किए जाने वाले समस्त कर्म समाप्त हो गए हैं ।

१८. मुझ पर प्रभु की कृपा-दृष्टि हुई है, और मेरा आत्मा सुखी हो गया है । ४ ।

१९. हे प्रभु, तुम्हारे अतिरिक्त मुझे कोई मित्र दिखाई नहीं देता ।

२०. अत: मैं अन्य किस की आराधना करूं और किस से मन लगाऊँ ?

२१. मैं और किससे परामर्श करूं और किस के चरण स्पर्श करूं ?

२२. और, मैं अन्य किसके उपदेश में सुरति लगाऊँ ? । ५ ।

२३. मैं गुरु की सेवा में लगता हूं, गुरु के चरण स्पर्श करता हूं ।

२४. (गुरु के उपदेश के अनुसार) तुम्हारी भक्ति करता हूं, तुम्हारे नाम में रहता हूं ।

२५. अब तुम्हारा प्रेम ही मेरे लिए शिक्षा, दीक्षा और भोजन है ।

२६. प्रभु के आदेश के अनुसार उससे संयुक्त होकर मैं आत्मस्वरूप में पहुंचा हूं । ६ ।

२७. मेरा अहंकार दूर हो गया है, और आध्यात्मिक आनन्द में मेरी सुरति स्थिर हो गई है ।

२८. मेरे भीतर प्रकाश हो गया है और मैं ज्योतिस्वरूप प्रभु में लीन हो गया हूँ ।

२९. प्रारम्भ से ही यह संयोग मेरे भाग्य में लिखा था, यह मिट नहीं सकता था। इसके लिए ही शब्द का चिन्ह मेरे मस्तक पर है।

३०. अब मैंने केवल हरि को कर्ता और कारण समझा है। ७।

३१. न मैं विद्वान् होने की घोषणा करता हूं, न मैं चतुर बनता हूं, न मैं अपने आप को बुद्धिमान् समझता हूं।

३२. यही कारण है कि मैं मार्ग से भ्रष्ट नहीं हुआ हूं और भ्रम में भटका नहीं हूं।

३३. मैं अब केवल बातें ही नहीं करता, आज्ञानुसार चलता हूं।

३४. (नानक) गुरु की शिक्षा के द्वारा मैं सहज (अविचल) अवस्था में स्थिर हो गया हूं। ८। १।

(२)

१. मनु कुंचरु काइआ उदिआनै।
२. गुरु अंकसु सचु सबदु नीसानै।
३. राज दुआरै सोभ सु मानै १।
४. चतुराई नह चीनिआ जाइ।
५. बिनु मारे किउ कीमति पाइ। १। रहाउ।
६. घर महि अंम्रितु तसकरू लेई।
७. नंनाकारू न कोई करेई।
८. राखै आपि वडिआई देई। २।
९. नील अनील अगनि इक ठाई।
१०. जलि निवरी गुरि बूझ बुझाई।
११. मनु दे लीआ रहसि गुण गाई। ३।
१२. जैसा घरि बाहरि सो तैसा।
१३. बैसि गुफा महि आखउ कैसा।
१४. सागरि डूगरि निरभउ ऐसा। ४।
१५. मूए कउ कहु मारे कउनु।
१६. निडरे कउ कैसा डरु कवनु।
१७. सबदि पछानै तीने भउन। ५

१८. जिनि कहिश्रा तिनि कहनु वखानिश्रा ।
१९. जिनि बूझिश्रा तिनि सहजि पछानिआ ।
२०. देखि बीचार मेरा मनु मानिश्रा । ६ ।
२१. कीरति सूरति मुकति इक ठाई ।
२२. तही निरंजनु रहिश्रा समाई ।
२३. निजघरि बिश्रापि रहिश्रा निज ठाई । ७ ।
२४. उसतति करहि केते मुनि प्रीति ।
२५. तनि मनि सूचै साचु सु चीति ।
२६. नानक हरि भजु नीता नीति । ८ । २ ।

पद-अर्थ

कुंचरु—कुंजर, हस्ती; **उदिआनै**—उद्यान में, जंगल में; **अंकसु**—अंकुश; **चीनिआ**—समझा; **तसकरु**—तस्कर, चोर; **नंनाकारु**—न नकार, इन्कार; **नील अनील**—गणनातीत; **रहसि**—खिला; **डूगरि**—पर्वत पर; **मूए**—जिवित भाव (अहन्त्व) की दृष्टि से मरे हुए को; **कीरति**—कीर्ति; **नीता नीत**—नित्य, सदा ।

टीका

१. शरीर रूपी जंगल में मन रूपी हस्ती निर्बाध फिरता है ।
२. यदि गुरु रूपी अंकुश और सत्य शब्द रूपी मुद्रा-चिह्न इस मन हाथी पर पड़ता है,—
३. तो यह मन प्रभु-राजा के द्वार पर शोभा और मान पाता है । १ ।
४. प्रभु केवल (असार) चतुराइयों के बल से नहीं समझा जाता है ।
५. जब तक मन अहन्त्व को नहीं मारता तब तक उस प्रभु के मूल्य का अंकन (उसकी महत्ता का अनुमान) नहीं कर सकता । १ । रहाउ ।
६. घर (हृदय) में अमृत-नाम स्थिर है । परन्तु (कामादिक) चोर इस अमृत को लूट रहे हैं ।
७. और, कोई इन चोरों को रोकता नहीं ।
८. शोभा उसी को मिलती है इन चोरों से जिसकी रक्षा प्रभु स्वयं करता है । २ ।

९. (हृदय में) असीम अग्नि (तृष्णा) एक राजा बनकर भरी हुई है।
१०. गुरु ने शिक्षा दी है। इस शिक्षा-जल से यह अग्नि बुझी है।
११. मन गुरु के अर्पण करके शिक्षा-जल प्राप्त किया है और अब प्रसन्न होकर प्रभु का गुणगान किया है। ३।
१२. प्रभु घर बाहर एक समान व्याप्त है।
१३. फिर, गुफा में बैठकर मुझे और क्या कहना है (क्या ज्ञात करना हैं) ?
१४. सागर में और पर्वत पर वह निर्भय प्रभु एक समान व्याप्त है। ४।
१५. जिस मनुस्य ने गुरु के उपदेश से अहन्त्व को मार लिया है उसे कामादि चोर कैसे मार सकते हैं ?
१६. जो गुरु-अंकुश के भय से मर कर निर्भय हो चुका है, उसे किसका भय है ?
१७. उसने तीनों भवनों में वास करने वाले प्रभु को शब्द-बल से पहचान लिया है। ५।
१८. जिसने केवल कथन किया हैं (और आचरण नहीं किया है) उसने व्यर्थ बातें की हैं।
१९. परन्तु जिसने वास्तव में उसे जाना है, उसने सहजावस्था में पहुंच कर उसे पहचाना भी है।
२० मेरा मन भी गुरु के उपदेश से प्रभु को समझ कर और सर्वत्र व्याप्त देखकर विश्वस्त हो गया है। ६।
२१. केवल एक नाम में अच्छी शोभा, सुन्दरता और (दुःख से) मुक्ति है।
२२. और, उसी में माया से अलिप्त प्रभु रहता है।
२३. (जिस जीव के हृदय में नाम है) वह अपने उस स्वरूप में रहता है जहां प्रभु का अपना निवास है। ७।
२४. अनेक मुनीश्वर प्रीति से प्रभु की स्तुति करते हैं।
२५. वे मन और तन से पवित्र हैं और उनके हृदय में वह सत्यस्वरूप हरि रहता है।
२६. (नानक) (तू भी) नित्य हरि का भजन कर। ८। २।

(३)

१. ना मनु मरै न कारजु होइ।

२. मनु वसि दूता दुरमति दोइ ।
३. मनु मानै गुर ते इकु होइ । १ ।
४. निरगुण रामु गुणह वसि होइ ।
५. आपु निवारि बीचारे सोइ । १ । रहाउ ।
६. मनु भूलो बहु चितै विकारु ।
७. मनु भूलो सिरि आवै भारु ।
८. मनु मानै हरि एकंकारु । २ ।
९. मनु भूलो माइआ घरि जाइ ।
१०. कामि बिरूधउ रहै न ठाइ ।
११. हरि भजु प्राणी रसन रसाइ । ३
१२. गैवर हैवर कंचन सुत नारी ।
१३. बहु चिंता पिड़ चाल हारी ।
१४. जूऐ खेलणु काची सारी । ४ ।
१५. संपउ संची भए विकार ।
१६. हरख सोक उभै दरवारि ।
१७. सुखु सहजे जपि रिदै मुरारि । ५ ।
१८. नदरि करे ता मेलि मिलाए ।
१९. गुण संग्रहि अउगण सबदि जलाए ।
२०. गुरमुखि नामु पदारथु पाए । ६ ।
२१. बिनु नावै सभ दूख निवासु ।
२२. मनमुख मूड़ माइआ चित वासु ।
२३. गुरमुखि गिआनु धुरि करमि लिखिआसु । ७ ।
२४. मनु चंचलु धावतु फुनि धावै ।
२५. साचे सूचे मैलु न भावै ।
२६. नानक गुरमुखि हरिगुण गावै । ८ । ३ ।

पद-अर्थ

कारजु—जीवन के उद्देश्य की प्राप्ति; दूता—काम आदि शत्रु, दोइ—द्वैतभाव; निवारि—दूर करके; चितै—चिन्तन करता है; विरूधउ—

व्यस्त; **गैवर**—गयन्दवर, गजराज; **हैवर**—हयवर; उत्तम अश्व; **कंचन**—सुवर्ण; **सुत**—पुत्र; **पिड़**—जीवन रूपी खेल; **सारी**—सार, चौपड़ की नरद; **संपउ**—सम्पत्ति; **उभे**—खड़े हैं; **चंचलु**—चलायमान; **फुनि**—पुनः ।

टीका

१. जब तक मन कामादि वैरियों को मारता नहीं, तब तक जीवन का प्रयोजन (प्रभु के साथ मिलाप) प्राप्त नहीं होता ।

२. यह मन कामादि शत्रु, दुर्बुद्धि और द्वैतभाव के वश में है ।

३. यदि मन गुरु-द्वारा विश्वस्त हो जाए तो प्रभु के साथ अद्वैत हो जाता है । १ ।

४. निर्गुण परमात्मा गुणों से प्राप्त होता है ।

५. जो अहन्त्व को दूर करता है वही उस परमात्मा को यथावत् विचारता है । १ । रहाउ ।

६. भ्रान्त मन, विकारों की चिन्ता बहुत करता है । —

७. और सिर पर पापों का भार उठाता है ।

८. परन्तु यदि यही मन गुरु-शिक्षा से विश्वस्त हो जाए, तो एक प्रभु के साथ एकीभूत हो जाता है । २ ।

९. भ्रान्त मन, माया के रसों में मग्न रहता है ।

१०. काम में आसक्त यह मन स्थिर नहीं रहता ।

११. (यदि तू बचना चाहता है तो) हे जीव, भक्ति आनन्द में लीन हो कर जिह्वा से प्रभु का भजन कर । ३ ।

१२. यह मन अच्छे हाथियों, अच्छे घोड़ों, सोने, पुत्र, स्त्री आदि में डूबा रहता है ।

१३. और, इन (पदार्थों) की चिन्ता में जीवन खेल हार जाता है ।

१४. उसका जीवन द्यूत के उस खेल के सदृश रह गया है जिसमें उसकी सारें (नर्दें) कच्ची रहती हैं (जन्म सफल नहीं होता) । ४ ।

१५. धन एकत्र करने से मन में विकार उत्पन्न होते हैं ।

१६. परिणाम यह होता हैं कि सुख और दुःख सदा उसके द्वार के सम्मुख खड़े रहते हैं ।

१७. परन्तु हृदय में परमात्मा को जपने से सोते ही सुख आ बसता है ।५।

१८. जब प्रभु कृपा करता है तब जीव को गुरु से मिला देता हैं।

१९. फिर, जीव गुण-संचय करता है और अवगुणों को शब्द के द्वारा जला देता है।

२०. वह गुरु के द्वारा नाम प्राप्त कर लेता है । ६ ।

२१. हृदय में नाम को न बसाने से समस्त दुःख आ जाते हैं।

२२. मूर्ख मनोमुख का हृदय माया में रहता है।

२३. परन्तु जो गुरु का आदेशवर्ती हुआ है उसे ज्ञान है, उसके मस्तक पर पूर्व लेख लिखे हैं (वह माया के प्रभाव से मुक्त रहता है) । ७ ।

२४. मन चंचल है और भटकता फिरता है और पुनः पुनः भटकता है।

२५. (यह मन मलिन है और) पवित्र परमात्मा को मल अच्छा नहीं लगता।

२६. (नानक) यदि यह मन गुरु का आदेशवर्ती होकर प्रभु के गुणों का गान करे तो इसका मल कट जाए और इसकी अशान्ति मिट जाए। ८ । ३ ।

(४)

१. हउमै करतिआ नह सुखु होइ ।

२. मनमति झूठी सचा सोइ ।

३. सगल बिगूते भावै दोइ ।

४. सो कमावै धुरि लिखिआ होइ । १ ।

५. ऐसा जगु देखिआ जूआरी ।

६. सभि सुख मागै नामु बिसारी । १ । रहाउ ।

७. अदिसटु दिसै ता कहिआ जाइ ।

८. बिनु देखे कहणा बिरथा जाइ ।

९. गुरमुखि दीसै सहजि सुभाइ ।

१०. सेवा सुरति-एक लिव लाइ । २ ।

११. सुखु माँगत दुखु आगल होइ ।

१२. सगल बिकारी हारु परोइ ।

१३. एक बिना झूठे मुकति न होइ ।

१४. करि करि करता देखै सोइ । ३ ।

१५. तिसना अगनि सबदि बुझाए ।

१६. दूजा भरमु सहजि सुभाए ।

१७. गुरमती नामु रिदै बसाए ।

१८. साची बाणी हरिगुण गाए । ४ ।

१९. तन महि साचो गुरमुखि भाउ ।

२०. नाम बिना नाही निज ठाउ ।

२१. प्रेम पराइण प्रीतम राउ ।

२२. नदरि करे ता बूझै नाउ । ५ ।

२३. माइआ मोहु सरब जंजाला ।

२४. मनमुख कुचील कुछित बिकराला ।

२५. सतिगुरु सेवे चूकै जंजाला ।

२६. अंम्रित नामु सदा सुख नाला । ६ ।

२७. गुरमुखि बूझै ऐक लिव लाए ।

२८. निजघरि वासै साचि समाए ।

२९. जंमणु मरणा ठाकि रहाए ।

३०. पूरे गुरते इह मति पाए । ७ ।

३१. कथनी कथउ न आव ओरु ।

३२. गुरु पुछि देखिआ नाही दरु होरु ।

३३. दुखु सुखु भाणै तिसै रजाइ ।

३४. नानक नीचु कहै लिव लाइ । ८ । ४ ।

पद-अर्थ

बिगूते—नष्ट हो गए; **भावै**—भा गई, अच्छी लगी; **आगल**—बहुत अधिक; **भाउ**—प्रेम; **पराइण**—वश, **कुचील**—मलिन; **कुछित**—निन्दित, बदनाम; **विकराल**—भयंकर; **ठाकि**—रोक कर; **ओरु**—अवधि, सीमा अन्त ।

टीका

१. अहंकार करने से कभी सुख नहीं मिलता ।

२. मन की शिक्षा मनुष्य को मिथ्या (अस्थिर) वस्तुओं से जोड़ती है। वह प्रभु सच्चा (स्थिर) है (इससे मन की शिक्षा ग्रहण करने वाले जीव के साथ उसका मेल सम्भव नहीं, 'सुचि होवै ता सचु पाइऐ')।

३. जो द्वैत भाव में हैं वे सब नष्ट होते हैं।

४. परन्तु जीव के वश में क्या है? वह वही कुछ करता है, जो कुछ उसके कर्मों के अनुसार भाग्य में लिखा गया है। १।

५. मैंने देखा है कि संसार जुए का खेल खेलता है (सांसारिक सुखों के लिए अपने आन्तरिक अमूल्य रत्न को दाव पर लगाकर गवां देता है)।—

६. समस्त सुख मांगता है परन्तु नाम को विस्मृत कर देता है। रहाउ।

७. यदि कोई (जिससे सुख उत्पन्न होते हैं) उस परोक्ष प्रभु को ज्ञान की दृष्टि से देखें तो उस का कथन शोभा पाता है (कि उसे कुछ पता है)।

८. परन्तु देखे बिना बातें बनाना निरर्थक है।

९. गुरु-द्वारा वह प्रभु सहज स्वभाव ही दृष्टिगोचर हो जाता है,—

१०. जब भी कोई मनुष्य एक प्रभु की सेवा में लगता है, और अपनी सुरति उसके प्रेम में जोड़ता है। २।

११. नाम के बिना सुख मांगने से जीवों को बहुत अधिक दु:ख होते हैं।

१२. क्योंकि वे समस्त विकारों का हार गले में डाल लेते हैं (और विकारों से दु:ख निकलता है।)

१३. एक प्रभु से दूर रह कर मिथ्या पदार्थों में लगने से मुक्ति (दु:खों से मोक्ष) असम्भव है।

१४. (परन्तु उसकी यही इच्छा है) वह इस संसार-खेल का कर्त्ता स्वयं है, और इसे चलता हुआ देखता है। ३।

१५. जो मनुष्य गुरु-शब्द द्वारा अपने भीतर तृष्णा की अग्नि बुझा लेता है,—

१६. उसका द्वैतकारी भ्रम स्वत: नष्ट हो जाता है।

१७. वह गुरु की शिक्षा से नाम हृदय में बसा लेता है।—

१८. और गुरु की सत्य वाणी में लगकर हरि के गुण गाता है। ४।

१९. गुरु की शिक्षा से प्रभु-प्रेम बनता है। फिर अन्त:करण में ही उस

सत्य प्रभु का पता लगता हैं।

२०. नाम के बिना आत्मस्वरूप तक किसी की पहुंच नहीं हो सकती।

२१. वह प्रियतम प्रभु प्रेम के वश में पड़ जाता है।

२२. परन्तु जिस पर वह कृपा करता है; वही नाम को समझता है। ५।

२३. माया का मोह समस्त जंजालों (बन्धनों) का कारण है।

२४. मन का अनुसरण करने वाला मनुष्य मलिन, निन्दित और भयंकर है।

२५. यदि वह भी गुरु की सेवा में लग जाए तो माया-मोह से उत्पन्न उसके बन्धन नष्ट हो जाएँ।—

२६. और शाश्वत सुख देने वाला अमृत नाम उसके साथ (होकर उसकी सहायता करे)। ६।

२७. गुरु के द्वारा मनुष्य नाम को जानता है और एक प्रभु में मन की वृत्ति जोड़ता है।

२८. और इस प्रकार अपने स्वरूप में पहुंचता है और सत्य प्रभु के साथ एकीभूत होता है।

२९. और, जन्म-मरण को रोक देता है।

३०. परन्तु पूर्ण गुरु से उसे यह ज्ञान होता है। ७।

३१. मै उस प्रभु की बातें करता हूं जिसका कोई अन्त नहीं पा सकता।

३२. परन्तु गुरु ने मुझे विश्वास करा दिया है कि उसके अतिरिक्त कोई अन्य अवलम्ब भी नहीं।

३३. और, दु:ख सुख उसकी इच्छा से, उसकी रज़ा से ही आते हैं (और जीवों के हित के लिए हैं)।

३४. अत: (नानक) उसके चरणों में प्रेम लगाकर उसके ही गुण गाता है। ८। ४।

(५)

१. दूजी माइआ जगत चित वासु।

२. काम क्रोध अहंकार बिनासु। १।

३. दूजा कउणु कहा नहीं कोई।

४. सभ महि एकु निरंजनु सोई। १। रहाउ।

५. दूजी दुरमति आखै दोइ ।

६. आवै जाइ मरि दूजा होई । २ ।

७. धरणि गगन नह देखउ दोइ ।

८. नारी पुरख सबाई लोइ । ३ ।

९. रवि ससि देखउ दीपक उजिआला ।

१०. सरब निरंतरि प्रीतमु बाला । ४ ।

११. करि किरपा मेरा चितु लाइआ ।

१२. सतिगुर मो कउ एकु बुझाइआ । ५ ।

१३. एकु निरंजनु गुरमुखि जाता ।

१४. दूजा मारि सबदि पछाता । ६ ।

१५. एको हुकमु वरतै सभ लोई ।

१६. एकसु ते सभ ओपति होई । ७ ।

१७. राह दोवै खसमु एको जाणु ।

१८. गुर कै सबदि हुकमु पछाणु । ८ ।

१९. सगल रूप वरन मन माही ।

२०. कहु नानक एको सालाही । ९ । ५ ।

पद-अर्थ

धरणि—पृथ्वी; गगन—आकाश; रवि-ससि—सूर्य-चन्द्र; बाला—युवा; ओपति—उत्पत्ति; वरण—वर्ण, रंग ।

टीका

१. द्वैत के भ्रम की उत्पादिका वह माया ही है जो सांसारिक लोगों के बास कर रही है,—

२. और जिसके प्रभाव से प्राणी काम, क्रोध, अहंकार में कष्ट भोग रहे हैं । १ ।

३. दूसरा मैं किसको कहूं; जब है ही नहीं ।

४. सब मैं माया से अलिप्त एक प्रभु व्याप्त है । १ । रहाउ ।

५. द्वैत से पूर्ण अयथार्थ विचारधारा है जो द्वैत को दृढ़ करती है ।

६. इस द्वैत के वश जीव जन्म-मरण की आवृत्तियां करता है और परमात्मा से (पृथक्) होता जाता है । २ ।

७. मैं पृथ्वी और आकाश में कहीं भी द्वैत नहीं देखता ।

८. स्त्री, पुरुष तथा अन्य समस्त जीवों में एक ज्योति विद्यमान है । ३ ।

९. मैं सूर्य और चन्द्रमा रूपी दीपकों में उसका प्रकाश देखता हूं ।

१०. मुझे तो नित्य-तरुण अपना प्रियतम प्रभु ही सर्वत्र विद्यमान दिखाई देता है । ४ ।

११. सद्गुरु ने कृपा करके मेरा मन उस एक में लगा दिया है ।...

१२. और मुझे उस एक का ज्ञान करा दिया है । ५ ।

१३. गुरु-द्वारा मैंने माया से अलिप्त प्रभु को जान लिया है ।

१४. मेरी द्वैत-वृत्ति नष्ट हो गई है और मैंने गुरु-शब्द के द्वारा एक परमात्मा को पहचान लिया है । ६ ।

१५. सत्य यह है कि एक प्रभु का आदेश ही सर्वत्र चल रहा है ।—

१६. और समस्त संसार (जिसमें माया भी सम्मिलित है) एक प्रभु से ही उत्पन्न हुआ है । ७ ।

१७. (द्वैत के कारण) दो मार्ग बन गए हैं, एक माया का और दूसरा परमात्मा का । परन्तु दोनों का स्वामी वह स्वयं है, (उसकी पहचान कर । उसने स्वयं ही यह द्विरूप खेल रचा है ।)

१८. गुरु के शब्द की सहायता से उस (प्रभु) के अप्रतिहततया वर्तमान आदेश को पहचान । ८ ।

१९. वह समस्त रूप-रंगों में और जीवों के हृदय में बसता है ।

२०. (नानक) मैं उस ही एक की स्तुति-प्रशंसा करता हूं । ९ । ५ ।

(६)

१. अधिआतम करम करे ता साचा ।

२. मुकति भेदु किआ जाणै काचा । १ ।

३. ऐसा जोगी जुगति बीचारै ।

४. पंच मारि साचु उरिधारै । १ । रहाउ ।

५. जिस कै अंतरि साचु वसावै ।

६. जोग जुगति की कीमत पावै । २ ।

७. रवि ससि एको ग्रिह उदिआनै ।

८. करणी कीरति करम समानै । ३ ।

९. एक सबद इक भिखिआ मागै ।

१०. गिआनु धिआनु जुगति सचु जागै । ४ ।

११. भै रचि रहै न बाहरि जाइ ।

१२. कीमति कउण रहै न लिव लाई । ५ ।

१३. आपे मेले भरमु चुकाए ।

१४. गुर परसादि परम पदु पाए । ६ ।

१५. गुर की सेवा सबदु वीचारु ।

१६. हउमै मारे करणी सारु । ७ ।

१७. जप तप संजम पाठ पुराणु ।

१८. कहु नानक अपरंपर मानु । ८ । ६ ।

पद-अर्थ

अधिआतम—आध्यात्मिक; **जुगति—**युक्ति, कार्य-पद्धति; **उरिधारै**—हृदय में रखे; **रवि ससि**—सूर्य चन्द्र (उष्णता शैत्य); **ग्रिह उदिआनै**—घर तथा वन; **साचु जागै**—सत्य प्रकाशित हो गया है; **करणी सार—**श्रेष्ठ कर्म; **संजम**—विकारों की ओर से इन्द्रियों का निरोध; **अपरंपर**—परात्पर, परमात्मा ।

टीका

१. जो मनुष्य आत्मोन्नायक कर्म करता है वही वास्तविक योगी है ।

२. जिसमें आध्यात्मिक दुर्बलताएं हैं वह मनुष्य मुक्ति के रहस्य को क्या जान सकता है । १ ।

३. जो मनुष्य जीवन-यापन की यथार्थ पद्धति का ज्ञाता है वही वास्तविक योगी है ।

४. (वह पद्धति यह है कि) मनुष्य कामादिक पांचों को मारे, और सत्य को हृदय में बसाए । २ । रहाउ ।

५. जिस मनुष्य के अन्तःकरण में परमात्मा सत्य बसा देता है,—

६. वही योग की मुक्ति को समझता है । २ ।

७. सूर्य और चन्द्रमा, अर्थात् उष्णता और शीतता, घर और वन उस योगी के लिए एक समान हैं ।

८. उसके लिए हरि-यश का कर्म तथा समग्र कर्म-काण्ड एक समान है । ३ ।

९. वह गुरु-शब्द की भिक्षा मांगता है (द्वार-द्वार की रोटी नहीं मांगता । योगियों को जीवनयापन-विधि का आश्रय लेकर गुरु जी योग-रतों को यथार्थ मार्ग दिखला रहे हैं ।)

१०. सत्य का प्रकाश होने पर उससे, ज्ञान ध्यान, जीवन-मुक्ति उत्पन्न होते हैं । ४ ।

११. वह सदैव प्रभु-भय से मरा रहता है । इस भय से वह मनोमुख (स्वैरी) नहीं होता है ।

१२. जो प्रभु-प्रेम में मग्न हो चुका है ऐसे योगी का मूल्यांकन कौन कर सकता है । ५ ।

१३. (जिसे कृपा करके) प्रभु स्वयं ही अपने साथ मिलाता है उसकी द्विचित्तता समाप्त हो जाती है ।

१४. गुरु की कृपा से वह परम पद (मोक्ष) को प्राप्त करता है । ६ ।

१५. वह गुरु की सेवा में लगता है और गुरु-शब्द को अपना विचार बनाता है ।

१६. वह अहन्त्व को समाप्त करता है । यही उसके लिए श्रेष्ठ कर्म है । ७ ।

१७. उसका जप, तप, संयम, पाठ और पुराण यह है (प्रभु में विश्वास रखता है) ।

१८. और, (नानक) तू भी योगी से कह—हे योगी, उस अनन्त प्रभु में विश्वास दृढ़ कर । ८ । ६ ।

(७)

१. खिमा गही व्रतु सील संतोखं ।

२. रोगु न बिआपै न जम दोखं ।

३. मुकत भए प्रभ रूप न रेखं । १ ।

४. जोगी कउ कैसा डरू होइ ।

५. रूखि बिरखि ग्रिहि बाहरि सोइ । १ । रहाउ ।
६. निरभउ जोगी निरंजनु धिम्रावै ।
७. अनदिनु जागै सचि लिव लावै ।
८. सो जोगी मेरे मनि भावै । २ ।
९. काल जालु ब्रहम अगनी जारे ।
१०. जरा मरण गतु गरबु निवारे ।
११. आपि तरै पितरी निसतारे । ३ ।
१२. सतिगुर सेवे सो जोगी होइ ।
१३. भै रचि रहै सु निरभउ होइ ।
१४. जैसा सेवै तैसो होइ । ४ ।
१५. नर निहकेवल निरभउ नाउ ।
१६. अनाथह नाथ करे बलि जाउ ।
१७. पुनरपि जनमु नाही गुण गाउ । ५ ।
१८. अंतरि बाहरि एको जाणै ।
१९. गुर कै सबदे आपु पछाणै ।
२०. साचै सबदि दरि नीसाणै । ६ ।
२१. सबदि मरै तिसु निजघरि वासा ।
२२. आवै न जावै चूकै आसा ।
२३. गुर कै सबदि कमलु परगासा । ७ ।
२४. जो दीसै सो आस निरासा ।
२५. काम क्रोध बिखु भूख पिआसा ।
२६. नानक बिरले मिलहि उदासा । ८ । ७ ।

पद-अर्थ

खिमा गही—क्षमा धारण की; **व्रतु**—व्रत, नियम; **सील**—अच्छा स्वभाव; **अनदिनु**—सदैव; **जरा**—बुढ़ापा; **मरण**—मृत्यु; **गतु**—दूर होता है; **पितरी**—पूर्वज; **निहकेवल**—शुद्ध, पवित्र; **पुनरपि**—पुनः; **चूकै**—समाप्त हो; **कमल परगासा**—हृदय कमल खिल जाता है; **बिरले**—बिरला; **उदासा**—माया से उदासीन ।

टीका

१. (पूर्ण योगी) क्षमा धारण करता है, मधुर स्वभाव और संतोष उसके प्रतिदिन के कर्म हैं।

२. उसे अहन्त्व आदि रोग नहीं लगते और न यम-दूतों का दुःख सहना पड़ता है ।

३. वह (रूप-रेखा के कारा से) मुक्त होता है; क्योंकि, उसके प्रभु की कोई रूप-रेखा नहीं । १ ।

३. जो सच्चे अर्थों में योगी है उसे (गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते हुए) क्या भय हो सकता ?

५. (उसका रक्षक वह है जो) वृक्ष और घर बाहर सब स्थान पर है। १ । रहाउ।

६. वह योगी माया–प्रसार के समस्त भयों से मुक्त है; क्योंकि. वह माया से अलिप्त प्रभु का ध्यान करता है।

७. वह सदा सचेत रहता है क्योंकि वह सत्य–स्वरूप प्रभु में ध्यान जोड़ता है।

८. ऐसा योगी ही मेरे मन को अच्छा लगता है। (वह योगी स्वीकार करने योग्य है)। २।

९. वह अपने अन्तःकरण में प्रकट हुए प्रभु-तेज से मृत्यु-जाल को जला लेता है।

१०. वार्धक्य तथा मृत्यु का भय उससे दूर हो जाता है। वह अहन्त्व को त्याग देता है।

११. वह स्वयं मुक्त होता है और अपने पूर्वजों को भी मुक्त करता है।३।

१२. जो सद्गुरु की सेवा करता है, वह (पूर्ण) योगी बनता है।

१३. जो प्रभु-भय में रहता है, वह अन्य भयों से मुक्त हो जाता है।

१४. क्योंकि मनुष्य जिस प्रकार के इष्ट की सेवा करता है, वह उसी प्रकार का बन जाता है। ४।

१५. जो मनुष्य निर्भय प्रभु का नाम जपता है, वह शुद्ध हो जाता है।

१६. मै उस प्रभु पर न्यौछावर हूं जो (नाम के प्रभाव से निराश्रयों को अन्यों के लिए आश्रय बना देता है)।

१७. अतः मैं अब उसके गुण गाता हूँ जिसके गुण गाने से पुनः जन्म नहीं

होता । ५ ।

१८. जो एक प्रभु को भीतर-बाहर सर्वत्र व्याप्त समझता है ।—

१९. जो गुरु के शब्द की सहायता से अपने आपको पहचान लेता है ।—

२०. वह सत्य शब्द के द्वारा ईश्वरीय सभा में स्वीकृत होता है (उसके मस्तक पर प्रामाणिकता की मुद्रा लगा दी जाती है) । ६ ।

२१. जो शब्द-द्वारा अहन्त्व को मार देता है, उसका वास आत्मस्वरूप में हो जाता है ।

२२. वह जन्म—मरण से बच निकलता है । क्योंकि उसकी तृष्णा समाप्त हो जाती है ।—

२३. गुरु के शब्द से उसका हृदय-कमल खिल जाता है । ७ ।

२४. विश्व में जो भी दिखाई देता है वह आशा और नैराश्य के अन्तर्गत है (कोई आशा लगाए बैठा है और कोई निराश फिरता है) ।

२५. यहां जीव काम, क्रोध, माया (विष) की क्षुत्;पिपासा में विचरते हैं ।

२६. (नानक) यहां बिरले ही मिलते हैं जो माया से उदास (मुक्त) हैं । ८ । ७ ।

(८)

१. ऐसो दासु मिलै सुखु होई ।

२. दुखु विसरै पावै सचु सोई । १ ।

३. दरसनु देखि भई मति पूरी ।

४. अठसठि मजनु चरनह धूरी । १ । रहाउ ।

५. नेत्र संतोखे एक लिव तारा ।

६. जिह्वा सूची हरिरस सारा । २ ।

७. सचु करणी अभअंतरि सेवा ।

८. मनु त्रिपतासिआ अलख अभेवा । ३ ।

९. जह जह देखउ तह तह साचा ।

१०. बिनु बूझे झगरत जगु काचा । ४ ।

११. गुरु समझावै सोझी होई ।

१२. गुरमुखि विरला बूझै कोई । ५ ।

१३. करि किरपा राखहु रखवाले ।

१४. बिनु बूझै पसू भए बेताले ६ ।

१५. गुरि कहिआ अवरु नहीं दूजा ।

१६. किसु कहु देखि करउ अनपूजा । ७ ।

१७. संत हेति प्रभि त्रिभवण धारे ।

१८. आतमु चीनै सु ततु बीचारे । ८ ।

१९. साचु रिदै सचु प्रेम निवास ।

२०. प्रणवति नानक हम ता के दास । ९ । ८ ।

पद-अर्थ

दासु—परमात्मा का सेवक; **लिवतारा**—एक तान मनोवृत्ति; **अभअंतरि**—हार्दिक सेवा; **अभेवा**—जिसका रहस्य न जाना जाए; **बेताले**—भूत के समान; **चीनै**—समझे ।

टीका

१. प्रभु का ऐसा सेवक (जिसका वर्णन इस 'शबद' में किया गया है) जिसे मिल जाता है, उसे शाश्वत आनन्द प्राप्त होता है ।

२. उसे सत्य प्रभु मिल जाता है । अतः उसका दुःख नष्ट हो जाता है ।१।

३. प्रभु के सेवक के दर्शनों से बुद्धि प्रकाशमान हो जाती है ।

४. उसके चरणों की धूलि अड़सठ तीर्थों के स्नान के तुल्य है ।१। रहाउ ।

५. उसके नेत्र तृप्त हैं । उसकी एकतान वृत्ति प्रभु में लगी रहती है ।

६. और उसकी जिह्वा श्रेष्ठ हरि के रस से पवित्र हो जाती है । २ ।

७. उसके कर्म सत्य-मण्डित होते हैं और वह तन-मन से सेवा में निरत रहता है ।

८. उसका मन आलस्य एवं अभेद्य प्रभु के स्मरण से संतुष्ट रहता है । ३ ।

९. (ऐसे सेवक के दर्शन करके) मैं जिधर देखता हूं, उधर मुझे वह सत्य-स्वरूप परमात्मा दिखाई देता है ।

१०. परन्तु अपक्व (माया के प्रभाव से शिथिल) जगत् अज्ञान के कारण झगड़ों में पड़ा हुआ है । ४ ।

११. जिसे गुरु (प्रभु का सेवक) समझता है उसे ही वास्तविक बुद्धि होती है।
१२. परन्तु कोई विरला ही गुरु के सम्मुख उपस्थित होकर यह बुद्धि प्राप्त करता है। ५।
१३. हे संसार-रक्षक प्रभु, कृपा करके विस्मरणशील जीवों की रक्षा करो।
१४. अज्ञानतावश जीव पशु और भूतों के समान बने हुए हैं। ६।
१५. मुझे गुरु ने समझा दिया है कि प्रभु जैसा अन्य कोई नहीं है।
१६. अतः मित्रों, मुझे बतलाओ कि किस को उसके समान समझकर उसकी पूजा करूं ?। ७।
१७. परमात्मा ने (उपर्युक्त गुणों से युक्त) सन्त बनाने के लिए ही यह संसार बनाया है।
१८. जो मनुष्य (उन सन्तों का चरण-स्पर्श करके) आत्म-स्वरूप की पहचान करता है उसे ही तात्त्विक ज्ञान प्राप्त होता है। ८।
१९. जिस सन्त गुरु के अन्तकरण में सत्यस्वरुप प्रभु और उस प्रभु का प्रेम बसा है, वह सत्यस्वरूप हो गया है।
२०. (नानक सविनय कहता है कि) मैं ऐसे गुरु का दास हूं। ९। ८।

(९)

१. ब्रह्मै गरबु कीआ नहीं जानिआ।
२. वेद की बिपत्ति पड़ी पछुतानिआ।
३. जह प्रभ सिमरे तही मनु मानिआ। १।
४. ऐसा गरबु बुरा संसारै।
५. जिसु गुरु मिलै तिसु गरबु निवारै। १। रहाउ।
६. बलि राजा माइआ अहंकारी।
७. जगन करै बहु भार अफारी।
८. बिनु गुर पूछै जाइ पइआरी। २।
९. हरी चंदु दानु करै जसु लेवै।
१०. बिनु गुर अंत न पाइ अभेवै।
११. आपि भुलाइ आपे मति देवै। ३।

१२. दुरमति हरणाखसु दुराचारी ।
१३. प्रभु नराइखु गरब प्रहारी ।
१४. प्रहलाद उधारे किरपा धारी । ४ ।
१५. भूलो रावणु मुगधु अचेति ।
१६. लूटी लंका सीस समेति ।
१७. गरबि गइआ बिनु सतिगुर हेति । ५ ।
१८. सहसबाहु मधुकीट महखासा ।
१९. हरणाखसु ले नखहु विधासा ।
२०. दैत संघारे बिनु भगति अभिआसा । ६ ।
२१. जरासंधि काल जमुन संघारे ।
२२. रकतबीजु कालु नेमु बिदारे ।
२३. दैत संघारि संत निसतारे । ७ ।
२४. आपे सतिगुरु सबदु बीचारे ।
२५. दूजै भाइ दैत संघारे ।
२६. गुरमुखि साचि भगति निसतारे । ८ ।
२७. बूडा दुरजोधनु पति खोई ।
२८. रामु न जानिआ करता सोई ।
२९. जन कउ दूखिपचै दुखु होई । ९ ।
३०. जनमेजै गुर सबदु ना जानिआ ।
३१. किउ सुखु पावै भरमि भुलानिआ ।
३२. इकु तिलु भूले बहुरि पछतानिआ । १० ।
३३. कंसु केसु चांडूरु न कोई ।
३४. रामु न चीनिआ अपनी पति खोई ।
३५. बिनु जगदीस न राखै कोई । ११ ।
३६. बिनु गुर गरबु न मेटिआ जाइ ।
३७. गुरमति धरमु धीरजु हरिनाइ ।
३८. नानक नामु मिलै गुण गाइ । १२ । ९ ।

पद-अर्थ

निवारै—दूर करता है; **जगन**—विश्व; **अफारी**—अभिमान से आध्यायित; **पइआरी**—पाताल में; **अभेवे**—जिसका रहस्य नहीं जाना जाता (हरि); **दुराचारी**—नीच कर्म करने वाला; **प्रहारी**—दूर करने वाला; **नखहु**—नाखूनों से; **बिधासा**—विध्वस्त कर दिया, चीर दिया; **जगदीस**—जगत् का स्वामी।

टीका

१. ब्रह्मा ने अहंकार किया (कि मैं नाभि कमल से उत्पन्न नहीं हुआ, मैं स्वयं उत्पन्न हुआ हूँ, मैं संसार-स्रष्टा हूँ) उसने कर्त्ता प्रभु (की असीमता) को नहीं पहचाना। —

२. परन्तु जब उससे दैत्य ने वेद चुरा लिए तब इस विपत्ति के कारण वह पछताया (कि मैंने क्यों बड़े होने का अहंकार किया) जो आप चोरी से नहीं बच सका, वह किस प्रकार बड़ा हुआ ?।

३. फिर जब उसने प्रभु का स्मरण किया तब उसका मन विश्वस्त हुआ। १।

४. संसार में अहंकार (ऐसा) बुरा है (कि बड़े-बड़े राजाओं, ऋषियों एवं मुनियों को भी विपत्ति में डाल देता है)।

५. परन्तु जिसे गुरु मिलता है, केवल उसका अहंकार दूर होता है। १। रहाउ।

६. राजा बलि को अपने धन का अहंकार हुआ।

७. उसने यज्ञ किए और अहंकारवश बहुत अभिमान किया।

८. परन्तु गुरु के मार्गप्रदर्शन के बिना वह पाताल लोक में जा पड़ा।२।

९. (बलि एक दैत्य-वंशीय राजा था। तपस्या के बल से इसने सभी देवता जीत लिए। इन्द्र का राज्य प्राप्त करने के लिए इसने एक सौ एक यज्ञ आरम्भ किए। जिस समय वह एक सौ एकवां यज्ञ कर रहा था तब इन्द्र को चिन्ता हुई। उसने विष्णु से सहायता मांगी। विष्णु ब्राह्मण का बावन अंगुलि वाला रूप धारण करके यज्ञ स्थान पर पहुंचा और उसने राजा बलि से एक कुटिया बनाने के लिए अढ़ाई कदम पृथ्वी मांगी। बलि के गुरु शुक्र ने उसे ऐसा करने से

रोकते हुए कहा कि यह छल है, इससे बचो। परन्तु दानी होने के अहंकारवश राजा ने अढ़ाई कदम पृथ्वी देनी स्वीकार कर ली। बावन अंगुल विष्णु ने एक कदम में समस्त पृथ्वी माप ली और दूसरे कदम में सारा आकाश माप लिया। अब राजा ने स्वयं को प्रस्तुत किया, जो आधे कदम में आ गया। वामन ने उसकी छाती पर पैर धरकर दाबा और उसे पाताल में पहुंचा दिया तथा प्रसन्न होकर उसे पाताल का राज्य दे दिया, और स्वयं उसके द्वार पर द्वारपाल बन गया। अभी तक भक्तिवश होकर वह वहां पर पहरा दे रहा है)।

९. राजा हरिश्चन्द्र दानी था, लोकभर उसकी प्रशंसा करता था।

१०. परन्तु गुरु के विना वह अभेद्य (अज्ञेय) हरि का अन्त न प्राप्त कर सका (प्रभु की असीम लीला का उसे ज्ञान न हुआ)।

(राजा हरिश्चन्द्र पटना नगर का राजा था और उसका गुरु वशिष्ठ था। वशिष्ठ ने विश्वामित्र के सम्मुख राजा हरिश्चन्द्र की दानशीलता की प्रशंसा की। विश्वामित्र ने परीक्षार्थ राजा से दान मांगा। राजा ने वशिष्ठ के परामर्श के बिना ही अपना समग्र राज्य दान कर दिया। दक्षिणा देने के लिए, राजा हरिश्चन्द्र ने अपने आपको, अपनी रानी और पुत्र को काशी की मंडी में बेच दिया। राजा को श्मशान के ठेकेदार चांडाल ने मोल ले लिया और श्मशान के कार्य में लगा दिया। रानी और पुत्र को एक ब्राह्मण ने मोल लिया। पुत्र सर्प के डसने से मर गया। रानी उसे श्मशान में ले आई; परन्तु हरिश्चन्द्र ने श्मशान कर लिये बिना उसे पुत्र के शव को वहां जलाने नहीं दिया। रानी के पास कर के निमित्त पैसे नहीं थे। यह परीक्षा की चरम सीमा थी। विश्वामित्र लज्जित हुआ। राजा को राज्य मिल गया; पुत्र भी जीवित हो गया, (परन्तु यह समस्त कष्ट उसे इस कारण हुआ कि उसने गुरु का परामर्श नहीं लिया, अपनी बुद्धि पर विश्वास किया।)

११. परन्तु (किसी जीव के वश क्या है?) प्रभु स्वयं ही किसी एक को भुला देता है और किसी दूसरे को शुभ बुद्धि देकर पार कर देता है। ३।

१२. दुर्मति के कारण हिरण्यकशिपु दुराचारी हो गया। (अहंकारवश

अत्याचार करता रहा।)

१३. परन्तु प्रभु नारायण अहंकारियों का नाश करने वाला है।

१४. उसने कृपा करके प्रह्लाद को बचा लिया। ४।

(हिरण्यकशिपु मुलतान का दैत्य वंशीय राजा था। उसने साधना करके कई वरदान प्राप्त किए हुए थे। उसे अभिमान था कि मैं मर नहीं सकता। यहां तक कि वह अपने आपको परमात्मा कहलाता था। उसके पुत्र प्रह्लाद ने ही उसकी इस घोषणा को स्वीकार नहीं किया। राजा ने उसे मरवाने के प्रयास किए। प्रभु स्वयं नरसिंह रूप में प्रकट हुआ और उसने हिरण्यकशिपु को मार कर प्रह्लाद की रक्षा की।)

१५. मूर्ख रावण अज्ञानवश कुमार्गगामी बन गया।

१६. उसकी लंका लूटी गई और सिर भी काटा गया।

१७. अहंकार के कारण ही वह नष्ट हुआ, उसने अहंकारवश सद्गुरु के प्रेम (कृपा पाने की आवश्यकता न समझी, सीता को चुरा लिया और अन्त में मारा गया)। ५।

१८. सहस्रबाहु को कंस ने मारा, मधु और कैटभ को विष्णु ने और महिषासुर को दुर्गा ने।

१९. हिरण्यकशिपु को (नरसिंह ने) नाखूनों से फाड़ दिया।

२०. ये सभी दैत्य, भक्ति के अभ्यास से हीन होने के कारण नष्ट हुए।६।

२१. जरासंध. कालयमन (कृष्ण जी से मारे गए।)

२२. रक्तबीज दुर्गा के हाथों से मारा गया और कालनेमि (को विष्णु ने त्रिशूल से चीर डाला था)।

२३. इन दैत्यों को मारकर भगवान् ने सन्तों की रक्षा की। ७।

२४. प्रभु स्वयं ही गुरु होकर वाणी को विचारता है (और विश्व को मार्ग दिखलाता है)।

२५. स्वयं ही दैत्यों को दूसरे भाव (माया जाल) में फँसाकर नष्ट करता है।

२६. और स्वयं ही भक्तों को गुरु-द्वारा पार उतारता है। ८।

२७. दुर्योधन अहंकारवश नष्ट हुआ, उसने अपनी समस्त प्रतिष्ठा खो दी।

२८. उसने यह न समझा कि भगवान् ही जगत-कर्त्ता है।

२९. (उसकी इच्छा से) जो भक्तों को दु:ख देता है वह दु:ख देने के कारण स्वयं दु:खी होता है (दुर्योधन ने द्रोपदी को नग्न करने का प्रयास किया था, अन्त में उसकी क्या दशा हुई थी ?) । ९ ।

३०. जनमेजय ने अपने गुरु की शिक्षा को न समझा (अपनी बुद्धि पर विश्वास किया) :—

३१. वह भ्रमवश भूल गया । उसे सुख कैसे मिलता ?) ?

३२. (प्रायश्चित करते हुए भी) थोड़ा भूल गया और पछताया । १० । (राजा जनमेजय अपने गुरु व्यास के मना करने पर भी जंगल से एक स्त्री ले आया । उसने अश्वमेध यज्ञ किया । जिस समय ब्राह्मण भोजन कर रहे थे, राजा की पत्नी झीने वस्त्र पहनकर वहां आ गई । ब्राह्मण हँस पड़े । जनमेजय ने क्रोधित होकर ब्राह्मण मरवा दिए । ब्राह्मणों की हत्या के कारण (वह) कुष्ठी हो गया ।

कुष्ट से मुक्ति पाने के लिए उसने गुरु के कहने पर महाभारत की कथा सुनी, उसका कुष्ठ दूर होता गया । परन्तु जब वह सुनता हुआ इस भाग पर आया कि भीम ने आकाश में हाथी फैंके थे तो उसे सन्देह हुआ । इस सन्देह के कारण थोड़ा कुष्ठ अँगूठे पर टिका रह गया । फिर उसे महा पश्चाताप हुआ ।) .

३३. (शौर्य-वीर्य में) कंस, केशी और चांडूर के समान कोई नहीं था ।

३४. परन्तु उन्होंने भी परमात्मा को न समझा और अपनी प्रतिष्ठा गँवा कर चले गए ।

३५. परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई रक्षा नहीं कर सकता । १ ।

३६. गुरु की शरण में आए बिना अहंकार नष्ट नहीं किया जा सकता ।

३७. गुरु-शिक्षा से, नाम-स्मरण में लग कर, मनुष्य धैर्य रूपी धर्म को धारण करता है । (और प्रतिकूल स्थितियों का प्रतिरोध करने की शक्ति उत्पन्न करता है) ।

(१०)

१. चौआ चंदनु अंकि चड़ावउ ।

२. पाट पटंबर पहिरि हढावउ ।

३. विनु हरि नाम कहा सुखु पावउ । १ ।

४. किग्रा पहिरउ किग्रा ग्रोढि दिखावउ ।

५. विनु जगदीस कहा सुखु पावउ । १ । रहाउ ।

६. कानी कुंडल गलि मोतीअन की माला ।

७. लाल निहाली फूल गुलाला ।

८. बिनु जगदीस कहा सुखु भाला । २ ।

९. नैन सलोनी सुंदर नारी ।

१०. खोड़ सीगार करै ग्रति पिग्रारी ।

११. विनु जगदीस भजै नित खुग्रारी । ३ ।

१२. दर घर महला सेज सुखाली ।

१३. अहिनिसि फूल बिछावै माली ।

१४. बिनु हरिनाम सु देह दुखाली । ४ ।

१५. हैवर गैवर नेजे वाजे ।

१६. लसकर नेब खवासी पाजे ।

१७. बिनु जगदीस झूठे दिवाजे । ५ ।

१८. सिधु कहावउ रिधि सिधि वलावउ ।

१९. ताज कुलह सिरि छत्र बनावउ ।

२०. विनु जगदीस कहा सचु पावउ । ६ ।

२१. खानु मलूकु कहावउ राजा ।

२२. ग्रबे तबे कूड़े है पाजा ।

२३. बिनु गुर सबद न सवरसि काजा । ७ ।

२४. हउमैं ममता गुर सबदि विसारी ।

२५. गुरमति जानिग्रा रिदै मुरारी ।

२६. प्रणवति नानक सरणि तुमारी । ८ । १० ।

पद-ग्रर्थ

चोग्रा—ग्रगर का तेल, इत्र; **ग्रंकि**—ग्रंग पर, (शरीर के) ग्रगों पर; **पाट पंटवर**—रेशमी वस्त्र; **ग्रोढि**—पहन कर; **कानीकुंडल**—कानों में कुण्डल; **निहाली**—गद्दा, विछौना, बिस्तर; **नैन सलोनी**—सुन्दर ग्रांखों वाली; **खोड़**—

षोडस, सोलह प्रकार के; **सुखाली**—सुखदायक; **हैवर**—अच्छे घोड़े; **गैवर**—अच्छे हाथी; **नंब**—नायव, सहायक; **खवासी**—राज सेवक; **पाजे**—बाह्य आडम्बर; **दिवाजे**—बाह्य आडम्बर; **सिध**—चमत्कारी योगी; **रिधि सिधि**—चमत्कार करने वाली शक्तियाँ; **ताज कुलह**—सिर पर ताज की टोपी; **मलूक**—बादशाह; **अबे तबे**—ओ 'अरे' शब्दों से भर्त्सना करनी; **ममता**—निजत्व भाव; **मुरारी**—मुर राक्षस के मारने वाला; **कृष्ण**—परमात्मा; **प्रणवति**—विनय करता है ।

टीका

१. यदि मैं शरीर पर इत्र और चन्दन लगाऊँ ।—

२. रेशम और रेशमी वस्त्र पहनकर घूमूं । —

३. परन्तु यदि मैं परमात्मा के नाम से रहित हूं तो मुझे कहां सुख प्राप्त हो सकता है ? (कहीं नहीं) । १ ।

४. यदि नाम नहीं है तो अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनने और पहनकर दूसरों को दिखाने का क्या लाभ ?

५. परमात्मा के नाम के बिना मैं कहां सुख पा सकता हूं (कहीं नहीं) । रहाउ ।

६. यदि मैं कानों में कुण्डल तथा कण्ठ में मुक्तमाला पहन लूं, —

७. मेरे लाल बिछौने के ऊपर 'लाले' के फूल बिछे हों । —

८. तो भी परमात्मा के नाम से हीन होकर मैं सुख कहां प्राप्त कर सकता हूं । २ ।

९. यदि सुन्दर आंखों वाली सुन्दरी मेरी पत्नी हो,

१०. उसने सोलह प्रकार के श्रृंगार किए हों, मुझे बहुत प्रिय लगती हो—

११. तो भी परमात्मा के नाम से हीन होकर सर्वदा कलेश ही होता है । ३ ।

१२. यदि मेरे रहने के लिए राजप्रासाद हों और उनमें सुखदायक शय्याएं हों

१३. माली मेरी शय्याओं पर दिन-रात पुष्प बिछाता रहे । —

१४. तो भी (सुखदायक शय्याएं प्राप्त करने पर भी) नाम के बिना यह

शरीर दु:खों का ही रहेगा । ४ ।

१५. यदि मेरे पास उत्तम अश्व, उत्तम हस्ती, कुन्तधारी सैन्य फौजें हों और (सैनिक बाद्य बजते हैं) । —

१६. यदि मेरे पास सैन्य सहायक, सेवक तथा अन्य कई प्रकार के आडम्बर हों । —

१७. तो भी नाम के बिना ये समस्त आडम्बर मिथ्या (नश्वर) हैं । ५ ।

१८. यदि मैं अपने आप को सिद्ध कहलाऊँ, ऋद्धि और सिद्धियों पर मेरा अधिकार होवे । —

१९. मेरे सिर पर मुकुटशालिनी टोपी हो । और (राजकीय) छत्र झूलता हो ।—

२०. तो भी नाम से हीन मैं सत्य को कहां प्राप्त कर सकता हूं । सत्य ही जीवन का सुदृढ़ अवलम्ब बनता है । ६ ।

२१. यदि मैं अपने आप को खान, बादशाह और राजा कहलाऊँ ।

२२. नौकर-चाकरों को अबे-तबे कहकर झिड़क सकूँ । तो भी यह झूठा दिखावा है ।

२३. गुरु के शब्द की प्राप्ती के बिना जीवन का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता है । ७ ।

२४. अहन्त्व, यह ममत्व, केवल गुरु के शब्द के बल से ही नष्ट होता है ।

२५. गुरु की शिक्षा से ही हृदय में बसता हुआ परमात्मा जाना जा सकता है ।

२६. (इस तत्व को समझकर) (नानक प्रभु के द्वार पर विनय करता है कि) हे हरि, मैं तुम्हारी शरण में रहना चाहता हूं । ८ । १० ।

(११)

१. सेवा एक न जानसि अवरे ।

२. परपंच बिआधि तिआगै कवरे ।

३. भाइ मिलै सचु साचै सचु रे ।

४. ऐसा राम भगतु जनु होई ।

५. हरिगुण गाइ मिलै मलु धोई । १ । रहाउ ।

६. उधै कवलु सगल संसारै ।
७. दुरमति अगनि जगत पर जारै ।
८. सो उबरै गुर सबदु बीचारै । २ ।
९. भ्रिग पतंगु कुंचरु अरु मीना ।
१०. मिरगु मरै महि अपुना कीना ।
११. त्रिसना राचि ततु नहीं बीना । ३ ।
१२. कामु चितै कामणि हितकारी ।
१३. क्रोधु बिनासै सगल विकारी ।
१४. पति मति खोवहि नामु विसारी । ४ ।
१५. पर घरि चीतु मनमुखि डोलाइ ।
१६. गलि जेवरी धंधै लपटाइ ।
१७. गुरमुखि छूटसि हरिगुण गाइ । ५ ।
१८. जिउ तनु बिधवा पर कउ देई ।
१९. कामि दामि चितु पर वसि सेई ।
२०. बिनु पिर त्रिपति न कबहूं होई । ६ ।
२१. पड़ि पड़ि पोथी सिम्रिति पाठा ।
२२. बेद पुराण पड़ै सुणि थाटा ।
२३. बिनु रस राते मनु बहु नाटा । ७ ।
२५. जिउ चात्रिक जल प्रेम पिआसा ।
२६. जिउ मीना जल माहि उलासा ।
२६. नानक हरि रसु पी त्रिपतासा । ८ । १ ।

पद-अर्थ

परपंच—पांच तत्वों का विस्तार, संसार; **बिआधि**—रोग; **कवरे**—कड़वे; **भाइ**—प्रेम से; **कवल**—हृदय रुपी रमल; **उबरै**—पार होता है; **पर**—पराया पुरुष; **दामि**—पैसे के लिए; **थाटा**—ठाट-बाट, बनावट, रचना; **नाटा**—नाटक, मन का मनोरंजन करने वाला; **चात्रिक**—पपीहा; **उलासा**—प्रसन्न होती है ।

टीका

१. परमात्मा का भक्त एक प्रभु की सेवा (भक्ति) करता है और किसी अन्य को उसके समान नहीं समझता।

२. वह संसार के रोग-जनक भोगों को कटु जानकर त्यागता है।

३. वह प्रेम-भक्ति द्वारा सत्य प्रभु से मिलता है, और उस सत्य प्रभु की कृपा से आप ही ईश्वर रूप हो जाता है । १ ।

४. प्रभु का भक्त, प्रभु का सेवक, ऐसा होता है।

५. वह प्रभु के गुण गाता हुआ उससे मिल जाता है और पाप का मल धो लेता है । रहाउ ।

६. सम्पूर्ण जगत् के जीवों का हृदय रूपी कमल विपरीत पड़ा हुआ है।

७. जीवों की बुद्धि दूषित है। यह अग्नि बन कर उनको अत्यंत जला रही है।

८. इस अग्नि से वह बचता है जो गुरु के शब्दों का विचार करता है । २ ।

९. जिस प्रकार भ्रमर, शलभ, हस्ती, मत्स्य और मृग एक एक विषय के अधीन होने के कारण अपना किया हुआ सहते हैं। —

१०. उसी प्रकार तृष्णा में फंसा जीव, —

११. (क्लेश भोगता है), वह आत्मतत्व को नहीं पहचानता । ३ ।

१२. नारी का अनुरागी ही काम का चिन्तन करता है (और नष्ट होता है)।

१३. क्रोध समस्त विकार-ग्रस्त जीवों को नष्ट करता है।

१४. (नाम को विस्मृत करके यह दशा होती है), नाम विस्मृत करके जीव प्रतिष्ठा और बुद्धि खो देते हैं। ४ ।

१५. मनोमुख पर-नारी के प्रेम में अपने हृदय को चंचल रखता है। —

१६. उसके गले में फांसी पड़ती है। क्योंकि, वह मिथ्या जंजालों में आसक्त होता है।

१७. परन्तु गुरु की शिक्षा से प्रभु के गुणों को स्तुति करके वह भी बच जाता है। ५ ।

१८. जिस प्रकार विधवा नारी अपना शरीर परकीय पुरुष के समर्पित

करती है। —

१९. काम के अधीन और धन के लोभ में मग्न होकर वह अपना मन भी पराए वश करती है। —

२०. परन्तु अपने पति के बिना उसकी तृप्ति नहीं होती उसी प्रकार जीव रूपी नारी प्रभु के बिना कभी सुख प्राप्त नहीं करती। ६।

२१. (विद्वान्) धार्मिक पुस्तकें और स्मृतियां पढ़ता है।

२२. वेद, पुराण और अन्य काव्य रचना पढ़ता सुनता है।

२३. परन्तु प्रभु के नामरस में रंगे बिना (ये समस्त केवल मनके) नाटक हैं और मन के विनोद हैं। ७।

२४. जिस प्रकार पपीहे को वर्षाजल से प्रेम है और उसे उसी जल की प्यास होती है। —

२५. जिस प्रकार मछली को जल में आनन्द मिलता है। —

२६. उसी प्रकार, (नानक) प्रभु का भक्त नाम-रस-पान करके तृप्त होता है। ८। ११।

(१२)

१. हठु करि मरै न लेखै पावै।
२. वेस करै बहु भसम लगावै।
३. नामु विसारि बहुरि पछुतावै। १।
४. तूं मनि हरि जीउ तूं मनि सुख।
५. नाम बिसारि सहहि जम दूख। १। रहाउ।
६. चोआ चंदन अगर कपूरि।
७. माइआ मगनु परम पदु दूरि।
८. नामि विसारिऐ सभु कूड़ो कूरि। २।
९. नेजे वाजे तखति सलामु।
१०. अधकी त्रिसना विआपै कामु।
११. विनु हरि जाचे भगति न नामु। ३।
१२. वादि अहंकारि नाही प्रभु मेला।
१३. मनु दे पावहि नामु सुहेला।

१४. दूजे भाइ अगिआनु दुहेला । ४ ।

१५. बिनु दम के सउदा नहीं हाट ।

१६. विनु बोहिथ सागर नहीं वाट ।

१७. बिनु गुर सेवे घाटे घाटि । ५ ।

१८. तिस कउ वाहु वाहु जि वाट दिखावे ।

१९. तिस कउ वाहु वाहु जि सबदु सुणावै ।

२०. तिस कउ वाहु वाहु जि मेलि मिलावै । ६ ।

२१. वाहु वाहु तिस कउ जिस का इहु जीउ ।

२२. गुर सबदी मथि अंम्रितु पीउ ।

२३. नाभ वड़ाई तुधु भाणै दीउ । ७ ।

२४. नाम बिना किउँ जीवा माइ ।

२५. अनदिनुजपतु रहउ तेरी सरणाइ ।

२६. नानक नामि रते पति पाइ । ८ । १२ ।

पद-अर्थ

चौआ—इत्र; **अगर**—सुगन्ध वाली एक लकड़ी, अगरु; **अधकी**—बढ़ती है; **वादि**—झगड़े में; **सुहेला**—सुखदायक; **दुहेला**—दुःखदायक; **दम के**—पेसों के; **वाहु**—धन्य है, प्रशंसा योग्य है; **मथि**—मथ कर।

टीका

१. यदि कोई मनुष्य हठ वश (मन पर नियंत्रण करके) (धूनी रमाना आदि) कर्म करता हुआ कष्ट सहन करता है तो ये कर्म उसके किसी लेखे में नहीं पड़ते ।

२. यदि वह मनुष्य अनेक वेश धारण करता है अथवा शरीर पर विभूति मलता है (इस का भी कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि, उसके पास नाम नहीं है) ।

३. नाम विस्मृत करके उसे अन्त में अवश्य पश्चाताप करना पड़ता है । १ ।

४. हे भाई, तू भगवान् को अपने मन में बसा और इस प्रकार मन में सुख प्राप्त कर (भगवान् सुखों का स्रोत है) ।

५. (यह तथ्य अविचाल्य समझ कि) नाम को त्यागकर तू यम का दुःख सहन करेगा। रहाउ।

६. यदि कोई अपने शरीर पर इत्र, चंदन, अगर, कपूर आदि सुगन्धि पदार्थ लगाने में मग्न है। —

७. अथवा किसी अन्य प्रकार के माया के भोगों में निमग्न है तो उस से भी मोक्ष पद दूर है।

८. नाम को त्यागकर उसके ये समस्त आडम्बर मिथ्या हैं। क्योंकि ये मिथ्या से ही उत्पन्न होते हैं। २।

९. यदि कोई सिंहासन पर विराजमान होता है, उसके सम्मुख नाना वाद्य बजते हैं, कुन्तधारी अंगरक्षक खड़े हैं और जन-समुदाय उसको प्रणाम करता है। —

१०. तो भी उसकी तृष्णा ही बढ़ती है और काम दबाव डालता है (फिर सुख कहाँ ?)।

११. (नाम और भक्ति में सुख है) परंतु प्रभु-प्राप्ति की तीव्र इच्छा के बिना, न भक्ति मिलती है और न नाम (माया सम्बन्धी पदार्थों का मोह त्यागने से वह इच्छा उत्पन्न होती है)। ३।

१२. (विद्या के बल से) सिद्धान्तों के विवादों में पड़कर अहंकार ही बढ़ता है, प्रभु–मिलाप नहीं होता।

१३. मन प्रभु को अर्पित करने से सुखदायक नाम मिलता है।

१४. द्वैत-भाव में पड़े रहने से तो दुःखदायक अज्ञान ही बढ़ता है। ४।

१५. जिस प्रकार द्रव्य के बिना दुकान के लिए वस्तुएं नहीं आ सकती।—

१६. जिस प्रकार पोत के बिना समुद्र की यात्रा नहीं हो सकती। —

१७. उसी प्रकार गुरु-सेवा के बिना जीवन यथावत् रीति से नहीं चलता प्रत्युत हानि ही हानि होती है। ५।

१८. हे भाई, उस गुरु को 'धन्य, धन्य' कह जो जीवन-मार्ग दिखा देता हैं।

१९. उस गुरु को धन्य, धन्य' कह जो शब्द सुनाता है। —

२०. और जो प्रभु से मेल करा देता है। ६।

२१. (पहले) उस परमात्मा को 'धन्य,' धन्य कह जिसने जीवन दिया है।

२२. (फिर उस गुरु को जिसके) गुरु-शब्द द्वारा नाम को मथ कर तू

अमृत-पान कर ले ।

२३. प्रभु ने तुझे नाम की महत्ता अपनी आज्ञा के अनुसार दी है । ७ ।

२४. हे मन, नाम के बिना यथार्थ जीवन कैसे व्यतीत किया जा सकता है ?

२५. हे प्रभु, मैं तुम्हारी शरण में पड़कर दिन-रात तुम्हारा नाम जपता हूँ ।

२६. (नानक) नाम में अनुरक्त हुए जीवों को ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ।

(१३)

१. हउमै करत भेखी नहीं जानिआ ।

२. गुरमुखि भगति विरले मनु मानिआ । १ ।

३. हउ हउ करत नहीं सचु पाईऐ ।

४. हउमै जाइ परम पदु पाईऐ । १ । रहाउ ।

५. हउमै करि राजे बहु धावहि ।

६. हउमै खपहि जनमि मर आवहि । २ ।

७. हउमै निवरै गुर सबदु वीचारै ।

८. चंचल मति तिआगै पंच संघारै । ३ ।

९. अंतरि साचु सहज घरि आवहि ।

१०. राजनु जाणि परम गति पावहि । ४ ।

११. सचु करणी गुरु भरमु चुकावै ।

१२. निरभउ कै घरि ताड़ी लावै । ५ ।

१३. हउ हउ करि मरणा किआ पावै ।

१४. पूरा गुरु भेटे सों झगरू चुकावै । ६ ।

१५. जेती है तेती किहु नाही ।

१६. गुरमुखि गिआन भेटि गुण गाही । ७ ।

१७. हउमै बंधन बंधि भवावै ।

१७. नानक राम भगति सुखु पावै । ८ । १३ ।

पद-अर्थ

भेखी—धार्मिक वेष धारण करने वाला; **निवरै**– दूर होवै; **पंच**—कामादिक पांच विकार; **सहज**—ज्ञान और शान्ति से पूर्ण अवस्था; **निरभउ**—परमात्मा ।

टीका

१. धार्मिक वेष धारण करके भी अहंकार की बातें करनी। ('मेरा धर्म अच्छा है, मैं मुक्त होऊँगा, मेरे धर्म के अतिरिक्त सभी धर्म नीचे हैं' आदि आदि) इस प्रकार कभी किसी ने परमात्मा को नही पहचाना।

२. परन्तु गुरु-शिक्षा से भक्ति में लग कर किसी विरले का मन विश्वस्त होता है। १। (शेष सब धर्मात्मा कहलाते हुए भी अहंकार का खेल खेलते रहते हैं)।

३. अहंभाव में कभी भी सत्य की प्राप्ति नहीं होती।

४. अहंभाव दूर करने से ही मनुष्य को परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। १। रहाउ।

५. राजा भी अहंभाव के कारण भटकते फिरते हैं।

६. वे अहंभाव में नष्ट हो जाते हैं और जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं। २।

७. अहं-भाव उसका मिटता है जो गुरु के शब्द का विचार करता है।—

८. तुच्छ बुद्धि को त्यागता है और काम, क्रोध आदि को मारता है। ३।

९. जिनके हृदय में सत्य प्रभु का निवास है, वे ज्ञान और शान्ति की अवस्था में पहुंचते हैं। —

१०. राजा अर्थात् प्रभु को जानकर वे उच्च आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त करते हैं। ४।

११. जिस का भ्रम गुरु नष्ट करता है, वह सत्य कर्म करता है।

१२. और निर्भय प्रभु से सुरति जोड़ता हैं। ५।

१३. अहंभाव में आत्मिक मृत्यु हो जाती है, अन्य क्या मिलता है?

१४. यदि पूर्ण गुरु मिल जाए तो वह अहंभाव के झगड़े-झंझट दूर करता है। ६।

१५. जो कुछ अहंभाव का खेल दिखाई दे रहा है, यह कुछ भी नहीं है।

१६. परन्तु जिनको गुरु से ज्ञान प्राप्त होता है वे प्रभु के गुण गाते हैं।

१७. अहंभाव जीवों को जन्म-मरण के चक्र में बांध कर घुमाता है।

१८. परन्तु (नानक) जो राम की भक्ति करना है उसे सुख प्राप्त होता है। ८।१३।

१. प्रथमे ब्रहमा कालै घरि आइआ ।
२. ब्रहम कमलु पइआलि न पाइआ ।
३. आगिआ नहीं लीनी भरमि भुलाइआ । १ ।
४. जो उपजै सो कालि संधारिआ ।
५. हम हरि राखे गुरसबदु बीचारिआ । १ । रहाउ ।
६. माइआ मोहे देवी सभि देवा ।
७. कालु न छोडै बिनु गुर की सेवा ।
८. ओहु अबिनासी अलख अभेवा । २ ।
९. सुलतान खान बादिशाह नहीं रहना ।
१०. नामहु भूलै जम का दुखु सहना ।
११. मैं धर नामु जिउ राखहु रहना । ३ ।
१२. चउधरी राजे नहीं किसै मुकामु ।
१३. साह मरहि संचहि माइआ दाम ।
१४. मैं धनु दीजै हरि अंम्रित नामु । ४ ।
१५. रयति महर मुकदम सिकदारै ।
१६. निहचलु कोइ न दिसै संसारै ।
१७. अफरिउ कालु कूडु सिरि मारै । ५ ।
१८. निहचलु एकु सचा सचु सोई ।
१९. जिनि करि साजी तिनहि सभ गोई ।
२०. उहु गुरमुखि जापै तां पति होई । ६ ।
२१. काजी सेख भेख फकीरा ।
२२. वडे कहावहि हउमै तनि पीरा ।
२३. कालु न छोडै बिनु सतिगुर की धीरा । ७।
२४. कालु जालु जिहवा अरु नैणी ।
२५. कानी कालु सुणै बिखु बैणी ।
२६. बिनु सबदै मूठे दिनु रैणी । ८ ।
२७. हिरदै साचु वसै हरिनाइ ।

२८. **कालु न जोहि सकै गुण गाइ ।**

२९. **नानक गुरमुखि सबदि समाइ । ६ । १४ ।**

पद-अर्थ

प्रथमे—पहले; **कालै**—मृत्युवश; **वहम कमलु पइआलि न पाइआ**—विष्णु के कमल को ब्रह्मा ने पाताल तक जाकर भी प्राप्त न किया; **संधारिया**—मारा; **मुकामु**—स्थिर निवास-स्थान; **साहु**—शाह, बादशाह; **महर**—मुखिया; **मुकदम**—चौधरी; **सिकदारै**—सरदार; **अफरिउ**—न लौटने वाला, अप्रतिहतगतिक; **गोई**—मिटाई; **पीरा**—पीड़ा; **धीरा**—धैर्य; **वैणी**—वचन; **मूठे**—लूटे जाते हैं; **जोहि**—देखना ।

टीका

१. (अन्य का क्या कहना ?) सबसे पहले ब्रह्मा ही मृत्यु को प्राप्त हुआ ।

२. ब्रह्मा कमल की (जिससे वह उत्पन्न हुआ था,) दीर्घता खोजता हुआ पाताल में जा पहुंचा, परन्तु उसे कमल का अन्त प्राप्त न हुआ ।

३. उसने गुरु की आज्ञा न ली कि अन्त पाया भी जा सकता है अथवा नहीं, और भ्रम में भटकता फिरा । १ ।

४. जो भी इस जगत् में उत्पन्न हुआ है मृत्यु ने उसका अन्त अवश्य कर दिया है ।

५. परन्तु हमें परमात्मा ने बचा लिया है । क्योंकि, हमने उसकी कृप्या से गुरु के शब्द को विचार लिया है । १ । रहाउ ।

६. देवताओं और देवियों को भी माया ने फंसा लिया है (अतः वे मृत्यु के वश में हैं; उनका जन्म-मरण समाप्त नहीं होता) ।

७. गुरु की सेवा में लग्न हुए बिना कोई भी काल से बच नहीं सकता; प्रत्येक प्राणी जन्म-मरण के आवर्त्त में घूमता रहता है ।

८. नित्य-अविचल (काल से रहित) केवल परमात्मा है जिसको वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता और जिसका रहस्य नहीं पाया जा सकता । २ ।

९. (वैसे तो) सुलतान, खान, बादशाह, कोई भी संसार में अमर नहीं । —

१०. परन्तु जो नाम से हीन हैं उन्हें यम दूतों के दिए दु:ख सहने पड़ते है (वे जन्मे मरते रहते हैं)।

११. (अतः) मैंने नाम को ही आश्रय बनाया है। हे प्रभु, जिस प्रकार तुम रखो उसी प्रकार मैं रहना चाहता हूं। ३।

१२. क्या चौधरी और क्या राजा, संसार में किसी का भी आवास नित्य स्थायी नहीं है।

१३. वे सेठ भी जो धन-संचय करते रहते हैं; मर जाते हैं।

१४. हे प्रभु, तुम मुझे अमर करने वाला नाम-धन प्रदान करो। ४।

१५. (वैसे तो) प्रजा, मुखिया, चौधरी, सरदार, —

१६. कोई भी इस संसार में अमर दिखाई नहीं देता।—

१७. परन्तु मिथ्या पदार्थों के संग्रह में लगे जीवों के सिर पर अटल काल सदा प्रहार करता रहता है (मिथ्या के कारण वे जन्म लेते और मरते रहते हैं)। ५।

१८. नित्यस्थायी केवल एक सत्य परमात्मा है।

१९. जिस परमात्मा ने सृष्टि बनाई है वही इसे नष्ट कर देता है।

२०. जिस गुरु की शिक्षा से वह परमात्मा दिखाई दे जाए, उसे उसकी सभा में प्रतिष्ठा मिलती है। ६।

२१. क़ाज़ी, शेख़, वेशधारी फ़कीर (कहलाने वाले) —

२२. और महान् कहलाने वाले अन्य, सभी के अन्दर अहंभाव की पीडा है। (अहंभाव से ही वे जन्मते और मरते हैं)।

२३. जब तक सत्य गुरु का अवलम्ब नहीं लिया जाता, तब तक काल किसी को नहीं छोड़ेगा। ७।

२४. जिह्वा और नेत्र (के कारण) मृत्यु रूपी जाल (तना हुआ है। क्योंकि, नेत्र दूसरे का धन, दूसरे का रूप देखते हैं,और जिहवा दुर्वचन बोलती है)।

२५. कानों के कारण मृत्यु रूपी जाल फैला हुआ है। क्योंकि, वे अशुभ वचन सुनते हैं।

२६. गुरु-शब्द की उपार्जना के बिना जीव (इन इन्द्रियों द्वारा) प्रवंचित किए जा रहे हैं और काल (जन्म-मरण) के वश में पड़ रहे हैं। ८।

२७. जिस जीव के हृदय में नाम के बल से सत्य प्रभु दृढ़तया स्थित रहता है, —

२८. और जो प्रभु के गुण गाता रहता है, उसकी ओर काल देख नहीं सकता (क्योंकि वह जन्म-मरण से मुक्त होता है) । —

२९. (नानक) वह मनुष्य गुरु के शब्द-ज्ञान की उपार्जन से प्रभु में लीन हो जाता है । ९ । ४ ।

(१६)

१. बोलहि साचु मिथिआ नहीं राई ।
२. चालहि गुरमुखि हुकमि रजाई ।
३. रहहि अतीत सचे सरनाई । १ ।
४. सचधरि बैसे कालु न जोहै ।
५. मनमुख कउ आवत जावत दुखु मोहै । १ । रहाउ ।
६. अपिउ पीअउ अकथु कथि रहिऐ ।
७. निज घरि बैसि सहज घरु लहीऐ ।
८. हरि रसि माते इहु सुखु कहीऐ । २ ।
९. गुरमति चाल निहचल नहीं डोलै ।
१०. गुरमति साचि सहजि हरि बोलै ।
११. पीवै अंम्रितु ततु विरोलै । ३ ।
१२. सतिगुरु देखिआ दीखिआ लीनी ।
१३. मनु तनु अरपिओ अंतरगति कीनी ।
१४. गति मिति पाई आतमु चीनी । ४ ।
१५. भोजनु नामु निरंजन सारु ।
१६. परम हंसु सचु जोति अपार ।
१७. जह देखउ तह एकंकारु । ५ ।
१८. रहै निरालमु एका सचु करणी ।
१९. परमपदु पाइआ सेवा गुरचरणी ।
२०. मन ते मनु मानिआ चूकीअहं भ्रमणी । ६ ।
२१. इनि बिधि कउणु नहीं तारिआ ।

२२. हरि जसि संत भगत निसतारिश्रा ।
२३. प्रभ पाए हम अवरु न भारिआ । ७ ।
२४. साच महलि गुरि अलखु लखाइश्रा ।
२५. निहचल महलु नहीं छाइश्रा माइश्रा ।
२६. साचि संतोखे भरमु चुकाइआ । ८ ।
२७. जिन कै मनि वसिश्रा सचु सोइ ।
२८. तिन की संगति गुरमुखि होई ।
२९. नानक साचि नामि मलु खोई । ९ । १५ ।

पद-अर्थ

राई—राई भर, स्वल्प; **अतीत**—आलिप्त; **अपिउ**—अमृत; **चाल**—आचरण; **ततु**—आत्म तत्व; **अंतरगति**—भीतर बाहर; **गति मिति**—हरि की गति (उच्च अवस्था) का अनुमान; **परम हंस**—गुरुमुख; **निरालमु**—निर्लेप; **चूकी अहं भ्रमणी**—अहंकार वाली दुविधा दूर हो गई; **भारिश्रा**—पार उतरता; **छाइआ**—छाया, प्रतिबिम्ब ।

टीका

१. (गुरुमुख लोग) सदा ही सत्य बोलते हैं, उनके वचनों में अणुमात्र भी मिथ्या अंश नहीं होता ।

१. वे गुरु की शिक्षा से 'रजाई' (रजावाले प्रभु, स्वतन्त्रच्छाशाली भगवान्) के आदेश के अनुसार चलते हैं ।

३. वे माया से ऊपर होते हैं और सत्य प्रभु की शरण में रहते हैं । १ ।

४. जो (गुरु मुख) सत्य प्रभु में लीन रहता है, उसे मृत्यु नहीं मार सकती (वह जन्म-मरण से रहित हो जाता है ।

५. (दूसरी ओर) मनोमुख को मोह का दुःख है) अत; उसका जन्म-मरण बना रहता है । १ । रहाउ ।

६. (हे भाइयो, आओ) अमृत-नाम पिएं और अकथनीय प्रभु का कथन करते रहें ।—

७. अपने आत्मस्वरूप में स्थित होकर सहजावस्था को प्राप्त करें ।

८. इस प्रकार हरि रस में रंगे हुए हम इस आत्मसुख को बात दूसरों को सुनाएं । २ ।

९. गुरु की शिक्षा के अनुसार चलने वाला गुरुमुख अपने मार्ग पर दृढ़ रहता है और माया का प्रभाव पड़ने पर भी विचलित नहीं होता है ।

१०. वह गुरु की शिक्षा के बल से सहजावस्था में पहुँचकर सत्य प्रभु में लीन रहता है और 'हरि, हरि' बोलता है ।

११. वह नाम का अमृत पीता है और आत्मत्व को मथता है । ३ ।

१२. जिस मनुष्य ने सद्गुरु के दर्शन किए हैं और उसकी शिक्षा ग्रहण कर ली है, —

१३. जिसने मन—तन गुरु के अर्पण कर दिया है और गुरु की शिक्षा को मन के भीतर बसा लिया है, —

१४. उसने अपने को पहिचानकर हरि की गति (उच्च स्थिति) का अनुमान कर लिया है । ४ ।

१५. (गुरुमुख के लिए) निरंजन (माया से अप्रभावित) परमात्मा का नाम ही श्रेष्ठ भोजन है ।

१६. उस परम हंस गुरमुख पुरुष को सत्य और अपार हरि की ज्योति दिखाई देती है ।

१७. फिर प्रत्येक स्थान पर उसे परमात्मा ही व्याप्त दिखाई देता है । ५ ।

१८. वह माया से अलिप्त रहता है और एक सत्य ही उसका धर्म है ।

१९. गुरु के चरणों के स्पर्श से, उसके बतलाए मार्ग पर चलकर, वह मोक्षपद प्राप्त करता है ।

२०. उसका मन अपने मन के प्रति विश्वस्त हो जाता है और उसकी अहंकार जनित द्विचितता समाप्त हो जाती है । ६ ।

२१. स्वरूप की सूझ-बूझ वाले इस ढंग से कौन—कौन पार नहीं उतरा (सब उतरे हैं) ?

२२. हरि-यश ने सन्त और भक्त पार उतारे हैं ।

२३. उन सन्त भक्तों ने हरि को प्राप्त कर लिया है । हरि-यश के बल से उन्हें पार होते देखकर हमने भी यह मार्ग ग्रहण किया है ।

अब हम अन्य मार्ग को नहीं खोजते । ७ ।

२४. गुरु ने जिज्ञासुओं को सत्य महल में पहुंचा कर उन्हें अलक्ष्य (समझ में न आने वाले) प्रभु के दर्शन करा दिए हैं ।

२५. यह महल (निवास-स्थान) स्थिर है और इस पर माया की छाया भी नहीं पड़ती ।

२६. वे सत्य प्रभु से संयुक्त होकर सन्तोषी हो गए हैं । उनका भटकना समाप्त हो जाता है । ८ ।

२७. जिनके हृदय में सत्यस्वरूप प्रभु टिकता है, —

२८. उनकी संगति गुरु द्वारा (गुरु की कृपा से) प्राप्त होती है ।

२९. (नानक) उस संगति में सत्य नाम से अभिन्नता प्राप्त हो जाने से पापों का मल कट जाता है । ९ । १५ ।

(१६)

१. रामि नामि चितु रापै जा का ।
२. उपजंपि दरसनु कीजै ता का । १ ।
३. राम न जपहु अभागु तुमारा ।
४. जुगि जुगि दाता प्रभु रामु हमारा । १ । रहाउ ।
५. गुरमति रामु जपै जनु पूरा ।
६. तितु घट अनहत बाजे तूरा । २ ।
७. जो जन राम भगति हरि पिआरि ।
८. से प्रभि राखे किरपा धारि । ३ ।
९. जिन कै हिरदै हरि हरि सोई ।
१०. तिन का दरसु परसि सुखु होई । ४ ।
११. सरब जीआ महि एको रवै ।
१२. मनमुखि अहंकारी फिरि जूनी भवै ।
१३. सो बूझै जो सतगुरु पाए । ५ ।
१४. हउमै मारे गुरसबदे पाए । ६ ।
१५. अरध उरध की संधि किउं जानै ।
१६. गुरमुखि संधि मिलै मनु मानै । ७ ।

१७. **हम पापी निरगुण कउ गुणु करीऐ ।**

१८. **प्रभु होइ दइग्रालु नानक जन तरीऐ । ८ । १६ ।**

पद-ग्रर्थ

रापै—रंगा हैं; **उपजंपि**—दिन निकलने पर; **तूरा**—तूर्य, बाजा; **परसि**—स्पर्श करके; **अरघ उरध**—नीचे ऊपर (आत्मा और परमात्मा); **संधि**—मिलाप ।

टीका

१. जिस मनुष्य का मन प्रभु के नाम में रंगा हुआ हैं,

२. उसके दर्शन दिन निकलते ही करने चाहिएँ । १ ।

३. हे भाई, यदि आप नाम नहीं जपते तो यह आपका दुर्भाग्य है ।

४. हमारा प्रिय राम युग-युगों से (सदा ही) हमें देन देता आ रहा है । १ । रहाउ ।

५. जो मनुष्य गुरु की शिक्षा से नाम जपता है, वह पूर्ण हो जाता है ।

६. उसके हृदय में ऐसा आध्यात्मिक आनन्द उत्पन्न होता है कि मानो समवेत स्वर में बाजे बजते हैं । २ ।

७. जो जीव प्रभु-भक्ति और प्रभु-प्रेम में रहते हैं,—

८. उन्हें प्रभु कृपा करके (माया आदि के प्रभाव से) बचा लेता है । ३ ।

९. जिनके हृदय में उस प्रभु का वास है,—

१०. उनका दर्शन करके ग्रौर उसकी चरण-धूलि स्पर्श करके सुख होता है । ४ ।

११. समस्त जीवों में एक प्रभु व्याप्त है ।—

१२. परन्तु मनोमुख पुरुष (यह नहीं समझता) और जन्म-मरण के चक्र में दुःखी होता रहता है । ५ ।

१३. (उस सर्व-व्यापक का) ज्ञान उसे हो पाता है जिसे गुरु मिलता है ।—

१४. फिर वह अहंभाव को मारता है और गुरु के शब्द के बल से प्रभु को पा लेता है । ६ ।

१५. नीचे और ऊपर, ग्रर्थात् जीव और प्रभु की सन्धि (संयोगावस्था) की विधि का पता किस प्रकार लगे ?

१६. गुरु संयोग कराता है और फिर मन (प्रभु में) विश्वस्त हो जाता है। ७।

१७. हे प्रभु, हम पापी हैं; हम निर्गुणों को गुणों का रूप (गुणवान्) कर दो।

१८. (नानक) यदि प्रभु कृपा करे तो (नाम के बल से) जीव पार हो जाता है। ८। १६।

(१७)

१. **जिउ गाई कउ गोइली राखहि करि सारा।**
२. **अहिनिसि पालहि राखि लेहि आतम सुखु धारा। १।**
३. **इत उत राखहु दीन दइआला।**
४. **तउ सरणागति नदरि निहाला। १। रहाउ।**
५. **जह देखउ तह रवि रहे रखु राखनहारा।**
६. **तूँ दाता भुगता तूँ है तूँ प्राण अधारा। २।**
७. **किरतु पइआ अध ऊरधी विनु गिआन बीचारा।**
८. **बिनु उपमा जगदीस की बिनसै न अंधिआरा। ३।**
९. **जगु बिनसत हम देखिआ लोभै अहंकारा।**
१०. **गुर सेवा प्रभु पाइआ सचु मुकति दुआरा। ४।**
११. **निज घरि महलु अपार को अपरंपरु सोई।**
१२. **बिनु सबदै थिरु को नहीं बूझै सुखु होई। ५।**
१३. **किआ लै आइआ ले जाइ किआ फासहि जम जाला।**
१४. **डोलु बधा कसि जेवरी आकासि पताला। ६।**
१५. **गुरमति नामु न वीसरै सहजे पति पाईऐ।**
१६. **अंतरि सबदु निधानु है मिलि आपु गवाईऐ। ७।**
१७. **नदरि करे प्रभु आपणी गुण अंकि समावै।**
१८. **नानक मेलु न चूकई लाहा सचु पावै। ८। १। १७।**

पद-अर्थ

गोइली—गोपाल; **सारा**—संभाल; **इतउत**—इधर-उधर, सर्वत्र; **भुगता**—भोक्ता; **प्राण अधारा**—प्राणों का आधार; **अध ऊरधी**—नीचे

ऊपर. नरक स्वर्ग; **उपमा**—गुण स्तुति; **महलु**—आश्रय; **अपरंपरु**—अपार **निधान**—भाण्डागार; **अंकि**—गोदी में; **मेल**—मिलाप।

टीका

१. जिस प्रकार गोपाल गौओं की देखभाल ध्यान से करता है, (हे प्रभु, उसी प्रकार तुम करते हो)।

२. तुम दिन-रात हमारा पालन करते हो, हमारी रक्षा करते हो और हमें निरन्तर आत्म-सुख प्रदान करते हो। १।

३. हे दीन दयालु, मेरी सर्वत्र रक्षा करो।

४. मैं तुम्हारी शरण में आया हूं। तुम मुझे कृपा-दृष्टि से देखो। १। रहाउ।

५. हे प्रभु, मैं जिधर देखता हूं, तुम व्याप्त दिखाई देते हो, और तुम्हीं सब के रक्षक हो।

६. तुम ही दानों के दाता हो; तुम ही जीवों में प्रविष्ठा होकर भोक्ता हो। तुम ही सब के जीवन का अवलम्ब हो। २।

७. ज्ञान और विचार के विना जीब अपने किए कर्मों के अनुसार नरक-स्वर्ग में जाते हैं।

८. प्रभु की गुण-स्तुति के बिना अज्ञान नष्ट नहीं होता। ३।

९. मैं देखता हूं कि जगत् लोभ और अहंकार के कारण नष्ट हो रहा है।

१०. गुरु की सेवा से मुझे सत्यस्वरूप प्रभु मिला है और (मैंने) मुक्ति का मार्ग प्राप्त किया है। ४।

११. अनन्त प्रभु का वास आत्मस्वरूप में है। वह परात्पर है।

१२. कोई भी जीव गुरु-शब्द के विना उस स्वरूम में स्थिरता नहीं पाता। जो शब्द को जानता है, उसे सुख मिलता है। ५।

१३. हे जीव, तू कुछ लेकर संसार में नहीं आया है और न कुछ लेकर यहां से जाएगा। व्यर्थ ही माया-मोह में फंसकर यमराज के पाश में पड़ता है।

१४. जिस प्रकार रस्सी में बंध कर डोल कुएं में ऊपर-नीचे जाता रहता है, उसी प्रकार तू भी नरक स्वर्ग की यात्रा करता रहता है।

१५. जिसे गुरु के उपदेश के कारण नाम नहीं भूलता, वह स्वाभाविकतया ही प्रभु के द्वार पर प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। —

१६. उसके भीतर गुरु-शब्द का कोष होता है और वह गुरु से मिलकर अहंभाव को नष्ट कर लेता है। ७।

१७. जिस जीव पर प्रभु कृपा करता है वह उसके गुण प्राप्त करके उसमें ही लीन हो जाता है।

१८. (नानक) प्रभु के साथ हुआ उस जीव का संयोग कभी छिन्न नहीं होता, और सत्य की प्राप्ति उसका लाभ है। ८। १। ७।

(१८)

१. गुर परसादी बूझि ले तउ होइ निबेरा।
२. घरि घरि नामु निरंजना सो ठाकुरु मेरा। १।
३. बिनु गुर सबद न छूटीऐ देखहु वीचारा।
४. जे लख करम कमावही बिनु गुर अंधिआरा। १। रहाउ।
५. अंधे अकली बाहरे किया तिन सिउ कहीऐ।
६. बिनुगुर पंथु न सूझई कितु बिधि निरबहीऐ। २।
७. खोटे कउ खरा कहै खरे सार न जाणै।
८. अंधे का नाउ पारखू कली काल विडाणै। ३।
९. सूते कउ जागतु कहै जागत कउ सुता।
१०. जीवत कउ मूआ कहै मूए नहीं रोता। ४।
११. आवत कउ जाता कहै जाते कउ आइआ।
१२. पर की कउ अपुनी कहै अपुनो नहीं भाइआ। ५।
१३. मीठे कउ कउड़ा कहै कड़ूए कउ मीठा।
१४. राते की निंदा करहि ऐसा कलि महि डीठा। ६।
१५. चेरी की सेवा करहि ठाकुरु नहीं दीसै।
१६. पोखरु नीर विरोलीऐ माखनु नहीं रीसै। ७।
१७. इसु पद जो अरथाइ लेइ सो गुरू हमारा।
१८. नानक चीनै आप कउ सो अपर अपारा। ८।
१९. सभु आपे आपि वरतदा आपे भरमाइआ।
२०. गुर किरपा ते बूझीऐ सभु ब्रहमु समाइआ। ९। २। १८।

पद-अर्थ

होइ निबेरा—निपटारा हो जाए; **घरि**—हृदय में; **अकली बाहरे**—बुद्धिहीन; **पंथु**—मार्ग; **निरवहीऐ**—निर्वाह हो; **विडाणै**—आश्चर्य; **राते**—प्रभु में अनुरक्त; **चेरी**—अर्थात् माया; **पोखरु**—पोखर, जलाशय **रोसै**—निकलता; **अरथाइ**—अर्थ कहे; **चीनै**—समझे।

टीका

१. हे भाई, जो गुरु की कृपा से तू यह जान ले तो तेरा निपटारा हो जाए (बन्धन से तेरी मुक्ति हो जाए)।

२. माया से अलिप्त प्रभु का नाम प्रत्येक हृदय में स्थित है (प्रभु प्रत्येक हृदय में रहता है), वही प्रभु मेरा स्वामी है। १।

३. गुरु शब्द के बिना छुटकारा नहीं होता, यह बात विचारकर देख लो।

४. चाहे अनेक धर्म-कर्म किए जायँ, परन्तु गुरु के बिना अज्ञान बना रहता है। १। रहाउ।

५. परन्तु जिन जीवों को माया-मोह ने अन्धा कर दिया है, उन्हें समझाने का कोई लाभ नहीं।

६. गुरु के बिना उन्हें जीवन मार्ग नहीं मिल सकता। किसी सत्य-मार्ग के पथिक का उनके साथ निर्वाह कैसे हो सकता है। (भक्तों और सांसारिकों में कभी मेल नहीं हुआ)। २।

७. (निर्वाह हो कैसे ? जब) माया-मोह में अन्धा हुआ मनुष्य उस धन को वास्तविक धन कहता है जो प्रभु की सभा में काम नहीं आता, और उस नाम-धन का आदर नहीं करता जो वास्तविक धन है।

८. परन्तु कलियुग में यह आश्चर्यजनक व्यवहार है कि यहां जगत् धनवान् को बुद्धिमान् मानता है। ३।

९. जो माया की मोह निद्रा में सो रहा है जगत् उसे जागता हुआ (चतुर, सचेत) कहता है और जो आध्यात्मिकतया जाग्रत है उसे सुप्त समझता है।

१०. आध्यात्मिक जीवन यापन करने वाले को लोग मृत समझते हैं और जो माया-मोह में सुप्त हैं उस पर नहीं रोते (उसकी दशा पर दुःख प्रकट नहीं करते)। ४।

११. जो प्रभु की ओर आता है सांसारिक लोग उसे 'गया गुज़रा' कहते हैं और जो परमात्मा से विमुख है, उसे सफल, घर आया, समझते हैं।

१२. दूसरों की हो जाने वाली माया को सांसारिक लोग अपनी समझते हैं परन्तु जो परमात्मा अपना है उसे पराया समझते हैं। ५।

१३. लोग मधुर राम रस को कटु समझते हैं, और विषय-रस को मधुर समझते हैं जिसका परिणाम अत्यन्त कटु है।

१४. जो परमात्मा में अनुरक्त है, उसकी निन्दा करते हैं, यह कलियुग का आश्चर्यमय दृष्टिकोण है, जो हमने देखा है। ६।

१५. जो माया प्रभु की दासी है, सांसारिक उसकी सेवा करते हैं और उसके स्वामी प्रभु को नही पहिचानते (सभी विचार दुर्व्यवस्थित हैं। जगत् पानी मथ रहा है)।

१६. (यद्यपि) पोखर का पानी मथने से मक्खन नहीं निकलता। ७।

१७. (ऊपर हमने उच्च आध्यात्मिक दशा के निर्णय के लिए एक उलझन प्रस्तुत की है) जो मनुष्य इस दशा को समझ गया है, वह मेरा गुरु है। मैं उसके सम्मुख मस्तक नत करता हूं।

१८. (नानक वह दशा यह है कि) जो मनुष्य वास्तविक आत्मस्वरूप को समझ लेता है, वह अनन्त प्रभु के समान अपरम्पार हो जाता है। ८।

१९. परन्तु समस्त जीवों में प्रभु स्वयं ही व्याप्त हो रहा है और स्वयं ही (माया की रचना करके) जीवों को कुमार्गगामी बनाता है।

२०. गुरु की कृपा से समझा जाता है कि प्रभु स्वयं सर्वत्र व्याप्त है। २। १८।

गउड़ी छंत (गोड़ी राग ।। छन्द)

(१)

१. **मुंध रैणि दुहेलड़ीआ जीउ नींद न आवै।**
२. **साधन दुबलीया जीउ पिर कै हावै।**
३. **धन थीई दुबलि कंत हावै केव नैणी देखए।**
४. **सीगार मिठ रस भोग भोजन सभ झूठु कितै न लेखए।**
५. **मै मत जोबनि गरबि गाली दुधा थणी न आवए।**

६. नानक साधन मिलै मिलाई बिनु पिर नीद न आवए । १ ।
७. मुंध निमानड़ीआ जीउ बिनु धनी पिश्रारे ।
८. किउ सुखु पावैगी बिनु उरधारे ।
९. नाह बिनु घर वासु नाही पुछहु सखी सहेलीआ ।
१०. बिनु नाम प्रीति पिश्रारु नाही वसहि साचि सुहेलीश्रा ।
११. सचु मनि सजन संतोखि मेला गुरमति सहु जाणिश्रा ।
१२. नानक नामु न छोडै साधन नामि सहजि समाणीश्रा । २ ।
१३. मिलु सखी सहेलड़ीहो हम पिरु रावेहा ।
१४. गुर पुछि लिखउगी जीउ सबदि सुनेहा ।
१५. सबदु साचा गुरि दिखाइश्रा मनमुखी पछुताणीश्रा ।
१६. निकसि जातउ रहै श्रसथिरु जामि सचु पछाणिश्रा ।
१७. साच की मति सदा नउतन सबदि नेहु नवेलश्रो ।
१८. नानक नदरी सहजि साचा मिलहु सखी सहेलीहो । ३ ।
१९. मेरी इछ पुनी जीउ हम घरि साजनु श्राइश्रा ।
२०. मिलि वरु नारी मंगलु गाइश्रा ।
२१. गुण गाइ मंगलु प्रेमि रहसी मुंध मनि श्रोमाइश्रो ।
२२. साजन रहंसे दुसट विश्रापे साचु जपि सचु लाहओ ।
२३. कर जोड़ि साधन करै बिनती रैणि दिनु रसि भिनीआ ।
२४. नानक पिरु धन करहि रलीश्रा इछ मेरी पुंनीश्रा । ४ । १ ।

पद-श्रर्थ

मुंध—नारी; **बुहेलड़ीआ**—दुःख से पूर्ण; **साधन**—अर्थात् स्त्री; **दुबलीश्रा**—दुर्बल नारी; **थीई**—हो गई; **मै मत**—मदिरा से मत्त; **दुधा थणी न आवए**—दुहा हुआ दूध स्तनों में पुनः नहीं मिलता; **धनी**—स्वामी, प्रभु; **बिनु उरधारे**—हृदय में ईश्वर नाम टिकाए बिना; **नाह**—नाथ,प्रियतम; **सुहेलीश्रा**—सुखिता; **संतोखि**—संतोष द्वारा, प्रभु कृपा से; **रावेहा**—स्मरण किया जाए; **निकस**—निकल; **नउतन**—नूतन; **नवेलश्रो**—नवल; **मंगलु**—हर्ष का गीत; **श्रोमाहश्रो**—उत्साह; **रहंसे**—खिल गए; **विश्रापे**—विपत्ति में पड़ गए; **रलीश्रा**—रंगरलियां, श्रानन्द; **पुंनीश्रा**—पूर्ण हुई।

टीका

१. (प्रभु से वियुक्त) जीव रूपी नारी की जीवन-रात्रि दुःखपूर्ण रहती है। प्रियतम के वियोग में उसे निद्रा नहीं आती।

२. वह नारी वियोग के निःश्वासों में कृश होती जा रही है।

३. इस प्रकार प्रियतम के वियोग में क्षीणकाया हुई नारी की यह इच्छा है कि किसी प्रकार स्वामी के दर्शन हों।

४. प्रियतम के बिना उसे शृंगार, मधुर भोजन, भोग और आनन्द मिथ्या प्रतीत होते हैं। ये सब उसके किसी काम के नहीं होते।

५. जिस जीव रूपी नारी को यौवन के अहंकार के मद ने इस प्रकार समाप्त कर दिया है जिस प्रकार मदिरा का मद मद्यपायी को समाप्त कर देता है, उसका जीवन व्यर्थ जाता है और पुनः हाथ नहीं आता।

६. (नानक) जीव रूपी नारी तभी प्रभु से मिलती है, जब प्रभु स्वयं उसे गुरू द्वारा मिला लेता है, और जब तक मिलाप नहीं होता तब तक उसे शान्ति नहीं मिलती। १।

७. जीव रूपी नारी प्रिय पति प्रभु के बिना विषण्ण रहती है।

८. वह जब तक प्रभु को हृदय में नहीं बसाती, तब तक सुख किस प्रकार प्राप्त कर सकती है।

९. प्रिय पति के बिना हृदय-घर आबाद नही होता। सत्-संगति करने वालों से पूछ कर देख लो। वे इस कथन की सत्यता की पुष्टि करेंगे।

१०. नाम के बिना पति प्रभु से प्रेम नहीं होता। केवल नाम के बल से सत्य प्रभु में लीन होकर ही जीव रूपी नारियां सुखी रहती हैं।

११. वे जीव रूपी नारियां, जिन्होंने गुरु की शिक्षा से अपने पति को समझा है और उस पति सुहृदय के सत्य को मन में रखा है, उसका प्रसाद प्राप्त करके उससे संयुक्त हो गई हैं!

१२. (नानक) वह जीव रूपी नारी सदा नाम में मग्न रहती है, और नाम द्वारा सहज प्रभु में समा जाती है। २।

१३. हे सतसंग की सहेलियों, आओ मिलकर बैठें और उसका स्मरण करें।

१४. मैं गुरु से पति—प्रभु का पता पूछकर गुरु-शिक्षा-द्वारा उस प्रियतम को मिलने का सन्देश भेजूंगी।

१५. गुरु ने सभी को सत्य शब्द प्रदान किया है परन्तु मनोमुख जीव रूपी नारियां शब्द का सार न जानकर पश्चाताप करती हैं।

१६. जब किसी को (गुरु-शब्द-द्वारा) सत्य प्रभु का ज्ञान हो जाता है तब उसका, निकल-निकल कर जाने वाला मन स्थिर हो जाता है।

१७. जब जीव रूपी नारी के मन में सत्य की बुद्धि दृढ़-स्थित हो जाती है तब वह सदा नवीन रहती है। शब्द-द्वारा प्रभु से बना हुआ उसका प्रेम नित्य—नूतन रहता है।

१८. (नानक) प्रभु की अपनी कृपा से ही वह सत्य प्रभु अनायास मिल जाता है। अतः हे सत्सग की सहेलियो, आओ मिलो। ३।

१९. हे सहेलियो, मेरी इच्छा पूर्ण हो गई। मेरे हृदय रूपी घर में प्रभु सुहृद आ गया है।

२०. अब मेरी इन्द्रियों ने विकारों से हट कर हर्ष का गीत गाया है।

२१. प्रभु-गुण गाकर जीव रूपी नारी प्रेम में खिल पड़ती है। उसके मन में उत्साह उत्पन्न होता है।

२२. उसके भीतर दैवी शक्तियां खिल जाती हैं और दुर्विकार विपद्-ग्रस्त हो जाते हैं (दबे रहते हैं)। सत्य प्रभु के स्मरण से सत्य लाभ होता है।

२३. वह जीव रूपी नारी दिन—रात्रि भागवत आनन्द में मग्न होकर, करबद्ध विनय करती है (कि यह संयोग सदा बना रहे)।

२४. (नानक) अब पति—प्रभु और जीव रूपी नारी संयोग का आनन्द प्राप्त करते हैं। हे सहेलियों, मेरी कामना पूर्ण हो गई है। ४। १।

(२)

१. सुणि नाह प्रभु जीउ एकलड़ी बन माहे।
२. किउ धीरैगी नाह बिना प्रभ वेपरवाहे।
३. धन नाह बाझहु रहि न साकै बिखम रैणि घणेरीआ।
४. नह नीद आवै प्रेमु भावै सुणि बेनंती मेरीआ।
५. बाझहु पिआरे कोइ न सारे एकलड़ी कुरलाए।
६. नानक साधन मिलै मिलाई बिन-प्रीतम दुखु पाए। १।

७. पिरि छोडिअड़ी जीउ कवणु मिलावै ।

८. रसि प्रेमि मिली जीउ सबदि सुहावै ।

९. सबदे सुहावै ता पति पावै दीपक देह उजारै ।

१०. सुणि सखी सहेली साचि सुहेली साचे के गुण सारै ।

११. सतिगुरि मेली ता पिरि रावी बिगसी अंम्रित बाणी ।

१२. नानक साधन ता पिरु रावे जा तिस कै मनि भाणी । २ ।

१३. माइआ मोहणी नीधरीआ जीउ कूड़ि मुठी कूड़िआरे ।

१४. किउ खूलै गल जेवड़ीआ जीउ बिनु गुर अति पिआरे ।

१५. हरि प्रीति पिआरे सबदि वीचारे तिस ही का सो होवै ।

१६. पुंन दान अनेक नावण किउ अंतर मलु धोवै ।

१७. नाम बिना गति कोइ न पावै हठि निग्रहि बेबाणै ।

१८. नानक सच घरु सबदि सिञापै दुबिधा महलु कि जाणै । ३ ।

१९. तेरा नामु सचा जीउ सबदु सचा वीचारो ।

२०. तेरा महलु सचा जीउ नामु सचा वापारो ।

२१. नाम का वापारु मीठा भगति लाहा अनदिनो ।

२२. तिसु बाझु वखरु कोइ न सूझै नामु लेवहु खिनु खिनो ।

२३. परखि लेखा नदरि साची करमि पूरै पाइआ ।

२४. नानक नामु महा रसु मीठा गुरि पूरै सचु पाइआ । ४ । २ ।

पद-अर्थ

नाह—नाथ, पति; **धीरंगी**—धैर्य धारण करेगी; **बिखम**—विषम, कठिन; **सारे**—सुधि लेना; **कुल कुरलाए**—रोती है; **बिगसी**—खिल गई; **जेवड़ीआ**—रस्सी; **नावण**—स्नान; **निग्रह**—इन्द्रियों को रोकने से; **बेबाणै**—जंगल में; **वखरू**—सौदा; **खिनु खिनो**—प्रत्येक क्षण, सदा ।

टीका

१. हे प्रभु, स्वामी, सुनो, मैं जीव-नारी तुम्हारे बिना संसार-बन में अकेली हूं ।

२. हे चिन्ता-विहीन प्रभु, तुम प्रियतम—पति के बिना यह जीव रूपी

नारी धैर्य नहीं धारण कर सकती।

३. जीब-रूपी नारी प्रभु—पति के बिना नहीं रह सकती। इसे प्रियतम के बिना रात-बितानी ही कठिन है।

४. हे प्रभु, मेरी विनति सुनो। मुझे तुम्हारा प्रेम प्रिय है। तुम्हारे बिना मुझे निद्रा ही नहीं आती।

५. प्रियतम के बिना इस बेचारी की कोई सुधि ही नहीं लेता। यह नारी अकेली रो रही है।

६. (नानक) जीव रूपी नारी प्रभु से मिल सकती है, यदि वह आप ही कृपा करके उसे अपने साथ मिला ले। अन्यथा यह प्रियतम के बिना दुःख सहती रहती है। १।

७. जिस जीव रूपी नारी को पति—प्रभु ने भुला दिया है, और कौन उसे उसके पति से मिला सकता है।

८. जो जीव रूपी नारी प्रभु-प्रेम के आनन्द में मग्न होती है वह शब्द-द्वारा सुन्दर हो जाती है।

९. जब जीव रूपी नारी शब्द-द्वारा सुन्दर हो जाती है तब उसे ईश्वरीय सदन में प्रतिष्ठा मिलती है। उसके शरीर (हृदय) में ज्ञान का दीपक जल उठता है।

१०. हे सहेली, सुन। वह जीव रूपी नारी सुखी हुई है जो सत्य प्रभु में लीन हुई है और जिसने सत्य के गुणों को ग्रहण किया है।

११. जब सद्गुरु ने उसे प्रभु से मिलाया तव प्रभु पति ने उसे आदर दिया (प्रेमानन्द उत्पन्न हुआ), अमर जीवन देने वाले शब्द के द्वारा उस का हृदय-कमल खिल पड़ा है।

१२. (नानक) प्रभु पति ने जीव रूपी नारी को तब आदर दिया है जब वह उसे प्रिय लगी है। २।

१३. हे सहेली, जिस जीव रूपी नारी को माया ने मोहित किया है वह निर्गृह हो गई है (आत्मस्वरूप से, जहां प्रियतम का निवास है, दूर चली गई है) वह मिथ्या पदार्थों द्वारा प्रवंचित की जाती है।

१४. उसके गले से माया का यह पाश प्रिय गुरु के बिना नहीं खुलता।

१५. यदि कोई जीव प्रिय भगवान् से प्रेम करता है और शब्द द्वारा उसे विचारता है, तो वह भगवान् उसका हो जाता है।

१६. (प्रीति के बिना केवल) पुण्य-दान और तीर्थों के स्थान से आन्तरिक

मल नहीं दूर हो सकता और इसी हेतु प्रभु का मेल नहीं होता।

१७. हठपूर्वक कार्य से, इन्द्रियदमन और संयम से, जंगलों में वास करने से भी (मल नहीं उतरता)। वह तो नाम स्मरण से उतरता है। नाम के बिना कोई भी मुक्ति नहीं पा सकता।

१८. (नानक) सत्यस्वरूप प्रभु का निवास-स्थान (आत्मस्वरूप) केवल शब्द के द्वारा पहचाना जा सकता है। द्वैत-भाव में वह स्थान नहीं जाना जा सकता। ३।

१९. हे प्रभु, तुम्हारा नाम स्थिर है, तुम्हारा शब्द स्थिर है और तुम्हारा विचार स्थिर हैं।

२०. हे प्रभु, तुम्हारा निवास-स्थान स्थिर है, तुम्हारा नाम स्थिर है और उस नाम का व्यापार स्थिर है।

२१. तुम्हारे नाम का व्यापार मधुर है, तुम्हारी भक्ति का व्यापार करने से सदा लाभ होता है।

२२. नाम के बिना अन्य कोई सौदा दिखाई नहीं देता जिसका व्यापार लाभप्रद हो। अत: हे भाई, सदा नाम जपो।

२३. परख करके नाम का लेखा (व्यापार) उसी को प्राप्त होता है जिस पर उसकी कृपा हो और जिसके भाग्य अच्छे हों।

२४. (नानक) नाम महान् और मधुर रस है, यह स्थिर रहने वाला है और पूर्ण गुरु से प्राप्त होता है। ४। २।

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु ।
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरप्रसादि ।।
रागु आसा महला । धरु ।

सोदरु

१. सो दरु तेरा केहा सो धरु केहा जितु बहि सरब सम्हाले ।
२. वाजे तेरे नाद अनेक असंखा केते तेरे वावणहारे ।
३. केते तेरे राग परी सिउ कहीअहि केते तेरे गावणहारे ।
४. गावन्हि तुधनो पउणु पाणी वैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे ।
५. गावन्हि तुधनो चितु गुपतु लिखि जाणनि लिखि लिखि धरमु वीचारे ।
६. गावन्हि तुधनो ईसरु ब्रहमा देवी सोहनि तेरे सदा सवारे ।
७. गावन्हि तुधनो इंद्र इंद्रासणि बैठे देवतिआ दरि नाले ।
८. गावन्हि तुधनो सिध समाधी अंदरि गावन्हि तुधनो साध बीचारे ।
९. गावन्हि तुधनो जती सती संतोखी गावनि तुध नो वीर करारे ।
१०. गावनि तुधनो पंडित पड़े रखीसुर जुगु जुगु बेदा नाले ।
११. गावनि तुधनो मोहणीआ मनु मोहनि सुरगु मछु पइआले ।
१२. गावन्हि तुधनो रतन उपाए तेरे जेते अठसठि तीरथ नाले ।
१३. गावन्हि तुधनो जोध महाबल सूरा गावन्हि तुधनो खाणी चारे ।
१४. गावन्हि तुधनो खंड मंडल ब्रहमंडा करि करि रखे तेरे धारे ।
१५. सेई तुधनो गावन्हि जो तुधु भावन्हि रते तेरे भगत रसाले ।
१६. होरि केते तुधनो गावनि से मैं चिति न आवनि नानकु किआ बीचारे ।
१७. सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ।
१८. है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ।
१९. रंगी रंगी भाती जिनसी माइआ जिनि उपाई ।

२०. करि करि देखै कीता अपणा जिउ तिस दी वडिआई ।
२१. जो तिसु भावै सोई करसी फिर हुकमु न करणा जाई ।
२२. सो पातिसाहु साहा पति साहिबु नानक रहणु रजाई । १ ।

(पद-अर्थ और टीका के लिए पृष्ठ ३९-४१)

रागु आसा महला ।

चउपदे

(१)

१. सुणि वडा आखै सभ कोई ।
२. एवडु वडा डीठा होई ।
३. कीमति पाइ न कहिआ जाइ ।
४. कहणै वाले तेरे रहे समाइ । १ ।
५. वडे मेरे साहिबा गहिर गंभीरा गुणी गहीरा ।
६. कोई न जाणै तेरा केता केवडु चीरा । १ । रहाउ ।
७. सभि सुरती मिली सुरति कमाई ।
८. सभ कीमति मिलि कीमति पाई ।
९. गिआनी धिआनी गुर गुरहाई ।
१०. कहणु न जाई तेरी तिलु वडिआई । २ ।
११. सभि सत सभि तप सभी चंगिआईआ ।
१२. सिधा पुरखा कीआ वडिआईआ ।
१३. तुधु विणु सिधी किनै न पाईआ ।
१४. करमि मिलै नाही ठाकि रहाईआ । ३ ।
१५. आखण वाला किआ बेचारा ।
१६. सिफती भरे तेरे भंडारा ।
१७. जिसु तूं देहि तिसै किआ चारा ।
१८. नानक सचु सवारणहारा । ४।१ ।

(पद-अर्थ और टीका के लिए पृष्ठ — देखिए)

(२)

१. आखा जीवा विसरै मरि जाउ ।

२. आखणि अउखा साचा नाउ ।

३. साचे नाम की लागै भूख ।

४. तितु भूखै खाइ चलीअहि दूख । १ ।

५. सो किउ विसरै मेरी माइ ।

६. साचा साहिबु साचै नाइ । १ । रहाउ ।

७. साचे नाम की तिलु वडिआई ।

८. आखि थके कीमति नहीं पाई ।

९. जे सभि मिलि कै आखण पाहि ।

१०. वडा न होवै घाटि न जाइ । २ ।

११. ना ओहु मरै न होवै सोगु ।

१२. देंदा रहै न चूकै भोगु ।

१३. गुणु एहो होरु नाही कोइ ।

१४. ना को होआ ना को होइ । ३ ।

१५. जेवडु आपि तेवड तेरी दाति ।

१६. जिनि दिनु करि कै कीती राति ।

१७. खसमु विसारहि ते कमजाति ।

१८. नानक नावै बाझु सनाति । ४/२ ।

(पद-अर्थ और टीका के लिए पृष्ठ ६५-६६ देखिए)

(३)

१. जे दरि मांगतु कूक करे महली खसमु सुणे ।

२. भावै धीरक भावै धके एक वडाई देइ । १ ।

३. जाणहु जोति न पूछहु जाती आगै जाति न हे । १ । रहाउ ।

४. आपि कराए आपि करेइ ।

५. आपि उलामे चिति धरेइ ।

६. जा तूं करणहारु करतारु ।

७. किआ मुहताजी किआ संसारु । २ ।

८. आपि उपाए आपे देइ ।

९. आपे दुरमति मनहि करेइ ।

१०. गुरपरसादि वसै मनि आइ ।

११. दुखु अनेरा विचहु जाइ । ३ ।

१२. साचु पिआरा आपि करेइ ।

१३. अवरी कउ साचु न देइ ।

१४. जे किसै देइ वखाणै नानकु आगै पूछ न लेइ । ४/३ ।

पद-अर्थ

मांगतु—भिक्षुक; **कूक करे**—पुकार करे; **धीरक**—धैर्य, सान्त्वना; **जाती**—जाति; **उलामे**—उलाहनें, उपालम्भ; **मनहि**—मना करता है; **अवरि**—अन्य कई दूसरों को; **वखाणै**—कहता है; **पूछ न लेइ**—लेखा जोखा नहीं पूछता ।

टीका

१. यदि कोई भिक्षु जीव प्रभु पति के द्वार पर (किसी वान्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए) पुकार करे तो वह प्रभु महल में बैठा सुनता है (कि भिक्षार्थी कौन है, उसका व्यक्तित्व क्या है और ईश्वरीय नियमों के विचार से उस प्रार्थना का मूल्य क्या है ? भिक्षु की इच्छा के अनुसार प्रार्थना स्वीकृत नहीं होती ।)

२. फिर वह धैर्य दे चाहे धक्के, दोनों में से जो भी दे, भिक्षुक के लिए वही समोचीन है ('आपे जाणै आपे देइ'—अपने आप जानता हैं और अपने आप देता है) । १ ।

३. हे भाइयो, किसी जीव की परख करने के लिए यह देखो कि वह आध्यात्मिक जीवन के किस सोपान पर खड़ा है ? उस जीव की जाति-पांति से उसका मूल्यांकन न करो । क्योंकि, प्रभु के घर, जाति-पाति की कोई महत्ता नहीं । १ । रहाउ ।

४. वह प्रभु जीवों से सब कुछ स्वयं कराता है (प्रत्येक प्राणी को उसके आदेश, उसके अविचल नियमों, के अनुसार चलना पड़ता है) (फिर तो वह) स्वयं ही सब कुछ करता है ।

५. और पुन: उनके हृदय में उपालम्भ स्वयं उत्पन्न करता है (सम्पूर्ण क्रीड़ा परमात्मा के आदेशानुसार चल रही है) ।

६. हे प्रभु, जब तुम स्वयं कार्य-कारण-समर्थ कर्त्ता पुरुष हो।

७. तब मुझे किसी की क्या आवश्यकता है और संसार का क्या भय है? । २ ।

८. प्रभु स्वयं ही जीवों को उत्पन्न करता है और स्वयं ही उन्हें देनें देता है।

९. स्वयं ही दुर्बुद्धि को रोकता है (दूर करता है)।

१०. जब गुरु की कृपा से प्रभु स्वयं आकर हृदय में बसता है—

११. तब दुःख और अज्ञान नष्ट हो जाते हैं। ३ ।

१२. प्रभु स्वयं ही किसी एक जीव के हृदय में सत्य का प्रेम उत्पन्न करता है।

१३. और किसी दूसरे जीव को सत्य का प्रेम नहीं देता (उसके समोचीन और असमोचीन आदेश, ईश्वरीय नियमों के अनुसार बन रहे हैं।)

१४. परन्तु यदि वह किसी के मन में सत्य का प्रेम उत्पन्न कर दे, तो नानक कहता है, उससे आगे जाकर कर्मों का लेखा नहीं पूछा जाता (वह कर्मों के बन्धन से निकल जाता है)। ४/३ ।

(४)

१. ताल मदीरे घट के घाट।

२. दोलक दुनीआ वाजहि बाज।

३. नारदु नाचै कलि का भाउ।

४. जती सती कह राखहि पाउ। १ ।

५. नानक नाम विटहु कुरबाणु।

६. अंधी दुनीआ साहिबु जाणु। १ । रहाउ।

७. गुरू पासहु फिरि चेला खाइ।

८. तामि परीति वसै घरि आइ।

९. जे सउ वरिआ जीवण खाणु।

१०. खसम पछाणै सो दिनु परवाणु। २ ।

११. दरसनि देखिऐ दइआ न होइ।

१२. लए दिते विणु रहै न कोइ।

१३. **राजा निआउ करे हथि होइ ।**

१४. **कहै खुदाइ न मानै कोइ । ३ ।**

१५. **माणस मूरति नानकु नामु ।**

१६. **करणी कुता दरि फुरमानु ।**

१७. **गुर परसादि जाणै मिहमानु ।**

१८. **ता किछु दरगह पावै मानु । ४/४ ।**

पद-अर्थ

ताल—छन्ने; **मदीरे**—पैरों के घूंघरू; **घट के घाट**—मन के मार्ग; संकल्प विकल्प; **दोलक**—ढोलक; **वाज**—बाजे; **नारद**—अर्थात् मन; **कलि का भाउ**—कलियुग की भावना (व्यवहार, रीति); **कह**—कहां; **विटहु**—से; **जाणु**—जानने वाला; **फिरि**—विपरीत; **तामि**—(फारसी 'तमाम') रोटी; **हथि होइ**—पास में पैसे हों; **माणस**—मनुष्य; **मिहमानु**—मेहमान, अतिथि ।

टीका

१. मन के सकल्प-विकल्प छन्ने और मंजीरे हैं ।

२. दुनिया का मोह ढोलक है—ये बाजे बज रहे हैं (जीव के लिए) ।

३. मन-नारद (भीतर) नाच रहा है (इच्छाएँ भड़क रही हैं) कलियुग का व्यवहार इस प्रकार चल रहा है (कलियुग की क्रीड़ा ऐसे चल रही है) ।

४. (ऐसी दशा में) यहां मति, सत्यनिष्ठ लोगों का ज़ीवनयापन कैसे हो ? वे कहां पैर रखें ? । १ ।

५. (नानक), मैं नाम के बलिहारी जाता हूँ ।

६. समस्त (जगत् माया की कामनाओं में) अन्धा हो रहा है केवल स्वामी प्रभु ही ज्ञान के प्रकाश से पूर्ण है (उसकी शरण में ही रक्षा सम्भव है । १ । रहाउ ।

७. (कलियुग की दशा यह है कि) चेला गुरु से खाता है (खाने के लिए शिष्य बनता है) । अहो वैपरीत्य ।

८. रोटी का लोभ उसके मन रूपी घर में बसता हैं ।

९. चाहे खाने-पीने में सौ वर्ष (की अवस्था) बीत जाएँ (सब निष्फल है)।
१०. वही दिन सफल है जो स्वामी (प्रभु की पहचान और स्मृति) में बीता है। २।
११. किसी आवश्यकता-पीड़ित मनुष्य को देखकर कुछ भी सहानुभूति उत्पन्न नहीं होती (क्योंकि मनुष्य को मनुष्य के रूप में समझकर सहानुभूति नहीं होती)।
१२. समस्त सम्बन्ध ही लेन-देन का बना हुआ है। जो देता है उसे लेने की आशा भी होती है) पारस्परिक लेन-देन के बिना कोई चलता ही नही।
१३. (यहाँ तक कि) शासक भी न्याय तब करता है जब उसे देने के लिए न्यायार्थी के पास धन हो।
१४. यदि कोई भगवान के लिए मांगे तो कोई उसकी सुनता ही नही। ३।
१५. (परन्तु नानक किसी के विषय में क्या कहे) उसकी अपनी सूरत तो मनुष्य वाली है और नाम नानक रखा हुआ है।
१६. परन्तु उसका कर्म उस कुत्ते के व्यवहार के समान हैं जो लोभवश स्वामी के द्वार पर खड़ा सभी आदेश मानता है।
१७. यदि कोई जीव गुरु की कृपा से अपने आप को संसार में अतिथि समझे।—
१८. तो उसे प्रभु के घर कुछ आदर मिलता है। ४/४।

(५)

१. जेता सबदु सुरति धुनि तेती जेता रूपु काइआ तेरी।
२. तूं आपे रसना आपे बसना अवरु न दूजा कहउ माई। १।
३. साहिबु मेरा एको है।
४. एको है भाई एको है। १। रहाउ।
५. आपे मारे आपे छोडै आपे लेवै देइ।
६. आपे वेखै आपे विगसै आपे नदरि करेइ। २।
७. जो किछु करणा सो करि रहिआ अवरु न करणा जाई।
८. जैसा वरतै तैसो कहीऐ सभ तेरी वडिआई। ३।
९. कलि कलवाली माइआ मदु मीठा मनु मतवाला पीवतु रहै।
१०. आपे रूप करे बहु भांतीं नानकु बपुड़ा एव कहै। ४/५।

पद-अर्थ

सबदु—शब्द, आवाज़; **धुनि**—धुन, तार, नदी बहाव; **तेती**—उतनी; **रसना**—रस लेने वाली, जिह्वा; **बसना**—बास लेने वाली, नासिका **विगसै**—प्रसन्न होता है; **कलवाली**—कलालिन; मद्य बेचने वाली; **मदु**—मद्य, मदिरा; **बपुड़ा**—बपुरा, बेचारा।

टीका

१. हे प्रभु, संसार में जितना भी बोलना और सुनना हो रहा है वह समस्त तुम्हारी चित्त-वृत्ति का प्रवाह है, और जो दृष्टिगोचर साकार संसार है वह तुम्हारा ही शरीर है।

२. तुम स्वयं ही समस्त जीवों के भीतर रस लेने वाली जिह्वा हो, और गन्ध लेने वाली नासिका हो। हे स्वामी, तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। १।

३. हे भाई, मेरा एक स्वामी ही अर्वत्र व्याप्त है।

४. केवल वह परमात्मा ही है, अन्य कोई नहीं। १। रहाउ।

५. वह स्वयं ही जीवों को मारता है, स्वयं ही रखता है, स्वय ही जीवन लेता है, स्वयं ही देता है।

६. वह स्वयं ही जीवों की रक्षा करता है और उन्हें देखकर प्रसन्न होता है स्वयं ही उन पर कृपा करता है। २।

७. जो उसे करना है वह कर रहा है। अन्य कोई कुछ नहीं कर सकता।

८. वह जिस-जिस रूप में जो कार्य कर रहा है उसे उसी रूप में समझो (समझो कि वह उचित ही कर रहा है) हे प्रभु, यह तुम्हारी ही महिमा है। ३।

९. कलियुग कलालिन (मद्य बेचने वाली) है। मधुर माया मदिरा है। मन मद्यपायी पुरुष बना हुआ है।

१०. परन्तु ये समस्त बहुविध रूप प्रभु स्वयं ही धारण करता है (कलालिन, मदिरा और मदिरापायी वह स्वयं ही है)। नानक बेचारा वह (आश्चर्यजनक कौतुक) समझाता है। ४/५।

(६)

१. बाजा मति पखावजु भाउ।

२. होइ अनंदु सदा मनि चाउ।

३. एहा भगति एहो तप ताउ ।

४. इतु रंगि नाचहु रखि रखि पाउ । १ ।

५. पूरे ताल जाणै सालाह ।

६. होरु नचणा खुसीआ मन माह । १ । रहाउ ।

७. सतु संतोखु वजहि दुइ ताल ।

८. पैरी वाजा सदा निहाल ।

९. रागु नादु नहीं दूजा भाउ ।

१०. इतु रंगि नाचहु रखि रखि पाउ । २ ।

११. भउ फेरी होवै मन चीति ।

१२. बहदिआ उठदिआ नीता नीति ।

१३. लेटणि लेटि जाणै तनु सुआहु ।

१४. इतु रंगि नाचहु रखि रखि पाउ । ३ ।

१५. सिख सभा दीखिआ का भाउ ।

१६. गुरमुखि सुणणा साचा नाउ ।

१७. नानक आखणु वेरा वेर ।

१८. इतु रंगि नाचहु रखिरखि पैर । ४ । ६ ।

पद-अर्थ

पखावजु—पखावज, मृदंग; **भाउ**—प्रेम; **पूरे ताल**—ताल की पूर्ति करता है; **ताल**—छन्ने; **फेरी**—नाच की फेरी; **दीखिआ**—दीक्षा, शिक्षा ।

टीका

१. यदि कोई जीव (उज्ज्वल) बुद्धि को बाजा बनाए और प्रभु प्रेम को मृदङ्ग बनाए,—

२. तो उसके हृदय में सदा उल्लास रहेगा और उसे हर्ष प्राप्त होगा ।

३. यह वास्तविक भक्ति है और वास्तविक तपश्चर्या है ।

४. अत: इस उन्माद में भरकर नाचो, और नाचो, पैर सँवार-सँवार कर खूब नाचो । १ ।

५. यदि कोई प्रभु की स्तुति-प्रशँसा करना जानता है, तो वह ही ताल के अनुसार नाचता है (उसी का जीवन रूपी नृत्य यथावत् है)।

६. इसके अतिरिक्त शेष समस्त नृत्य मन की मौजें हैं। १। रहाउ।

७. यदि सत्य और संतोष—ये दो ताल बजें,

८. यदि सदा (प्रभु के आदेश में) प्रसन्न रहना, यह पैर के घूंघरू हों,—

९. और यदि प्रभु का अनन्य प्रेम, राग-नाद हो।

१०. तो इस उन्माद में भरकर नाचो, यह नाच और नाचो, पैर सँवार-सँवार कर खूब नाचो। २।

११. मन-चित्त में प्रभु का भय, नाच की फेरी (नृत्य में की जाने वाली परिक्रमा है।

१२. परन्तु यह भय बैठते-उठते प्रत्येक क्षण हृदय में रहना चाहिए।

१३. शरीर को राख के समान समझना, यह लेट कर नाचना है।

१४. इस उन्माद में भरकर नाचो, यह नाच और नाचो, पैर सँवार-सँवार कर खूब नाचो। ३।

१५. सत्सँग में बैठकर गुरु का उपदेश सुनने का प्रेम हो,

१६. गुरु से सत्य नाम सुना जाए,

१७. (नानक) फिर यह नाम पुन: पुन: जपा जाए (तो वास्तविक नाच बनता है)

१८. अत: इस उन्माद में भरकर नाचो, यह नाच और नाचो, पैर सँवार-सँवार कर खूब नाचो। ४/६।

(७)

१. पउणु उपाइ धरी सभ धरती जल अगनी का फंधु कीआ।

२. अंधुलै दहसिरि मूंडु कटाइआ रावणु मारि किआ वडा भइआ।१।

३. किआ उपमा तेरी आखी जाइ।

४. तूं सरबे पूरि रहिआ लिव लाइ। १। रहाउ।

५. जीअ उपाइ जुगति हथि कीनी काली नथि किआ वडा भइआ।

६. किसु तू पुरखु जोरू कउण कहीऐ सरब निरंतरि रवि रहिआ। २।

७. नालि कुटंबु साथि बरदाता ब्रहमा भालण स्रिसटि गइआ।

८. आगै अंतु न पाइउ ता का कंसु छेदि किआ वडा भइआ। ३।

९. रतन उपाइ धरे खीरु मथिश्रा होरि भखलाए जि असी कीआ ।
१०. कहै नानकु छपै किउ छपिआ एको एको वंडि दीआ । ४/७ ।

पद-अर्थ

धरी—टिकाई हैं; बंधु–मेल, जोड़; दहसिरि–रावण ने; मूंडु—सिर; काली—कालिय नाग जिसे श्रीकृष्ण जी ने वश में किया था; पुरखु—पति; जोरू—पत्नी; नालि—कमल की डंडी; कुटंबु—परिवार, जननी, जनक; वरदाता—अर्थात् विष्णु; कंसु—राजा कंस जो श्री कृष्ण जी के हाथों मारा गया था; खीरु मथिआ—समुद्र मंथन किया; भखलाए—क्रोध में बोले ।

टीका

१. जिस भगवान् ने वायु उत्पन्न की, पृथ्वी को अवलम्ब दिया, तथा जल और अग्नि (विरोधी तत्त्वों) को एक स्थान पर स्थित किया हुआ है (वह असीम और महान् है) ।

२. यदि मूर्ख रावण ने मूर्खता के कारण अपना सिर (श्री रामचन्द्र से) कटवाया तो श्री रामचन्द्र जी को इसी हेतु प्रभु का अवतार कहना कि उन्होंने रावण को मारा, यह भगवान् को कोई महत्ता प्रकट करने वाली बात नहीं (भाव, वह असीम शक्तियों का स्वामी है । रावण को मार देना साधारण सी बात है) । १ ।

३. हे प्रभु, तुम्हारी क्या स्तुति की जाए ?

४. तुम सर्वत्र व्याप्त हो और सब की रक्षा कर रहे हो । १ । रहाउ ।

५. जिस प्रभु ने समस्त जीव उत्पन्न किए हैं और उन जीवों की जीवन-मुक्ति अपने हाथ में रखी है (वह अनन्य-महान् है) । यह मानना उसकी महत्ता प्रकट नहीं करता कि उसने श्रीकृष्ण का अवतार होकर कालिय नाग को वश में किया था (कालिय नाग को नथना साधारण सी बात है) ।

६. हे प्रभु, तुम्हें किसका पति कहें और किसे तुम्हारी पत्नी कहें । तुम (इतने अनन्त हो) कि सब में व्याप्त हो । २ ।

७. कमल-नाल से उत्पन्न हुआ ब्रह्मा, जिसके वरदाता विष्णु थे, प्रभु के जगत् का अन्त जानने के लिए नाल के भीतर चला गया ।

८. परन्तु उसे परमात्मा का अन्त न मिला (नाल में ही भटकता रहा) ।

ऐसे परमात्मा के सम्बन्ध में यह कहना कि उसने (कृष्ण के रूप में) कंस को मारा उसकी क्या महत्ता प्रकट करता है। (कंस को मारना साधारण सी बात है)। ३।

९. प्रभु ने रत्न उत्पन्न किए और समुन्द्र में रखे (यह उसकी महत्ता है)। देवताओं और दैत्यों ने उस समुद्र को मथा और चौदह रत्न निकाले और पुनः दोनों पक्ष क्रोध में कहने लगे कि हमने रत्न निकाले हैं।

१०. नानक (एक प्रसिद्ध कहानी) बतलाता है कि परमात्मा छिपा न रहा। मोहिनी के रूप में प्रकट होकर उसने समस्त रत्न एक-एक करके बांट दिए (इससे यह परिणाम निकालना कि परमात्मा ही ऐसा कर सकता था, उसकी महत्ता प्रकट करना नहीं है) यह एक साधारण सी बात है। ४/७।

(८)

१. **करम करतूति बेलि बिसथारी रामनामु फलु हूआ।**
२. **तिसु रूपु न रेख अनाहदु वाजै सबदु निरंजनि कीआ। १।**
३. **करे वखिआणु जाणै जे कोई।**
४. **अम्रित पीवै सोई। १। रहाउ।**
५. **जिन्ह पीआ से मसत भए है तूटे बंधन फाहे।**
६. **जोती जोति समाणी भीतरि ता छोडे माइआ के लाहे। २।**
७. **सरब जोति रूपु तेरा देखिआ सगल भवन तेरी माइआ।**
८. **रारै रूपि निरालमु बैठा नदरि करे विचि छाइआ। ३।**
९. **बीणा सबदु बजावै जोगी दरसनि रूपि अपारा।**
१०. **सबदि अनाहदि सो सहु राता नानकु कहै विचारा। ४/८।**

पद-अर्थ

करम करतूति—शुभ कर्म; **बेलि विसुथारी**—लता का विस्तार; **अनाहदु**—अनाहत शब्द, बजाए विना एक-रूप बजने वाला शब्द; **वखिआणु**—व्याख्या; **रारै रूपि**—कलह रूपी सँसार में; **निरालमु**—निरालम्ब, निर्लेप; **विचारा**—विचार।

टीका

१. (जिस योगी ने) शुभ-कर्म-रूपी लता का विस्तार किया है, उस लता में राम-नाम-रूपी फल लगता है।

२. माया-रहित प्रभु उसके भीतर नाम-शब्द का प्रवाह चला देता है, जिस नाम-शब्द का कोई आकार-प्रकार नहीं है; और जो आत्मा में बजाए बिना बजने वाला संगीत है जो सदा चलता रहता है। १।

३. राम नाम के आस्वाद को वह वर्णन कर सकता है जिसने इसे जाना है।

४. इस अमृत का रस भी वही पीता है। १। रहाउ।

५. जिन योगियों ने नाम-अमृत पान किया है वे रस में रंग गए हैं और उनके माया के समस्त बन्धन टूट गए हैं।

६. उनके आत्मा में प्रभु-ज्योति व्याप्त हो गई है। अतः उन्होंने माया के समस्त लोक-प्रसिद्ध लाभ त्याग दिए हैं। २।

७. उन्होंने समस्त जीवों में व्याप्त ज्योति देखली है तथा समस्त लोकों में तुम्हारी ही माया का प्रसार देखा है।

८. हे प्रभु, उन्हें तुम कलह रूपी विश्व से पृथक् बैठे हुए दिखाई देते हो और साथ ही विश्व की प्रत्येक वस्तु में प्रतिबिंबित हुए के समान व्यापक होकर विश्व को देखते हुए दिखाई देते हो। ३।

९ वास्तविक योगी वह है जो अपार प्रभु के दर्शन और रूप से मस्त होकर नाम-शब्द की वीणा बजाता है।

१०. वह नाम-स्मरण से उत्पन्न सङ्गीत की सहायता से स्वामी प्रभु के रंग में रंगा रहता है—नानक का यह विचार प्रकट करता है। ४/८।

(९)

१. **मैं गुण गला के सिरि भार।**

२. **गली गला सिरजणहार।**

३. **खाणा पीणा हसणा बादि।**

४. **जब लगु रिदे न आवहि यादि। १।**

५. **तउ परवाह केही किआ कीजै।**

६. जनमि जनमि किछु लीजो लीजै । १ । रहाउ ।

७. मन की मति मतागलु मता ।

८. जो किछु बोलीऐ सभु खतो खता ।

९. किम्रा मुहु लै कीचै अरदासि ।

१०. पापु पुंनु दुइ साखी पासि । २ ।

११. जैसा तूं करिहि तैसा को होइ ।

१२. तुझ बिनु दूजा नाही कोइ ।

१३. जेही तूं मति देहि तेही को पावे ।

१४. तुधु आपे भावै तिवै चलावै । ३ ।

१५. राग रतन परीआ परवार ।

१६. तिसु विचि उपजै अंम्रितु सार ।

१७. नानक करते का इहु धनु मालु ।

१८. जे को बूझै एहु बीचारु । ४/९ ।

पद-अर्थ

गुण—विशेषता; **भार**—बोझ; **बादि**—व्यर्थ; **तउ**—तो; **मता**—मत्त; **मतागलु**—हस्ती; **खतो खता**—अशुद्ध ही अशुद्ध, ग़लत ही ग़लत; **साखी**—साक्षी; **परीआ**—अर्थात् रागनियाँ; **परवार**—रागों के पुत्र; **सार**—श्रेष्ठ।

टीका

१. मेरी विशेषता केवल यह है कि मैंने सिर पर बातों की गठरियाँ रखी हुइ हैं (बातें ही बातें करता हूं। आचरण नहीं है)।

२. परन्तु बातों में श्रेष्ठ बातें तो सर्जनकारक प्रभु की हैं (वे मेरे पास नहीं हैं)।

३. खाना, पीना, हँसना (खेलना आदि) समस्त कर्म व्यर्थ हैं,—

४. जब तक प्रभु की याद हृदय में नहीं आती। १।

५. (यदि प्रभु-स्मरण हो) तो अन्य वस्तु की चिन्ता क्यों और किस लिए की जाए ?

६. अत: मनुष्य योनि में जन्म लेकर (प्रभु-स्मृति से कुछ लाभ उठाना

चाहिए । १ । रहाउ ।

७. हे प्रभु: हम मन के पीछे लगे हैं जो मत्त हस्ती के तुल्य (हठी, वश में न आनेवाला) है ।

८. (अतः) हम जो कुछ कहते हैं, वह मिथ्या ही मिथ्या है ।

९. तुमसे प्रार्थना भी किस मुंह से करें ?

१०. हमारे किए हुए पाप और पुण्य हमारे कर्मों के साक्षी बनकर समीप खड़े हैं । २ ।

११. (परन्तु हमारे वश क्या है ?) हे प्रभु, तुम किसी जीव को जैसा बना देते हो वैसा ही वह बन जाता है ।

१२. तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई बनाने वाला नहीं है ।

१३. तुम किसी को जैसी बुद्धि देते हो, उसे वैसी ही मिलती है ।

१४. तुम्हे जैसे अच्छा लगता है, वैसा ही (अपने नियमों के अनुसार) जीवों को चलाते हो । ३ ।

१५. उत्तम राग, उनकी रागिनियां और उनके परिवार (पुत्र), तभी सफल हैं,—

१६. जब उनसे श्रेष्ठ अमृत नाम उत्पन्न हो,

१७. (नानक) प्रभु का धन-माल यह नाम ही है,

१८. परन्तु यदि इस तथ्य का किसी को ज्ञान हो । ४/९ ।

(१०)

१. करि किरपा अपनै धरि आइआ ता मिलि सखीआ काजु रचाइआ ।

२. खेलु देखि मनि अनदु भइआ सहु वीआहण आइआ । १ ।

३. गावहु गावहु, कामणी बिबेक बीचारु ।

४. हमरै घरि आइआ जग जीवनु भतारु । १ । रहाउ ।

५. गुरू दुआरै हमरा वीआहु जि होआ जां सहु मिलिआ तां जानिआ ।

६. तिहु लोका महि सबदु रविआ है आपु गइआ मनु मानिआ । २ ।

७. आपणा कारजु आपि सवारे होरनि कारजु न होई ।

८. जितु कारजि सतु संतोखु दइआ धरमु है गुरमुखि बूझै कोई । ३ ।

९. भनति नानकु सभना का पिरु एको सोइ ।
१०. जिसनो नदरि करे सा सोहागणि होइ । ४/१० ।

पद-अर्थ

काजु—अर्थात् विवाह; **सहु**—पति, परमात्मा; **कामणी**—नारी; **बिवेक**—ज्ञान का तत्व; **भतारू**—पति; **सबदु**—ब्रह्म, प्रभु; **भनति**—कहता है ।

टीका

१. जब प्रभु वर स्वयं कृपा करके (मुझे वरण करने के लिए) स्वयं मेरे हृदय में आ गया, तब सत्संग में रहने वालों ने उसके साथ मेरे विवाह का आरम्भ कर दिया ।

२. उसका यह कार्य देखकर महान् हर्ष हुआ कि वह स्वयं ही मुझे वरण करने के लिए आ गया है । १ ।

३. हे सत्संगियो, (हर्ष के कारण) तत्त्व-ज्ञान के विचारों से पूर्ण गीत (गुरु-वाणी) गाओ ।

४. क्योंकि, समस्त संसार का जीवन (प्रभु) मेरा पति बनकर स्वयं मेरे हृदय मन्दिर में आकर विराजमान हो गया है । १ । रहाउ ।

५. गुरु-कृपा-द्वारा प्रभु-पति के साथ मेरा विवाह हो गया और जब प्रभु के साथ मिलाप हुआ तब मुझे उसका यथार्थ ज्ञान हुआ ।

६. अब वह समग्र ब्रह्माण्ड में व्याप्त दिखाई दे रहा है । मेरा अहन्त्व समाप्त हो गया है, तथा मन विश्वस्त हो गया है । २ ।

७. जीव रूपी नारी को अपने साथ मिलाने के कार्य को प्रभु अपना कर्त्तव्य समझता है—अन्य किसी से यह कार्य पूर्ण होना संभव भी नहीं है ।

८. इस मिलाप से जीव रूपी नारीमें सत्य, सन्तोष, दया, धर्म उत्पन्न होते हैं । परन्तु इस तथ्य का ज्ञान गुरु-शिक्षा से ही होता है । ३ ।

९. नानक कहता है कि समस्त जीवों का स्वामी प्रभु स्वयं ही है ।

१०. परन्तु जिस पर वह कृपा-दृष्टि करता है (उसे अपने साथ मिला लेता है । फिर) वह जीव रूपी नारी सौभाग्यवती बन जाती है । ४/१० ।

१. ग्रिहु बनु समसरि सहजि सुभाइ ।
२. दुरमति गतु भई कीरति ठाइ ।
३. सच पउड़ी साचउ मुख नाउ ।
४. सतिगुरु सेवि पाए निज थाउ । १ ।
५. मन चूरे खटु दरसन जाणु ।
६. सरब जोति पूरन भगवानु । १ । रहाउ ।
७. अधिक तिआस भेख बहुकरै ।
८. दुखु बिखिआ सुखु तनि परहरै ।
९. कामु क्रोध अंतरि धनु हिरै ।
१०. दुबिधा छोडि नामि निसतरै । २ ।
११. सिफति सलाहणु सहज अनंद ।
१२. सखा सैनु प्रेमु गोबिद ।
१३. आपे करे आपे बखसिंदु ।
१४. तनु मनु हरि पहि आगै जिंदु । ३ ।
१५. झूठ विकार महा दुखु देह ।
१६. भेख वरन दीसहि सभि खेह ।
१७. जो उपजै सो आवै जाइ ।
१८. नानक असथिरु नामु रजाइ । ४/११ ।

पद-अर्थ

समसरि—एक जैसे, तुल्य; **गतु भई**—दूर हो गई; **ठाइ**—स्थान पर; **जाणु**—जानने वाला, ज्ञाता; **पउड़ी**—मार्ग; **निज थाउ**—अर्थात् वास्तविक स्वरूप; **चूरे**–चूर-चूरकर; **खटु**—षट्, छः ; **अधिक**—बहुत; **तिआस**—तृष्णा; **देह**—शरीर; **असथिरु**—स्थिर ।

टीका

१. (गुरुमुख जीव के लिए) घर और जंगल एक समान हो जाते हैं ।

२. उसकी दुर्बुद्धि चली जाती है और प्रभु-स्तुति आकर उसके हृदय में बस जाती है।

३. उसके मुख में सत्य नाम होता है। क्योंकि, सफल जीवन के लिए यही यथार्थ मार्ग है।

४. गुरु-प्रदर्शित मार्ग पर चलकर उसने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान पा लिया है। १।

५. मन को मार लेना ही छः शास्त्रों के ज्ञाता होने के समान है।

६. फिर पूर्ण ब्रह्म की ज्योति सर्वव्यापक प्रतीत होती है। १। रहाउ।

७. परन्तु यदि हृदय में प्रबल तृष्णा है और बाहर से आडम्बर भी किए हैं।

८. तो विषयों (माया) का दुःख शरीर से समस्त सुख दूर कर देता है।

९. काम, क्रोध आन्तरिक आध्यात्मिक धन को खींच लेते हैं (नष्ट कर देते हैं)।

१०. परन्तु द्विचित्तता का त्याग करके जो मनुष्य नाम में लग जाता है वह पार हो जाता है। २।

११. जो जीव प्रभु की स्तुति-प्रशंसा करता हैं उसे सहजावस्था का आनन्द (पूर्ण सुख की दशा का आनन्द) मिलता है।

१२. प्रभु-प्रेम उसका सहचर तथा स्नेही बनता है।

१३. (फिर उसे इस प्रकार दिखाई देता है कि) प्रभु स्वयं ही जीवों को उत्पन्न करता है और स्वयं ही उन्हें देन प्रदान करता है।

१४. उसका तन, मन और जीवन प्रभु के अर्पित होते हैं। ३।

१५. उसे असत्य एवं पाप शरीर के लिए दुःख का साधन बनते दिखाई देते हैं।

१६. बाह्य धार्मिक वेष और जाति-वर्ण भी व्यर्थ प्रतीत होते हैं।

१७. (उसे निश्चय हो जाता है कि) जो जन्म लेता है, वह अवश्य मरता है।

१८. और (नानक) केवल अप्रतिहत इच्छा वाले (प्रभु) का नाम ही स्थिर है। ४/११।

(१२)

१. एको सरवरु कमल अनूप।

२. सदा विगासै परमल रूप ।

३. ऊजल मोती चूगहि हंस ।

४. सरब कला जगदीसै अंस । १ ।

५. जो दीसै सो उपजै बिनसै ।

६. बिनु जल सरवरि कमलु न दीसै । रहाउ । १ ।

७. बिरला बूझै पावै भेदु ।

८. साखा तीनि कहै नित बेदु ।

९. नाद बिंद की सुरति समाइ ।

१०. सतिगुरु सेवि परमपदु पाइ । २ ।

११. मुकतो रातउ रंगि रवांतउ ।

१२. राजन राजि सदा बिगसांतउ ।

१३. जिसु तूं राखहि किरपा धारि ।

१४. बडत पाहन तारहि तारि । ३ ।

१५. त्रिभवण महि जोति त्रिभवण महि जाणिआ ।

१६. उलट भई घरु घर महि आणिआ ।

१७. अहिनिसि भगति करे लिव लाइ ।

१८. नानकु तिन के लागै पाइ । ४/१२ ।

पद-अर्थ

सरवरु—सत्संग रूपी सरोवर; **कमल**—अर्थात् गुरु मुख, संत; **परमल**—सुगन्ध; **मोती**—नाम रूपी मोती; **अंस**—अंश, भाग; **नाद**—शब्द रूप, आदेश रूप; **बिंद**—उत्पादक के रूप में; **खांतउ**—स्मरण करता है; **राजन राजि**—महाराजा, प्रभु; **पाहन**—पाषाण; **तारि**—नौका में; **त्रिभवण**—तीनों लोकों में; **उलट भई**—माया से तटस्थ; **अहिनिसि**—दिन-रात्रि ।

टीका

१. सत्संग रूपी सरोवर में सुन्दर-सुन्दर गुरुमुख रूपी कमल होते हैं ।

२. यह सरोवर गुरुमुख रूपी कमलों को खिलाता है और उन्हें सुगन्ध

ग्रौर रूप प्रदान करता है।

३. इसी सरोवर में नाम रूपी निर्मल मोती होते हैं जिन्हें भक्त रूपी हंस चुगते हैं।

४. वे गुरुमुख, उस सर्वशक्तिमान् भगवान् के ग्रंश (भाग) हो जाते हैं। १।

५. (यह सत्य है) कि दृश्यमान जगत् उत्पन्न और नष्ट होता रहता है।

६. (परन्तु विचारणीय तथ्य यह है कि) नाम रूपी जल के बिना सत्संग के सरोवर में गुरुमुख रूपी कमल नहीं रह सकता। १। रहाउ।

७. सत्संग की इस महत्ता को कोई बिरला ही जानता है ग्रौर जो जानता है उसे जीवन-रहस्य का बोध होता है।

८. वेद तीन शाखाओं (त्रिमूर्ति, त्रिगुण आदि) का कथन नित्य करता है (ये माया की दशाएँ हैं। इन्हें समझना है और इनके ऊपर सहजावस्था में पहुंचना है)।

९. जो नाद-रूप (निरंकार) ग्रौर बिन्दु रूपी ब्रह्म (निर्गुण ग्रौर सगुण) के ग्रन्तर के ज्ञान को समाप्त कर दे, अर्थात् प्रभु के एकत्व को जान ले।

१०. वह उच्च ग्राध्यात्मिक अवस्था को प्राप्त होता है। यह ज्ञान गुरु की शरण में आने से मिलता हैं। २।

११. वह (माया के प्रभाव से) मुक्त होता है, नाम रंग में रंगा रहता है ग्रौर स्मरण में मग्न रहता है।

१२. वह राजाओं के राजा परमात्मा में लीन होकर विकसित होता है।

१३. हे प्रभु, तुम जिसे कृपा करके बचा लेते हो (वही बचता है)।

१४. तुम पाप-वश भारी पाषाण बने हुए जीवों को भी नाम की नौका द्वारा पार कर देते हो। ३।

१५. (नाम-स्मरण करने वाले को) तीनों भुवनों अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में तुम्हारी ज्योति दिखाई देती है और वह तुम्हें तीनों भुवनों में व्याप्त जानता है।

१६. उसकी वृत्ति माया से विपरीत दिशा में चल पड़ती है और वह प्रभु के घर को हृदय-घर में ले ग्राता है।

१७. वह रात-दिन ध्यान लगाकर प्रभु-भक्ति करता है।

१८. नानक उसके चरण स्पर्श करता है। ४/१२।

१. गुरमति साची हुजति दूरि ।
२. बहुतु सिआणप लागै धूरि ।
३. लागी मैलु मिटै सच नाइ ।
४. गुरपरसादि रहै लिव लाइ । १ ।
५. है हजूरि हाजरु अरदासि ।
६. दुखु सुखु साचु करते प्रभु पासि । १ । रहाउ ।
७. कूडु कमावै आवै जावै ।
८. कहणि कथनि वारा नहीं आवै ।
९. किआ देखा सूझ बूझ न पावै ।
१०. बिनु नावै मनि त्रिपति न आवै । २ ।
११. जो जनमे से रोगि विआपे ।
१२. हउमै माइआ दूखि संतापे ।
१३. से जन बांचे जो प्रभि राखे ।
१४. सतिगुरु सेवि अंम्रित रसु चाखे । ३ ।
१५. चलतउ मनु राखे अंम्रितु चाखै ।
१६. सतिगुर सेवि अंम्रित सबदु भाखै ।
१७. साचै सबदि मुकति गति पाए ।
१८. नानक विचहु आपु गवाए । ४/१३ ।

पद-अर्थ

धूरि—(अहंकार रूपी) मल; **हजूर**—प्रत्यक्ष; **वारा**—अन्त; **संतापे**—दु:खी होता है; **बांचे**—बचता है; **चलतउ**—दौड़ता (मन); **भाखै**—बोलता है, कहता है; **आपु**—अहन्त्व, अहंकार ।

टीका

१. गुरु की बुद्धि पूर्ण है और सब बाधाएँ (शंकाएँ, तर्क आदि) नष्ट करती है ।

२. केवल अपनी चतुराइयों से अहंकार मिटता नहीं प्रत्युत मन में संचित होता है (गुरु की शिक्षा के श्रद्धा और विश्वास के साथ स्वीकार करने से लाभ होता है)।

३. इस प्रकार संचित हुआ मल केवल सत्य नाम के द्वारा दूर होता है ।

४. परन्तु मनुष्य गुरु की कृपा से ही सुरति स्थिर रख सकता है। १ ।

५. प्रभु सर्वत्र विद्यमान है। उसके सम्मुख होकर (अपना मन निश्छल करके) उससे प्रार्थना करो।

६. अपना समस्त सुख-दु:ख कर्त्ता पुरुष को सत्य सत्य बतलाओ (अपने समस्त दोष स्पष्ट कहो और सुख-दु:ख के कारणों का पता करो)। १ । रहाउ ।

७. जो मनुष्य (अपनी चतुराइयों में रहकर) मिथ्या कर्म करता है, वह जन्म-मरण के चक्र में रहता है।

८. उसके केवल प्रवंचना-पूर्ण वचनों एवं कथनों का कभी अन्त नहीं होता।

९. उसने क्या देखा है? (जीवन से क्या सीखा है?) कुछ नहीं। उसे कोई निर्मम बुद्धि उपलब्ध नहीं हुई।

१०. नाम के बिना किसी के मन में कभी शान्ति नहीं होती। २ ।

११. जो जीव जन्म लेते हैं, वे समस्त अहन्त्व रोग से ग्रस्त होते हैं।

१२. अहन्त्व और माया के कारण बहुत दु:खी होते हैं।

१३. अहन्त्व और माया से वही व्यक्ति बचते हैं जिन्हें प्रभु स्वयं बचाता है।

१४. वे गुरु के कथनानुसार आचरण करके नाम-रस पीते हैं। ३ ।

१५. जो जीव (अहंभाव तथा माया की ओर) दौड़ते हुए मन को रोक लेता है वही अमृत-नाम का रसास्वादन करता है।

१६. वह सदगुरु की सेवा में रहकर अमृत-वाणी बोलता हैं।

१७. वह सत्य-वाणीं-द्वारा मुक्त-गति को प्राप्त होता है।

१८. (नानक) वह अपने अन्त:करण से (अपनी चतुराई का) अहंकार दूर कर लेता है। ४/१३ ।

(१४)

१. जो तिनि कीआ सो सचु थीआ।

२. अंम्रित नामु सतिगुरि दीआ ।
३. हिरदै नामु नाही मनि भंगु ।
४. अनदिनु नालि पिआरे संगु । १ ।
५. हरि जीउ राखहु अपनी सरणाई ।
६. गुर परसादी हरि रसु पाइआ नामु पदारथु नउनिधि पाई । १ । रहाउ ।
७. करम धरम सचु साचा नाउ ।
८. ता कै सद बलिहारै जाउ ।
९. जो हरि राते से जन परवाणु ।
१०. तिन की संगति परम निधानु । २ ।
११. हरि वरु जिनि पाइआ धन नारी ।
१२. हरि सिउ राती सबदु वीचारी ।
१३. आपि तरै संगति कुल तारै ।
१४. सतिगुरु सेवि ततु वीचारै । ३ ।
१५. हमरी जाति पति सचु नाउ ।
१६. करम धरम संजमु सत भाउ ।
१७. नानक बखसे पछ न होइ ।
१८. दूजा मेटे एको सोइ । ४/१४ ।

पद-अर्थ

थीआ—हो गया; **भंगु**—भंग, विघ्न; **अनुदिनु**—रातदिन; सर्वदा; **निधानु**—भण्डार; **वरु**—पति; **संजमु**—नियन्त्रण; **सत भाउ**—सत्य प्रेम; **दूजा**—द्वैत ।

टीका

१. जिस मनुष्य को प्रभु ने अपना लिया है, वह सत्य-प्रभु के स्वरूप वाला हो जाता है ।
२. उसे सद्गुरु ने अमर कर देने वाला नाम दे दिया है ।

३. क्योंकि उसके हृदय में नाम वसता है, अतः उसके कार्य में कोई विघ्न नहीं पड़ सकता।

४. उसके लिए सर्वदा ही प्रभु का सहवास बना रहता है। १।

५. हे प्रभु, तुम कृपा करके जिसे अपनी शरण में रखते हो।

६. उसे गुरु की कृपा से नाम रस प्राप्त होता है और नाम पदार्थ की प्राप्ति से मानो उसे समस्त कोष मिल जाते हैं। १। रहाउ।

७. जिन्होंने सत्य और सत्य नाम को समस्त कर्म-धर्म समझा है

८. मै उन पर सर्वदा न्यौछावर होता हूं।

९. जो प्रभु-नाम में रंगे रहते हैं; वे ही उसकी सभा में स्वीकृत होते हैं।

१०. उनकी संगति से ही मूल्यवान् कोष मिलता है। २।

११. वह जीव रूपी नारी सौभाग्यशालिनी है जिसे हरि-पति प्राप्त हुआ है।

१२. वह हरि-नाम में अनुरक्त है, शब्द (नाम-वाणी) का मनन करती है।

१३. वह स्वयं संसार-सागर से पार हो जाती है और सहचर-सहचरियों को पार करती है।

१४. वह सद्गुरु की सेवा (शरण) में रहकर सार वस्तु (वास्तविक जीवन आदर्श) का चिन्तन करती है। ३।

१५. हे प्रभु, तुम्हारा नाम ही मेरे लिए उच्च जाति और उच्च कुल है।

१६. तुम्हारा निश्छल प्रेम ही मेरे लिए कर्म, धर्म और संयम है।

१७. (नानक) जिसे प्रभु अपना नाम प्रदान कर दे उससे फिर कर्मों का कोई लेखा नहीं पूछा जाता।

१८. नाम उसके हृदय की द्वैत भावना मिटा देता है और उसे सर्वत्र एक प्रभु दिखाई देता है। ४/१४।

(१५)

१. इकि आवहि इकि जावहि आई।

२. इकि हरि राते रहहि समाई।

३. इकि धरनि गगन महि ठउर न पावहि।

४. से करमहीण हरिनामु न धिआवहि। १।

५. गुर पूरे ते गति मिति पाई।

६. इहु संसारु बिखु वत अति भउजलु गुर सबदी हरि पारि लंघाई । १ । रहाउ ।

७. जिन्ह कउ आपि लए प्रभु मेलि ।

८. तिन कउ कालु न साकै पेलि ।

९. गुरमुखि निरमल रहहि पिआरे ।

१०. जिउ जल अंभ ऊपरि कमल निरारे । २ ।

११. बुरा भला कहु किस नो कहीऐ ।

१२. दीसै ब्रहमु गुरमुखि सचु लहीऐ ।

१३. अकथु कथउ गुरमति वीचारु ।

१४. मिलि गुर संगति पावउ पारु । ३ ।

१५. सासत बेद सिम्रिति बहु भेद ।

१६. अठसठि मजनु हरि रसु रेद ।

१७. गुरमुखि निरमलु मैलु न लागै ।

१८. नानक हिरदै नामु वडे धुरि भागै । ४/१५ ।

पद-अर्थ

धरनि—पृथ्वी; **गगन**—आकाश; **ठउर**—ठिकाना; **करमहीण**—दुर्भाग्यवान्; **गति मिति**—उच्च जीवन की अवस्था का अनुमान; **भउजलु**—संसार-सागर; **पेलि न साके**—पीडित नहीं कर सकती; **अंभ**—जल; **निरारे**—अलिप्त; **पारु**—पार-तट; **अठसठि**—अड़सठ तीर्थ: **मजनु**—स्नान; **रेद**—हृदय में ।

टीका

१. अनेक जीव विश्व में आते हैं और आकर (निष्फल) चले जाते हैं ।

२. परन्तु अनेक जीव आकर हरि के प्रेम में अनुरक्त होकर उसके नाम में ही लीन रहते हैं ।

३. अनेक जीव ऐसे भी हैं, जिन्हें पृथ्वी आकाश में (किसी स्थान पर) आश्रय नहीं मिलता ।

४. वे भाग्यहीन हैं जो हरि-नाम का स्मरण नहीं करते । १ ।

५. पूर्ण गुरु से ही गति (उच्च जीवन की अवस्था) का अनुमान होता है।

६. गुरु की शिक्षा से ही ज्ञान होता है कि यह संसार माया रूपी विष का महासागर है और गुरु अपने उपदेश से ही जीवों को इससे पार करता है। १। रहाउ।

७. जिन्हें प्रभु अपने साथ मिला लेता है,—

८. उन्हें मृत्यु भी दु:खी नहीं कर सकती।

९. वे गुरुमुख प्रिय गुरु के समक्ष होकर इस प्रकार माया-सागर में निर्मल रहते हैं,—

१०. जिस प्रकार जल में कमल जल के ऊपर ही ऊपर रहता है। २।

११. (परन्तु हे भाइयों,) किसे बुरा कहा जाए और किसे अच्छा माना जाए;

१२. प्रत्येक प्राणी के भीतर एक प्रभु ही व्याप्त है—गुरु से यह सत्य प्राप्त होता है।

१३. मैंने गुरु की शिक्षा से ही उस अकथनीय प्रभु का कुछ कथन और कुछ विचार किया है।

१४. और मैं गुरु की संगति में रहकर ही संसार-सागर से पार हो जाऊँगा। ३।

१५. यदि हृदय में नाम है तो मनुष्य शास्त्रों, स्मृतियों और वेदों के रहस्य को जानता है।

१६. यही अड़सठ तीर्थों का स्नान है।

१७. गुरु द्वारा ही निर्मल हुआ जाता है फिर दोबारा मैल नहीं लगती।

१८. (नानक) जिसके हृदय में नाम है, वह प्रारम्भ से ही भाग्यशाली है। ४/१५।

(१६)

१. निवि निवि पाइ लगउ गुर अपुने आतमरामु निहारिआ।

२. करत बीचारु हिरदै हरि रविआ हिरदै देखि बीचारिआ। २। १।

३. बोलहु रामु करे निसतारा।

४. गुर परसादि रतनु हरि लाभै मिटै अगिआनु होइ

उजीआरा । १ । रहाउ ।

५. रवनी रवै बंधन नहीं तूटहि विचि हउमै भरमु न जाई ।

६. सतिगुरु मिलै त हउमै ता तूटै को लेखै पाई । २ ।

७. हरि हरि नामु भगति प्रिअ प्रीतमु सुख सागरु उरधारे ।

८. भगति वछलु जग जीवनु दाता मति गुरमति हरि निसतारे । ३ ।

९. मन सिउ जूझि मरै प्रभु पाए मनसा मनहि समाए ।

१०. नानक क्रिपा करे जग जीवनु सहज भाइ लिव लाए । ४/१६ ।

पद-अर्थ

पाइ—चरण; **आतमरामु**—प्रभु; **निहारिआ**—देखा; **रविआ**—मिला; **रवनी**—जिहवा; **उरधारे**—हृदय में बसाए; **भगति वछलु**—भक्ति को प्रेम करने वाला; **निसतारे**—पार कर देता है; **जूझि मरे**—लड़ मरे; **मनसा**—तृष्णा; **सहज भाइ**—अनायास ;

टीका

१. मैं प्रणत होकर गुरु का चरण-स्पर्श करता हूं, जिसकी कृपा से मैंने अन्दर बसे हुए प्रभु को देखा हैं ।

२. मैंने उसका विचार कर-करके हृदय में उसका स्मरण किया है, फिर हृदय में उसके दर्शन करके उसकी महत्ता को समझा है । १ ।

३. हे भाई, राम-नाम का स्मरण करो, स्मरण ही संसार-सागर से पार करता है ।

४. गुरु की कृपा से नाम रूपी रत्न मिलता है, जिससे अज्ञान दूर होता है और प्रकाश हो जाता है । १ । रहाउ ।

५. केवल जिहवा से रटने से माया के बन्धन नहीं टूटते, जीव अहन्त्व में रहता है और उसकी द्विचित्तता बनी रहती है ।

६. सद्गुरु के मिलाप से अहंभाव नष्ट हो जाता है और फिर जीव प्रभु की सभा में स्वीकृत होता है । २ ।

७. जो मनुष्य हरि का नाम-स्मरण करता है, भक्ति करता है और सुखों के सागर प्रिय-प्रियतम प्रभु को हृदय में बसाता है,—

८. उसे, भक्ति को प्रेम करने वाला, विश्व को जीवन देने वाला प्रभु

गुरु-शिक्षा-द्वारा संसार-सागर से पार कर देता है। ३।

९. जो मनुष्य अपने मन से संघर्ष करता है और अहंभाव को मारता है, उसे प्रभु मिलता है और वह मन की कामनाएं मन के भीतर ही समाप्त कर देता है।

१०. (नानक) जिस पर प्रभु कृपा करता है, वह सहज भाव से (अनायास) प्रभु में चित्त-वृत्ति लगाए रखता है। ४/१६।

(१७)

१. **किस कउ कहहि सुणावहि किस कउ किसु समझावहि समझि रहे।**
२. **किसै पड़ावहि पड़ि गुणि बूझे सतिगुर सबदि संतोखि रहे। १।**
३. **ऐसा गुरमति रमतु सरीरा।**
४. **हरि भजु मेरे मन गहिर गंभीरा। १। रहाउ।**
५. **अनत तरंग भगति हरि रंगा।**
६. **अनदिनु सूचे हरिगुण संगा।**
७. **मिथिआ जनमु साकत संसारा।**
८. **राम भगति जनु रहै निरारा। २।**
९. **सूची काइआ हरि गुण गाइआ।**
१०. **आतमु चीनि रहै लिव लाइआ।**
११. **आदि अपारु अपरंपरु हीरा।**
१२. **लालि रता मेरा मनु धीरा। ३।**
१३. **कथनी कहहि कहिह से मूए।**
१४. **सो प्रभु दूरि नाही प्रभु तूं है।**
१५. **सभु जगु देखिआ माइआ छाइआ।**
१६. **नानक गुरमति नाम धिआइआ। ४/१७।**

पद-अर्थ

रमत—रमा हुआ, प्रभु; **गहिर गंभीर**—गहरा और अथाह; **अनत**—अनेक; **साकत**—मायाधारी; **निरारा**—अलिप्त; **चीनि**—समझ कर; **अपरंपरु**—अपार; **छाइआ**—पर्दा, प्रतिच्छाया;

टीका

१. (जो गुरु की शिक्षा से गहन गंभीर प्रभु को जानकर स्वयं भी गहन-गंभीर हो गए हैं, वे उस विषय में किसी को क्या बनाएँ ? प्रत्येक मनुष्य के लिए स्वयं देखना आवश्यक है। कहने से कुछ नहीं बनता) वे स्वयं तो समझ गए हैं परन्तु किसी अन्य को क्या बताएँ, क्या सुनाएँ और क्या समझाएँ ? (उनकी गहराई तक कौन पहुँचेगा ?)।

२. वे आप पढ़कर, विचारकर जान चुके हैं, किसी को क्या पढ़ाएँ ? वे गुरु के शब्द से संतोष (गम्भीरता) में विचरते हैं। १।

३. गुरु की शिक्षा के अनुसार, ऐसे प्रभु को, जो सब देहों में व्याप्त है,—

४. और जो अथाह और गहरा हैं, हे मेरे मन, स्मरण कर (तू स्वयं भी उसके समान ही गहन और गंभीर हो जायगा)। १। रहाउ।

५. प्रभु के प्रेमी भक्तों के भीतर भक्ति की ऐसी अनेक तरंगें उछलती हैं।—

६. वे सदा पवित्र हैं। क्योंकि, वे प्रभु के गुणों को अपने साथ रखते हैं।

७. (दूसरी ओर) मायाधारियों का जन्म निष्फल जाता है—

८. और प्रभु के भक्त माया से लिप्त नहीं होते हैं। २।

९. जो प्रभु के गुणों का गान करता हैं उसका शरीर पवित्र होता है।

१०. वह अपने आत्मा को पहचान कर प्रभु से लौ लगाए रखता है।

११. प्रभु सब का आदि है उसका पारावार नहीं है, वह परात्पर है, वह अमूल्य हीरक है।

१२. उस लाल में अनुरक्त होकर मेरा मन स्थिर हो गया है। ३।

१३. जो भगवान् के विषय में केवल बातें बनाते हैं, वे दुःखी होते हैं।

१४. क्योंकि, प्रभु दूर नहीं है (उनकी वास्तविकता को समझता है), हे स्वामी, तुम तो विश्व के प्रभु हो।

१५. उन्हें इस तथ्य का बोध हो गया है कि समस्त संसार माया की प्रतिच्छाया है,—

१६. (नानक) जिन्होंने गुरु के उपदेश के अनुसार नाम-स्मरण किया है। ४/१७।

१. कोई भीखकु भीखिआ खाइ ।
२. कोई राजा रहिआ समाइ ।
३. किसही मानु किसै अपमानु ।
४. ढाहि उसारे धरे धिआनु ।
५. तुझ ते वडा नाही कोइ ।
६. किसु वेखाली चँगा होइ । १ ।
७. मैं तां नामु तेरा आधारु ।
८. तूँ दाता करणहारु करतारु । १ । रहाउ ।
९. वाट न पावउ वीगा जाउ ।
१०. दरगह बैसण नाही थाउ ।
११. मन का अंधुला माइआ का बंधु ।
१२. खीन खराबु होवै नित कंधु ।
१३. खाण जीवण की बहुती आस ।
१४. लेखै तेरै सास गिरास । २ ।
१५. अहिनिसि अंधुले दीपकु देइ ।
१६. भउजल डूबत चिंत करेइ ।
१७. कहहि सुणहि जो मानहि नाउ ।
१८. हउ बलिहारै ता कै जाउ ।
१९. नानकु एक कहै अरदासि ।
२०. जीउ पिंडु सभु तेरै पासि । ३ ।
२१. जां तूं देहि जपो तेरा नाउ ।
२२. दरगह बैसण होवै थाउ ।
२३. जां तुधु भावै ता दुरमति जाइ ।
२४. गिआनु रतनु मनि बसै आइ ।
२५. नदरि करे ता सतिगुरु मिलै ।
२६. प्रणवति नानकु भवजलु तरै । ४ । १८ ।

पद-अर्थ

भीखकु—भिक्षुक; **अपमानु**—अपमान, अनादर; **वाट**—(सरल) मार्ग; **वीणा**—वक्र; **बंधु**—बद्ध; **खीन**—क्षीण; **कंधु**—शरीर; **गिरास**—ग्रास, खाना-पीना; **प्रणवति**—सप्रणाम कहता है; **भवजलु**—संसार-सागर।

टीका

१. कोई उसके आदेश से भिक्षुक बनकर भिक्षा करके खा रहा है।

२. कोई राजा होकर (राज्य-सुख से) मत्त है।

३. प्रभु किसी को आदर देता है और किसी को अनादर।

४. वह स्वयं ही सब कुछ नष्ट करने वाला और बनाने वाला है। वही सब की रक्षा करता है।

५. हे प्रभु, तुमसे महत्तर कोई नहीं है (अतः यह समस्त खेल तुम्हारा ही बनाया हुआ है)।

६. मैं किसको तुम्हारा प्रतिपक्ष ग्रहण करने के योग्य कहूं। कोई तुमसे बेहतर हो तो कहूं। १।

७. मुझे तुम्हारे नाम का ही अवलम्ब है।

८. तुम दाता हो, कर्तृत्व-शक्तिशाली और विश्व के कर्त्ता हो। १। रहाउ।

९. अतः तुम्हारी सभा में मेरा स्थान नहीं हो सकता।

१०. मुझे सन्मार्ग का ज्ञान नहीं होता। मैं कुमार्ग-गामी रहता हूँ।

११. मैं मन के वश होने के कारण अज्ञानी हूँ, माया-मोह से बद्ध हूं।

१२. मेरा शरीर क्षीण और विनष्ट होता जा रहा है।

१३. मुझे भोग भोगने और जीवित रहने की प्रबल आशा है।

१४. परन्तु (मैं भूल जाता हूं कि) मेरा प्रत्येक श्वास और प्रत्येक ग्रास तुम्हारी गणना में है (मुझे प्रत्येक श्वास का लेखा-जोखा देना पड़ता है)। २।

१५. दिन-रात्रि (सदैव) के अन्धों को तुम (सन्मार्ग के लिए) प्रकाश देते हो।

१६. तुम संसार-सागर में मग्न होते हुए प्राणियों की चिन्ता करते हो।
१७. जो मनुष्य तुम्हारा नाम जपते, सुनते और मानते हैं, —
१८. मैं उन पर न्यौछावर जाता हूं।
१६. हे प्रभु, नानक एक ही विनय करता है—
२०. मेरा आत्मा और मेरा शरीर तुम्हारे आश्रित हैं (जिस प्रकार चाहो, उसी प्रकार इन्हें रखो)। ३।
२१. हे प्रभु, जब तुम अपना नाम दो तभी मैं जप सकता हूं,—
२२. और तभी तुम्हारी सभा में मुझे स्थान प्राप्त हो सकता है।
२३. तुम्हारी इच्छा होने पर ही दुर्बुद्धि दूर होती है,—
२४. और उत्तम ज्ञान हृदय में प्रकट होता है।
२५. तुम्हारी कृपा होने पर ही सद्गुरु मिलता है।
२५. नानक विनय करता है कि तभी जीव संसार-सागर से पार होता है। ४/१८।

(१६)

१. दुध बिनु धेनु पंख बिनु पंखी जल बिनु उतभुज कामि नाही।
२. किआ सुलतानु सलाम विहूणा अंधी कोठी तेरा नामु नाही। १।
३. की बिसरहि दुखु बहुता लागै।
४. दुखु लागै तूं विसरु नाही। १। रहाउ।
५. अखी अंधु जीभ रसु नाही कंनी पवणु न वाजै।
६. चरणी चलै पजूता आगै विणु सेवा फल लागे। २।
७. अखर बिरख बाग भुइ चोखी सिंचित भाउ करेही।
८. सभना फलु लागै नामु एको बिनु करमा कैसे लेही। ३।
६. जेते जीअ तेते सभि तेरे विणु सेवा फलु किसै नाही।
१०. दुखु सुखु भाणा तेरा होवै विणु नावै जीउ रहै नाही। ४।
११. मति विचि मरणु जीवणु होरु कैसा जा जीवा तां जुगति नाही।
१२. कहै नानकु जीवाले जीआ जह भावै तह राखु तुही। ५/१६।

पद-अर्थ

धेनु—गौ; उतभुज—उद्भिज्ज, वनस्पति; कोठी—अर्थात् हृदय;

की—क्यों; **पावणु**—पवन, ध्वनि; **पजूता**—पकड़ा हुआ, काष्ठ-दण्ड का अवलम्ब लेकर; **चोखी**—अच्छी; **सिंचित**—पानी सीचता (देता) है; **जीअ**—जीव; **जुगति**—युक्ति ।

टीका

१. दूध के बिना गौ किसी प्रयोजन की नहीं; पंखों के बिना पक्षी अकर्मण्य हो जाता है; पानी के बिना वृक्ष निष्फल हो जाते हैं ।

२. वह राजा क्या है जिसे कोई प्रणाम नही करता । इसी प्रकार, हे प्रभु, जिसमें तुम्हारा ज्ञान नहीं है वह हृदय भी अंधेरा कोठा है । १ ।

३. हे प्रभु, तुम मुझे क्यों विस्मृत कर देते हो ? तुम मुझे भूल जाते हो तो मुझे महा दुःख होता है ।

४. (क्योंकि) मुझे दुःख होता है, अतः तुम कृपा करो, मुझे भूलो मत । १ । रहाउ ।

५. (वृद्धावस्था में इस जीव के) नेत्रों के समक्ष अन्धकार आना प्रारम्भ हो जाता है, जिह्वा में अशन-पान के आस्वादन की शक्ति नहीं रहती, श्रोत्र श्रवण-शक्ति से हीन हो जाते हैं ।

६. अन्य का अवलम्ब लिए बिना यह पैरों से चल नहीं सकता । हरि-सेवा के बिना इसके जीवन की यह दशा हो जाती है (अस्वाभाविक जीवन न बनने देता तो वृद्धावस्था के प्रभावों से बहुत सीमा तक बँध जाता) । २ ।

७. यदि गुरु के अक्षर (वचन) उपवन के वृक्ष हों, शुद्ध हृदय उपवन की स्वच्छ पृथ्वी हो, प्रभु-प्रेम रूपी जल इन वृक्षों को दिया जाए,—

८. तो इस उपवन के समस्त वृक्षों में नाम-फल लगता है—परन्तु यह फल प्रभु-कृपा के बिना किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ? । ३ ।

९. हे प्रभु, ये समस्त जीव तुम्हारे ही हैं; परन्तु तुम्हारी सेवा के बिना किसी को भी फल नहीं मिलता ।

१०. दुःख और सुख तुम्हारी इच्छा के अधीन हैं, परन्तु नाम-स्मरण के बिना जीव सुख-दुःख में शान्त-चित्त नहीं रह सकता है । ४ ।

११. गुरु की शिक्षा प्राप्त करके जीव का अहंभाव से मुक्त होना वास्तविक जीवन है; अन्यथा अन्य प्रकार का जीवन किस प्रयोजन

का है। यदि मैं अन्य प्रकार का जीवन व्यतीत करूं तो उसमें शुद्ध जीवन-युक्ति नहीं हो सकती।

१२. नानक कहता है कि प्रभु ही जीवों को जीवन प्रदान करता है। अतः हे प्रभु, जिस प्रकार तुम्हें अच्छा लगे उसी प्रकार मुझे रखो। ५/१९।

(२०)

१. काइआ ब्रहमा मनु है धोती।
२. गिआनु जनेऊ धिआनु कुसपाती।
३. हरिनामा जसु जाचउ नाउ।
४. गुर परसादी ब्रहमि समाउ। १।
५. पांडे ऐसा ब्रहम बीचारु।
६. नामे सुचि नामो पड़उ नामे चजु आचारु। १। रहाउ।
७. बाहरि जनेऊ जिचरु जोति है नालि।
८. धोती टिका नामु समालि।
९. ऐथे ओथे निबही नालि।
१०. विणु नावै होरि करम न भालि। २।
११. पूजा प्रेम माइआ परजालि।
१२. एको वेखहु अवरु न भालि।
१३. चीनै ततु गगन दस दुआर।
१४. हरि मुखि पाठ पड़ै बीचार। ३।
१५. भोजनु भाउ भरमु भउ भागै।
१६. पाहरूअरा छबि चोरु न लागै।
१७. तिलकु लिलाटि जाणै प्रभु एकु।
१८. बूझै ब्रहमु अंतरि विवेकु। ४।
१९. आचारी नहीं जीतिआ जाइ।
२०. पाठ पड़ै नही कीमति पाइ।
२१. असट दसी चहु भेदु न पाइआ।
२२. नानक सतिगुरि ब्रहम दिखाइआ। ५/२०।

पद-अर्थ

ब्रहमा—ब्राह्मण; **कुसपाती**—कुश का छल्ला; **जाचउ**—मांगता हूं; **चजु आचारु**—धार्मिक; **कर्म**—काण्ड; **परजालि**—भली भांति जला दे; **पाहरूअरा**—प्रहरी; **छबि**—रोब के कारण, ओजस्विता के कारण; **लिलाटि**—मस्तक पर; **बिबेकु**—निर्णय करने वाली बुद्धि।

टीका

१. (मैं इस प्रकार का ब्राह्मण बनना चाहता हूं जिसका धार्मिक आचार व्यवहार यहां दिखलाया गया हैं) पवित्र शरीर ब्राह्मण हो, मन धोती हो,—

२. ज्ञान (प्रभु की पहचान) उसका यज्ञोपवीत हो और प्रभु में लौ (ध्यान) कुश का छल्ला ('पवित्री') हो,—

३. मैं (इस प्रकार का ब्राह्मण होकर) नाम और गुण-स्तुति (रूप दक्षिणा) मांगता हूं,—

४. जिससे गुरु की कृपा से नाम के बल से मैं प्रभु में लीन हो जाऊँ।

५. हे पाण्डे, मेरा ब्राह्मण-विषयक विचार (ख्याल) यह है : । १ । रहाउ

६. (कि) मैं नाम में ही पवित्रता समझता हूं, मैं नाम रूपी वेद ही पढ़ता हूँ और नाम-स्मरण का ही कर्म-काण्ड करता हूँ।

७. बाह्य यज्ञोपवीत तभी तक साथ निभाता है जब तक शरीर में आत्मा है।

८. अत:, प्रभु का नाम हृदय में संभाल-यह ही धोती है और यही तिलक।

९. यह नाम ही इस लोक और परलोक में तेरा साथी बनेगा।

१०. अत: हे ब्राह्मण, (नाम ही श्रेष्ठ कर्म है) अन्य कर्मों को खोजता न फिर। २।

११. देवपूजा का प्रेम यह है कि अपने भीतर की तृष्णा को भली-भांति जला दे।

१२. एक प्रभु का अन्वेषण कर, अन्य अन्वेषण का त्याग करदे।

१३. तत्त्व-भूत प्रभु को समझना ही दशम् द्वार का निवास है।

१४. मुख में हरि नाम का होना ही वेद का अध्ययन और चिन्तन है। ३।
१५. प्रभु-प्रेम मूर्तियों को भोग लगाना है। इस प्रकार समस्त भ्रम, भय दूर हो जाते हैं।
१६. यदि प्रभु-नाम हृदय पर प्रहरी हो तो उसके प्रताप के भय से कामादिक चोर नहीं लूट सकते।
१७. एक प्रभु को जानना ही मस्तक पर तिलक लगाना है।
१८. अभ्यन्तर में व्याप्त प्रभु को जान लेना ही वास्तविक ज्ञान है। ४।
१९. हे ब्राह्मण, केवल कर्म-काण्ड से प्रभु को वश में नहीं किया जा सकता।
२०. और न केवल पाठ से ही उसका मूल्यांकन किया जा सकता है।
२१. अठारह पुराणों और चार वेदों को भी उसका रहस्य ज्ञात नहीं हो सका।
२२. परन्तु (नानक) सद्गुरु ने वह प्रभु दिखा दिया है। ५/२०।

(२१)

१. सेवकु दासु भगतु जनु सोई।
२. ठाकुर का दासु गुरमुखि होई।
३. जिनि सिरि साजी तिनि फुनि गोई।
४. तिसु बिनु दूजा अवरु न कोई। १।
५. साचु नामु गुर सबदि वीचारि।
६. गुरमुखि साचे साचै दरबारि। १। रहाउ।
७. सचा अरजु सची अरदासि।
८. महली खसमु सुणे साबासि।
९. सचै तखति बुलावै सोइ।
१०. दे वडिआई करे सु होइ। २।
११. तेरा ताणु तू है दीबाणु।
१२. गुर का सबदु सचु नीसाणु।
१३. मंने हुकमु सु परगटु जाइ।
१४. सचु नीसाणै ठाक न पाइ। ३।

१५. पंडित पढ़हि वखाणहि बेदु ।

१६. अंतरि बसतु न जाणहि भेदु ।

१७. गुर बिनु सोझी बूझ न होइ ।

१८. साचा रवि रहिआ प्रभु सोइ । ४ ।

१९. किआ हउ आखा आखि वखाणी ।

२०. तूँ आपे जाणहि सरब विडाणी ।

२१. नानक एको दरु दीबाणु ।

२२. गुरमुखि साचु तहा गुदराणु । ५/२१ ।

पद-अर्थ

सिरि—सृष्टि; **गोई**—नष्ट की; **ताणु**—बल; **दीबाणु**—दरबार, सभा; **नीसाणु**—मुद्रांकित आदेश पत्र; **ठाक**—रोक; **विडाणी**—आश्चर्य-जनक चरित्रों वाले; **गुदराणु**—गुज़रान, निर्वाह ।

टीका

१. उस व्यक्ति (पुरुष) को भगवान् का सेवक समझो जो भक्त भी है,—

२. और गुरु का आश्रित होकर एक प्रभु का दास हो गया है ।

३. (उसे प्रभु के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता (उसका विश्वास अविचल है । क्योंकि, वह जानता है कि) जिस प्रभु ने सृष्टि बनाई है; वही पुनः इसका संहार करता है ।

४. उसके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है । १ ।

५. गुरु के शब्द की सहायता से सत्य नाम को विचारकर,—

६. गुरु के सम्मुख होने वाले (गुरुमुख) प्रभु की सभा में सत्यवान् ठहराये जाते हैं । १ । रहाउ ।

७. वे प्रभु के सम्मुख सत्य कथन और सत्य विनय करते है (मिथ्या वस्तु नहीं मांगते; सत्याचार आदि का दान मांगते हैं) ।

८. प्रभु अपने महल में विराजमान रहकर इन प्रार्थनाओं को सुनता है और 'साधु' कहता है ।

९. अविचल सिंहासन पर बैठा हुआ वह सेवक को बुलाता है ।—

१०. और उसे गौरव प्रदान करता है। तत्पश्चात्—जो प्रभु करता है, वही (उचित) होता है (सेवक प्रभु की इच्छा को शिरोधार्य मानता है)। २।

११. हे प्रभु, गुरुमुख को तुम्हारा ही बल है, तुम्हारा ही अवलम्ब है।

१२. गुरु-शब्द उसके पास प्रभु की सभा में काम आने वाला प्रमाण-पत्र है।

१३. (वह आज्ञा मानता है और) जो भी आज्ञा मानता है वह ईश्वरीय सभा में शोभा पाता है।

१४. उसके पास गुरु-शब्द का वास्तविक प्रमाण-पत्र है। उसे ईश्वरीय सभा में प्रविष्ट होने से कोई नहीं रोकता। ३।

१५. पण्डित वेद पढ़ते हैं, तथा अन्य लोगों को व्याख्या करके सुनाते हैं।

१६. परन्तु इस रहस्य को नहीं जानते कि परमात्मा अपने अन्तःकरण में ही है।

१७. गुरु के बिना यह तथ्य अवगत नहीं होता है।

१८. कि वह सत्य प्रभु सर्वत्र व्याप्त है। ४।

१९. हे प्रभु, मैं उस गुरु मुख की महत्ता के विषय में क्या कहूं और क्या व्याख्यान करूँ?

२०. हे असीम आश्चर्यजनक चरित्रों वाले, तुम स्वयं ही सब कुछ जानते हो।

२१. (नानक), गुरुमुख का एक ही द्वार है, आश्रय है।

२२. वहां उसका वह सत्यरूप प्रभु ही निर्वाह (अवलम्बदाता) है। ५/२१।

(२२)

१. काची गागरि देह दुहेली उपजै बिनसै दुखु पाई।

२. इहु जगु सागरु दुतरु किउ तरीऐ बिनु हरिगुर पारि न पाई। १।

३. तुझ बिनु अवरु न कोई मेरे पिआरे तुझ बिनु अवरु न कोइ हरे।

४. सरबी रंगी रूपी तूं है तिसु बखसे जिसु नदरि करे। १। रहाउ।

५. सासु बुरी घरि वासु न देवै पिर सिउ मिलण न देइ बुरी।

६. **सखी साजनी के हउ चरन सरेवउ हरिगुर किरपा ते नदरि धरी । २ ।**

७. **आपु बीचारि मारि मनु देखिआ तुम सा मीतु न अवरु कोई ।**

८. **जिउ तूं राखहि तिव ही रहणा दुखु सुखु देहहि करहि सोई । ३ ।**

९. **आसा मनसा दोऊ बिनासत त्रिहु गुण आस निरास भई ।**

१०. **तुरीआवसथा गुरमुखि पाईऐ संत सभा की ओट लही । ४ ।**

११. **गिआन धिआन सगले सभि जप तप जिसु हरि हिरदै अलख अभेवा ।**

१२. **नानक रामनामि मनु राता गुरमति पाए सहज सेवा । ५/२२ ।**

पद-अर्थ

काची गागरि—देह रूपी कच्चा घड़ा ; **दुहेली**—दु:खी ; **दुतरु**—दुस्तर ; **सासु**—अर्थात् माया ; **सरेवउ**—सेवा करती हूँ ; **आसा मनसा**—आशा और इच्छा ; **त्रिहु गुण**—त्रिगुणात्मिका माया ; **तुरीआवसथा**—तुरीय अवस्था, सहज पद ।

टीका

१. शरीर कच्ची गागर के समान द्रुतविनाशशील है और (विकारों के प्रभाव से) दु:खी रहता है । यह जन्म लेता है, दु:खी रहता है और नष्ट हो जाता है ।

२. (जिस संसार-सागर में इस का वास है) वह दुस्तर है । तब यह कच्ची गागर किस प्रकार इससे तैरकर पार हो ? गुरु के बिना पार नहीं हुआ जा सकता । १ ।

३. हे मेरे प्रिय प्रभु, तुम्हारे बिना मेरा कोई अवलम्ब नहीं, सर्वथा कोई अवलम्ब नहीं ।

४. (तुम कहीं दूर नहीं हो) तुम समस्त रंगों-रूपों में व्याप्त हो परन्तु वह जिस पर कृपा करता है उसे क्षमा कर देता है ।। रहाउ ।

५. माया रूपी मेरी दुष्ट सास मुझे हृदय में स्थिर नहीं रहने देती और वहां हृदय में निवास करने वाले प्रभु-पति से मिलने नहीं देती (मुझे सांसारिक पदार्थों के मोह में मग्न रखती है) ।

६. मैं सत्संगी सहेलियों के पैर छूती हूँ—सत्संग में गुरु की कृपा से प्रभु-पति कृपा-दृष्टि रखता है। २।

७. आत्मबोध करके और अपने मन के चांचल्य को समाप्त करके ज्ञात हुआ है कि हे प्रभु, मनुष्य का तुम्हारे समान कोई मित्र नहीं है।

८. तुम जिस प्रकार रखते हो उसी प्रकार हम रहते हैं, तुम ही दुःख-सुख देते हो। जो तुम करते हो, वही होता है। ३।

९. जीव रूपी नारी सत्संग का अवलम्ब लेकर आशा और तृष्णा दोनों समाप्त करती हैं और त्रिगुणात्मिका माया की आशाओं से शून्य हो गई है।

१०. गुरु के उपदेश से सहजावस्था (पूर्ण ज्ञान और स्थिरता की दशा जो तीनों गुणों से परे है) प्राप्त की जाती है, यदि सत्संग की ओट प्राप्त हो जाए। ४

११. जिस जीव के हृदय है उस प्रभु का वास है, जो देखा नहीं जाता जिसका रहस्य नहीं पाया जाता, वह मानो पूर्ण ज्ञानी, ध्यानी, जपी और तपी बन चुका है।

११. (नानक) उसका मन राम-नाम में रंगा जाता है और गुरु की शिक्षा से वह सहज सेवा प्राप्त करता है अर्थात् स्वाभाविक रूप से प्रभु सेवा में लगता है। ५/२२।

(२३)

१. मोहु कुटंबु मोहु सभ कार।
२. मोहु तुम तजहु सगल वेकार। १।
३. मोहु अरु भरमु तजहु तुम्ह बीर।
४. साचु नामु रिदे रवै सरीर। १। रहाउ।
५. सचु नामु जा नवनिधि पाई।
६. रोवै पूतु न कलपै भाई। २।
७. एतु मोहि डूबा संसारु।
८. गुरमुखि कोई उतरै पारि। ३।
९. एतु मोहि फिरि जूनी पाहि।

१०. **मोहे लागा जमपुरि जाहि । ४ ।**

११. **गुर दीखिआ ले जपु तपु कमाहि ।**

१२. **ना मोहु तूटै ना थाइ पाहि । ५ ।**

१३. **नदरि करे ता एहु मोहु जाइ ।**

१४. **नानक हरि सिउ रहै समाइ । ६/२३ ।**

पद-अर्थ

कुटंबु—परिवार; **वीर**—हे वीर, हे भाई; **कलपै**—दुःखी होता है; **जमपुरि**—यमपुरी; **दीखिग्रा**—दीक्षा, शिक्षा; **थाह पाइ**—स्थान पाता है, स्वीकृत होता है ।

टीका

१. मोह-वश ही परिवार बनता है, मोह ही विश्व का सम्पूर्ण कार्यक्रम चलाता है ।

२. परन्तु, हे भाई, यह मोह ही सम्पूर्ण विकारों और पापों का कारण भी है । इसे त्याग दीजिए । १ ।

३. हे भाई, मोह और मन की संशयित अवस्था दूर कर ।

४. तभी मनुष्य सत्य नाम को हृदय में स्मरण कर सकता है । १ । रहाउ ।

५. जब मनुष्य को सत्य नाम का नवनिधि से पूर्ण कोष्ठ प्राप्त होता है (मोह नष्ट होता है)—

६. तब एक दूसरे के वियोग में कोई भी नहीं रोता (मोह ही दुःख का कारण है) । २ ।

७. समस्त संसार इस मोह में मग्न पड़ा है ।

८. कोई विरला ही गुरु की कृपा से इस संसार-सागर से पार होता है । ३ ।

९. हे जीव, तू इस मोह के कारण योनियों में पड़ता है ।

१०. इस मोह के कारण ही तू यमपुरी को जाता है । ४ ।

११. मनुष्य रीति और प्रथा के नियमों के अनुसार गुरु की शिक्षा लेकर, जप तप करते हैं ।

१२. परन्तु इस प्रकार न मोह टूटता है और न वे प्रभु की सभा में आदर

पाते हैं। ५।

१३. प्रभु जिस पर कृपादृष्टि करता है, उसका मोह टूटता है।

१४. (नानक) वह सदा के लिए प्रभु में लीन हो जाता है। ६/२३।

(२४)

१. **आपि करे सचु अलख अपारु ।**
२. **हउ पापी तूं बखसणहारु । १ ।**
३. **तेरा भाणा सभु किछु होवै ।**
४. **मन हठि कीचै अंति बिगोवै । १ । रहाउ ।**
५. **मनमुख की मति कूड़ि विआपी ।**
६. **बिनु हरि सिमरण पापि संतापि । २ ।**
७. **दुरमति तिआगि लाहा किछु लेवहु ।**
८. **जो उपजै सो अलख अभेवहु । ३ ।**
९. **ऐसा हमरा सखा सहाई ।**
१०. **गुरहरि मिलिआ भगति द्रिड़ाई । ४ ।**
११. **सगलीं सउदीं तोटा आवै ।**
१२. **नानक रामनामु मनि भावै । ५/२४ ।**

पद-अर्थ

बिगोवै—नाश होता है; **संतापी**—दुःखी होता है; **दुरमति**—दुर्बुद्धि; **उपजै**—होता है; **तोटा**—घाटा।

टीका

१. संसार में जो कुछ हो रहा है, यह सब सदा स्थिर, अलक्ष्य और असीम प्रभु स्वँय कर रहा है।

२. हे प्रभु, (तुम्हारी क्रियाकारिणी इच्छा को न समझकर) मैं पापी (दोषी) हुआ हूँ; तथापि तुम क्षमा करने वाले हो। १।

३. जो कुछ होता है तुम्हारे अभीष्ट के अनुसार ही होता है।

४. जो कोई अपनी इच्छा से (अपनी बुद्धि को श्रेष्ठ जानकर) कार्य करता है, वह अन्त में नष्ट होता है। १। रहाउ।
५. अपनी इच्छा के अनुसार चलने वाले मनुष्य की बुद्धि मिथ्या माया में बद्ध रहती है।
६. स्मरण से शून्य होने के कारण पाप करती है और दुःख सहन करती है। २।
७. हे जीव, दुर्बुद्धि का त्याग करके कुछ आत्मलाभ प्राप्त कर।
८. (प्रथम यह समझ कि) जो होता है, यह सब कुछ अलक्ष्य और अविज्ञेय प्रभु की ओर से होता है (उसकी इच्छा के अधीन रहना सीख)। ३।
९. प्रभु हमारा ऐसा मित्र और सहायक है,।
१०. कि उसकी कृपा से गुरु मिल जाता है, जो हमारी भक्ति दृढ़ करता है। ४।
११. (राम नाम के सौदे के अतिरिक्त) शेष ससस्त सांसारिक सौदों में हानि ही हानि है।
१२. अतः (नानक) मेरे मन को राम-नाम प्रिय लगता हैं। ५/२४।

(२५)

१. विदिआ वीचारी तां परउपकारी।
२. जां पंच रासी तां तीरथ बासी। १।
३. घुंघरू बाजै जे मनु लागै।
४. तउ जमु कहा करे मो सिउ आगै। १। रहाउ।
५. आस निरासी तउ संनिआसी।
६. जां जतु जोगी तां काइआ भोगी। २।
७. दइआ दिगंबरु देह बीचारी।
८. आपि मरै अवरा नह मारी। ३।
९. एकु तू होरि वेफ बहुतेरे।
१०. नानकु जाणै चोज न तेरे। ४/२५।

पद-अर्थ

वीचारी—पढ़ कर विचारने वाला ; **पंज रासी**—यदि पाँचों को

वश में किया है; **घुंघरू**—जंगम लोग कमर में घुंघरू बांधते हैं; **दिगंबरु**—जैन मतानुयायी लोग; **चोज**—कौतुक, तामाशे।

टीका

१. किसी को विद्या के विचारने वाला पण्डित तब समझना चाहिए जब वह परोपकारी भी हो। (उसकी दिद्या से परोपकार हो)।

२. तीर्थों का निवासी तभी सफल हैं जब उसने कामादि पाँच वेगों पर नियंत्रण कर लिया हो। १।

३. यदि मैं अपना मन प्रभु के चरणों में अनुरक्त कर सका हूँ तो मेरा जंगम होकर घुंघरू बजाना सफल है।

४. फिर परलोक में यमराज मेरा क्या कर सकता है ?। १। रहाउ।

५. यदि कोई आशारहित ही हो जाए तभी वह वास्तविक संन्यासी है।

६. यदि किसी के पास योगी वाला संयम हो तो उसे देहभोगी (वास्तविक गृहस्थ) जानो। २।

७. यदि भीतर दया भी है और शरीर में ज्ञान भी है, तो वह दिगम्बर (नग्न योगी) कहलाने का अधिकारी है।

८. जिसका अहंभाव मर चुका है वह दूसरों को नहीं मारता अर्थात् वह वस्तुतः अहिंसावादी है। २३।

९. हे प्रभु, तुम एक हो, परन्तु ये समस्त (अनेक वेश भी तुम्हारे ही हैं)। (नानक करते के केते वेस)।

१० नानक तुम्हारे कौतुक नहीं जान सकता ४/२५।

(२६)

१. एक न भरीआ गुण करि धोवा।

२. मेरा सहु जागै हउ निसि भरि सोवा। १।

३. इउ किउ कंत पिआरी होवा।

४. सहु जागै हउ निस भरि सोवा। १। रहाउ।

५. आस पिआसी सेजै आवा।

६. आगै सह भावा कि न भावा। २।

७. किम्रा जाना किम्रा होइगा री माई ।

८. हरि दरसन बिनु रहनु न जाई । १ । रहाउ ।

९. प्रेमु न चाखिम्रा मेरी तिस न बुझानी ।

१०. गइम्रा सु जोबनु धन पछुतानी । ३ ।

११. अजै सु जागउ ग्रास पिम्रासी ।

१२. भईले उदासी रहउ निरासी । १ । रहाउ ।

१३. हउमै खोइ करे सीगारु ।

१४. तउ कामणि सेजै रवै भतारु । ४ ।

१५. तउ नानक कंतै मनि भावै ।

१६. छोडि वडाई अपणे खसम समावै । १ । रहाउ । २६ ।

पद-अर्थ

एक न भरीआ—मैं केवल एक आध पाप से बनी हुई नहीं हूं; निसि—रात्रि, आयु ; ग्रास पिम्रासी—सांसारिक ग्राशाओं की प्यासी ; तिस—तृष्णा ; कामणि—नारी ; भतारु—पति ।

टीका

१. मैं केवल एक-आध पाप से बनी हुई नहीं हूं कि एक आधे गुण के साथ धोकर स्वच्छ हो सकूँ (मैं बहुत पापों से भरी हूँ) ।

२. मेरा प्रभु पति सदैव जागता है (मैं उसे प्रत्येक समय मिल सकती थी) परन्तु मैंने ग्रायु रूपी रात्रि ग्रज्ञान की निद्रा में सोकर बिता दी है । १ ।

३. मैं किस प्रकार प्रभु-पति को अच्छी लग सकती हूँ ?

४. जब प्रभु पति जागता है तब मैं रात्रि भर सोती हूँ । १ । रहाउ ।

५. यदि सांसारिक आशाओं की प्यास रखती हुई मैं (मिलने के लिए) प्रभु पति की शय्या की ओर आती हूँ,

६. तो ज्ञात नहीं कि प्रभु को पसन्द ग्राऊँगी ग्रथवा नहीं आऊँगी (नहीं आऊँगी) २

७. हे माँ, तुझे ज्ञात नहीं कि मेरा क्या होगा ? (मैं गुणहीन होने से प्रभु के योग्य भी नहीं हूँ)।

८. परन्तु प्रभु-दर्शन के बिना मेरा जीवित रहना भी संभव नहीं। १। रहाउ।

९. मैंने प्रभु-प्रेम का आनन्द प्राप्त नहीं किया, और न मेरी तृष्णा ही शान्त हुई है।

१०. यौवनावस्था बीत गई है और मैं जीव रूपी नारी पश्चात्ताप कर रही हूँ। ३।

११. हे प्रभु, मैं सांसारिक आशाओं की तृषित अब भी जाग पड़ूँ।

१२. मैं विषण्ण फिरती हूँ और निराशा हो गई हूँ (कि मेल नहीं होगा)। १। रहाउ।

१३. (परन्तु मिलन का एक उपाय है) जब जीव रूपी नारी अहंकार नष्ट करके अपना शृंगार करती है,-

१४. तब प्रभु पति उसे हृदय रूपी शय्या पर आकर मिलता है। ४।

१५. (नानक) जीव रूपी नारी प्रभु पति को तब अच्छी लगती है,

१६. जब वह मान तथा गौरव का त्याग कर देती है और प्रियतम प्रभु में लीन हो जाती है। १। रहाउ। २६१

(२७)

१. पेवकड़ै धन खरी इआणी।

२. तिसु सहु की मै सार न जाणी। १।

३. सहु मेरा एकु दूजा नही कोई।

४. नदरि करे मेलावा होई। १। रहाउ।

५. साहुरड़ै धन साचु पछाणिआ।

६. सहजि सुभाइ अपणा पिरु जाणिआ। २।

७. गुरपरसादी ऐसी मति आवै।

८. तां कामणि कंते मनि भावै। ३।

९. कहतु नानकु भै भाव का करे सीगारु।

१०. सद ही सेजै रवै भतारु। ४/२७१

पद-अर्थ

पेवकड़े—पिता के घर में, सांसारिक मोह में; **धन**—नारी ; **इआणी**—अज्ञानवती, मूर्ख ; **साहुरड़े**—प्रभु के साथ जुड़ी दशा में ; **भै भाव**—भय और प्रेम ।

टीका

१. माया के मोह से ग्रस्त मैं जीव रूपी नारी परम अज्ञानवती, मूर्ख बनी रही हूँ ।
२. अतएव मैं उस प्रभु पति का मूल्यांकन नहीं कर सकी । १ ।
३. मेरा स्वामी प्रभु अपने समान आप ही है, उस जैसा कोई अन्य नहीं है ।
४. यवि वह कृपादृष्टि करे तो उसके साथ मिलाप होता है ।१ । रहाउ ।
५. जो जीव रूपी नारी (सांसारिक मोह से निकल कर) प्रभु के साथ मिलन की दशा में पहुँच जाती है, वह सत्य को पहचानती है ।
६. और स्वत : स्वाभाविकतया ही प्रभु पति को जान लेती है । २ ।
७. जब गुरु की कृपा से जीव रूपी नारी को ऐसी बुद्धि प्राप्त हो जाती है (कि वह सांसारिक मोह छोड़कर प्रभु प्रेम को जाने),
८. तब वह प्रभु-पति को अच्छी लगने लगती है । ३ ।
९. नानक कहता है कि जो जीव रूपी नारी परमात्मा के भय और प्रेम का शृंगार करती है
१०. उसकी हृदय-शय्या पर प्रभु-पति उसे मान प्रदान करता है (आत्मसुख को दशा में रखता है) । ४/२७ ।

(२८)

१. न किस का पूतु न किस की माई ।
२. झूठै मोहि भरमि भुलाई । १ ।
३. मेरे साहिब हउ कीता तेरा ।
४. जां तूं देहि जपी नाउ तेरा । २ रहाउ ।

५. वहुते अउगण कूकै कोई ।
६. जा तिसु भावै बखसे सोई । २ ।
७. गुरपरसादी दुरमति खोई ।
८. जह देखा तह एको सोई । ३ ।
९. कहत नानक ऐसी मति आवै ।
१०. तां को सचे सचि समावै । ४/२८

पद-अर्थ

कूकै—पुकार करे, प्रार्थना करे ; **दुरमति**—दुर्बुद्धि ।

टीका

१. न किसी की माता, न किसी का पुत्र, न किसी का कोई अन्य नित्य सहचर होता है ।
२. तथापि विश्व इन के मिथ्या मोह में बद्ध हो कर भ्रम (द्विचितत्ता) में पड़ा रहता है । १ ।
३. हे मेरे स्वामी प्रभु, मुझे तुमने उत्पन्न किया है ।
४. जब तुम मुझे अपना नाम देते हो, तब ही तुम्हारा स्मरण कर सकता हूँ । १ । रहाउ ।
५. यदि किसी ने अनेक पाप किए हों और उस प्रभु के द्वार पर उपस्थित होकर पुकार (प्रार्थना) करे,--
६. यदि उसे अच्छा लगे तो वह उसे क्षमा कर देता है । २ ।
७. अब गुरु की कृपा से मेरी दुर्बुद्धि नष्ट हो गई है । २ ।
८. (परिणाम यह हुआ है कि) मैं जिधर देखता हूँ, मुझे एक प्रभु ही परिव्याप्त दिखाई देता है । ३ ।
९. नानक कहता है कि जब किसी को ऐसी बुद्धि प्राप्त हो जाती है,-
१०. तब वह सत्य के बल से सत्य परमात्मा में लीन हो जाता है । ४/२८ ।

(२९)

१. तितु सखरड़े भईले निवासा पाणी पावकु तिनहि कीआ ।
२. पंकजु मोह पगु नही चालै हम देखा तह डूबीअले । १ ।
३. मन एकु न चेतसि मूड़ मना ।
४. हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ । १ । रहाउ ।
५. ना हउ जती सती नही पड़िआ मूरख मुगधा जनमु भइआ ।
६. प्रणवति नानक तिन्ह की सरणा जिन्ह तूं नाही
वीसरिआ । २/२९ ।

(पद अर्थ और टीका के लिए पृष्ठ देखिए ६६-६७)

(३०)

१. छिअ घर छिअ गुर छिअ उपदेस ।
२. गुर गुरु एको वेस अनेक । १ ।
३. जै घरि करते कीरति होइ ।
४. सो घरु राखु वडाई तोहि । १ । रहाउ ।
५. विसुए चसिआ घड़ीआ पहरा थिती वारी माहु भइआ ।
६. सूरजु एको रुति अनेक ।
७. नानक करते के केते वेस । २/३० ।

(पद-अर्थ और टीका के लिए पृष्ठ देखिए ७२-७३)

(३१)

१. लख लसकर लख वाजे नेजे लख उठि करहि सलामु ।
२. लखा उपरि फुरमाइसि तेरी लख उठि राखहि मानु ।
३. जां पति लेखै ना पवै तां सभि निराफल काम । १ ।
४. हरि के नाम बिना जगु धंधा ।
५. जे बहुता समझाईऐ भोला भी सो अंधो अंधा । १ । रहाउ ।
६. लख खटीअहि लख संजीअहि खाजहि लख आवहि लख जाहि ।

७. जां पति लेखै ना पवै तां जीअ किथै फिरिपाहि । १ ।
८. लख सासन समझावणी लख पण्डित पड़हि पुराण ।
९. जां पति लेखै ना पवै तां सभे कुपरवाण । ३ ।
१०. सच नामि पति ऊपजै करमि नामु करतारु ।
११. अहिनिसि हिरदै जे बसै नानक नदरी पारु । ४/१/३१ ।

पद-अर्थ

फुरमाइसि—आज्ञा ; **पति**—प्रतिष्ठा ; **निराफल**—निष्फल ; **धंधा**—झमेला ; **अंधा**—अन्धा ; **संजोअहिक**—जोड़िए ; **कुपरवाण**—अप्रमाण, अप्रामाणिक ; **अहिनिसि**—दिन-रात्रि ।

टीका

१. (हे भाई) यदि तेरे पास लाखों की संख्या में सेनाएँ हों, उनमें लाखों बाजे बजाने वाले हों और लाखों आज्ञा मानने वाले हों और लाखों तुझे उठ-उठकर प्रणाम करने वाले हों ;—
२. यदि लाखों पुरुष तेरे आदेश का पालन करते हों, और लाखों उठ-उठकर तुझे सम्मान देते हों,-
३. परन्तु, यदि प्रभु की सभा में तेरा मान नहीं हुआ तो इनकी सहायता से किए गए तेरे समस्त कर्म निष्फल जाते हैं । १ ।
४. यदि नाम नहीं है तो विश्व को केवल धन्धों में फँसा हुआ समझो ।
५. इस बिचारे को चाहे जितना समझाओ, यह अज्ञान-ग्रस्त ही रहता है । १ । रहाउ ।
६. यदि लाखों की सम्पत्ति अर्जित की जाए, लाखों रूपये संचित किए जाएँ, लाखों खाए और खर्च किए जाएँ, लाखों ही आएँ और जाएँ—
७. परन्तु यदि प्रभु की दृष्टि में तू सम्मान का पात्र नहीं हुआ तो अपने आत्मा को कहाँ जाकर फेंकेगा ? (मारा-मारा फिरता रहेगा, जन्म-मरण के चक्र में रहेगा आदि) । २ ।
८. चाहे तुझे लाखों बार शास्त्र समझाए जाएँ, लाखों विद्वान् तुझे

पुराण पढ़कर सुनाएँ,

९. तथापि यदि तू प्रभु के द्वार पर सम्मान न पाए तो यह अध्ययन आदि सब व्यर्थ (अस्वीकार्य) हैं। ३।

१०. हे भाई, सत्य नाम से मान प्राप्त होता है और नाम उसकी कृपा से मिलता है।

११. फिर, (नानक) यदि सत्य नाम रात-दिन हृदय में बसता रहे तो उसकी कृपा से जीव संसार-समुद्र से पार हो जाता है। ४/१ ३१।

(३२)

१. दीवा मेरा एकु नामु दुखु विचि पाइआ तेलु।

२. उनि चानणि ओहु सोखिआ चूका जम सिउ मेलु। १।

३. लोका मत को फकड़ि पाइ।

४. लख मड़िआ करि एकठे एक रती ले भाहि। १। रहाउ।

५. पिंडु पतलि मेरी केसउ किरिआ सचु नामु करतारु।

६. ऐथे ओथे आगै पाछै एहु मेरा आधारु। २।

७. गंग बनारसि सिफति तुमारी नावै आतमराउ।

८. सचा नावणु तां थीऐ जां अहिनिसि लागै भाउ। ३।

(९, १० के लिए मूल कापी देखिए)

पद-अर्थ

दीवा—दीपक-बत्ती, मृत्यु समय की हिन्दु मर्यादा-जबकि मरते हुए पुरुष के हाथ पर आटे का दीपक रखा जाता है; **सोखिआ**—सूख गया; **चूका**—चुक गया, समाप्त हो गया; **फकड़ि**—फक्कड़बाजी, उपहास; **मड़िआ**—ढेर, लकड़ियों के ढेर; **भाहि**—अग्नि; **पिंड**—चावलों के आटे के लड्डू; **पतलि**—पत्तों की थाली, पत्तल; **केसउ**—सुन्दर केशों वाला, विष्णु, परमात्मा; **आधार**—अवलम्ब; **भाउ**—प्रेम; **लोकी**—देवलोक के रहने वाले, देवता; **छमिछरी**—पृथ्वी पर धूमने वाले, पितृगण; **निखुटसि नाहि**—समाप्त नहीं होता।

टीका

१. मेरे लिए एक परमात्मा का नाम रूपी दीपक है। मैंने उसमें दुःख तेल डाला है।

२. उस प्रकाश के साथ दुःख रूपी तेल जलकर सूख गया है और यम के दूतों के साथ मेरा सम्बन्ध भी समाप्त हो गया है। १।

३. हे सांसारिको, मेरे इस विश्वास का उपहास न करो।

४. (आप देखते नहीं कि) कि लाखों मन का लकड़ियों की राशि एकत्र रखकर रत्ती भर अग्नि से राख की जा सकती है (इसी प्रकार लाखों पाप नाम से जल जाते हैं)। १। रहाउ।

५. परमात्मा (का नाम) ही मेरे लिए 'पिण्ड भरी पत्तल' कर्त्ता का सत्य नाम ही मेरी 'क्रिया' है।

६. यह नाम लोक, परलोक और प्रत्येक स्थान पर मेरा अवलम्ब बनता है। २।

७. हे प्रभु, तुम्हारी गुण-स्तुति ही मेरे लिए गंगा एवं काशी (काशी आदि तीर्थों का स्नान) है, जिस में मेरा आत्मा स्नान करता है।

८. वास्तविक स्नान तभी होता है जब प्रभु चरणों का प्रेम अहर्निश मन में वर्तमान रहे। ३।

९. ब्राह्मण (जौ या चावलों के आटे के) लड्डू बनाकर, एक लड्डू देवताओं के निमित्त देता है, एक पितरों के निमित्त देता है और तत्पश्चात् (खीर, पूरी) स्वयं खाता है।

१०. परन्तु, (नानक) वास्तविक लड्डू तो प्रभु-कृपा का है जो अक्षय्य होता है। ४/२/३२।

(३३)

१. देवतिआ दरसन कै ताई दूख भूख तीरथ कीए।

२. जोगी जती जुगति महि रहते करि करि भगवे भेख भए। १।

३. तउ कारणि साहिबा रंगि रते।

४. तेरे नाम अनेका रूप अनंता कहणु ना जाही तेरे गुण केते ॥ रहाउ।

५. दर घर महला हसती घोड़े छोडि़ विलाइति देस गए ।
६. पीर पैकांबर सालिक सादिक छोड़ी दुनीआ थाइ पए । २ ।
७. साद सहज सुख रस कस तजीअले कापड़ छोड़े चमड़ लीए ।
८. दुखीए दरदवंद दरि तेरे नामि रते दरवेस भए । ३ ।
९. खलड़ो खपरी लकड़ी चमड़ी सिखा सूतु धोती कीनी ।
१०. तूं साहिबु हउ सांगी तेरा प्रणवै नानकु जाति कैसी । ४ । १ । ३३ ।

पद-अर्थ

जुगति—मर्यादा के अनुसार; **विलाइति**—देश; **सालिक**—मार्ग-प्रदर्शक; **सादिक**—सत्यनिष्ठ; **थाइ पए**—स्वीकृत हो गए; **तजीअले**—छोड़ दिए; **चमड़ लीए**—चमड़ा पहना; **खलड़ो**—चमड़ा; **खपरी**—खप्पर; नारियल का कटोरा; **सिखा**—शिखा, चोटी; **सूतु**—यज्ञोपवीत; **साँगी**—स्वाँग रचने वाला ।

टीका

१. हे प्रभु, तुम्हारे दर्शन के लिए देवताओं ने दुःख तथा भूख सहन करके तीर्थों का भ्रमण किया ।
२. अनेक योगी और यति अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार जीवन व्यतीत करते रहे और काषाय वस्त्र पहन कर फिरते रहे ।
३. हे स्वामी, तुम्हारी मार्गणा में, तुम्हारे प्रेम में अनुरक्त अनेक व्यक्ति फिरते रहे (वे तुम्हारे भिन्न-भिन्न रूपों का दर्शन करते रहे) ।
४. (क्योंकि) तुम्हारे नाम अनेक हैं, रूप अनन्त हैं और तुम्हारे गुण अलक्ष्य हैं । रहाउ ।
५. (तुम्हारे दर्शनों के लिए) अनेक व्यक्ति द्वार, घर, महल, हस्ती तथा अश्व छोड़कर और अपना देश त्यागकर फिरते रहे ।
६. अन्य अनेक पीर, पैगम्बर, मार्ग-प्रदर्शक और आस्थावान् तुम्हारे लिए जगत् ही छोड़ गए, और अन्त में स्वीकार किए गए । २ ।
७. अनेकों ने संसार के स्वाद, सुख, आराम और कषाय आदि रस छोड़े और अनेकों ने वस्त्र छोड़ दिए और चर्म पहन लिया ।

८. अनेक व्यक्ति तुम्हारे द्वार पर दीन-दुःखियों के समान अभ्यर्थी हो गए और नाम में अनुरक्त होकर फ़कीर हो गए। ३।

९. किसी ने (तुम्हारे दर्शनों के लिए) चमड़ा पहन लिया, कोई खप्पर लेकर भीख माँगने लगा, किसी ने सन्यास धारण करके हाथ में दण्ड ले लिया, किसी ने मृगछाला पर आसन लगा लिया, किसी ने बड़ी चोटी रख ली, किसी ने कन्धे पर जनेऊ लिया और किसी ने धोती पहन ली।

१०. हे प्रभु, मैं भी इन सबके समान तुम्हारी मार्गणा में तुम्हारा स्वाँगी हूँ और तुम मेरे स्वामी हो। कोई दूसरी जाति नहीं हो गई (बस मैं तुम्हारा स्वाँगी हूँ)। ४। १। ३३।

(३४)

१. **भीतरि पंच गुपत मनि वासे।**
२. **थिरु न रहहि जैसे भवहि उदासे। १।**
३. **मनु मेरा दइआल सेती थिरु ना रहै।**
४. **लोभी कपटी पापी पाखंडी माइआ अधिक लगै। १। रहाउ।**
५. **फूल माला गलि पहिरउगी हारो।**
६. **मिलैगा प्रीतमु तब करउगी सीगारो। २।**
७. **पंच सखी हम एकु भतारो।**
८. **पेडि लगी है जीअड़ा चालनहारो। ३।**
९. **पंच सखी मिलि रुदनु करेहा।**
१०. **साहु पजूता प्रणवति नानक लेखा देहा। ४/१/ ३४।**

पद-अर्थ

भीतरि—अन्दर; **उदासे**—उदास हुए; **अधिक**—बहुत; **पंच सखी**—पाँच ज्ञानेन्द्रियां; **भतारो**—पति, जीवात्मा; **पेडि**—पद-चिह्न-पंक्ति में, रुढि में, परम्परा के अनुसार शरीर के भोगों में; **पजूता**—पकड़ा गया।

टीका

१. कामादि पाँच (विकार) मेरे मन के भीतर छिपे रहते हैं।

२. वे स्थिर नहीं रहते, प्रत्युत इस प्रकार बाहर फिरते हैं जिस प्रकार कोई अपने घर से उदास होकर फिरता है। १।

३. मेरा मन कृपालु प्रभु के नाम में स्थिर होकर नहीं लगता।

४. यह मन लोभी, कपटी, पापी और पाखण्डी बना हुआ है। इस पर माया का महा प्रभाव है। १। रहाउ।

५. (मैं स्वप्न देखती हूँ कि किसी समय जब मेरा प्रियतम पति मिलेगा तब) मैं अपने गले में पुष्पों की माला और (मोतियों के) हार डालूंगी।

६. जब मेरा प्रियतम परमात्मा मिलेगा, मैं समस्त शृंगार करूंगी। २।

७. मुझ जीव रुपी नारो की सहेलियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ) हैं और मेरा प्रियतम (जीवात्मा) एक है।

८. परन्तु यह जीव रूपी नारी साँसारिक भोगों में मग्न है। (यह भूल जाती है कि) जीवन क्षणिक है। ३।

९. (जब आत्मा उठ गया तो) पाँच ज्ञानेन्द्रियों ने रोदन किया।

१०. (नानक) जीवात्मा अकेला ही (कर्मों का लेखा) देने के लिए पकड़ा जाता है। ४। १। ३४।

(३५)

१. मनु मोती जे गहणा होवै पउणु होवै सूत धारी।

२. खिमा सीगारु कामणि तनि पहिरै रावै लाल पिआरी। १।

३. लाल बहु गुणि कामणि मोही।

४. तेरे गुण होहि न अवरी। १। रहाउ।

५. हरि हरि हार कंठि ले पहिरै दामोदरु दंतु लेई।

६. कर करि करता कंगन पहिरै इन बिधि चितु धरेई। २।

७. मधुसूदनु कर मुंदरी पहिरै परमेसरु पटु लेई।

८. धीरजु धड़ी बंधावै कामणि स्त्रीरंगु सुरमा देई। ३।

९. मन मंदरि जे दीपकु जाले काइआ सेज करेई ।

१०. गिआन राउ जब सेजै आवै त नानक भोगु करेई । ४ । १ । ३५ ।

पद-अर्थ

पउण—श्वास; **सूत धारी**—धागे की डोरी; **कामणि**—स्त्री; **रावै**—भोगे; **दंतु**—दन्त-मंजन; **कर**—हाथ के लिए; **मधुसूदन**—मधु राक्षस को मारने वाला, विष्णु, परमात्मा; **पटु**—रेशमी कपड़ा; **धड़ी**—माँग पट्टी; **स्रीरंग**—लक्ष्मी के साथ आनन्द करने वाला, विष्णु, परमात्मा; **गिआन राउ**—ज्ञान का राजा, परमात्मा ।

टीका

१. यदि कोई जीव-स्त्री नारी मन रूपी मोती को श्वास रूपी धागे की डोरी में डालकर (गले में पहनने के लिऐ) आभूषण बना ले (प्रत्येक श्वास नाम जपे),—

२. और शरीर को क्षमा से अलंकृत करे तो वह प्रिया अपने प्रियतम प्रभु से रमण करती है (मिलन का आनंद प्राप्त करती है) । १ ।

३. हे प्रियतम प्रभु, तुम्हारे अनेक गुणों के कारण जीव रूपी नारी तुम्हारी ओर आकृष्ट है ।

४. (तुममें वे गुण हैं जो किसी अन्य में नहीं है । १ । रहाउ ।

५. यदि जीव रुपी नारी हरि के स्मरण का हार गले में पहन ले, दामोदर प्रभु के स्मरण को दन्त मंजन बना ले,—

६. हाथों में जगत्-कर्त्ता का स्मरण रुपी कङ्कण पहन ले और इस प्रकार प्रभु के भिन्न-भिन्न रूपों को सम्मुख लाकर अपने मन को एकाग्र कर ले । २ ।

७. यदि वह मधुसूदन, प्रभु, के स्मरण का अंगुलीयक अंगुली में पहन ले और परमेश्वर के स्मरण का रेशमी वस्त्र धारण करे ।—

८. यदि वह धैर्य को मांग-भरना मान ले और श्रीरंग, प्रभु, के स्मरण का सुरमा डाले । ३ ।

९. यदि वह मन-मन्दिर में प्रभु-ज्ञान का दीपक जगाए, यदि अपने हृदय,

शरीर, को प्रभु के लिए शय्या बनाए,--

१०. तो ज्ञान का राजा प्रभु जब प्रसन्न होकर उसकी हृदय-शय्या पर आएगा तब उस जीव रूपी नारी से रमण करेगा (मिलन का आनन्द प्रदान करेगा) । ४ । १ ।३५ ।

(३६)

१. कीता होवै करे कराइआ तिसुकिआ कहीऐ भाई ।
२. जो किछु करणा सो करि रहिआ कीते किआ चतुराई । १ ।
३. तेरा हुकमु भला तुधु भावै ।
४. नानक ता कउ मिलै वडाई साचे नामि समावे । १ । रहाउ ।
५. किरतु पाइआ पखाणा लिखिआ बाहुड़ि हुकम न होई ।
६. जैसा लिखिआ तैसा पड़िआ मेटि न सकै न कोई । २ ।
७. जे को दरगह बहुता बोलै नाउ पवै बाजारी ।
८. सतरंत बाजो पकै नाही कची आवै सारी । ३ ।
९. ना को पड़िआ पण्डितु बीना ना को मूरख मंदा ।
१०. बंदी अंदरि सिफति कराए ता कउ कहीऐ बंदा । ४ । २ । ३६ ।

पद-अर्थ

पड़िआ—घटित हुआ; **बाजारी**—अभिक बोलने वाला; **सारी**—शोर, नर्द गोट; **बीना**—चतुर, बहुदर्शी; **बंदी**—सेवा में, आदेश में ।

टीका

१. अज्ञानी जीव इस तथ्य को क्यों नहीं समझता कि सर्वत्र परमात्मा का अनुल्लंघन आदेश चल रहा हैं और उस आदेश को जानकर उसका पूर्ण पालन करना चाहिए । जीवन को सफल बनाने के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं है) जीव प्रभु का बनाया हुआ है और वह वही करता है जो प्रभु उससे कराता है । जीव को क्या कहा जाए (उसका क्या वश है ?) ।

२. जो प्रभु को अच्छा लगता है, वह वही करता है। उस प्रभु के बनाए हुए जीव की अपनी चतुराइयां किस प्रयोजन की हैं ? । १ ।

३. हे प्रभु, जिस मनुष्य को तुम्हारा आदेश प्रिय है, वही मनुष्य तुम्हें प्रिय है।

४. (नानक) उसे प्रशंसा मिलती है; वह (तुम्हारे आदेश को समझ कर) तुम्हारे सत्य नाम में लीन रहता है । १ । रहाउ ।

५. प्राणियों के अन्तःकरण में अंकित उनके कर्म-जन्म संस्कार उनके लिए लिखे गए भगवान् के आदेश-पत्र के अनुसार ही बने हैं। इस आदेश-पत्र पर कोई अन्य अपना आदेश नहीं लिख सकता (यह आज्ञा कोई नहीं परिवर्तित कर सकता)।

६. जो कुछ आदेश-पत्र में प्रभु ने लिख दिया है, वही घटित होता है—कोई इसे मिटा नहीं सकता । २ ।

७. यदि कोई अज्ञानी जीव प्रारम्भ से लिखे आदेश के विरुद्ध शिकायत करे तो वह अधिक बोलने वाला ठहराया जाएगा।

८. उसके जीवन रूपी शतरंज (शतरंज) की बाज़ी पूर्ण नहीं होती। उसकी नर्द (गोट) कच्ची रहेगी (जीवन निष्फल हो जाएगा)। ३ ।

९. (हे भाइयो, निश्चित समझो कि) न कोई अपने आप बुद्धिमान है और न मूर्ख (क्योंकि सम्पूर्ण खेल प्रभु के आदेश के अनुसार है)।

१०. (बस तत्त्व यह है कि) जिस मनुष्य को वह अपनी सेवा (आदेश) में रख लेता है और उससे अपनी गुणस्तुति कराता है, वहीं उसका बन्दी (सेवक) है। ४/२/३६ ।

(३७)

१. **गुर का सबदु मनै महि मुंद्रा खिथा खिमा हढावउ ।**
२. **जो किछु करै भला करि मानउ सहज जोग निधि पावउ । १ ।**
३. **बाबा जुगता जीउ जुगह जुग जोगी परम तंत महि जोगं ।**
४. **अम्रितु नामु निरंजन पाइआ गिआन काइआ रस भोगं । १ । रहाउ ।**
५. **सिव नगरी महि आसणि बैसउ कलप तिआगी बादं ।**
६. **सिंङी सबदु सदा धुनि सोहै अहिनिसि पूरै नादं । २ ।**
७. **पतु वीचारु गिआन मति डंडा वरतमान बिभूतं ।**

८. हरि कीरति रहरासि हमारी गुरमुखि पंथु अतीतं । ३ ।
९. सगली जोति हमारी संमिआ नाना वरन अनेकं ।
१०. कहु नानक सुणि भरथरि जोगी पारब्रह्म लिव एकं । ४ । ३ । ३७ ।

पद-अर्थ

खिथा—कन्था, गुदड़ी; **जुगता**—युक्त; **सिल**—आत्मा; **कलप**—कल्पना, परिवेदन; **बादं**—वाद-विवाद; **पतु**—खप्पर; **वरतमान**—सर्वव्यापक; **विभूतं**—विभुति; **रहरासि**—राह-रास्त, मार्ग, परम्परा; **संमिआ**—अधारी, टेकन जिस पर बाहें रखकर योगी ध्यान में बैठते हैं।

टीका

१. हे योगी, मैंने गुरु का शब्द हृदय में बसा लिया है। यह मेरी कर्ण-मुद्राएँ हैं। क्षमा मेरी कन्था (गुदड़ी) है।
२. जो प्रभु करता है मैं उसे मधुर समझता हूं और उसका मान करता हूँ। यह मैंने सहज योग का निधान (भाण्डागार) प्राप्त किया है। १।
३. हे भाई, वास्तविक सदा युक्त रहने वाला योगी वह है जो परम तत्त्व प्रभु से संयुक्त रहता है।
४. उसे निरजंन प्रभु का नाम रूपी अमृत प्राप्त हो गया है; उसके लिए ज्ञान शारीरिक रस का वह भोग है (जो योगी दशम् द्वार की समाधि में जाकर अपने भीतर अनुभव करता है। १। रहाउ।
५. मैं आत्मिक मण्डल के आसन पर बैठता हूं, मैंने कलपना (परिदेवदन) और विवाद त्याग दिए हैं।
६. मेरे मन के भीतर जो गुरु-शब्द की सुन्दर ध्वनि सदा होती रहती है, यह मेरी शृंगी हैं। इस प्रकार मेरा मन रात-दिन गुरु रूपी नाद बजा रहा है। २।
७. प्रभु का विचार मेरा खप्पर है, उसके ज्ञान वाली बुद्धि मेरा दण्ड है और उसे सर्वव्यापक समझना मेरी विभूति है।
८. प्रभु की गुणस्तुति मेरी जीवन-मर्यादा है। गुरु के समक्ष रहना मेरा अतीत (विरक्त) पन्थ है। ३।

९. अनेक ओर भिन्न-भिन्न वर्णों के जीवों में परिव्याप्त एक ज्योति की पहचान करना ही मेरी अधारी है।

१०. हे भर्तृ (हरि) योगी सुनो (नानक कहता है) मेरी एकनिष्ठ वृत्ति यह है कि मैं केवल एक प्रभु में मग्न रहता हूं। ४। ३। ३७।

(३८)

१. **गुड़ु करि गिम्रानु धिआनु करि धावै करि करणी कसु पाईऐ।**
२. **भाठी भवनु प्रेम का पोचा इतु रसि अमिउ चुम्राईऐ। १।**
३. **बाबा मनु मतवारो नाम रसु पीवै सहज रंग रचि रहिम्रा।**
४. **म्रहिनिसि बनी प्रेम लिव लागी सबदु म्रनाहद गहिम्रा। १। रहाउ।**
५. **पूरा साचु पिम्राला सहजे तिसहि पीआए जा कउ नदरि करे।**
६. **म्रंम्रित का बापारी होवै किआ मदि छूछै भाउ धरे। २।**
७. **गुर की साखी म्रंम्रित बाणी पीवत ही परवाणु भइम्रा।**
८. **दर दरसन का प्रीतमु होवै मुकति बैकुंठै करै किआ। ३।**
९. **सिफती रता सदा बैरागी जूऐ जनमु न हारै।**
१०. **कहु नानक सुणि भरथरि जोगी खीवा म्रंम्रित धारै। ४। ४ ३८।**

पद-अर्थ

भावै—धावे (महुए) के पुष्प जिनसे मदिरा बनती है; **कसु**—बबूल की छाल; **भवनु**—शरीर, शरीर की साधना; **पोचा**—शीतल पानी का लेप जो अर्क निकालने के बर्तन को भाप ठंडी रखने के लिए दिया जाता है; **म्रभिउ**—अमृत; **गहिम्रा**—पकड़ा; **छूछै**—खोखले, निस्सार; **खीवा**—मत्त।

टीका

१. (हे योगी, निस्सार मदिरा पीने के स्थान पर इस प्रकार की मदिरा बना कर पी) प्रभु-ज्ञान को गुड़ बना, प्रभु में सुरति जोड़ने को धावे (महुए) के पुष्प म्रौर शुभ कर्मों को कीकर की छाल।

२. शरीर की साधना को (मदिरा बनाने के लिए) भट्टी बना और प्रभु-प्रेम की मिट्टी का लेप। इस प्रकार के बने रस से अमृत रूपी मदिरा टपकती है। १।

३. हे योगी, वस्तुत: मत्त मन वह हैं जो नाम-रस पान करता है और प्रभु-ज्ञान की निश्चलता-अवस्था में मत्त रहता है।

४. उसे प्रभु की ऐसी लौ लग जाती है जो दिन-रात बनी रहती है और जो गुरु-शब्द को आत्म-मण्डल का संगीत बनाकर भीतर स्थित रखती हैं। रहाउ।

५. हे योगी, यह पूर्ण और वास्तविक (मद्य) चषक है जो सहज-साधना द्वारा प्राप्त होता है और उसे प्राप्त होता है जिस पर प्रभु की कृपा हो।

६. जो इस अमृत को ग्रहण करने वाला बना है, उसे अन्य तुच्छ नशे प्रिय नहीं होते हैं। २।

७. जिसने गुरु की अमृत बाणी का, गुरु की शिक्षा का, रसपान किया है, वह पीते ही प्रभु द्वार पर प्रामाणिक हो गया है।

८. और जो प्रभु-द्वार पर प्रभु के दर्शनों का अनुरागी है, उसे किसी मुक्ति अथवा बैकुण्ठ की क्या आवश्यकता रह जाती है? (दर्शनों में ही मुक्ति और बैकुण्ठ हैं)। ३।

९. जो प्रभु की गुणस्तुति में मत्त है, वह सदा ही (सांसारिक मोह से विरक्त है) वह अपना जन्म निष्फल नहीं बिताता, '–'-

१०. हे नानक (भर्तृहरि को यह) कह–हे भर्तृहरि योगी, सुन। वह नाम रूपी अमृत की धारा पीकर मत्त रहता है। ४। ४। ३८।

(३९)

१. खुरासान खसमाना कीआ हिंदुसतानु डराइआ।
२. आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चड़ाइआ।
३. एती मार पई करलाणे तैं की दरदु न आइआ। १।
४. करता तू सभना का सोई।
५. जे सकता सकते कउ मारे ता मनि रोसु न होई। १। रहाउ।

६. सकता सीहु मारे पै वगै खसमै सा पुरसाई ।
७. रतन विगाड़ि विगोए कुती मुइआ सार न काई ।
८. आपे जोड़ि विछोड़े आपे वेखु तेरी वडिआई । २ ।
९. जे को नाउ धराए वडा साद करे मनि भाणे ।
१०. खसमै नदरी कीड़ा आवै जेते चुगै दाणे ।
११. मरि मरि जीवै ता किछु पाए नानक नामु वखाणे ।
। ३ । ५ । ३९ ।

पद-अर्थ

खसमाना—खसम, स्वामी (रक्षक) बना; **करलाणे**—करुण स्वर से चिल्लाने लगे; **सोई**—सुधि लेने वाला; **सकता**—शक्तिमान; **वगै**—वर्ग, गौओं के वर्ग; **पुरसाई**—पूछताछ; **विगोए**—क्लेशित किया; **साद**—स्वाद; **मरि**—अहं भाव को मार कर ।

टीका

१. जब बाबर ने भारत पर आक्रमण किया तब गुरु जी ने तत्कालीन अत्याचारों को स्वयं देखा। उस समय अन्तर्मन से जिस-जिस प्रकार के दुःख-भाव व्यक्त हुए हैं, इस शब्द में आए हैं। सर्वप्रथम प्रभु को प्रेम-भरे उपालम्भ दिए गए हैं और तत्पश्चात् चित्र के दोनों पक्ष दिखाए गए हैं।) हे हरि, तुमने खुरासान को तो बाबर से बचा लिया था परन्तु (बेचारे) भारतवर्ष को आतङ्कित कर दिया है ।

२. हे कर्त्ता, (इस अन्याय की समस्त क्रीड़ा तुम्हारे आदेशानुसार घटित हुई है परन्तु) तुम अपने ऊपर दोष नहीं लेते हो। तुमने बाबर मुग़ल को यम रूप बनाकर हिन्दुस्सान पर चढ़ा दिया है ।

३. हे प्रभु, भारतवासियों को इतनी निर्दयता से पीटा गया कि वे कराह उठे हैं। क्या तुम्हें उन पर दया न आई ? । १ ।

४. हे प्रभु, तुम तो समस्त प्राणियों के एक समान स्वामी हो (केवल मुग़लों के नहीं, भारतीयों के भी हो) ।

५. यदि कोई बलवान् पुरुष अपने सम्मुख आए किसी बलवान् पुरुष

को मारे तो मेरे मन में कोई रोष नहीं हो सकता।

६. (परन्तु) यदि एक शक्तिमान् सिंह गौओं के समूह पर आक्रमण करके समूह को मारे तो गौओं के रक्षक से पूछा जाता कि वह कहाँ गया था। गौओं का समूह निःशस्त्र भारतवासी हैं और वर्ग का अवेक्षक प्रभु स्वयं है)।

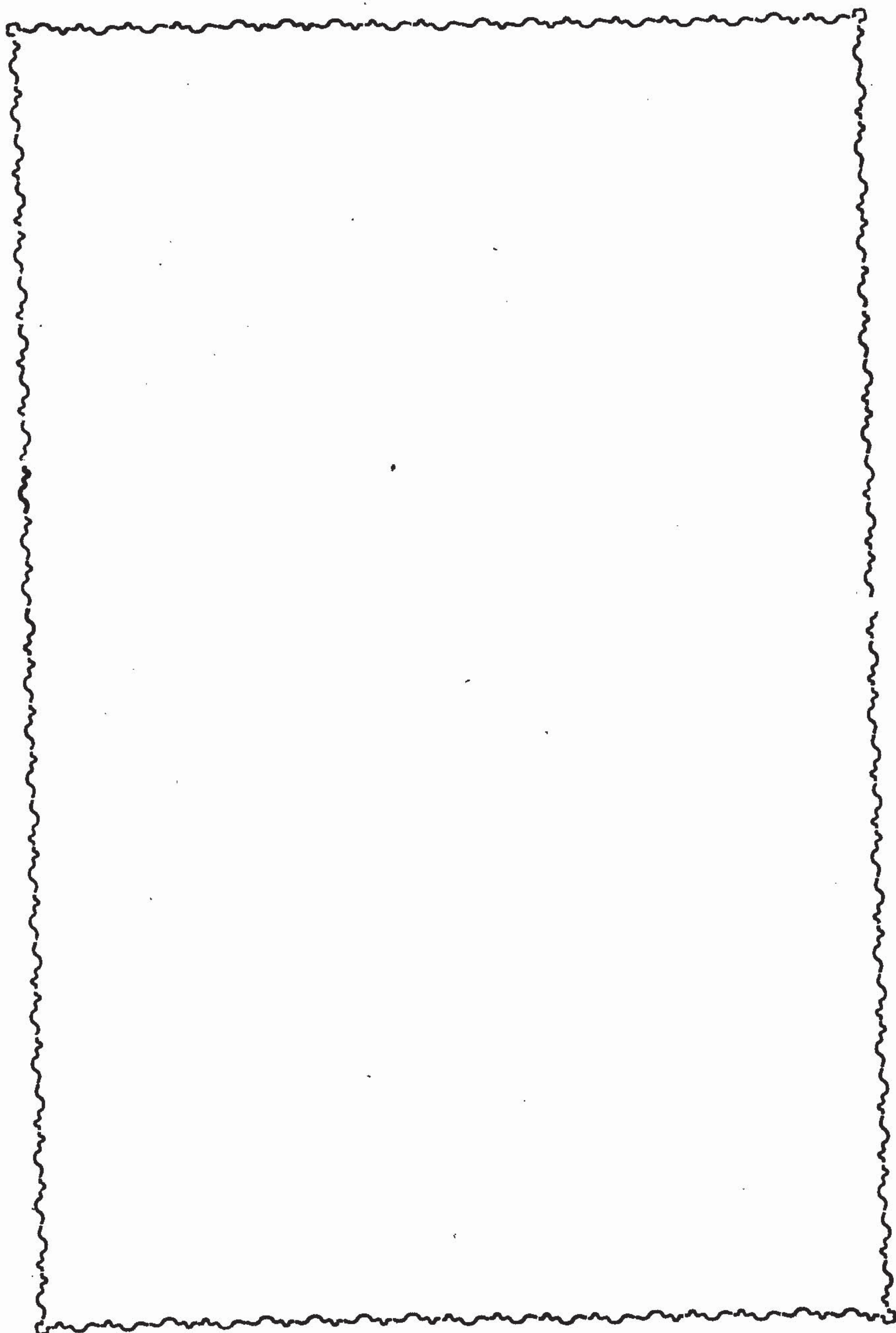
७. इन (मुग़ल) कुत्तों ने हीरों जैसे (भारतीय) व्यक्तियों को मार्ग की धूलि में मिला दिया है और इतने भारतीय मारे गए हैं कि गणना नहीं हो सकती है।

८. (अब चित्र का अन्य पक्ष सम्मुख आ जाता है। गुरु जी ईश्वरीय इच्छा को प्रधान मानने वाले स्थान पर आ गए हैं). (हे प्रभु,) तुम स्वयं ही मिलाने वाले हो, स्वयं ही पृथक करने वाले हो—(जो हो रहा है वह तुम्हारी ही इच्छा है; यथार्थ हे) यह सब क्रीड़ा तुम्हारी महत्ता प्रकट करती है। २।

९. (परन्तु किस प्रकार? उत्तर यह है) यदि कोई अपने आपको महान् कहलाता है और मनोनुकूल स्वादों में मग्न है (उसकी मृत्यु निश्चित है)।

१०. वह प्रभु पति की दृष्टि में एक कीड़ा है जो दाने चुन रहा है।

११. (फिर वास्तविक जीवन क्या है? उत्तर आगे है) जो जीवित-भाव (अहंकार) को मिटा कर वास्तविक जीवन व्यतीत करता है, उसे जीवन का रहस्य ज्ञात हो जाता है। अत: नानक उसी का नाम स्मरण करता है। ३। ५ ३९।



रागु आसा महला — १

अशटपदीआँ (अष्टपदीपद्यगुम्फ)

१. उतरि अवघटि सरवरि न्हावै ।
२. बकै न बोलै हरिगुण गावै ।
३. जलु आकासी सुँनि समावै ।
४. रसु सतु झोलि महा रसु पावै । १ ।
५. ऐसा गिआनु सुनहु अभ मोरे ।
६. भरिपुरि धारि रहिआ सभ ठउरे । १ । रहाउ ।
७. सचु बतु नेमु न कालु संतावै ।
८. सतिगुर सबदि करोधु जलावै ।
९. गगनि निवासि समाधि लगावै ।
१०. पारसु परसि परम पदु पावै । २ ।
११. सचु मन कारणि ततु बिलोवै ।
१२. सुभर सरवरि मैलु न धोवै ।
१३. जै सिउ राता तैसो होवै ।
१४. आपे करता करे सु होवै । ३ ।
१५. गुर हिव सीतलु अगनि बुझावै ।
१६. सेवा सुरति बिभूत चढ़ावै ।
१७. दरसनु आपि सहज धरि आवै ।
१८. निरमल वाणी नादु वजावै । ४ ।
१९. अंतरि गिआनु माहा रसु सारा ।
२०. तीरथ मजनु गुर बीचारा ।
२१. अंतरि पूजा थानु मुरारा ।
२२. जोती जोति मिलावण हारा । ५ ।

२३. रसि रसिम्रा मति एकै भाइ ।

२४. तखत निवासी पंच समाइ ।

२५. कार कमाई खसम रजाइ ।

२६. अविगत नाथु न लखिम्रा जाइ । ६ ।

२७. जल महि उपजै जल ते दूरि ।

२८. जल महि जोति रहिम्रा भरपूर ।

२९. किसु नेड़ै किसु आखा दूरि ।

३०. निधि गुण गावा देखि हदूरि । ७ ।

३१. अंतरि बाहरि अवरु न कोइ ।

३२. जो तिसु भावै सो फुनि होइ ।

३३. सुणि भरथरि नानकु कहै बीचारु ।

३४. निरमल नामु मेरा आधारु । ८ । १ ।

पद-अर्थ

उतरि—उतरकर; **अवघटि**— (विषयों की) कठिन घाटी; **सरवरि**—सत्संग रूपी सरोवर में; **बकै न बोलै**—अन्य-अन्य बातें नहीं करता; **आकाशी**—आकाश (दशम द्वार में से); **झोलि**—मथे; **अभ**—अन्तःकरण, मन; **भरिपुरि**—भरपूर; **व्रतु**—व्रत, नियम; **गगनि**—दशम द्वार में; **पारसु**—गुरु रूपी पारस; **तत विलोवै**—मक्खन मथे; **सुभर**—पूर्णतया भरा हुआ; **हिव**—हिम; **मजनु**—स्नान; **रसिआ**—भरपूर, पूर्ण; **तखत निवासी**—आत्मस्वरूप तख्ते का निवासी; **फुनि**—पुनः ।

टीका

१. (हे भर्तृहरि योगी), वास्तविक योगी वह है जो (विषयों की) दुर्गम घाटी से उतर कर सत्संग सरोवर में स्नान करता है।

२. वह अन्य अन्य बातें नहीं करता, केवल प्रभु के गुण गाता है ।

३. वह शून्य प्रभु में लीन होता है और उसके दशम द्वार से नाम रूपी अमृतजल झरता है।

४ वह सत्म नाम रस को मथकर महान् आनन्द प्राप्त करता है। १।

५. हे मेरे मन, ज्ञान की यह हात सुन—

६. कि प्रभु सर्वत्र व्याप्त है और अखिल जगत् का अवलम्ब है। १। रहाउ।

७. वास्तविक योगी सत्य को अपना व्रत-नियम बनाता है, उसे मृत्यु दुःख नहीं देती।

८. वह सद्गुरु के शब्द से क्रोध को दग्ध कर देता है।

९. वह दशम द्वार में अपना निवास स्थान बना कर (उच्च ज्ञान की स्थिति में पहुंच कर) प्रभु में सुरति जोड़ता है।

१०. वह गुरु पारस को मिलाता है, परम पदवी को प्राप्त होता है। २।

११. वह अपने मन के कल्याण के लिए सत्य रूपी तत्त्व का मंथन करता है।

१२. वह सत्संग के तट-पर्यन्त जलपूर्ण सरोवर में इस प्रकार स्नान करता है कि (तिलमात्र भी) मैल नहीं रहने देता।

१३. वह उस प्रभु जैसा ही हो जाता है जिसके प्रेम में रंगा हुआ है।

१४. (उसे ज्ञान हो जाता है कि) प्रभु स्वयं ही सब कुछ कर रहा है और वही होता है जो वह करता है (वह प्रभु की इच्छा को प्रधान मानकर प्रसन्न रहता है)। ३।

१५. (जोगी वह है) जो हिम-तुल्य शीतल गुरु के स्पर्श से मन की तृष्णा समाप्त करता है।

१६. जो सेवा-वृत्ति को विभूति समझता है।

१७. जिसका वेष दर्शन यह है कि वह स्वयं सहजावस्था में रहता है।

१८. और जो पवित्र भगवान के यश को शृंगी बनाता है। ४।

१९. उसके भीतर ज्ञान है, यही उसकी महान् आनन्द की अनुभूति है।

२०. गुरु के उपदेश का विचार उसका तीर्थस्थान है।

२१. उसने आत्मा के भीतर प्रभु की पूजा के लिए स्थान बनाया है।

२२. (वह योगी) अपनी ज्योति को प्रभु ज्योति में मिलाने के योग्य हो गया है। ५।

२३. वह आनन्द से परिपूर्ण होता है। उसने एक प्रभु से प्रेम करने की

शिक्षा ग्रहण की है।

२४. वह पांचों कामादिकों को वश में करके आत्मा के भीतर स्वरूप रूपी तख्त पर आसीन रहता है।

२५. और उस स्वामी भगवान् की इच्छा को शिरोधार्य करके कर्म करता है,—

२६. जो स्वामी अवर्णनीय एवं अलक्ष्य है। ६।

२७. (जगत् का कर्त्ता प्रभु जगत् में व्याप्त भी है और जगत् से परे, पृथक, भी है—यह आश्चर्यजनक कौतुक द्रष्टान्त के द्वारा इस प्रकार समझाया गया है) जिस चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल में होता है वह चन्द्रमा जल से भी दूर है।

२८. जिस प्रकार उसकी ज्योति जल में है उसी प्रकार प्रभु सृष्टि में व्याप्त है।

२९. मैं कैसे कह सकता हूँ कि वह किसके निकट है और किससे दूर है (वह निकट भी है और दूर भी है) ?

३०. मैं तो उस गुणों के निधान गभु को सर्वत्र विद्मान जानकर उसके गुण गाता रहता हू। ७।

३१. भीतर बाहर, सर्वत्र भगवान् के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है।

३२. अत: जो उसे अच्छा लगता है वही होता है।

३३. हे भर्तृहरि योगी, सुन नानक यह विचार दृढ़ कराता है—

३४. कि उस प्रभु का पवित्र नाम ही मेरे जीवन का अवलम्ब है। ८। १।

(२)

१. सभि जप सभि तप सभ चतुराई।

२. ऊझड़ि भरमै राहि न पाई।

३. दिनु बूझे को थाइ न पाई।

४. नाम बिहूणे माथे छाई। १।

५. साच धणी जगु आइ बिनासा।

६. छूटसि प्राणी गुरमुखि दासा। १। रहाउ।

७. जगु मोहि बाधा बहुती आसा।

८. गुरमती इकि भए उदासा।
९. अंतरि नामु कमलु परगासा।
१०. तिन्ह कउ नाही जम की त्रासा। २।
११. जगु त्रिअ जितु कामणि हितकारी।
१२. पुत्र कलत्र लगि नामु विसारी।
१३. बिरथा जनमु गवाइआ बाजी हारी।
१४. सतिगुरु सेवे करणी सारी। ३।
१५. बाहरहु हउमै कहै कहाए।
१६. अंदरहु मुकतु लेपु कदे न लाए।
१७. माइआ मोहु गुर सबदि जलाए।
१८. निरमल नामु सद हिरदै धिआए। ४।
१९. धावतु राखै ठाकि रहाए।
२०. सिख संगति करमि मिलाए।
२१. गुर बिनु भूलो आवै जाए।
२२. नदरि करे संजोगि मिलाए। ५।
२३. रूड़ो कहउ न कहिआ जाई।
२४. अकथ कथउ नह कीमति पाई।
२५. सभ दुख तेरे सूख रजाई।
२६. सभि दुख मेरे साचै नाई। ६।
२७. कर बिनु वाजा पग बिनु ताला।
२८. जे सबदु बुझै ता सचु निहाला।
२९. अंतरि साच सभे सुख नाला।
३०. नदरि करे राखै रखवाला। ७।
३१. त्रिभवण सूझै आपु गवावै।
३२. वाणी बूझै सचि समावै।
३३. सबदु वीचारे एक लिवतारा।
३४. नानक धंनु सवारणहारा। ८। २।

पद-अर्थ

ऊजड़ि—निर्जन प्रदेश में; **थाइ**—स्वीकृत; **छाई**—राख; **धणी**—स्वामी; **उदासा**—विरक्त, निर्मोह; **त्रिअ जितु**--स्त्री द्वारा जीता हुआ; **कामणि हितकारो**—स्त्री का प्रेमी: **कलत्र**—पत्नी; **संजोगि**--संयोग (मिलाने) के नियमानुसार; **रुड़े**—सुन्दर भगवान; **कर**—हाथ; **पग**—पैर; **त्रिभवण**—तीन लोक; ब्रह्माण्ड ।

टीका

१. (भगवान् को समझे बिना) जो मनुष्य समग्र जप, तप आदि की साधना करता है और (विद्या के बल से) समस्त प्रकार की चतुराइयाँ भी प्रदर्शित करता है,—

२. वह निर्जन प्रदेश में ही भ्रान्त फिर रहा है, वह लक्ष्यगामी मार्ग पर नहीं चलता ।

३. परमात्मा को समझे बिना कोई भी मनुष्य प्रभु-द्वार पर प्रामाणिक नहीं माना जाता है ।

४. अतः जो मनुष्य नाम से शून्य है उनके सिर में राख ही पड़ती है । १ ।

५. केवल स्वामी, प्रभु, शाश्वत है, (समस्त) जगत् उत्पन्न और नष्ट होता रहता है ।

६. (इस नश्वर जगत् में) वह जीव मुक्त होता है जो गुरू की कृपा से सेवक हो जाता है । १ । रहाउ ।

७. संसार माया के मोह में बद्ध है । इसे प्रबल तृष्णा ने पीड़ित कर रखा है ।

८. कई जीव गुरु की शिक्षा प्राप्त करके माया से विरक्त हो जाते हैं ।

९. उनके भीतर प्रभु नाम बस जाता है और उनका हृदय-कमल खिल जाता है ।

१०. तब उन्हें मृत्यु का भय नहीं रहता । २ ।

११ संसार (काम वश होकर) स्त्री द्वारा पराजित होकर स्त्री के मोह में फ़ंसा पड़ा है ।

१२. पुत्र और स्त्री आदि के मोह में पड़कर इसने नाम को विस्मृत कर दिया है।

१३. इस प्रकार मनुष्य जन्म निष्फल चला जाता है और जीवन के खेल में हार हो जाती है।

१४. परन्तु जो मनुष्य सद्गुरू की सेवा करता है (उसकी सेवा में रहता है) वह श्रेष्ठ कर्मवान् हो जाता है। ३।

१५. बाहर से देखने में कई बार आत्माभिमान को रखता हुआ अहन्त्व की बातें करता भी प्रतीत होता है,—

१६ परन्तु उसका अन्त:करण मोह-माया से मुक्त होता है। उस पर माया का कभी कोई प्रभाव नहीं होता।

१७. माया के इस मोह को वह गुरु की शिक्षा से नष्ट करता है,—

१८. और सदा हृदय में पवित्र नाम का स्मरण करता है। ४।

१९. उस जीव ने अपने मन को विषयों की ओर दौड़ने से रोक कर रखा है,

२०. जिसने गुरु-संगति में पहुँच कर शिक्षा दृढ़ की है प्रभु उसे अपनी कृपा से ऐसी संगति में मिलाता है।

२१. परन्तु गुरु के बिना जीव भ्रान्त फिरता है और जन्म-मरण के चक्र में रहता है।

२२. जिस पर प्रभु कृपा करता है उसे संयोग के नियमों के अनुसार अपने साथ संयुक्त कर लेता है। ५।

२३. हे प्रभु, मैं तुम (सुन्दर) को सुन्दर सुन्दर कहता रहता हूँ परन्तु तुम कथन से परे हो।

२४. मैं तुम अकथनीय का कथन करता हूँ परन्तु वास्तव में तुम्हारा मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

२५. हे इच्छा के स्वामी, समस्त दु:ख और सुख तुम्हारे ही हैं (तुम्हारी ओर से ही आते हैं)।

२६. परन्तु जीव सत्य नाम की कृपा से उन्हें मिटा देता है। ६।

२७. (उस जीव का) हाथों के बिना बाजा बजता है और पैरों के बिना ताल होता है (उसका अन्त:करण आध्यात्मिक आनन्द रूपी संगीत से पूर्ण हो जाता है)।

२८. यदि वह शब्द (गुरु-शिक्षा) को समझ ले (क्योंकि, जब वह शब्द को समझता है) तब सत्य (प्रभु) को देख लेता है।

२९. जिसके भीतर सत्य प्रभु हो समस्त सुख उसके सहचर हो जाते हैं।

३०. वह रक्षक प्रभु कृपा करके उसे (माया-मोह से) बचा लेता है। ७।

३१. जो मनुष्य (गुरु की शरण ग्रहण करके) अहंभाव मिटा देता है, उसे भगवान् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में (व्याप्त) दिखाई देता है।

३२. उसे वाणी के बल से यथार्थ ज्ञान हो जाता है और वह सत्य प्रभु में लीन हो जाता है।

३३. वह एक-तान ध्यान लगाकर शब्द का विचार करता है (इस प्रकार वह जीवन संवार लेता है)।

३४. (नानक) प्रभु धन्य है जो जीवों को (शब्द में निमग्न करके) सँवारता है। ८। २।

(३)

१. लेख असंख लिखि लिखि मानु।
२. मनि मानिऐ सचु सुरति बखानु।
३. कथनी बदनी पड़ि पड़ि भारु।
४. लेख असंख अलेखु अपारु। १।
५. ऐसा साचा तूं एको जाणु।
६. जंमणु मरणा हुकमु पछाणु। १। रहाउ।
७. माइआ मोहि जगु बाधा जमकालि।
८. बांधा छूटै नामु सम्हालि।
९. गुरु सुखदाता अवरु न भालि।
१०. हलति पलति निबहि तुधु नालि। २।
११. सबदि मरै तां एक लिव लाए।
१२. अचरु चरै तां भरमु चुकाए।
१३. जीवन मुकतु मनि नामु बसाए।
१४. गुरमुखि होइ त सचि समाए।
१५. जिनि धर साजी गगनु अकासु।

१६. जिनि सभ थापी थापि उथापि ।
१७. सरब निरंतरि आपे आपि ।
१८. किसै न पूछे बखसे आपि । ४ ।
१९. तू पुरु सागरु माणक हीरु ।
२०. तू निरमलु सचु गुणी गहीरु ।
२१. सुखु मानै भेटै गुर पीरु ।
२२. एको साहिबु एकु बजीरु । ५ ।
२३. जगु बंदी मुकते हउ मारी ।
२४. जगि गिआनी बिरला आचारी ।
२५. जगि पंडितु बिरला वीचारी ।
२६. बिनु सतिगुरु भेटे सभ फिरै अहंकारी । ६ ।
२७. जगु दुखीआ सुखीआ जनु कोइ ।
२८. जगु रोगी भोगी गुण रोइ ।
२९. जगु उपजै बिनसै पति खोइ ।
३०. गुरमुखि होवै बूझै सोइ । ७ ।
३१. महघो मोलि भारि अफारु ।
३२. अटल अछलु गुरमती धारु ।
३३. भाइ मिलै भावै भइकारु ।
३४. नानकु नीचु कहै बीचारु । ८ । ३ ।

पद-अर्थ

लेख—विचार; **बदनी**—मुख का वचन; **अचरु**—न खाई जाने वाली कामादिक वासनाएँ; **धर**—पृथ्वी; **उथापि**—नष्ट करता है; **निरंतरि**—निरन्तर; **पुरु**—भरपूर; **बंदी**—बन्धन-पतित, दास; **रोइ**—रोता है; **महघो**—महार्घ; **अफारु**—अपार, अनन्त, भार रहित ।

टीका

१. (विद्वानों ने प्रभु के विषय में) अनेक लेख लिखे हैं और लिख-लिख

कर अभिमान भी किया है (कि हमने कुछ लिखा है)।

२. परन्तु मन के विश्वस्त होने से ही (कोई लेख) सत्य होकर सुरति में स्थिर हो जाता है और (तत्पश्चात् जगत् के लिए) व्याख्यान बनता है।

३. नहीं तो कहना, मुख से बातें करते रहना और अध्ययन करते रहना, केवल अहंकार का भार बनकर ही रह जाता है।

४. (इस के अतिरिक्त) चाहे उसके विषय में अनेक लेख हों परन्तु वह लेखों से परे है और सीमाओं से रहित है। १।

५. हे भाई, ऐसा सत्य प्रभु (जिसका वर्णन इस 'शब्द' में किया गया है) केवल एक को ही समझ।

६. (शेष संसार) जन्म-मरण से आबद्ध है और इस जन्म-मरण को भी उस प्रभु का ही आदेश समझ। १। रहाउ।

७. माया के मोह के कारण यमराज ने जगत् को (अपनी पाश में) बद्ध कर रखा है।

८. इस प्रकार बद्ध संसार परमात्मा के नाम-स्मरण से ही बंधनों से मुक्त हो सकता है।

९. हे भाई, गुरु ही सुख का दाता है। उसके अतिरिक्त किसी अन्य को खोजता मत फिर (गुरु ही प्रभु का स्मरण देकर बंधन काटता है)।

१०. गुरु लोक और परलोक में तेरा संगी होगा। २।

११. यदि जीव गुरु-ज्ञान के बल से अहंभाव को नष्ट करे तो ही वह प्रभु में सुरति जोड़ सकता है।

१२. यदि वह न खाए जाने वाले कामादि विषयों को खा जाए अर्थात् समाप्त कर दे तो ही उसके मन की तृष्णा शान्त होती है।

१३. जो मन में नाम बहाता है वह इस जीवन में ही मुक्त हो जाता है।

१४. जो गुरु के सम्मुख होता हैं, वह सत्य प्रभु में लीन हो जाता है। ३।

१५. जिस प्रभु ने पृथ्वी और आकाश बनाये हैं,—

१६. जिसने समस्त सृष्टि की रचना की है और इसे नाश करने में भी समर्थ है,—

१७. वह स्वयं ही कृपा करता है और कृपा करने के लिए किसी अन्य

का परामर्श नहीं लेता । ४ ।

१६. हे प्रभु, तुम परिपूर्ण सागर हो, और तुम ही माणिक्य हीरक हो ।

२०. तुम पवित्र हो, स्थिर हो, और गुणों का निधान हो ।

२१. तुम्हारे मिलन का सुख वह जीव प्राप्त करता है जिसे गुरु-पीर मिल जाता है ।

२२. हे भाइयो, एक प्रभु ही राजा है और वह स्वयं ही मन्त्री है । ५ ।

२३. जगत् अहंकार के कारागृह में है । मुक्त वही है जिसने अहंकार नष्ट कर दिया है ।

२४. जगत् में बिरला ही कोई ज्ञानी है जो आचरणशाली भी है ।

२५. इसी प्रकार जगत् में बिरला ही पण्डित है जो विचारवान् भी है ।

२६. (नहीं तो) गुरु न मिलने से समस्त जगत् अहंभाव में भटक रहा है । ६ ।

२७. विश्व (अहंकार के कारण) दु:खी है और कोई बिरला ही है जो (अहंकार मारकर) सुखी हुआ है ।

२८. विश्व (विकारों के कारण) रोगी है, भोगों में मग्न है और गुणों को रोता है (अवगुणों के कारण दु:खी हो रहा है) ।

२६. यह जगत् जन्म-मरण में दु:खी हो रहा है और प्रतिष्ठा खो रहा है ।

३०. जो गुरु की शरण में जाता है, वह इस विचार को समझता है । ७ ।

३१. प्रभु मूल्य में मंहगा है, वह भार में अनंत है, (भाररहित है) ।

३२. वह अविचाल्य है, छला भी नहीं जा सकता; परन्तु गुरु की ही बुद्धि से उस (अमूल्य, अतुल, अविचाल्य और अछलनीय) को मन में धारण किया जा सकता है ।

३३. वह एकमात्र प्रेम द्वारा मिलता है । क्योंकि, उसे भाव (प्रेम) पूर्ण जीवन प्रिय है ।

३४. नीच नानक यह विचार कहता है । ८ ।३ ।

(४)

१. **एकु मरै पंचे मिलि रोवहि ।**

२. हउमै जाइ सबदि मलु धोवहि ।
३. समझि सूझि सहज घरि होवहि ।
४. बिनु बूझे सगली पति खोवहि । १ ।
५. कउणु मरै कउणु रोवै ओही ।
६. करण कारण सभसै सिरि तोही । १ । रहाउ ।
७. मूए कउ रोवै दुखु कोइ ।
८. सो रोवै जिसु बेदन होइ ।
९. जिसु बीती जाणै प्रभु सोइ ।
१०. आपे करता करे सु होइ । २ ।
११. जीवन मरणा तारे तरणा ।
१२. जै जगदीस परम गति सरणा ।
१३. हउ बलिहारी सतिगुर चरणा ।
१४. गुरु बोहिथु सबदि भै तरणा । ३ ।
१५. निरभउ आपि निरंतरि जोति ।
१६. बिनु नावै सूतकु जगि छोति ।
१७. दुरमति बिनसै किआ कहि रोति ।
१८. जनमि मूए बिनु भगति सरोति । ४ ।
१९. मूए कउ सचु रोवहि मीत ।
२०. त्रैगुण रोवहि नीता नीत ।
२१. दुखु सुखु परहरि सहजि सुचीत ।
२२. तनु मनु सउपउ क्रिसन परीति । ५ ।
२३. भीतरि एकु अनेक असंख ।
२४. करम धरम बहु संख असंख ।
२५. बिनु भै भगती जनमु बिरंथ ।
२६. हरिगुण गावहि मिलि परमारंथ । ६ ।
२७. आपि मरै मारे भी आपि ।
२८. आपि उपाए थापि उथापि ।
२९. स्रिसटि उपाई जोती तू जाति ।

३०. सबदु वीचारि मिलणु नहीं भ्राति । ७ ।
३१. सूतकु अगनि भखै जगु खाइ ।
३२. सूंतकु जलि थलि सभ ही थाइ ।
३३. नानक सूतकि जनमि मरीजै ।
३४. गुर परसादि हरि रसु पीजै । ८/४ ।

पद-अर्थ

पंचे—माता, भ्राता, पत्नी, पुत्र पाँचों सम्बन्धी; **पति**—प्रतिष्ठा; **ओही**—'उह उह' पिता करके रोना; **जीवत मरण**—जीवित भाव की दृष्टि में मरना; **बोहिथ**—वोहित, पोत; **निरंतरि**—निरंतर; **सूतक**—जन्म काल का आशौच; **छोति**—छूतछात; **भीतरि**—भीतर; **बिरंद**—व्यर्थ निष्फल; **परमारंथ**—परमार्थ की ओर लगे जीव; **भ्राति**—भ्रान्ति, भ्रम ।

टीका

१. जब कोई मनुष्य मरता है तब उसके समस्त सम्बन्धी एकत्रित होकर उसे रोते हैं (यह रोना अहंभाव से उत्पन्न होता है) ।
२. परन्तु जो जीव शब्द से मन का मल धोते है, उनका अहंभाव नष्ट हो जाता हैं ।
३. वे वास्तविकता को समझ कर शान्ति की दशा में आ जाते हैं (वह वास्तविकता आगे जाकर कही गई है—'ना को मरै न आवै जाई') ।
४. अन्यथा जीव अज्ञानवश रो-रोकर प्रभु की दृष्टि में अपनी प्रतिष्ठा खो बैंठते हैं । (उनकी दृष्टि अति सीमित है । उन्हें यह नहीं दिखाई देता कि समग्र क्रीड़ा उसकी अपनी है) । १ ।
५. (बतलाओ), कौन मरता है और 'हाय-हाय' करके कौन रोता है ?
६. जब कि, हे प्रभु, सत्य यह है कि समग्र के सिर पर करण-कारण तुम स्वयं ही हो । १ । रहाउ ।
७. मृत को उसके दु:ख के कारण कोई बिरला ही रोता है ।
८. प्रत्युत वह रोता है जिसके ऊपर (उसकी मृत्यु के कारण) कोई

विपत्ति आ पड़ती है ।

९. जिस प्राणी की मृत्यु होती है (उसका मृत्यु के अनन्तर क्या होता है ? उसको वह स्वयं ही जानता है,—

१०. क्योंकि, वह कर्ता है और वही होता है, जो वह करता है । २ ।

११. यदि प्रभु किसी को पार करे तो वह अहंकार नष्ट करके पार होता है ।

१२. हे जगत् के स्वामी, तुम्हारी जय हो, तुम्हारी शरण लेकर उत्तम पदवी मिलती है ।

१३. मैं सद्गुरु के चरणों पर न्यौछावर जाता हूं ।

१४. गुरु जलयान है । गुरु दे दिए ज्ञान से भवसागर से पार हुआ जाता है । ३ ।

१५. प्रभु निर्भय है । उसकी ज्योति प्रत्येक जीव के भीतर निरन्तर प्रकाशमान है ।

१६. (पुन:) नाम-शून्य होने के कारण जगत् में सूतक और छूतछात का भ्रम व्याप्त है ।

१७. यदि दुर्बुद्धि नष्ट हो जाए तो कोई क्या कह कर रोए (प्रकाश हो जाने से वास्तविकता समझ में आ जाती हैं । फिर रोना किस लिए ?) ।

१८. परन्तु, भक्ति और गुण-स्तुति न सुनने से जीव जन्म लेते और मरते रहते हैं । ४ ।

१९. वास्तव में मृत को रोते है उसके मित्र।

२०. 'जो भी त्रिगुणमयी प्रकृति के वंश में है' वे प्रतिदिन ही रोते हैं ।

२१. अत: हे भाई सुख-दु:ख को विस्मृत करके (एक-समान समझ कर) सहज (शांति) की दशा में स्थिरचित्त हो जाओ,—

२२. और तन-मन प्रभु-प्रीति में लगा दो । ५ ।

२३. सृष्टि में जीव अनेक, असंख्य, हैं; परन्तु उनके भीतर एक ही ज्योति व्याप्त है ।

२४. शास्त्रों में निरूपित कर्म-धर्म भी अनेक हैं. असंख्य हैं ।

२५. (परन्तु) प्रभु-भय और प्रभु-भक्ति के बिना मनुष्य जन्म निष्फल हो जाता है ।

२६. अतः परमार्थ के अन्वेषक मिलकर हरि के गुण गाते हैं ६।

२७. भगवान् स्वयं ही मरता है और स्वयं ही मारता है।

२८. स्वयं ही उत्पन्न करता है और स्वयं ही नष्ट करता है।

२९. तुमने स्वयं ही जगत् की सृष्टि की है; तुम स्वयं ही ज्योति हो और स्वयं ही जाति (सृष्टि) हो।

३०. गुरु के उपदेश को विचारने से हरि का मेल होता है। तत्पश्चात् भटकना नहीं रहती। ७।

३१. (सूतक का भ्रम व्यर्थ है। सूतक कहां नहीं?) सूतक अग्नि में है जो भड़-भड़ करके समस्त जगत् को जला देती है।

३२. यह सूतक जल, स्थल, सर्वत्र है।

३३. (नानक) इस प्रकार के सूतक आदिक भ्रमों के कारण ही जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं।

३४. अतः गुरु की कृपा से हरि प्रेम का रस-पान करना चाहिए। ८। ४।

(५)

१. आपु वीचारै सु परखे हीरा।
२. एक द्रिसटि तारे गुर पूरा।
३. गुरु मानै मन ते मनु धीरा। १।
४. ऐसा साहु सराफी करै।
५. साची नदरि एक लिव तरै। १। रहाउ।
६. पूंजी नामु निरंजन सारु।
७. निरमलु साचि रता पैकारु।
८. सिफती सहज घरि गुर करतारु। २।
९. आसा मनसा सबदि जलाए।
१०. राम नराइणु कहै कहाए।
११. गुर ते वाट महलु घरु पाए ३।
१२. कंचन काइआ जोति अनूपु।
१३. त्रिभवण देवा सगल सरूपु।

१४. मैं सो धनु पलै साचु अखूटु । ४ ।
१५. पंच तीनि नव चारि समावै ।
१६. धरणि गगनु कलधारि रहावै ।
१७. बाहरि जातउ उलटि परावै । ५ ।
१८. मूरखु होइ न आखी सूजै ।
१९. जिहवा रसु नही कहिआ बूझै ।
२०. बिखु का माता जग सिउ लूझै । ६ ।
२१. उतम संगति ऊतमु होवै ।
२२. गुण कउ धावै अवगण धोवै ।
२३. बिनु गुर सेवे सहजु न होवै । ७ ।
२४. हीरा नामु जवेहर लालु ।
२५. मनु मोती है तिस का मालु ।
२६. नानक परखै नदरि निहालु । ८ । ५ ।

पद-अर्थ

हीरा—नाम रूपी हीरा; **धीरा**—धैर्य; **साहु**—शाह, गुरु; **सराफी**—परख, निर्णय; **पैकारु**—निखारने वाला जो टकसाल की राख से सोना चाँदी निखारता है; **आसा मनसा**—इच्छा, संकल्प; **वाट**—मार्ग; **महल**—निवास स्थान; **पंच**—पाँच तत्त्वों में; **तीनि**—तीन भवनों में, **नव**—नौ खण्डों में; **चारि**—चारों ओर; **सूझै**—दिखाई देता; **विख**—विष, माया रूपी विष; **लझै**—झगड़ता है ।

टीका

१. जो अपने को (निजस्वरूप को, अपने वास्तविक रूप को गुरु की सहायता से) खोजे, वह नाम रूपी हीरे को पहचान लेता है ।
२. पूर्ण गुरु उसे एक दृष्टि से पार उतार देता है ।
३. जो गुरु में श्रद्धा रखता है, उसका मन अपने भीतर से ही धैर्य पकड़ता है (स्थिर हो जाता है) । १ ।

४. गुरु ऐसा साहूकार है और इस प्रकार की परख करता है (सिक्ख सेवकों की परख करता है),—

५. कि उसकी कृपा की सत्यमयी दृष्टि से एक प्रभु में लौ लगती हैं और जीव संसार-सागर को तर जाता है। १। रहाउ।

६. निरंजन हरि का उत्तम नाम पूंजी है।

७. निर्मल पारखी जीव उसी सत्य (नाम) में रँगा रहता है।

८. हरि के यशोगान के बल से वह सहजावस्था में पहुंच कर गुरु करतार से मिलता है। २।

९. जो जीव इच्छाओं और संकल्पों को गुरु-ज्ञान से जला देता है —

१०. और राम का नाम जपता और जपाता है,

११. वह गुरु की कृपा से जीवन के निर्भ्रम मार्ग पर चलकर प्रभु का (महल) घर प्राप्त कर लेता है। ३।

१२. उसका शरीर सुवर्ण के समान सुंदर हो जाता है, उसके भीतर उस प्रभु की सुन्दर ज्योति का प्रकाश होता है,—

१३. जो तीनों भुवनों का देवता है और विश्व-रूप है।

१४. मुझे भी वह धन मिला है जो स्थिर और अक्षय है। ४।

१५. जो प्रभु पाँच तत्त्वों, तीन भुवनों, नौ खण्डों और चार दिशाओं में समा रहा है,—

१६. जिसने पृथ्वी और आकाश को अपनी शक्ति से रोका हुआ है,

१७. जीवों के बहिर्मुख मन को (गुरु) उसकी ओर कर देता है। ५।

१८. व्यापक हरि मूर्ख जीव को नेत्रों से दिखाई नहीं देता।

१९. उसकी जिह्वा में नाम-रस होता नहीं और गुरु का वचन वह मानता नहीं।

२०. माया के विष में अनुरक्त होकर अन्य जीवों से झगड़ता फिरता है। ६।

२१. (गुरु की) उत्तम संगति से जीव उत्तम हो जाता है।

२२. वह गुणों की ओर दौड़ता है और अवगुणों को धोता है।

२३. गुरु की शरण के बिना स्थिर अवस्था नहीं मिलती। ७।

२४. हरि का नाम हीरा, रत्न और लाल है।

२५. परन्तु यह उसका धन है जिसका मन मोती हो गया है।

२६. उस मोती की परख गुरु करता है और फिर अपनी कृपा-दृष्टि से उसे सम्पन्न कर देता है । ८ । ५ ।

(६)

१. गुरमुखि गिआनु धिआनु मनि मानु ।
२. गुरमुखि महली महलु पछानु ।
३. गुरमखि सुरति सबदु नीसानु । १ ।
४. ऐसे प्रेम भगति वीचारी ।
५. गुरमुखि साचा नामु मुरारी । १ । रहाउ ।
६. अहिनिसि निरमलु थानि सुथानु ।
७. तीन भवन निहकेवल गिआनु ।
८. साचे गुर ते हुकमु पछानु । २ ।
९. साचा हरखु नाही तिसु सोगु ।
१०. अंम्रितु गिआनु महा रसु भोगु ।
११. पंच समाई सुखी सभु लोगु । ३ ।
१२. सगली जोति तेरा सभु कोई ।
१३. आपे जोड़ि विछोड़े सोई ।
१४. आपे करता करे सु होई । ४ ।
१५. ढाहि उसारे हुकमि समावै ।
१६. हुकमो वरतै जो तिसु भावै ।
१७. गुर बिनु पूरा कोइ न पावै । ५ ।
१८. बालक बिरधि न सुरति परानि ।
१९. भरि जोबनि बूडै अभिमानि ।
२०. बिनु नावै किआ लहसि निदानि । ६ ।
२१. जिस का अनु धनु सहजि न जाना ।
२२. भरमि भुलाना फिरि पछुताना ।
२३. गलि फाही बउरा बउराना । ७ ।
२४. बूडत जगु देखिआ तउ डरि भागे ।

२५. सतिगुर राखे से बडभागे ।

२६. नानकु गुर की चरणी लागे । ८ । ६ ।

पद-अर्थ

गुरमुखि—गुरु द्वारा. गुरु की शरण लेकर; **महली**—महल का स्वामी हरि; **मुरारी**—मुर राक्षस को मारने वाला, कृष्ण, प्रभु; **अहिनिसि**—दिन रात; **निहकेवल**—पवित्र, वासना रहित; **हरखु**—हर्ष; **पंच**—काम-आदि; **समावै**—समाप्त कर देता है; **जोबनि**—यौवनावस्था में; **अभिमानी**—अहंकार में; **सहजि**—वास्तविक ज्ञान की नैसर्गिक दशा; **बउरा**—बुद्धिहीन, पागल; **बूडत**—डूबता ।

टीका

१. हे भाई, गुरु के सम्मुख होकर (गुरु की शिक्षा से) अपने मन में ज्ञान ध्यान को प्राप्त करो (अपने मन को तृप्त करो) ।

२. (निवास स्थान) की पहचान निजस्वरूप में करो ।

३. गुरु की शरण लेकर गुरु ज्ञान को ग्रहण करो और इसे जीवन का यात्रानुमतिपत्र बनाओ । १ ।

४. प्रभु की प्रेमा-भक्ति के बल से इस प्रकार के विचारवान् हो जाओ,—

५. कि गुरु-द्वारा प्रदत्त हरि का सत्य नाम ही (आपका जीवन-आधार हो जाए) । १ । रहाउ ।

६. दिन रात अपने हृदय-स्थान को प्रभु का निर्मल सुन्दर स्थान बनाए रखो (आत्मस्वरूप में प्रभु का निवास बनाओ) ।

७. तीनों लोकों में व्याप्त और इच्छाओं से शून्य परमात्मा का ज्ञान (प्राप्त करो)—

८. और सत्य गुरु के उपदेश से उसके आदेश पहचानो । २ ।

९. उस मनुष्य के भीतर अचल आनन्द अद्भुत हो जाता है और उसे कभी शोक नहीं होता,—

१०. जिसका अपान-पान अविचल प्रभु का ज्ञान और आनन्ददायक नाम होता है ।

११. उसके काम आदि पांचों विकार नष्ट हो जाते हैं और उसके घर के समस्त व्यक्तियों (उसकी आन्तरिक वृत्तियों को) सुख मिलता है। ३।

१२. हे प्रभु ! सभी तुम्हारी ज्योति सब में है और प्रत्येक वस्तु तुम्हारी है।

१३. तुम स्वयं ही कई जीवों को अपने साथ मिला लेते हो और कितने ही जीवों को अपने से विमुक्त कर देते हो।

१४. हे प्रभु, तुम ही सब कुछ करते हो और वही होता है जो तुम करते हो। ४।

१५. प्रभु स्वयं ही रचना का नाश करता है, स्वयं ही सर्जन करता है और फिर अपने शासन के अनुसार (जब मन चाहे) इसे समाप्त कर देता है।

१६. जो उसे अच्छा लगता है उसके आदेश से वही होता है।

१७. गुरु के बिना कोई भी उस पूर्ण परमात्मा को प्राप्त नही कर सकता। ५।

१८. जिस प्राणी की सुरति शैशव और वृद्धावस्था में नहीं जागती,—

१९. और जो पूर्ण यौवन की अवस्था में अहंकार में मग्न रहता है;—

२०. वह नाम से शून्य होने के कारण अन्त में क्या प्राप्त करेगा ? (कुछ नहीं)। ६।

२१. जिस प्रभु ने अन्न-धन्न प्रदान किया है, उसको जिस जीव ने सहजावस्था में स्थिर होकर नहीं जाना,—

२२. वह जीव मोह में भूला-भटका रहता है और अन्त में पश्चाताप करता है।

२३. वह माया के पाश में ही पागल होकर पागलों के समान फिरता है। ७।

२४. जगत् को डूबते देख और उससे त्रस्त होकर जो गुरु की शरण की ओर दौड़ पड़े,—

२५. उन्हें गुरु ने बचा लिया; वे (वस्तुत:) भाग्यशाली हैं।

२६. (नानक) वे तदनन्तर गुरु के चरणों में लग्न रहते हैं। ८। ९।

(७)

१. गावहि गीते चीति अनीते।

२. राग सुणाइ कहावहि बीते ।
३. बिनु नावै मनि झूठु अनीते । १ ।
४. कहा चलहु मन रहहु धरे ।
५. गुरमुखि रामनामि त्रिपतासे खोजत पावहु सहजि हरे ।
१ । रहाउ ।
६. कामु क्रोध मनि मोहु सरीरा ।
७. लबु लोभु अहंकारु तु पीरा ।
८. रामनाम बिनु किउ मनु धीरा । २ ।
९. अंतरि नावणु साचु पछाणै ।
१०. अंतरि की गति गुरमुखि जाणै ।
११. साच सबद बिनु महलु न पछाणै । ३ ।
१२. निरंकार महि आकास समावै ।
१३. अकल कला सचु साचि टिकावै ।
१४. सो नरु गरभ जोनि नही आवै । ४ ।
१५. जहां नामु मिलै तह जाउ ।
१६. गुर परसादी करम कमाउ ।
१७. नामे राता हरि गुण गाउ । ५ ।
१८. गुर सेवा ते आपु पछाता ।
१९. अंम्रित नामु वसिआ सुखदाता ।
२०. अनदिनु बाणी नामे राता । ६ ।
२१. मेरा प्रभु लाए ता को लागै ।
२२. हउमै मारे सबदे जागै ।
२३. ऐथै ओथै सदा सुखु आगै । ७ ।
२४. मनु चंचलु बिधि नाही जाणै ।
२५. मनमुखि मैला सबदु न पछाणै ।
२६. गुरमुखि निरमलु नामु वखाणै । ८ ।
२७. हरि जीउ आगै करी अरदासि ।
२८. साधू जन संगति होइ निवासु ।

२९. किलविख दुख काटे हरिनामु प्रगासु । ९ ।
३०. करि वीचारु आचारु पराता ।
३१. सतिगुर बचनी एको जाता ।
३२. नानक रामनामि मनु राता । १० । ७ ।

पद-अर्थ

गीते—गीत, भजन; **चीति**—चित्त में, हृदय में; **अनीते**—कुकर्म, पाप; **घरे**—घर में, निजस्वरूप में; **पीरा**—पीड़ा; गति—दशा, **महलु**—प्रभु का निवास स्थान; **बिधि**—रीति; **सचु**—वास्तविकता (अस्तित्व) अकल कला-वह कारीगरी जिसमें कारीगरी दिखाई न दे; **किलविख**—किल्विष, पाप; **आचारु**—सदाचार; **पराता**—पहचाना ।

टीका

१. जो मनुष्य भक्ति के गीत-भजन गाते हैं परन्तु उनके अपने मन के भीतर पाप होते हैं;—
२. जो जगत् को गीत सुनाकर अपने आपको सांसारिक वासनाओं से परे प्रकट करते हैं,
३. वे नाम से रिक्त होने के कारण अपने हृदयों में असत्य और पाप लिए फिरते हैं । १ ।
४. हे मन, क्यों चंचल होता है, अपने स्वरूप में स्थिर हो जा ?
५. गुरुमुख (गुरु के समक्ष हुए जब) राम नाम से तृप्त होते हैं । अंदर खोज करते हुए तू भी अनायास हरि को प्राप्त कर लेगा । । १ । रहाउ ।
६. जब तक मन और शरीर में काम, क्रोध और मोह है,-
७. और जब तक लोभ, लालच और अहंकार है तब तक दुःख-कलेश बना रहेगा ।
८. नाम के बिना मन किस प्रकार धैर्य धारण कर सकता है ? । २ ।
९. प्रथम भीतर से स्नान करे (मन का मल कटे) तब सत्य को पहचान सकता है,

१०. और गुरु के समक्ष होने से आन्तरिक स्थिति का पता चलता है।

११. परन्तु गुरु के सत्य शब्द की उपार्जना के बिना हरि का निवास स्थान प्राप्त नहीं होता। ३।

१२. जो मनुष्य आकार (शारीरिक जीवन) को निराकार प्रभु में लीन कर दे (शारीरिक जीवन से उठकर आध्यात्मिक जीवन बिताए),

१३. जो अपने सत्यस्वरूप शुद्ध आत्मा को सत्य प्रभु में (अपनी वस्तुता (अस्तित्व) को प्रभु की वस्तुता (अस्तित्व) में इस कुशलता से स्थित करे जिसमें कुशलता दिखाई न दे (वह कुशलता नाम-स्मरण से उत्पन्न होती है),—

१४. वह मनुष्य जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। ४।

१५. (अतः) हे प्रभु, मैं वहीं जाऊँ जहाँ नाम मिलता है।

१६. गुरु की कृपा से यह (नाम जपने का) कर्म भी कमाऊँ,—

१७. और नाम में अनुरक्त होकर प्रभु-गुण गाता रहूँ। ५।

१८. जिसने गुरु की सेवा करके (गुरु को आत्म-समर्पण करके, गुरु का आदेश मानकर) अपने आपको पहचान लिया है,—

१९. उसके हृदय में समस्त सुखों का दाता अमृत नाम बस गया है।

२०. वह प्रतिदिन (सदा) गुरवाणी के चिन्तन में लीन और नाम में अनुरक्त रहता है। ६।

२१. जिसे मेरा प्रभु इस ओर (नाम में) लगाए, वही इस ओर लगता है।

२२. वह शब्द की सहायता से जाग पड़ता है और अहंकार को नष्ट करता है।

२३. लोक-परलोक में सदा ही उसे सुख मिलता है। ७।

२४. यह भटकता हुआ मन (नाम की) रीति नहीं जानता,—

२५. क्योंकि यह मनोमुख सदा मलिन रहता है और शब्द का सम्मान करना नहीं जानता।

२६. गुरुमुख (गुरु के समक्ष होने वाला) पवित्र हो जाता है, वह नाम स्मरण करता हैं। ८।

२७. मैं हरि जी के समक्ष प्रार्थना करता हूँ,

२८. कि हे प्रभु मेरा निवास साधु-जनों की संगति में हो ।—

२९. जिससे मेरे हृदय में नाम का प्रकाश हो और जो मेरे पाप और दु:ख नष्ट कर दे । ९ ।

३०. वह जीव गुरु शब्द का विचार करके शुभ आचरण पहचानता है (उत्तम जीवन की प्रतिष्ठा पाता है),—

३१. जो सद्गुरु के वचनों के द्वारा एक प्रभु को समझ जाता है ।

३२. (नानक) उसका मन राम-नाम में अनुरक्त होता है । १० । ७ ।

(८)

१. मनु मैगलु साकतु देवाना ।

२. बनखंडि माइआ मोहि हैराना ।

३. इत उत जाहि काल के चापे ।

४. गुरमुखि खोजि लहै घरु आपे । १ ।

५. बिनु गुर सबदै मनु नही ठउरा ।

६. सिमरहु रामनामु अति निरमलु अवर तिआगहु हउमै कउरा । १ ।रहाउ ।

७. इहु मनु मुगधु कहहु किउ रहसी ।

८. बिनु समझे जम का दुखु सहसी ।

९. आपे बखसे सतिगुरु मेलै ।

१०. कालु कंटकु मारे सचु पेलै । २ ।

११. इहु मनु करमा इहु मन धरमा ।

१२. इहु मनु पंच ततु ते जनमा ।

१३. साकतु लोभी इहु मनु मूड़ा ।

१४. गुरमुखि नामु जपै मनु रूड़ा । ३ ।

१५. गुरमुखि मनु असथाने सोई ।

१६. गुरमुखि त्रिभवणि सोझी होई ।

१७. इहु मनु जोगी भोगी तपु तापै ।

१८. गुरमुखि चीनै हरिप्रभु आपै । ४ ।

१९. मनु वैरागी हउमै तिआगी ।
२०. घटि घटि मनसा दुबिधा लागी ।
२१. राम रसाइणु गुरमुखि चाखै ।
२२. दरि घरि महली हरि पति राखै । ५ ।
२३. इहु मनु राजा सूर सँग्रामि ।
२४. इहु मनु निरभउ गुरमुखि नामि ।
२५. मारे पंच अपुनै वसि कीए ।
२६. हउमै ग्रासि इकतु थाइ कीए । ६ ।
२७. गुरमुखि राग सुआद अन तिआगे ।
२८. गुरमुखि इहु मनु भगती जागे ।
२९. अनहद सुणि मानिआ सबदु वीचारी ।
३०. आतमु चीन्हि भए निरंकारी । ७ ।
३१. इहु मनु निरमलु दरि घरि सोई ।
३२. गुरमुखि भगति भाउ धुनि होई ।
३३. अहिनिसि हरि जसु गुर परसादि ।
३४. घटि घटि सो प्रभु आदि जुगादि । ८ ।
३५. राम रसाइणि इहु मनु माता ।
३६. सरब रसाइणु गुरमुखि जाता ।
३७. भगति हेतु गुर चरण निवासा ।
३८. नानक हरिजन के दासनि दासा । ९ । ८ ।

पद-अर्थ

मैंगलु—हस्ती; **साकतु**—शक्ति (माया) का पुजारी; **देवाना**—पागल; **वनखंडि**—जंगल में (संसार में); **हैराना**—परेशान, व्याकुल; **चापे**—दबाए हुए; **कउरा**—कड़वा, कटु; **मुगध**—मुग्ध, मूर्ख; **रहसी**—बचेगा; **कंटक**—काँटा; **वैरागी**—त्यागी; **रसाइणु**—वृद्धावस्था को दूर करने वाला औषध; **सूर सँग्रामि**—युद्ध में शूरवीर; **ग्रासि**—खाकर; **अनहद**—स्वतः होने वाला अन्तःकरणीय संगीत (आत्मानन्द); **माता**—मस्त ।

टीका

१. माया का पुजारी यह मन मत्त हस्ती (समान) है।

२. माया मोह के कारण व्याकुल होकर संसार रूपी जंगल में भटक रहा है।

३. मृत्यु के दबाए हुए जीव इधर-उधर भटकते हैं।

४. परन्तु जीव, गुरु की शिक्षा से अपने भीतर प्रभु का निवास स्थान प्राप्त कर लेता है। १।

५. हे भाई, गुरु-शब्द के बिना मन स्थिर नहीं रह सकता।

६. प्रभु के अति पवित्र नाम का स्मरण करो और अहंकार तथा इससे उत्पन्न कटु रसों को त्याग कर दो। १। रहाउ।

७. यह मन मूर्ख है। बतलाओ, यह भटकने से किस प्रकार बच सकता है ?

८. विचार से शून्य होकर यह यम का दुःख सहन करेगा।

९. जिस पर प्रभु स्वयं कृपा करता है, उसे गुरु मिला देता है;—

१०. और इस प्रकार वह दुःखदायी मृत्यु को मार लेता है। तदनन्तर उसी को सत्य प्रेरित करता है। २।

११. यह मन ही कर्मों का कर्त्ता है और यही मन धर्म का साधक है।

१२. यह मन पाँच तत्त्वों से उत्पन्न हुआ है।

१३. यह मन माया का पुजारी, लोभी और मूर्ख है।

१४. परन्तु यदि यही मन गुरु की शिक्षा से नाम जपे तो सुंदर भी बन जाता है। ३।

१५. गुरु की शरण लेने से, वही मन अपने स्थान पर आ जाता है।

१६. गुरु दवारा, इसे तीनों भुवनों में व्याप्त हरि का ज्ञान हो जाता है।

१७. यह मन ही योगी, भोगी और तप तपने वाला है।

१८. गुरु की शिक्षा से यह मन स्वयं ही अपने भीतर प्रभु का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। ४।

१९. यह मन (कभी-कभी) अहंकार त्याग कर विरागी हो जाता है।

२०. (यद्यपि) प्रत्येक मन में मनसा (इच्छा) और दुविधा (द्वैतभाव) लगे होते हैं।

२१. यदि कभी यह मन गुरु के उपदेश से नाम-रसायन का आस्वादन करता है,—

२२. तो प्रभु के द्वार पर और घर में इसकी प्रतिष्ठा होती है। ५।

२३. यह मन ही राजा और युद्ध में योद्धा होता है।

२४. यह मन ही गुरु के उपदेश से नाम प्राप्त करके निर्भय हो जाता है।

२५. यह मन ही काम, क्रोध आदि पाँच शत्रुओं को मारकर अपने अधीन करता है।

२६. यही मन अहंकार को खाकर इन समस्त शत्रुओं को बाँधकर एक स्थान पर जकड़ देता है। ६।

२७. यह मन गुरु की शिक्षा से राग (मोह) और अन्य भोगों के आस्वादनों को त्याग देता है।

२८. और फिर यही मन गुरु के उपदेश से भक्ति में जग जाता है।

२९. यह मन ही शब्द का विचार करता है और बजाये बिना बजने वाले आत्मसंगीत को सुनने से (आत्मानन्द प्राप्त करके) इसे शान्ति प्राप्त हो जाती है।

३०. और यह अपने आपको पहचानकर निराकार के साथ एकता को प्राप्त हो जाता है। ७।

३१. यही मन हरि के द्वार पर और घर में पहुँच कर पवित्र हो जाता है।

३२. इसे गुरु से भक्ति और प्रेम की लगन प्राप्त होती है।

३३. तदनन्तर दिन-रात गुरु की कृपा से प्रभु की गुणस्तुति में लगता है।

३४. और इस मन को आदि काल से, युगयुगान्तरों से, स्थिर प्रभु प्रत्येक हृदय में दिखाई देने लगता है। ८।

३५. यह मन राम-नाम-रसायन के रस से मत्त हो जाता है।

३६. यह मन गुरु के समक्ष होकर सम्पूर्ण रसों के स्रोत प्रभु को जान लेता है।

३७. जब मन का वास गुरु चरणों में होता है तब इसके भीतर भक्ति का प्रेम जाग जाता है।

३८. (नानक) तब यह मन प्रभु के दासों का दास बन जाता है। ९। ८।

१. तनु बिनसै धनु का को कहीऐ ।
२. बिनु गुर रामनामु कत लहीऐ ।
३. रामनाम धनु संगि सखाई ।
४. अहिनिसि निरमलु हरि लिव लाई । १ ।
५. रामनाम बिनु कवनु हमारा ।
६. सुख दुख सम करि नामु न छोड़उ आपे बखसि मिलावणहारा । १ । रहाउ ।
७. कनिक कामनी हेतु गवारा ।
८. दुबिधा लागे नाम विसारा ।
९. जिसु तूं बखसहि नामु जपाइ ।
१०. दूतु न लागि सकै गुन गाइ । २ ।
११. हरिगुरु दाता राम गुपाला ।
१२. जिउ भावै तिउ राखु दइआला ।
१३. गुरमुखि रामु मेरै मनि भाइआ ।
१४. रोग मिटे दुखु ठाकि रहाइआ । ३ ।
१५. अवरु न अउखधु तंत न मंता ।
१६. हरि हरि सिमरणु किलविख हंता ।
१७. तूं आपि भुलावहि नामु विसारि ।
१८. तूं आपे राखहि किरपा धारि । ४ ।
१९. रोगु भरमु भेद मनि दूजा ।
२०. गुर बिनु भरमि जपहि जपु दूजा ।
२१. आदि पुरख गुर दरस न देखहि ।
२२. विणु गुर सबदै जनमु कि लेखहि । ५ ।
२३. देखि अचरजु रहे बिसमादि ।
२४. घटि घटि सुर नर सहज समाधि ।
२५. भरिपुरि धारि रहे मन माही
२६. तुम समसरि अवरु को नाही । ६ ।

२७. जा की भगति हेतु मुखि, नामु ।

२८. संत भगत की संगति रामु ।

२९. बंधन तोरे सहजि धिम्रानु ।

३०. छूटै गुरमुखि हरि गुर गिम्रानु । ७ ।

३१. ना जमदूत दूखु तिसु लागै ।

३२. जो जनु रामनामि लिव जागै ।

३३. भगति वछलु भगता हरि संगि ।

३४. नानक मुकति भए हरि रंगि । ८ । ९ ।

पद-अर्थ

बिनसै—नष्ट हो जाए; **कत**—किस प्रकार; **सखाई**—सखा, मित्र, साथी; **सम**—तुल्य; **कनिक**—स्वर्ण; **कामनी**—स्त्री; **दूत**—यमदूत; **गुपाला**—पृथ्वी के पालने वाला, प्रभु; **ठाकि**—रोक कर; **अउखधु**—औषध; **तंत न मंता**—न जादू न मंत्र; **किलविख हंता**—किल्विष नष्ट करने वाला; **बिसमादि**--विस्मित, चकित; **समसरि**—सदृश; **भगति वछलु**—भक्ति प्रिय ।

टीका

१. जब मनुष्य का शरीर नष्ट होता है तब (उसका एकत्र किया हुआ) धन किसका कहा जाय ? (उसका तो नहीं रहता) ।

२. (वास्तविक धन हरि का नाम है परन्तु) गुरु के बिना नाम (का धन) किस प्रकार मिल सकता है ?

३. राम नाम वह धन है जो (मृत्यु के पश्चात् भी) जीव का संगी साथी होता है ।

४. जो रात-दिन प्रभु में ध्यान लगाता है वह जीव पवित्र हो जाता है । १ ।

५. राम-नाम के बिना हमारा (जीवों का) और कौन सा आसरा है ?

६. (अतः मैं सुखों में होऊँ या दुःखों में होऊँ) मै सुख-दुःखों को समान समझकर (सुख-दुखों में एक जैसा रहकर) नाम को नहीं छोड़ूंगा । वह प्रभु के नाम की देन देकर जीव को स्वयं ही मिला लेता

है । १ । रहाउ ।

७. जो स्वर्ण और स्त्री के मोह से ग्रस्त हैं, वे मूर्ख हैं ।

८. उन्होंने दुबिधा (द्विचित्तता) में फँसकर नाम भुला दिया है ।

९. परन्तु हे प्रभु, तुम जिस पर कृपा करते हो, उसे नाम जपाते हो ।

१०. फिर यमदूतों का भय उसके निकट नहीं आ सकता, वह हरि गुण गाता है । २ ।

११. हे हरि, हे राम, हे गोपाल, तुम ही महान् दाता हो ।

१२. हे दयालु, जिस प्रकार तुम्हें अच्छा लगे उसी प्रकार मुझे (स्वर्ण और स्त्री आदि के मोह से) बचा लो ।

१३. मुझे गुरु की कृपा से राम नाम अच्छा लगा है ।

१४. मेरे रोग नष्ट हो गए हैं और मैंने दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर ली है । ३ ।

१५. (मोह से बचने के लिए नाम के बिना न अन्य कोई औषध है और न कोई यन्त्र-मंत्र है ।

१६. केवल हरि स्मरण ही पापों को नष्ट करने वाला है ।

१७. हे प्रभु, तुम स्वयं ही जीवों को नाम से छुड़ा कर भ्रान्त मार्ग पर चला देते हो ।

१८. और स्वयं ही कृपा करके, उन्हें (मृत्यु से) बचा लेते हैं । ४ ।

१९. जिनके मन में द्वैत भावना है उन्हें रोग-पीड़ा द्विचित्तता और प्रभु से दूरी बनी रहती है ।

२०. वे गुरु के बिना भ्रमवश अन्य जप (माया का जप) जपते हैं ।

२१. वे गुरु के दर्शन नहीं करते जो आदि पुरुष प्रभु का रूप है ।

२२. गुरु के शब्द के बिना उनका जन्म किस लिए है ? (निष्फल जाता है) । ५ ।

२३. हे प्रभु, तुम्हारा यह आश्चर्यजनक कौतुक देखकर हम चकित हो गए हैं ।

२४. तुम घट-घट में हो, देवताओं और मनुष्यों में हो, और सहज समाधि में तुम्हारे साक्षात् दर्शन होते हैं ।

२५. तुम परिपूर्ण हो और प्रत्येक मन में व्याप्त होकर उसे अवलम्ब दे

रहे हो।

२६. तुम्हारे समान कोई अन्य नहीं है। ६।

२७. जिस राम की भक्ति का प्रेम लगता है और जिसका नाम मुखसे जपा जाता है,—

२८. वह राम साधु-सन्तों की संगति से ही मिल जाता है।

२९. जो जीव माया के बन्धन तोड़ दे और सहजावस्था में पहुँचकर उस प्रभु का ध्यान लगा ले,—

३०. वह गुरु की शिक्षा से भगवान् गुरु का ज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो जाता है। ७।

३१. उस जन को यमदूतों का दुःख नहीं होता,

३२. जो राम नाम में ध्यान लगा कर जाग गया है।

३३. प्रभु भक्ति से प्रेम करता है, अतः भक्तों का साथी है।

३४. (नानक) भक्त उसके रंग में रंगे जाकर मुक्त होते हैं। ८। ९।

(१०)

१. गुरु सेवे सो ठाकुर जानै।

२. दूखु मिटै सचु सबदि पछानै। १।

३. रामु जपहु मेरी सखी सखैनी।

४. सतिगुरु सेवि देखहु प्रभु नैनी। १। रहाउ।

५. बंधन मात पिता संँसारि।

६. बंधन सुत कंनिआ अरु नारि। २।

७. बंधन करम धरम हउ कीआ।

८. बंधन पुतु कलतु मनि बीआ। ३।

९. बंधन किरखी करहि किरसान।

१०. हउमै डंनु सहै राजा मंगै दान। ४।

११. बंधन सउदा अणवीचारी।

१२. तिपति नाही माइआ मोह पसारी। ५।

१३. बंधन साह संचहि धनु जाइ।

१४. बिनु हरि भगति न पवई थाइ । ६ ।
१५. बंधन वेदु बादु अहंकार ।
१६. बंधनि बिनसै मोहु विकार । ७ ।
१७. नानक रामनाम सरणाई ।
१८. सतिगुरि राखे बंधु न पाई । ८ । १० ।

पद-अर्थ

सखैनी—सहेली; **बंधन**—बन्धनकारी; **सुत**—पुत्र; **कंनिआ**—कन्या; **कलतु**—कलत्र, पत्नी; **थीआ**—द्वितीय, अन्य; **किरखी**—कृषि; **डंनु**—दण्ड, सज़ा; **अणवीचारी**—विचारे बिना; **सँचहि**—एकत्र करते हैं।

टीका

१. जो मनुष्य गुरु की सेवा करता है, गुरु की दासता में रहता है और उसकी आज्ञा का अनुसरण करता है, वह स्वामी, प्रभु को जान लेता है।
२. उसका दुःख मिट जाता है और वह गुरु-शब्द के बल से सत्यस्वरूप हरि को पहचान जाता है।
३. हे मेरी सखी-सहेलियो, प्रभु का नाम जपो।
४. सद्गुरु की सेवा करके अपने नेत्रों से प्रभु को देखो। १। रहाउ।
५. (नाम के बिना) माता पिता (का मोह) संसार में बंधनकारी हो जाते है (क्यों ? यह आगे जाकर स्पष्ट किया गया है)।
६. पुत्र, पुत्री और पत्नी (का मोह) भी बंधन का कारण बनते हैं। २।
७. शास्त्रों में निरुपित नियमों के अनुसार किए गए कर्म-धर्म भी बंधनकारी हैं, जब उनमें 'मैने किया' का भाव आ जाता है।
८. यदि मन में द्वैतभाव है तो पुत्र, पत्नी बंधनकारी हैं। ३।
९. कृषक कृषि-कर्म करते हैं परन्तु (नाम के बिना) यह बंधनकारी हो जाती है।
१०. राजा कृषकों से भूमि-कर लेता है परन्तु (नाम के बिना) अहंकार

का दण्ड पाता है। ४।

११. व्यापारी व्यापार करता है परन्तु वास्तव में विचार से शून्य होने के कारण उसका व्यापार बंधनकारी होकर रह जाता है।

१२. (फिर यह व्यापार) माया और मोह का प्रसार होता है इसमें शान्ति नहीं होती। ५।

१३. साहूकार धन एकत्र करते हैं जो बन्धनकारी ही होता है और अन्त में नष्ट हो जाता है।

१४. नाम की भक्ति के बिना वे प्रभु की सभा स्थान प्राप्त नहीं कर पाते। ६।

१५. वेद-पाठ और वेद चर्चा भी, जब ये अहंकार उत्पन्न करते हैं तब, बन्धनकारी हैं।

१६. मोह और विकारों के बन्धन में जीव नाश को प्राप्त होता है। ७।

१७. (नानक) जो मनुष्य (साँसारिक कर्म करते हुए भी) राम-नाम की शरण में रहते हैं,

१८. उन्हें सद्‌गुरु बचा लेता है और फिर उन्हें कोई भी बन्धन नहीं होता। ८। १०।

(११)

नोट :—(यह और अगली अष्टपदी सन् 1521 में बाबर के द्वारा ऐमनाबाद पर किए गए आक्रमण के समय रची गई थी। इन्हें 'बाबरवाणी' भी कहते हैं। उस समय देश की जो दुर्दशा हुई, हिन्दू और मुस्लिम नारियों का जो अपमान हुआ तथा अन्तः पुरों की जो दुर्दशा हुई, उस सबको गुरु जी ने स्वयं देखा और उन्होंने अपने देशवासियों की पीड़ाएं इन शब्दों में व्यक्त कीं।)

१. जिन सिर सोहनि पटीआ मांगी पाइ संधूरु।

२. से सिरि कातो मुनीअन्हि गल विचि आवै धूड़ि।

३. महला अंदरि होदीआ हुणि बहणि न मिलन्हि हदूरि। १।

४. आदेसु बाबा आदेसु।

५. आदि पुरख तेरा अंतु न पाइआ करि करि देखहि वेस। १। रहाउ।

६. जदहु सीग्रा वीग्राहीग्रा लाड़े सोहनि पासि ।
७. हीडोली चढ़ि आईआ दंदखंड कीते रासि ।
८. उपरहु पाणी वारीऐ झले झिमकनि पासि । २ ।
९. इकु लखु लहन्हि बहिठीग्रा लखु लहन्हि खड़ीग्रा ।
१०. गरी छुहारे खांदीग्रा माणन्हि सेजड़ीग्रा ।
११. तिन्ह गलि सिलका पाईआ तुटन्हि मोतसरीग्रा । ३ ।
१२. धनु जोबनु दुइ वैरी होए जिनी रखे रंगु लाइ ।
१३. दूता नो फुरमाइग्रा लै चले पति गवाइ ।
१४. जे तिस भावै दे वडिग्राई जे भावै देइ सजाइ । ४ ।
१५. ग्रगो दे जे चेतीऐ ता काइतु मिलै सजाइ ।
१६. साहां सुरति गवाईआ रंगि तमासै चाइ ।
१७. बाबरवाणी फिरि गई कुइरु न रोटी खाइ । ५ ।
१८. इकना वखत खुग्राईग्रहि इकन्हा पूजा जाइ ।
१९. चउके विणु हिंदवाणीआ किउ टिके कढ़हि नाइ ।
२०. रामु न कबहू चेतिग्रो हुणि कहणि न मिलै खुदाइ । ६ ।
२१. इकि घरि ग्रावहि ग्रापणै इकि मिलि मिलि पुछहि सुख ।
२२. इकन्हा एहो लिखिआ बहि बहि रोवहि दुख ।
२३. जो तिसु भावै सो थीऐ नानक किआ मानुख । ७ । ११ ।

पद-ग्रर्थ

सोहनि—शोभित होती थी; **मांगी**—माँग, केशों के मध्य भाग में, सीमन्त में; **काती**—कैंची से; **गल**—मुख; **हदूरि**—सब के समक्ष, बाहर; **ग्रादेसु**—प्रणाम; **हीडोली**—पालकी; **रासि**—सजाए हुए; **पाणी**—शकुनों का पानी; **झले**—पंखा करना; **सिलकां**—रस्सी; **मोतसरीग्रां**—मुक्तासर, मोतियों की लड़ियाँ; **ग्रगों**—पहले से ।

टीका

१. सुन्दरियों के जिन सिरों पर बालों की पट्टियां सुशोभित थीं ग्रौर

पट्टियों की मांगों में सिन्दूर डालकर (सजाया जाता था)।

२. अब वे सिर कैंचियों से मूंडे जा रहे हैं और सुन्दरियों के मुख पर मिट्टी पड़ रही है।

३. जो सुन्दरियां अपने महलों के भीतर ही रहती थीं अब उन्हें बाहर सभी लोगों के बीच में भी बैठना नहीं मिलता। १।

४. हे अकाल पुरुष, तुम्हें प्रणाम है, तुम्हें सदा प्रणाम है।

५. हे आदि पुरुष, तुम्हारे कौतुकों का रहस्य किसी को भी ज्ञात नहीं होता, तुम स्वयं हीं कई प्रकार के रूप (वेश) धारण करके स्वयं ही देखते हो। १। रहाउ।

६. ये सुन्दरियां जब विवाहित होकर आईं थीं तब इनके वर इनके साथ सुन्दर लगते थे।

७. ये पालकियों में बैठकर आईं थीं और हाथी दाँत की चूड़ियों से सुसज्जित थीं।

८. इनके सिरों पर शकुनों का जल वारा गया था और इनके हाथों में (शीशों से जड़े) पंखे चमकते थे। २।

९. इन्हें बैठते-उठते (शकुन के रूप में) लाखों रुपए दिए जाते थे।

१०. ये नारियल की गिरी (गोले) और छुहारे खाती थीं और सुन्दर पर्यङ्कों पर सोती थीं।

११. अब इनके ही गलों में (बाबर के क्रूर सैनिकों ने) रस्सियां डाल रखी हैं और उनके कण्ठों में पहनी हुई मोतियों की लड़ियां टूट रही हैं। ३।

१२. जिस धन तथा यौवन ने इन सुन्दरियों को मस्त कर रखा था वे ही शत्रु बन गए हैं।

१३. (बाबर ने) सैनिक रूपी यमदूतों को आज्ञा दी है और वे (उस आज्ञा के पालन करने के लिए) इन सुन्दरियों को अपमानित करते हुए ले जा रहे हैं।

१४. यदि प्रभु को अच्छा लगता है तो वह जीवों को प्रतिष्ठा देता है और यदि उसे (अन्यथा) अच्छा लगता है तो उन्हें दण्डित करता है। ४।

१५. यदि पहले ही प्रभु का स्मरण किया जाए तो दण्ड क्यों मिले।

१६. (यहाँ के) शासकों ने माया के रंगों, तमाशों के प्रेम में प्रभु को भुला

दिया था।

१७. (अत: आज जब) बाबर की दुहाई फिरी है तब अन्य साधारण व्यक्तियो की तो बात ही क्या, राजकुमारों को भी रोटी का टुकड़ा नहीं मिलता। ५।

१८. (आज यह स्थिति है कि) मुसलमान-स्त्रियों की नमाज़ का समय निकल गया है और हिन्दू-स्त्रियों की पूजा का समय भी बीत गया है।

१९. अपमानित होकर बाहर फिरती हुई हिन्दू नारियाँ अब स्नान किए बिना और स्थान को लीपे बिना तिलक कैसे लगाएँ (पूजा करें)?

२०. इन (हिन्दू नारियों) ने प्रभु नाम को स्मरण कभी नहीं किया था, परन्तु अब क्रूर सैनिकों को प्रसन्न करने के लिए ये 'खुदा खुदा' भी नहीं कह पा रही हैं। ६।

२१. कुछ स्त्रियों के पति जीवित घर लौट आते हैं और उनसे मिलकर कोई अपने खोये हुए सम्बन्धियो के सुख का समाचार पूछती हैं।

२२. जिनके पति मारे गए हैं उन वराकियों के भाग्य में यही लिखा है कि वे जीवन-पर्यन्त बैठ-बैठकर रोएँ।

२३. परन्तु जो प्रभु को अच्छा लगता है, वही होता है, (नानक) निरूपाय मनुष्यों की क्या सामर्थ्य है?। ७। ११।

(१२)

१. कहा सु खेल तबेला घोड़े कहा भेरी सहनाई।
२. कहा सु तेगबंद गाडेरड़ि कहा सु लाल कवाई।
३. कहा सु आरसीआ मुह बँके ऐथे दिसहि नाही। १।
४. इहु जगु तेरा तू गोसाई।
५. एक घड़ी महि थापि उथापे जरु वँडि देवै भांई। १। रहाउ।
६. कहां सु घर दर मंडप महला कहा सु बंक सराई।
७. कहां सु सेज सुखाली कामणि जिसु वेखि नीद न पाई।
८. कहा सु पान तंबोली हरमा होईआ छाई माई। २।
९. इसु जर कारणि घणी विगुती इनि जर घणी खुआई।

१०. पापा बाझहु होवै नाही मुइग्रा साधि न जाई ।
११. जिस नो ग्रापि खुग्राए करता खुसि लए चंगिआई । ३ ।
१२. कोटी हू पीर बरजि रहाए जा मीरु सुणिग्रा धाइग्रा ।
१३. थान मुकाम जले बिज मंदर मुछि मुछि कुइर रुलाइग्रा ।
१४. कोई मुगलु न होग्रा ग्रंधा किनै न परचा लाइआ । ४ ।
१५. मुगल पठाणा भई लड़ाई रण महि तेग वगाई ।
१६. ग्रोन्ही तुपक ताणि चलाई उन्ही हसति चिड़ाई ।
१७. जिन्ह की चीरी दरगह पाटी तिन्हा मरणा भाई । ५ ।
१८. इक हिंदवाणी ग्रवर तुरकाणी भटिग्राणी ठकुराणी ।
१९. इकन्हा पेरण सिर खुर पाटे इकन्हा वासु मसाणी ।
२०. जिन्ह के बंके घरी न ग्राइग्रा तिन्ह किउ रैणि विहाणी । ६ ।
२१. ग्रापे करे कराए करता किस नो आखि सुणाईऐ ।
२२. दुखु सुख तेरै भाणै होवै किसथै जाइ रूग्राईऐ ।
२३. हुकमी हुकमि चलाए विगसै नानक लिखिआ पाईऐ । ७ । १२ ।

पद-अर्थ

कहा—कहाँ गए; **भेरी सहनाई**—नगाड़ा और तूती; **तेगबंद**—कृपाणों के बन्धन, खड्ग कथा; **गाडेरड़ि**—पशमीना नामक वस्त्र के; **लाल कवाई**—लाल चोगे (वर्दियाँ); **आरसीआ**—ग्रादर्शिकाएँ, लघु दर्पण; **जरु**—ज़र, धन; **मंडप**—मण्डप; **बंक सराई**—वक्र (सुन्दर) सराय; **कामणि**—नारी; **तंबोली**—पान बेचने वाली; **हरमा**—प्रहरी स्त्रियाँ; **छाई माई**—विनष्ट हो गई; **घणी**—बहुत दुनिया; **विगुती**—दुःखी हुई; **खुआए**—भुला दे; **मीर**—बादशाह (बाबर); **बिज मंदर**—वज्र जैसे पक्के मकान; **मुछि मुछि**—काट काट कर; **कुइर**—कुमार, शहज़ादे; **तुपक**—छोटी तोप, बन्दूक; **हसति चिड़ाई**—हाथी क्रोधित करके ग्रागे बढ़ाए; **चीरी**—पत्र; **पेरण**—बुरक़े; **खुर**—पैर तक; **बंके**—बाँके (पति); **हुकमी**—इच्छा का स्वामी, प्रभु ।

टीका

१. कहाँ हैं (सैदपुर के सैनिकों के खेल तमाशों की शोभा)? ग्रश्व और

अश्वशालाएं कहाँ है ? नक्कारे और तूतियां कहां गए ?

२. कहाँ हैं वे पशमीने से मण्डित खड्ग-कोश ? वे लाल वर्दियां कहां हैं ?

३. दर्पण और उनमें देखे जाने वाले सुन्दर मुख कहां हैं ? अब (सैदपुर में) यह सब कुछ दिखाई नहीं देता । १ ।

४. हे प्रभु, यह संसार तुम्हारा है, तुम इसके स्वामी हो ।

५. वह प्रभु एक क्षण में सृष्टि रच देता है और एक क्षण में उसका संहार कर देता है । परन्तु आज धन ने (उसकी आज्ञा के अनुसार) भाइयों को अलग-अलग कर दिया है (आज देखिए क्या कौतुक प्रकट किया है । मुगल और पठान दोनों भाई ही थे) । १ । रहाउ ।

६. वे सुन्दर घर, महल-मकान कहां है ? वे सुन्दर सराय कहां हैं ?

७. वह शय्या और सुन्दर नारी कहां है जिसका रूप देखते ही नींद चली जाती थी ।

८. वे पान, पान बेचने वाली और पहरेदारनियां कहाँ हैं ? सब छायावत विनष्ट हो चुके हैं । २ ।

९. इस धन के लिए बहुत लोगों ने कष्ट भोगा है । इसने बहुत लोगों को कुमार्गगामी बनाया है ।

१०. पापों के बिना यह एकत्र नहीं होता और मृत्यु के समय साथ भी नहीं जाता ।

११. (परन्तु यह सब कुछ उसके आदेश के अनुसार हो रहा है) प्रभु जिसे स्वयं भुलाना चाहता है वह पहले उससे गुण छीन लेता है (और तब उसे मरना ही पड़ता है) । ३ ।

१२. (जब भारतीयों ने) बादशाह बाबर को चढ़कर जाते हुए सुना तब करोड़ों पीर उसे (निस्सार प्रार्थना, जादू टोने, मंत्र, ताबीज आदि के बल से) रोकते रह गए ।

१३. पीरों की कब्रों के स्थान, निवासस्थान तथा बज्र जैसे पक्के मन्दिर जल गए; (मुगलों ने) पठान शाहजादों को टुकड़े-टुकड़े करके मिट्टी में मिला दिया ।

१४. (पीरों की प्रार्थना और उनके टोने-टोटकों से) कोई मुग़ल अन्धा न हुआ (किसी मुगल की कुछ हानि न हुई) किसी पीर ने कोई

चमत्कार न दिखाया । ४ ।

१५. मुगलों और पठानों का युद्ध हुआ। दोनों पक्षों के योद्धाओं ने रणक्षेत्र में तलवार चलाई।

१६. मुगलों ने बंदूक तान कर (निशाना साधकर) चलाई और पठानों ने हाथीं उत्तेजित करके आगे बढ़ाए।

१७. जिनकी चिट्ठी ईश्वरीय सभा में ही फाड़ दी जाती है (जिनकी मृत्यु का समय आ जाता है) उनकी मृत्यु अपरिहार्य हो जाती है। ५।

१८. क्या हिन्दू नारियां, क्या मुस्लिम नारियां, क्या भट्टी राजपूत नारियां और क्या ठकुरानियां,—

१९. कुछ नारियों के बुरके सिर से पैरों तक फट गए और कुछ को मरणानन्तर श्मशान में निवास मिल गया।

२०. जिनके सुन्दर प्रियतम गृह नहीं लौटे उनके दुःख की रात्रि कैसी बीती होगी ?। ६।

२१. (परन्तु) प्रभु स्वयं ही सब कुछ करता है, स्वयं ही जीवों से कराता है। अतः दुःख की यह कथा किसे सुनाई जाए।

२२. हे प्रभु, दुःख और सुख तुम्हारी इच्छा के अनुसार होते हैं। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसके समीप जाकर अभ्यर्थना की जाए।

२३. (नानक) इच्छा का स्वामी अपनी इच्छा के अनुसार ही विश्व का क्रियाकलाप संचालित कर रहा है और इस क्रियाकलाप को देख-देख कर प्रसन्न हो रहा है—प्रत्येक प्राणी अपने किए कर्मों के लेख के अनुसार फल प्राप्त करता है। ७। १२।

(१३)

१. जैसे गोइलि गोइली तैसे संसारा।

२. कूड़ु कमावहि आदमी बांधहि घर बारा। १।

३. जागहु जागहु सूतिहो चलिआ वणजारा। १। रहाउ।

४. नीत नीत घर बांधीअहि जे रहणा होई।

५. पिंडु पवै जीउ चलसी जे जाणै कोई। २।

६. ओही ओही किआ करहु है होसी सोई !

७. तुम रोवहुगे ओस नो तुम्ह कउ कउण रोई । ३ ।

८. धंधा पिटिहु भाई हो तुम्ह कूड़ु कमावहु ।

९. ओहु न सुणई कतही तुम्ह लोक सुणावहु । ४ ।

१०. जिस ते सुता नानका जागाए सोई ।

११. जे घरु बूझै आपणा तां नीद न होई । ५ ।

१२. जे चलदा लै चलिआ किछु संपै नाले ।

१३. ता धनु संचहु देखि कै बूझहु बीचारे । ६ ।

१४. वणजु करहु मखसूदु लैहु मत पछोतावहु ।

१५. अउगण छोडहु गुण करहु ऐसे ततु परावहु । ७ ।

१६. धरमु भमि सतु बीजु करि ऐसी किरस कमावहु ।

१७. तां वापारी जाणीअहु लाहा लै जावहु । ८ ।

१८. करमु होवै सतिगुरु मिलै बूझै बीचारा ।

१९. नामु वखाणै सुणे नामु नामे बिउहारा । ९ ।

२०. जिउ लाहा तोटा तिवै वाट चलदी आई ।

२१. जो तिसु भावै नानका साई वडिआई । १० । १३ ।

पद-अर्थ

गोइलि—गोचर भूमि में, चरागाह में; **गोइली**—गोपालक, ग्वाला; **वणजारा**—व्यापारी (जीव); **पिंडु पवै**—शरीर गिर पड़ता है; **ओहि ओहि**—हाय हाय; **धंधा**—व्यर्थ काम; **सुता**—भूला हुआ; **संपै**—सम्पति; **संचहु**—एकत्र करो; **मखसद**—मनोरथ, प्रयोजन; **किरस**—कृषिकर्म; **करम**—कृपा; **तोटा**—घाटा ।

टीका

१. जिस प्रकार गोचर भूमि में आकर गोपालक (अल्प समय के लिए गौएँ चराता है, फिर उसे जाना पड़ता है) उसी प्रकार जीव संसार में अल्प समय के लिए है ।

२. कुछ मनुष्य इस प्रकार पक्के घर बनाए जाते हैं (कि जैसे सदा टिके रहना है) उनका यह समस्त परिश्रम मिथ्या (व्यर्थ) है। १।

३. माया-मोह की निद्रा में सोए हुए जीवों, जागो जागो। यदि जीव व्यापारी आपके देखते-देखते जा रहा है तो आपको भी जाना होगा। १। रहाउ।

४. सदा रहने वाले पक्के घर तब बनाने चाहिएँ जब स्वयं भी सदा यहीं रहना हो।

५. परन्तु यदि कोई इस बात को विचारे (तो उसे ज्ञात हो जाएगा कि शरीर गिर जाता है और आत्मा निकल जाता है।) २।

६. (मृत्यु को प्राप्त किसी सम्बन्धी के लिए) 'हाय हाय' करके क्यों रोते हो? केवल परमात्मा स्थिर है, जो अब है और सर्वदा रहेगा।

७. आप उसे रो रहे हैं, (कल आपको मरना है) आप को कौन रोएगा? (कोई आप जैसा ही)। ३।

८. भाइयों, आप व्यर्थ रो रहे हैं। आप मिथ्या कर्म कर रहे हैं।

९. मृत व्यक्ति आपका रोना-पीटना सुन नहीं सकता और आप भी लोकाचार के लिए रो-रो कर जगत् को दिखला रहे हैं। ४।

१०. (परन्तु जीव के वश में क्या है।) जिस प्रभु के आदेश के अधीन जीव माया-मोह में सुप्त है, वही इसे सचेत करे (तो होता है)।

११. यदि इसे अपना वास्तविक घर ज्ञात हो तो यह कभी भी माया की निद्रा में न सोए। ५।

१२. हे भाई, यदि कोई मृत व्यक्ति कभी धन साथ ले गया,

१३. तो आप भी निस्सन्देह धन एकत्र करें—इस तत्व पर विचार करें और इसे समझें। ६।

१४. हे भाई, आप ऐसा व्यापार करें जिससे आपके जीवन का मनोरथ सिद्ध हो और पश्चाताप न करना पड़े।

१५. (वह व्यापार यह है कि) अवगुणों का त्याग कीजिए, गुणों का संग्रह कीजिए—इस प्रकार वास्तविकता समझिए। ७।

१६. धर्म को भूमि बनाइए, सत्य का बीज बोइए—ऐसी कृषि कीजिए।

१७. आप सभी अच्छे व्यापारी समझे जा सकते हैं, जब यहां से लाभ प्राप्त करके जाएँ। ८।

१८. यदि प्रभु की कृपा हो तो सद्गुरु मिलता है और फिर इस (उपर्युक्त) विचार का ज्ञान होता है।

१६. (तब) मनुष्य नाम ही जपता है, नाम ही सुनता है, नाम का ही व्यापार करता है। ६।

२०. जिस प्रकार व्यापार में किसी व्यापारी को लाभ और किसी को हानि होती है उसी प्रकार इस जीवन में जीवों के मध्य किसी को लाभ और किसी को हानि होती है, यह स्थिति आदि काल से चली आई है।

२१. (नानक) परमात्मा को जो कुछ इष्ट है वही होता है। प्रभु की इच्छा को शिरोधार्य करने में ही जीव का गौरव (कल्याण) है। १०। १३।

(१४)

१. चारे कुंडा ढूढीआ को नीम्ही मैडा।
२. जे तुधु भावै साहिबा तू मै हउ तेडा। १।
३. दरु बीभा मै नीम्हिको कै करी सलामु।
४. हिको मैडा तू धणी साचा मुखि नामु। १। रहाउ।
५. सिधा सेवनि सिध पीर मागहि रिधि सिधि।
६. मै इकु नामु न वीसरै साचे गुर बुधि। २।
७. जोगी भोगी कापड़ी किआ भवहि दिसंतर।
८. गुर का सबदु न चीन्हही ततु सारु निरंतर। ३।
६. पंडित पाधे जोइसी नित पड़हि पुराणा।
१०. अंतरि वसतु न जाणन्हि घटि ब्रहमु लुकाणा। ४।
११. इकि तपसी बन महि तपु करहि नित तीरथ वासा।
१२. आपु न चीनहि तामसी काहे भए उदासा। ५।
१३. इकि बिंदु जतन करि राखदे से जती कहावहि।
१४. बिनु गुर सबदु न छूटही भ्रमि आवहि जावहि। ६।
१५. इकि गिरही सेवक साधिका गुरमती लागे।
१६. नामु दानु इसनानु द्रिड़ु हरि भगति सुजागे। ७।

१७. गुर ते दरु घरु जाणीऐ सो जाइ सिञाणै ।
१८. नानक नामु न वीसरै साचे मन मानै । ८ । १४ ।

पद अर्थ

कुंडा—दिशाओं में; **नीम्ही**—नहीं है; **बीभा**—द्वितीय; **नाभिको**—नहीं है; **भोगी**—भोगों में लगे हुए; **कापड़ी**—कत्तरों का चोला पहनने वाले; **दिसंतर**—(घर छोड़ कर) देश-देशान्तरों में; **चीनही**—समझते; **जोइसी**—ज्योतिषी; **तामसी**—क्रोधी; **बिंदु**—वीर्य; **भ्रमि**—भ्रम में; द्विचित्तता में ।

टीका

१. मैंने चारों दिशाओं (समस्त सृष्टि) में अन्वेषण कर लिया है (हे प्रभु, तुम्हारे अतिरिक्त) मेरा (निश्चित रूप से) कोई नहीं है ।
२. हे मेरे स्वामी, जो तुम्हें अच्छा लगे तो ऐसी कृपा करो कि तुम मेरे हो जाओ और मैं तुम्हारा हो जाऊँ । १ ।
३. (हे प्रभु) मेरे लिए तुम्हारे द्वार से अन्य कोई द्वार नहीं है, मै और कहाँ जाकर (किसी अभीप्सित वस्तु की प्राप्ति के लिए) नमस्कार करूँ ?
४. मेरे एक तुम ही स्वामी हो (परन्तु) मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि) तुम्हारा सत्य नाम मुख से जपता रहूँ । १ । रहाउ ।
५. कई लोग सिद्ध पीर (बनने के लिये) सिद्धों को पूजते हैं और उनसे ऋद्धि-सिद्धियां मांगते हैं ।
६. परन्तु हे प्रभु, (मेरी प्रार्थना यह है कि) सत्य गुरु की दी हुई बुद्धि के बल से मैं एक तुम्हारा नाम कभी न भूलूं । २ ।
७. योगी, भोगी और कत्तरों के चोले पहनने वाले किस लिए व्यर्थ देश-देशान्तरों में भटकते फिरते हैं ?
८. वे गुरु का शब्द नहीं समझते (जिससे) उन्हें ज्ञात हो सकता है (कि श्रेष्ठ वस्तुतत्व, ब्रह्म) एकरूपतया भीतर ही है । ३ ।
९. पण्डित, उपाध्याय और ज्योतिषी नित्य वेद-पुराण पढ़ते हैं ।

१०. (परन्तु) वे आन्तरिक वस्तु को नहीं जानते कि ब्रह्म प्रच्छन्नतया हृदय में स्थित है । ४ ।

११. कुछ तपस्वी जंगल में तप करते हैं सदा तीर्थों पर रहते हैं ।

१२. परन्तु वे तमोगुणी (क्रोधी) जब अपने आपको नहीं समझते तो उन्हें विरक्त होने का क्या लाभ ? । ५ ।

१३. अनेक मनुष्य ऐसे हैं जो यत्नपूर्वक वीर्य की रक्षा करते हैं और यति कहलाते हैं ।

१४. परन्तु गुरु के शब्द के बिना वे मुक्त नहीं हो सकते और भ्रम के कारण जन्म-मरण में ही पड़े रहते हैं । ६ ।

१५. कुछ गृहस्थी भी ऐसे हैं जो सेवा करने वाले हैं, (आत्मनियंत्रण के लिए) साधनारत हैं और गुरु द्वारा दी हुई बुद्धि के अनुसार चलते हैं ,

१६. वे नाम दान और स्नान (के आचरण) को अपने जीवन में दृढ़ करते हैं और प्रभु-भक्ति के बल से सावधान रहते हैं । ७ ।

१७. अपने वास्तविक द्वार और घर का ज्ञान गुरु से ही होता है और उस द्वार तथा घर को वही पहचान सकता है जो गुरु के समीप जाता है ।

१८. (नानक) फिर उसे नाम विस्मृत नहीं होता और उसका मन स्थिर प्रभु के प्रति विश्वास और प्रेम से पूर्ण हो जाता है । ८ । १४ ।

(१५)

१. **मनसा मनहि समाइले भउजलु सचि तरणा ।**
२. **आदि जुगादि दइआलु तू ठाकुर तेरी सरणा । १ ।**
३. **तू दातौ हम जाचिका हरि दरसनु दीजै ।**
४. **गुरमुखि नामु धिआईऐ मन मंदरु भीजै । १ । रहाउ ।**
५. **कूड़ा लालचु छोडीऐ तउ साचु पछाणै ।**
६. **गुर कै सबदि समाईऐ परमारथु जाणै । २ ।**
७. **इहु मनु राजा लोभीआ लुभतउ लोभाई ।**
८. **गुरमुखि लोभु निवारीऐ हरि सिउ बणि आई । ३ ।**

९. कलरि खेती बीजीऐ किउ लाहा पावैं ।

१०. मनमुखु सचि न भीजई कूड़ु कूड़ि गडावैं । ४ ।

११. लालचु छोडहु अँधिहो लालचि दुखु भारी ।

१२. साचौ साहिबु मनि वसै हउमै बिखु मारी । ५ ।

१३. दुबिधा छोडि कुवाटड़ी मूसहुगे भाई ।

१४. अहिनिसि नामु सलाहीऐ सतिगुर सरणाई । ६ ।

१५. मनमुख पथरु सैलु है ध्रिगु जीवणु फीका ।

१६. जल महि केता राखीऐ अभअंतरि सूका । ७ ।

१७. हरि का नामु निधानु है पूरै गुरि दीआ ।

१८. नानक नामु ना वीसरै मथि अंम्रितु पीआ । ८ । १५ ।

पद-अर्थ

मनसा—वासना; **भउजलु**—संसार-सागर; **दातौ**—दाता; **जाचिक**—याचक; **भीजै**—रस से आद्र हो जाता है; **परमारथु**—परम अर्थ, श्रेष्ठ धन, आध्यात्मिक ज्ञान; **निवारीऐ**—दूर कीजिए; **गडावै**—गड़ा रहता है; **बिखु**—विष; **दुबिधा**—द्विचित्तता; **कुवाटड़ी**—कुमार्ग, असत्यपथ; **मूसहुगे**=लूटे जाओगे; **सैलु**—शैल; पाषाण; **अभअंतरि**—अन्तःकरण से; **मथि**—मथ कर।

टीका

१. (हे भाई) मन में उत्पन्न हुए माया सम्बन्धी विचारों को मन में ही दबा दे, (सत्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक उपाय है)। संसार सागर सत्य के बल से ही पार किया जाता है।

२. हे प्रभु, तुम युग-युगों से कृपालु हो। हे मेरे ठाकुर स्वामी! मैं तुम्हारी शरण आया हूं (मुझे मन की दुर्वासनाओं से बचाकर सत्य का दान दो)। १।

३. हे प्रभु, तुम दाता हो, हम याचक हैं, हमें अपने दर्शनों का दान दो।

४. (दर्शन नाम के बल से होते हैं और) नाम गुरु की शिक्षा से स्मरण किया जाता है। जो स्मरण करता है उसका मन-मन्दिर हरि रस से

आर्द्र हो जाता है। आर्द्रता की दशा में सुरति आत्म-मण्डल में पहुंचती है जहां दर्शन होते हैं)। १। रहाउ।

५. जब माया के दुर्लोभ का त्याग किया जाए तब ही सत्य का ज्ञान होता है।

६. गुरु के उपदेश से नाम में लीन हुआ जाता है और तत्पश्चात् परमार्थ का ज्ञान होता है। १।

७. शरीर का राजा यह मन लोभीं हो गया है और लोभों की ओर दौड़ता है।

८. यदि गुरु के उपदेश से लोभ दूर किया जाय तो हरि-प्रभु से प्रीति लग जाती है। ३।

९. रेहवाली भूमि में बीज-वपन करने से कोई कैसे लाभ प्राप्त कर सकता है?

१०. मनोमुख जीव सत्य में अनुरक्त नहीं होता, वह असत्यपरायण है। अत: असत्य में निमग्न हैं।

११. हे माया मोह में अन्धे हुए जीवो, माया का लोभ त्यागो। इस लोभ के कारण बहुत दु:ख होता है।

१२. जिस मनुष्य के हृदय में सत्य स्वामी आ बसता है, उसका अहंकार विष समाप्त हो जाता है। ५।

१३. हे भाई, द्विचित्तता के कुमाग को त्याग दो (अन्यथा) लूटे जाओगे।

१४. सद्गुरु की शरण लेकर, दिन रात (सदा) नाम की गुण-स्तुति करनी चाहिए। ६।

१५. मनोमुख का हृदय पाषाण-शिला के समान है। उसके नीरस जीवन को धिक्कार है।

१६. पाषाण चाहे कितना ही काल जल में रख दिया जाए वह भीतर से शुष्क ही रहता है (उसी प्रकार मनोमुख का पाषाण हृदय सत्संग में भी आर्द्र नहीं होता। ७।

१७. प्रभु का नाम कोष है जो पूर्ण गुरु ने मनुष्यों को दिया है।

१८. (नानक) जिसे नाम नहीं भूलता, वह नाम को मथकर (नाम-रस पीता है) आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त करता है। ८। १५।

१. चले चलणहार वाट बटाइग्रा ।
२. धंधु मिटे संसारु सचु न भाइग्रा । १ ।
३. किग्रा भवीऐ किआ ढूढीऐ गुर सबदि दिखाइग्रा ।
४. ममता मोहु विसरजिग्रा ग्रपनै घरि आइआ । १ । रहाउ ।
५. सचि मिलै सचिग्रारु कूड़ि न पाईऐ ।
६. सच सिउ चितु लाइ बहुड़ि न ग्राईऐ । २ ।
७. मोइग्रा कउ किग्रा रोवहु रोइ न जाणहू
८. रोवहु सचु सलाहि हुकमु पछाणहू । ३ ।
९. हुकमी वजहु लिखाइ आइग्रा जाणीऐ ।
१०. लाहा पलै पाइ हुकमु सिञाणीऐ । ४ ।
११. हुकमी पैधा जाइ दरगह भाणीऐ ।
१२. हुकमे ही सिरि मार बंदि रबाणीऐ । ५ ।
१३. लाहा सचु निग्राउ मनि वसाईऐ ।
१४. लिखिग्रा पलै पाइ गरबु बजाईऐ । ६ ।
१५. मनमुखीग्रा सिरि भार वादि खपाईऐ ।
१६. ठगि मुठी कूड़िग्रार बंन्हि चलाईऐ । ७ ।
१७. साहिबु रिदै वसाइ न पछोतावही ।
१८. गुनहां बखसणहारु सबदु कमावही । ८ ।
१९. नानकु मंगै सचु गुरमुखि घालीऐ ।
२०. मैं तुझ बिनु ग्रवरु न कोइ नदरि निहालीऐ । ९ । १६ ।

पद-ग्रर्थं

चलणहार—यात्री, प्राणी; **वाट**—मार्ग; **धंधु पिटे**—मिथ्या जंजालों में जकड़ा हुआ है, व्यर्थ कार्य करता है; **भवीऐ**—भटकने की; **विसरजिग्रा**—विदा किया; **रोइ न जाणहू**—रोना नहीं जानते; **वजहु**—वेतन, वज़ीफा; **वादि**—विवाद में; **निहालीऐ**—निहारो, देखो ।

टीका

१. यात्री-प्राणी (इस जगत् से सत्य का) मार्ग बदल कर (सन्मार्ग का त्याग करके असन्मार्ग को ग्रहण करके) चले जाते हैं।

२. समस्त संसार प्रपंचों में पड़ा हुआ है (मिथ्था जंजालों में जकड़ा हुआ है)। इसको सत्य प्रिय नहीं लगता। १।

३. जिस जीव के लिए प्रभु ने गुरु के शब्द द्वारा अपने आपको प्रकट कर दिया है, उसे बाहर भटकने अथवा बाहर अन्वेषण करने की क्या आवश्यकता है?

४. उसने ममता का मोह दूर कर दिया है और वह अपने वास्तविक स्थान (आत्मस्वरूप) में आकर स्थिर हो गया है। १। रहाउ।

५. जो जीव सत्य का अनुयायी है, उसने सत्य के द्वारा हरि को प्राप्त कर लिया है। मिथ्या के द्वारा हरि नहीं पाया जाता।

६. यदि सत्य प्रभु से प्रेम किया जाए तो जन्म-मरण नहीं होता। २।

७. हे भाई, आप मृतक सम्बन्धियों के लिए क्यों रोते हैं? आपको ज्ञात नहीं कि कौन सा रोना उचित है?

८. आप सत्य हरि की स्तुति करके (उसके अनुराग में) रोएँ और इस प्रकार उसके आदेश को समझें। ३।

९. हे भाई, इस बात को समझ लो कि प्रत्येक जीव उस प्रभु के आदेश के अनुसार वेतन लिखाकर आया है (वह वेतनभोगी सेवक बनाया गया है)।

१०. (परन्तु वेतन के अतिरिक्त) उसे लाभ भी प्राप्त होता है, यदि वह प्रभु के आदेश को पहचाने। ४।

११. उसके आदेश में रह कर ही वह प्रतिष्ठा के वस्त्र लेकर (आदर के साथ) यहां से जाता है और सभा में हरि को अच्छा लगता है।

१२. (दूसरी ओर) आदेश के अनुसार ही परमात्मा के कारागृह में पड़कर (कितनों के) सिर पर मार पड़ती है। ५।

१३. यदि मन में सत्य, न्याय बसाया जाए तो लाभ मिलता है।

१४. यदि अहंकार नष्ट कर दिया जाए तो लिखा हुआ वेतन मिलता रहता है। ६।

१५. मनोमुख जीव रूपी नारी के सिर पर मार पड़ती है। क्योंकि, वह विवादों में लगी रहती है।

१६. वह असत्यपरायण है, प्रतारित होकर लूटी जाती है और यहां से बांधकर धकेली जाती है। ७।

१७. जो जीव प्रभु स्वामी को हृदय में बसाता है, उसे पश्चाताप करना नहीं पड़ता।

१८. प्रभु उसके पाप क्षमा कर देता है जो शब्द की साधना करे (नाम जपे)। ८।

१९. हे प्रभु, नानक सत्य मांगता है जो गुरु की शिक्षा से अर्जित किया जाता है।

२०. तुम्हारे अतिरिक्त मेरा अन्य नहीं है। तुम मेरी ओर कृपा की दृष्टि से देखो। ९। १६।

(१७)

१. किआ जंगलु ढूढी जाइ मै घरि बन हरीआवला।

२. सचि टिकै घरि आइ सबदि उतावला। १।

३. जह देखा तह सोइ अवरु न जाणीऐ।

४. गुर की कार कमाइ महलु पछाणीऐ। १। रहाउ।

५. आपि मिलावै सचु ता मनि भावई।

६. चलै सदा रजाइ अंकि समावई। २।

७. सचा साहिबु मनि वसै वसिआ मन सोई।

८. आपे दे वडिआईआ दे तोटि न होई। ३।

९. अबे तबे की चाकरी किउ दरगह पावै।

१०. पथर को बेड़ी जे चड़ै भरनालि बुडावै। ४।

११. आपनड़ा मनु वेचीऐ सिरु दीजै नाले।

१२. गुरमुखि वसतु पछाणीऐ अपना घरु भाले। ५।

१३. जंमण मरणा आखीऐ तिनि करतै कीआ।

१४. आपु गवाइआ मरि रहे फिरि मरणु न थीआ। ६।

१५. साई कार कमावणी धुर की फुरमाई ।

१६. जे मनु सतिगुर दे मिलै किनि कीमति पाई । ७ ।

१७. रतना पारखु सो धणी तिनि कीमति पाई ।

१८. नानक साहिबु मनि वसै सची वडिआई । ४ । १७ ।

पद-अर्थ

उतावला—शीघ्र; **महलु**—प्रभु का द्वार; **अंकि**—गोद में; **अबे तबे**—छोटे-मोटे की, साधारण जन की; **भरनालि**—समुद्र में; **रतना**—गुरुमुख जीव रूप रत्न ।

टीका

१. (प्रभु के दर्शनों के लिए) मैं क्यों जंगल में जाकर अन्वेषण करूँ? मैंने घर में ही हरा-भरा सुन्दर जंगल बना लिया है (जहाँ मुझे हरि के दर्शन होते हैं ।)

२. सत्य शब्द के बल से वह हरि शीघ्र ही हृदय-घर में आकर ठहर जाता है । १ ।

३. मैं जिधर देखता हूँ, मुझे प्रभु ही दिखाई देता है—उसके अतिरिक्त कोई अन्य तो दिखाई ही नहीं देता (देखा ही नहीं जा सकता) ।

४. गुरु के कार्य में लगकर प्रभु के निवास-स्थान की पहचान होती है (वह हृदय घर में बसता है) । १ । रहाउ ।

५. जब सत्यस्वरूप प्रभु स्वयं किसी को अपने साथ मिलाता है तब वह मन में अच्छा लगने लगता है ।

६. फिर वह सदा उसकी इच्छा के अनुसार चलता है और उसकी गोद में समा जाता है । २ ।

७. उस जीव को ही अपने मन (आत्मस्वरूप) में स्थित समझो जिसके मन में सत्य स्वामी बस जाए ।

८. फिर वह उसे स्वयं ही गौरव प्रदान करता है और इतना देता है कि समाप्त नहीं होता । ३ ।

९. किसी साधारण (छोटे-मोटे जैसे कितने ही गुरु बने फिरते हैं)

की सेवा (पूजा) करने से कोई किस प्रकार प्रभु-द्वार तक पहुँच सकता है ?

१०. (भला) यदि कोई पाषाणमयी नौका में चढ़ता है तो वह (अवश्य) सागर में डूबता है । ४ ।

११. यदि अपना मन गुरु को बेच दिया जाए और सिर भी उसको समर्पित कर दिया जाए,—

१२. और गुरु की सहायता से नाम रूपी सौदे की परख की जाए तो अपने भीतर ही खोजने से प्रभु मिल जाता है । ५ ।

१३. जिसे हम जन्म और मृत्यु कहते हैं—यह प्रभु, कर्त्ता ने स्वयं बनाया है, (सभी को इस चक्र में से) निकलना पड़ता है ।

१४. (परन्तु) जो जीव अहंभाव को नष्ट करके मरते हैं, उन्हें पुनः मरना नहीं पड़ता । ६ ।

१५. (जीव) वही कार्य करता है जो आरम्भ से परमात्मा ने आज्ञा दे रखी है ।

१६. (परन्तु) यदि कोई जीव अपना मन सद्गुरु को भेंट चढ़ाकर मिले तो उस जीव के मूल्य का अनुमान कौन कर सकता है (कोई नहीं कर सकता । ७ ।

१७. ऐसे जीव-रत्नों का परखने वाला वह स्वामी स्वयं है और वही उनके मूल्य का अनुमान करने वाला है ।

१८. (नानक) यदि वह स्वामी किसी जीव के मन में बस जाए तो उस जीव को वास्तविक महत्ता (शोभा) प्राप्त होती है । ८ । १७ ।

(१८)

१. **जिन्ही नामु विसारिआ दूजै भरमि भुलाई ।**
२. **मूलु छोडि डाली लगे किआ पावहि छाई । १ ।**
३. **बिनु नावै किउ छूटीऐ जे जाणै कोई ।**
४. **गुरमुखि होइ त छूटीऐ मनमुखि पति खोई । १ । रहाउ ।**
५. **जिन्ही एको सेविआ पूरी मति भाई ।**
६. **आदि जुगादि निरंजना जन हरि सरणाई । २ ।**

७. साहिबु मेरा एकु है अवरु नही भाई ।
८. किरपा ते सुखु पाइआ साचे परथाई । ३ ।
९. गुर बिनु किनै न पाइओ केती कहै कहाए ।
१०. आपि दिखावै वाटड़ीं सची भगति द्रिड़ाए । ४ ।
११. मनुमुख जे समझाईऐ भी उझड़ि जाए ।
१२. बिनु हरिनाम न छूटसी मरि नरक समाए । ५ ।
१३. जनमि मरै भरमाईऐ हरिनामु न लेवै ।
१४. ता की कीमति ना पवै बिनु गुरकी सेवै । ६ ।
१५. जेही सेव कराईऐ करणी भी साई ।
१६. आपि करे किसु आखीऐ वेखै वडिआई । ७ ।
१७. गुर की सेवा सो करे जिसु आपि कराए ।
१८. नानक सिरु दे छूटीऐ दरगह पति पाए । ८ । १८ ।

पद-अर्थ

दूजे भरमि—हरि की उपेक्षा करके अन्य भ्रमों में; **मूल**—जड़; **डाली**—शाखा; **छाई**—राख; **परथाई**—बलिहार; **बाटड़ी**—मार्ग; **उझड़ि**—कुमार्ग ।

टीका

१. जिन्होंने अन्य (माया सम्बन्धी) भ्रमों में उलझकर प्रभु का नाम भुला दिया है,—
२. वे मानो वृक्ष के मूल को छोड़कर उसकी शाखाओं से चिपटे हुए हैं (वृक्ष प्रभु है और मायाजनित पदार्थ शाखाएँ हैं)। उन्हें क्या मिलेगा ? राख (कुछ भी नहीं) । १ ।
३. नाम के बिना माया के बन्धनों से कोई भी नहीं बच सकता, परन्तु यदि कोई इस तत्त्व को समझ जाए (तभी इसका मूल्य समझता है) ।
४. गुरु से शिक्षा प्राप्त करके ही मुक्त हुआ जाता है । मनोमुख होने से तो (ईश्वरीय सभा में) प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है । १ । रहाउ ।

५. हे भाई, जिन्होंने एक प्रभु की आराधना की है, उनकी बुद्धि पूर्ण है (वे भूलते नहीं)।

६. वे उस प्रभु की शरण में स्थिर रहते हैं जो आदिकाल से हैं, युगों के आरम्भ से है और माया के प्रभाव से ऊपर है। २।

७. हे भाई, मेरा स्वामी एक है; अन्य कोई नहीं है।

८. उस सत्य प्रभु के बलिहार। उसकी कृपा से सुख प्राप्त होता है। ३।

९. बहुत से व्यक्ति प्रभु-प्राप्ति के भिन्न-भिन्न अनेक मार्ग बतलाते हैं, परन्तु गुरु के बिना उसकी प्राप्ति नहीं होती।

१०. (प्रभु गुरु-रूप में) स्वयं ही मिलन का मार्ग दिखा देता है और मनुष्य के हृदय में सत्य भक्ति दृढ़ कर देता है। ४।

११. यदि मनोमुख जीव को कोई समझाए तो भी वह कुमार्ग का ही अनुसरण करता है।

१२. हरि नाम के बिना वह मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता और मरकर नरक में पड़ता है। ५।

१३. जो हरि नाम का स्मरण नहीं करता, वह जन्म-मरण के चक्र में रहता है।

१४. गुरु की शरण ग्रहण किए बिना वह प्रभु का मूल्य नहीं जान सकता। ६।

१५. किसी से प्रभु जैसी सेवा कराए उसे वही करनी पड़ती है।

१६. वास्तव में वह आप ही सब कुछ करता है फिर किसी को क्या कहा जाए। (उसके द्वारा किया हुआ कार्य उसकी महत्ता ही प्रकट करता है)। अपनी इस महत्ता को वह देखता है (इसकी रक्षा करता है)। ७।

१७. गुरु की सेवा वही करता है जिससे प्रभु स्वयं कराता है।

१८. परन्तु (नानक) (यह सेवा अति दुष्कर है) अपना सिर (अपना सर्वस्व) गुरु को अर्पण करके (माया से) मोक्ष होता है और हरि की सभा में मान प्राप्त किया जाता है। ८। १८।

(१९)

१. **रूड़ो ठाकुर माहरो रूड़ी गुरबाणी। १।**

२. वडै भागि सतिगुरु मिलै पाईऐ पदु निरबाणी । १ ।
३. मैं ओल्हगीआ ओल्हगी हम छोरू थारे ।
४. जिउ तूं राखहि तिउ रहा मुखि नामु हमारे । १ । रहाउ ।
५. दरसन की पिआसा घणी भाणै मनि भाईऐ ।
६. मेरे ठाकुर हाथि वडिआईआ भाणै पति पाईऐ । २ ।
७. साचउ दूरि न जाणीऐ अंतरि है सोई ।
८. जह देखा तह रवि रहे किनि कीमति होई । ३ ।
९. आपि करे आपे हरे वेखै वडिआई ।
१०. गुरमुखि होइ निहालीऐ इउ कीमति पाई । ४ ।
११. जीवदिआ लाहा मिलै गुर कार कमावै ।
१२. पूरबि होवै लिखिआ ता सतिगुरु पावै । ५ ।
१३. मनमुख तोटा नित है भरमहि भरमाए ।
१४. मनमुखु अंधु न चेतई किउ दरसनु पाए । ६ ।
१५. ता जगि आइआ जाणीऐ साचै लिव लाए ।
१६. गुर भेटे पारसु भए जोती जोति मिलाए । ७ ।
१७. अहिनिसि रहै निरालमो कार धुर की करणी ।
१८. नानक नामि संतोखीआ राते हरि चरणी । ८ । १९ ।

पद-अर्थ

रूड़ो—सुन्दर; **माहरो**—प्रधान, मुखिया; **निरबाणी**—दु:खरहित दशा, मोक्ष, मुक्ति; **ओल्हगी**—कर्मकर, दास; **छोरू**—छोटा सेवक; **थारे**—तेरे; **पति**—प्रतिष्ठा; **हरे**—नाश करता है; **निहालीऐ**—देखिए; **पूरबि**—प्रारम्भ से ही भाग्य में; **निरालमो**—निर्लेप ।

टीका

१. हे स्वामी प्रभु ! तुम सुन्दर हो, तुम मुखिया (प्रधान) हो और गुरु की वाणी भी कितनी सुन्दर है ? जिसके बल से तुम मिलते हो ।
२. (जिस सद्‌गुरु की यह वाणी है) वह सद्‌गुरु सौभाग्यवश मिलता है

और फिर मोक्ष (दु:ख रहित दशा) प्राप्त होती है । १ ।

३. हे प्रभु, मैं तुम्हारे दासों का दास हूँ, मैं तुम्हारा तुच्छ सेवक हूँ ।

४. (कृपा करो) मुझे अपनी इच्छा में संतुष्ट रखो और मेरे मुख में तुम्हारा नाम रहे । १ । रहाउ ।

५. मेरे हृदय में तुम्हारे दर्शनों की तीव्र इच्छा है—परन्तु यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मै तुम्हें अच्छा लगूंगा ।

६. मेरे स्वामी प्रभु के हाथ में सब महत्ताएं हैं । यदि उसे अभीष्ट हो तो प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । २ ।

७. उस स्थिर प्रभु को दूर नहीं समझना चाहिए, वही हृदय के भीतर बसता है ।

८. मैं जिधर देखता हूं उधर ही वह व्याप्त है, कोई जीव उसका मूल्यांकन नहीं कर सकता । ३ ।

९. परमात्मा स्वयं ही संसार बनाता है, स्वयं ही नष्ट करता है और स्वयं सर्जन और संहार की अपनी महत्ता देखता है ।

१०. यदि गुरु के सम्मुख होकर देखा जाय तो उसकी महत्ता का अनुमान होता है । ४ ।

११. यदि मनुष्य गुरु के कार्य (सेवा) में लगे तो इसी जीवन में फल मिल जाता है ।

१२. परन्तु यदि पूर्व कर्मों के अनुसार भाग्य में लिखा हो तभी गुरु का मिलाप होता है । ५ ।

१३. मनोमुख को सदा घाटा ही घाटा है और वे भटकाए हुए भटकते रहते हैं ।

१४. मनोमुखों अन्धा है, प्रभु को स्मरण नहीं करता । फिर उसे प्रभु-दर्शन कैसे हों । ६ ।

१५. संसार में आना उसका सफल समझो जो सत्य में सुरति जोड़ता है ।

१६. जिन जीवों को गुरु मिल जाता है वे पारस हो जाते हैं । उनकी ज्योति प्रभु की ज्योति में मिली रहती है । ७ ।

१७. जो जीव प्रारम्भ से मिला कार्य (स्मरण) करता है, वह दिन-रात (सदा माया से) अलिप्त रहता है ।

१८. (नानक) नाम के बल से मनुष्य संतोषी हो जाते हैं और सदा प्रभु-चरणों से संयुक्त रहते हैं । ८ । १९ ।

(२०)

१. केता आखणु आखीऐ ता के अंत न जाणा ।
२. मैं निधरिआ धर एक तूं मै ताणु सताणा । १ ।
३. नानक की अरदास है सच नामि सुहेला ।
४. आपु गइआ सोझी पई गुर सबदी मेला । १ । रहाउ ।
५. हउमै गरबु गवाईऐ पाईऐ वीचारु ।
६. साहिब सिउ मनु मानिआ दे साचु अधारु । २ ।
७. अहिनिसि नामि संतोखीआ सेवा सचु साई ।
८. ता कउ बिघनु न लागई चालै हुकमि रजाई । ३ ।
९. हुकमि रजाई जो चलै सो पवै खजानै ।
१०. खोटे ठवर न पाइनी रले जूठानै । ४ ।
११. नित नित खरा समालीऐ सचु सउदा पाईऐ ।
१२. खोटे नदरि न आवनी ले अगन जलाईऐ । ५ ।
१३. जिनी आतमु चीनिआ परमातमु सोई ।
१४. एको अंम्रित बिरखु है फलु अंम्रितु होई । ६ ।
१५. अंम्रित फलु जिनी चाखिआ सचि रहे अधाई ।
१६. तिना भरमु न भेदु है हरि रसन रसाई । ७ ।
१७. हुकमि संजोगी आइआ चलु सदा रजाई ।
१८. अउगणिआरे कउ गुणु नानकै सचु मिलै वडाई । ८ । २० ।

पद-अर्थ

केता—कितना; **निधरिआ**—निराश्रित; **सुहेला**—सुखी; **गरबु**—अहंकार; **बिघनु**—बिघ्न, रोक; **ठवर**—स्थान; **जूठाने**—जूठे, झूठे; **चीनिआ**—समझा; **अधाई**—तृप्त हुए ।

टीका

१. चाहे उस प्रभु के विषय में कितना ही कथन क्यों न किया जाए, मै उसका अन्त नहीं जान सकता :

२. हे प्रभु, मुझ निराश्रय के तुम ही एक आश्रय हो, तुम ही मेरे भारी बल हो । १ ।

३. नानक का यह नम्र निवेदन है कि वह तुम्हारे सत्य नाम के आश्रय से सुखी हो गया है ।

४. उसका अहन्त्व मिट गया है, उसे ज्ञान हो गया है और गुरु के शब्द द्वारा प्रभु से उसका मिलाप हो गया है । १ । रहाउ ।

५. यदि अहंकार मिटा दिया जाए तो (यथार्थ) विचार प्राप्त होता है (जीवन के मूल्य यथावत् हो जाते हैं) ।

६. जब मन प्रभु स्वामी के साथ मिल जाता हैं तब प्रभु (जीवन का) सत्य रूप आधार देता है । २ ।

७. जो दिनरात नाम लेकर तृप्त हो गया है यही उसके लिए सेवा है और यही उसके लिए सत्य है ।

८. फिर उसे जीवन में कोई विघ्न नहीं होता । वह स्वेच्छाशाली प्रभु के आदेश के अनुसार चलता है । ३ ।

९. जो स्वेच्छाशाली के आदेश के अनुसार चलता है वह खरे रुपये के समान प्रभु की सभा में प्रामाणिक माना जाता है ।

१०. खोटे सिक्कों (खोटे पुरुषों) को कहीं स्थान नहीं मिलता (उन्हें कोई स्वीकार नहीं करता) और वे जाकर झूठों, खोटों, के साथ मिले रहते हैं । ४ ।

११. सदा खरा सिक्का ही संभाला जाता है और उससे ही किया हुआ सौदा ठीक माना जाता है ।

१२. खोटे सिक्के दृष्टि में ही नहीं चढ़ते । वे लेकर आग में तपाए जाते है । ५ ।

१३. जिन्होंने अपने आत्मा को जाना है वे ही परमात्मा को जानते हैं ।

१४. (वे समझते हैं कि) केवल परमात्मा ही अमृत का वृक्ष है, जिसका फल भी अमृत ही होता है । ६ ।

१५. जिन्होंने इस अमृत फल का आस्वादन किया हैं वे सत्य से परितृप्त रहते हैं।

१६. उन्हें भ्रम नहीं होता; वे कहीं भेद-भाव नहीं देखते; वे सदा नाम-रस से प्रसन्न रहते हैं। ७।

१७. हे जीव, हरि के आदेश के अनुसार किए कर्मों के संयोग वश तुझे यह जन्म मिला है, तू सदैव उसकी इच्छा के अनुसार चल।

१८. मुझ अवगुणी को गुण मिले; इस नानक को सत्य का दान मिले; इसमें उसका गौरव है। ८। २०।

(२१)

१. मनु रातउ हरिनाइ सचु वखाणिआ।
२. लोका दा किआ जाइ जा तुधु भाणिआ। १।
३. जउ लगु जीउ पराण सचु धिआईऐ।
४. लाहा हरि गुण गाइ मिलै सुखु पाईऐ। १। रहाउ।
५. सची तेरी कार देहि दइआल तूं।
६. हउ जीवा तुधु सालाहि मैं टेक अधारु तूं। २।
७. दरि सेवकु दरवानु दरदु तूं जाणही।
८. भगति तेरी हैरानु दरदु गवावही। ३।
९. दरगह नामु हदूरि गुरमुखि जाणसी।
१०. वेला सचु परवाणु सबदु पछाणसी। ४।
११. सतु संतोखु करि भाउ तोसा हरिनामु सेइ।
१२. मनहु छोडि विकार सचा सचु देइ। ५।
१३. सचे सचा नेहु सचै लाइआ।
१४. आपे करे निआउ जो तिसु भाइआ। ६।
१५. सचे सची दाति देहि दइआलु है।
१६. तिसु सेवी दिनु राति नामु अमोलु है। ७।
१७. तूं उतमु हउ नीचु सेवकु कांढीआ।
१८. नानक नदरि करेहु मिलै सचु वांढीआ। ८। २१।

पद-अर्थ

रातउ—अनुरक्त हो गया है; **वखाणिआ**—वर्णन किया है; **लउ**—तक; **टेक**—अवलम्ब; **दरवानु**—द्वारपाल; **वेला**—जीवन-समय; **तोसा**—यात्रा का खर्च; **अमोलु**—अमूल्य; **कांढिआ**—कहा जाता हूं; **वांढिआ**—वियुक्त हुए को।

टीका

१. मेरा मन हरि के नाम में रंगा गया है, (अत:) मैं अब सत्य के ही गुण गाता हूं।

२. परन्तु लोगों की क्या हानि होती है (यदि तुम्हारे रंग में रंगा होकर) मै तुम्हें अच्छा लगता हूँ ? (वे क्यों मुझे दीवाना, बावला-पागल कहते हैं ?)। १।

३. जब तक शरीर में जीव है और प्राण चलते हैं, तब तक सत्य प्रभु को स्मरण करना चाहिए।

४. हरि के गुणों के गान से यह लाभ होता है कि सुख प्राप्त कर लिया जाता है। १। रहाउ।

५. हे दयालु प्रभु, मुझे अपनी भक्ति की सत्य सेवा प्रदान करो।

६. मैं तुम्हारी गुण-स्तुति करके जीता हूं। एक तुम ही मेरा अवलम्ब हो, मेरा आश्रय हो। २।

७. मैं तुम्हारे द्वार का सेवक हूं। मैं द्वारपाल के समान तुम्हारे द्वार पर पहरा दे रहा हूँ। तुम मेरी पीड़ा जानते हो।

८. मैं चकित हूं कि तुम्हारी भक्ति इस सेवक की पीड़ा दूर कर देती है। ३।

९. जो गुरु के सम्मुख होता है, उसे ज्ञान हो जाता है कि हरि की सभा में, उसकी सेवा में, नाम ही प्रामाणिक माना जाता है।

१०. अत: वह जीवन ही सत्य है और प्रामाणिक है जो शब्द को पहचानता है। ४।

११. जो पहले सत्य, संतोष और प्रेम को जीवन-यात्रा का खर्च बनाता

है, उसे ही हरिनाम मिलता है।

१२. जो पहले मन से विकार दूर करता है उसे ही सत्य प्रभु सत्य प्रदान करता है। ५।

१३. सत्यनिष्ठ मनुष्य को सत्य नाम का प्रेम सत्य प्रभु स्वयं ही लगाता है।

१४. वह स्वयं ही (सत्य परायण मनुष्यों के साथ) न्याय करता है, जो उसे अच्छे लगे हैं (उन्हें वह नाम का प्रेम देता है)। ६।

१५. हे सत्य प्रभु, तुम दयालु हो, मुझे नाम का दान दो।

१६. मै दिन-रात उसकी सेवा करता रहूं (उसका स्मरण करता रहूँ)। क्योंकि, उसका नाम अमूल्य है। ७।

१७. हे प्रभु, तुम उत्तम हो; मैं नीच हूं, परन्तु तुम्हारा सेवक कहा जाता हूँ।

१८. (नानक प्रार्थना कर कि हे प्रभु,) कृपा-दृष्टि करो कि मुझ वियुक्त को सत्य नाम मिले। ८। २१।

(२२)

१. आवण जाणा किउ रहै किउ मेला होई।
२. जनम मरण का दुखु घणो नित सहसा दोई। १।
३. बिनु नावै किआ जीवना फिटु ध्रिगु चतुराई।
४. सतिगुर साधु न सेविआ हरि भगति न भाई। १। रहाउ।
५. आवणु जावणु तउ रहै पाईऐ गुरु पूरा।
६. रामु नामु धनु रासि देइ बिनसै भ्रम कूरा। २।
७. संत जना कउ मिलि रहै धनु धनु जसु गाए।
८. आदि पुरखु अपरंपरा गुरमुखि हरि पाए। ३।
९. नटूऐ सांगु बणाइआ बाजी संसारा।
१०. खिनु पलु बाजी देखीऐ उझरत नहीं बारा। ४।
११. हउमै चउपडि खेलणा झूठे अहंकारा।
१२. सभु जगु हारै सो जिणै गुर सबदु बीचारा। ५।
१३. जिउ अंधुलै हथि टोहणी हरिनामु हमारै।

१४. रामनामु हरिटेक है निसि दउत सवार । ६ ।
१५. जिउ तुँ राखरि तिउ रहा हरिनाम अधारा ।
१६. अंति सखाई पाइआ जन मुकति दुआरा । ७ ।
१७. जनम मरण दुख मेटिआ जपि नामु मुरारे ।
१८. नानक नामु न वीसरै पूरा गुरु तारे । ८ । २२ ।

पद-अर्थ

आवण जाणा—जन्म-मरण; **घणो**—बहुत; **सहसा दोई**—द्वैत का भ्रम; **रासि**—पूँजी; **बिनसै**—नाश हो; **कूरा**—मिथ्या; **अपरंपरा**—सीमा रहित, असीम; **बाजी**—खेल; **अंधुलै**—अन्धे के; **टोहणी**—टोहने के लिए लाठी; **निसि**—रात्रि; दउत—प्रकाश; **सवारै**—सँवारता है; **सखाई**—साथी ।

टीका

१. हे भाई, जन्म-मरण से कैसे मुक्ति मिले, और प्रभु के साथ मिलाप कैसे हो ?
२. जन्म-मरण का दुःख भारी है, नित्य ही द्वैत भाव का दुःख बना रहता है । १ ।
३. नाम के बिना जीना व्यर्थ है ? केवल चातुर्य-पूर्ण जीवन को धिक्कार है, फटकार है ।
४. (उस जीवन को जिस में) गुरु साधु की सेवा और हरि की भक्ति नहीं । १ । रहाउ ।
५. जन्म-मरण से मुक्ति तभी होती है जब पूर्ण गुरु मिल जाए ।
६. वह (गुरु) राम नाम रूपी धन की पूंजी देता है जिससे मिथ्या भ्रम नष्ट होता है । २ ।
७. जो सन्त जनों की संगति में रहे, प्रभु को धन्य-धन्य कहे, प्रभु के यश का गान करे,—
८. वह गुरु की सहायता से आदि पुरुष, अनन्त प्रभु को प्राप्त कर लेता है । ३ ।

९. जिस प्रकार मदारी स्वांग बनाता है, इसी प्रकार यह संसार एक खेल है।

१०. यह खेल अल्प समय देखा जाता है। इसे नष्ट होने में कुछ विलम्ब नहीं लगता। ४।

११. जीव अहं की चौसर झूठ और अहंकार की सारों से खेलते हैं।

१२. इस खेल में समस्त जीव हारते हैं, परन्तु वह जीतता है जो गुरु-शब्द को विचारता है। ५।

१३. जैसे अन्धे को लाठी का अवलम्ब होता है वैसे ही हमें नाम का अवलम्ब है।

१४. राम नाम का अवलम्ब ऐसा है, जो (आयु रूपी) रात्रि को प्रकाश देकर संवार देता है। ६।

१५. हे प्रभु, जैसे तुम रखते हो वैसे ही मैं रहता हूं। अब हरि-नाम मेरे जीवन का अवलम्ब हो गया है।

१६. मुझ दास को अन्तिम समय तक साथ रहने वाला नाम रूपी साथी प्राप्त हो गया है। मुझे यह मोक्ष का द्वार मिल गया है। ७।

१७. मैंने प्रभु का नाम जपकर जन्म-मरण का दुःख नष्ट कर दिया है।

१८. (नानक) जिसे नाम विस्मृत नहीं होता, उसे पूर्ण गुरु पार कर देता है। ८। २२।

एक ओं सतिगुर प्रसादि ॥

रागु आसा महला । पटी लिखी ॥

१. **ससै सोइ स्रिसटि जिनि साजी सभना साहिबु एकु भइआ ।**

२. **सेवत रहे चितु जिन्ह का लागा आइआ तिन्ह का सफलु भइआ । १ ।**

पद-अर्थ

ससै—स अक्षर के द्वारा (उपदेश दृढ़ करते हैं); **आइआ**—(संसार में तेरा आना) जन्म ।

टीका

१. वही एक प्रभु समस्त जीवों का स्वामी है जिसने सम्पूर्ण जगत् की रचना की है ।

२. जो उसकी सेवा करते रहे हैं, जिनका चित्त उसमें अनुरक्त है, संसार में उनका आना सफल है ।

(१)

१. **मन काहे भूलै मूड़ मना ।**

२. **जब लेखा देवहि बीरा तउ पड़िआ । १ । रहाउ ।**

विज्ञप्ति—'रहाउ' (विराम) की इस 'तुक' (पद्यपंक्ति) में पटी' (पट्टी लिखी' नामक 'शबद') का सार है ।

पद-अर्थ

मन—हे मन; **भूलै**—भूल में, भुलावे में; **मूड़**—मूर्ख ।

टीका

१. हे मन, हे मेरे मूर्ख मन, तू क्यों (विद्या के) भ्रम में फिरता है।
२. हे भाई, यदि तू अपने कर्मों का लेखा दे सकेगा (कि तेरे कर्म ठीक हैं) तो तू वस्तुतः पढ़ा हुआ समझा जा सकेगा। १। रहाउ।

(२)

१. ईवड़ी आदि पुरखु है दाता आपे सचा सोई।
२. एना अखरा महि जो गुरमुखि बूझै तिसु सिरि लेखु न होइ। २।

पद-अर्थ

आदि पुरखु—वह पुरुष (सत्ता) जो विश्व का मूल है।

टीका

१. वह आदि पुरुष सब को देने वाला है, अकेला वही स्वयं सत्य (सदा स्थिर) है।
२. जो मनुष्य गुरु की शरण लेकर उस प्रभु को इन अक्षरों के द्वारा (इन अक्षरों द्वारा प्राप्त की हुई विद्या द्वारा) जान लेता है उसके सिर पर कर्मों का लेखा नहीं रह जाता। २।

(३)

१. उड़ै उपमा ता की कीजै जा का अंतु न पाइआ।
२. सेवा करहि सेई फलु पावहि जिन्ही सचु कमाइआ। ३।

टीका

१. उस प्रभु की गुण-स्तुति करनी चाहिए जिसका अन्त कोई नहीं पा सकता।
२. जो उसकी सेवा करते हैं उन्हें ही फल प्राप्त होता है। वे ऐसे पुरुष हैं जिन्होंने अपने जीवन में सत्य की उपार्जना की है। ३।

(४)

१. डंडै डिग्रान बूझै जे कोई पड़िग्रा पंडितु सोई ।

२. सरब जीग्रा महि एको जाणै ता हउमै कहै न कोई । ३ ।

टीका

१. वास्तविक शिक्षित पण्डित वह है जो ज्ञान की यह बात जानता है (कि समस्त जीवों में हरि व्याप्त हैं) ।

२. जो समस्त जीवों में एक प्रभु को देख लेता है वह ग्रहंकार की कोई बात नहीं कहता । ४ ।

(५)

१. ककै केस पुंडर जब हुए विणु साबूणै उजलिआ ।

२. जम राजे के हेरू ग्राए माइआ कै संगलि बंधि लइग्रा । ५ ।

टीका

१. जब बाल श्वेत (कमल के समान) हो गए, ऐसे श्वेत कि साबुन लगाए बिना ही श्वेत हैं (पूर्ण रूप से बार्धक्य ग्रा गया है) ।

२. तब यमराज के दूत ग्रा जाते हैं ग्रौर माया की शृंखलाओं में बद्ध जीव को उन शृंखलाओं के बन्धन में ही ले जाते हैं (माया के बन्धन साथ ही जाते हैं) । ५ ।

(६)

१. खखै खुंदकारु साह ग्रालमु करि खरीदि जिनि खरचु दीग्रा ।

२. बंधनि जा कै सभु जगु बाधिग्रा ग्रवरी का नही हुकमु पइग्रा । ६ ।

टीका

१. खुदा (प्रभु) समस्त संसार का स्वामी है, जिसने जीव को खरीद कर (अपना सेवक बनाकर संसार में नाम रूपी सौदा खरीदने के लिए) खर्च देकर भेजा है (जीव के भीतर ज्ञान भरा है। यह मानो उसके लिए खर्च है)।

२. समस्त संसार उसके नियंत्रण में है, (उसी का आदेश चलता है) किसी अन्य का आदेश नहीं चलता। ६।

(७)

१. गगै गोइ गाइ जिनि छोडी गलो गोबिदु गरबि भइआ।

२. घड़ि भांडे जिनि आवी साजी चाड़ण वाहै तई कीआ। ७।

पद-अर्थ

गोइ गाइ—(सृष्टि) बनाई और सँवारी है।

टीका

१. जिस गोबिंद ने सृष्टि बनाई और सँवारी है उस (अनन्त) गोबिंद को जो जीव केवल कथनमात्र से प्राप्त हुआ समझे हुए है वह अहंकारी है (अत: कच्चा है)।

२. जिस प्रभु ने जीव रूपी बर्तन बनाकर जन्म-मरण रूपी आवी को निर्मित किया है, (जन्म-मरण में डालकर कच्चों को पकाता है) उसने उस कच्चे को भी उसमें चढ़ाने के लिए (पकाने के लिए) तैयार किया हुआ है। ७।

(८)

१. घघै घाल सेवकु जे घालै सबदि गुरू कै लागि रहै।

२. बुरा भला जो सम करि जाणै इन बिधि साहिबु रमतु, रहै। ८।

पद-अर्थ

घाल—कमाई; **सम**—समान; **रमतु रहै**—(प्रभु के मिलाप का आनद) मनाता रहेगा।

टीका

१. यदि कोई सेवक यह साधना करे कि गुरु के शब्द में सदा सुरति लगाए रहे,
२. (और) शुभ या अशुभ (जो भी प्रभु की ओर से घटित होता है) एक समान समझे, तो इस प्रकार वह (सेवक) प्रभु की प्राप्ति का आनन्द मनाता रहेगा। ८।

(९)

१. चचै चारि वेद जिनि साजे चारे खाणी चारि जुगा।
२. जुगु जुगु जोगी खाणी भोगी पड़िआ पंडितु आपि थीआ। ९।

टीका

१. जिस प्रभु ने चारों वेद बनाए हैं, (जरायुज आदि) चार प्राणी वेदों और चार युगों की रचना की है,
२. वह सदा निर्लेप रहता हे। परन्तु स्वयं ही खानियों के जीवों के रूप में भोगी भी बन रहा है और स्वयं ही शिक्षित और विद्वान् बन रहा है। ९।

(१०)

१. छछै छाइआ वरती सभ अंतरि तेरा कीआ भरमु होआ।
२. भरम उपाइ भलाईअनु आपे तेरा करमु होआ तिन गुरू मिलिआ। १०।

पद-अर्थ

छाइआ=छाया, अविधा।

टीका

१. हे प्रभु, समस्त जीवों में अज्ञान व्याप्त है—परन्तु यह तुम्हारा ही बनाया हुआ भ्रम है।

२. तुमने स्वयं ही इस भ्रम को उत्पन्न करके जीवों को भ्रान्त कर रखा है। परन्तु जिस पर तुम्हारी कृपा होती है, उसे गुरु (ज्ञान) मिलता है (और उसका भ्रम दूर हो जाता है)। १०।

(११)

१. जजै जानु मंगत जनु जाचै लख चउरासीह भीख भविआ।
२. एको लेवै एको देवै अवरु न दूजा मैं सुणिआ। ११।

पद-अर्थ

जानु—ज्ञान।

टीका

१ मैं याचक, तुम्हारा सेवक उस ज्ञान का दान मांगता हूं जिसके लिए मैं चौरासी लाख योनियों में भटकता रहा हूं।

२. तुम ही (यह दान) लेने वाले हो, मेरे भीतर प्रविष्ठ होकर तुम ही देने वाले हो। मैंने तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं सुना। ११।

(१२)

१. झझै झूरि मरहु किआ प्राणी जो किछु देणा सु दे रहिआ।
२. दे दे वेखै हुकमु चलाए जिउ जीआ का रिजकु पइआ। १२।

टीका

१. हे जीव, मन में क्लेश मान कर दुःखित क्यों होता है? प्रभु को जो

कुछ देना है, वह दे रहा है।

२. जिस जिस प्रकार प्राणियों का अन्न-भोग निश्चित है, उस-प्रकार वह दे रहा है, उन जीवों की संभाल कर रहा है और (सम्पूर्ण जगत् में) अपना शासन चला रहा है। १२।

(१३)

१. ङ ङ नदरि करे जा देखा दूजा कोई नाही।

२. **एको रवि रहिआ सभ थाई एकु बसिआ मन माही। १३।**

टीका

१. हे मन, जब मैं ध्यान से देखता हूं मुझे कोई और नहीं दिखाई देता।

२. एक परमात्मा ही सर्वत्र व्याप्त दिखाई देता है और वही प्रत्येक हृदय में बस रहा है। १३।

(१४)

१. **टटै टंचु करहु किआ प्राणी घड़ी कि मुहत्ति कि उठि चलणा।**

२. **जूऐ जनमु न हारहु आपणा भाजि पडहु तुम हरि सरणा। १४।**

पद-अर्थ

टंचु—व्यर्थ धंधा; **मुहति**—मुहूर्त, दो घड़ी।

टीका

१. हे प्राणी व्यर्थ धंधों में क्यों व्यस्त है, जब कि घड़ी दो घड़ी (थोड़े समय) के पश्चात् यहां से चले जाना है?

२. अत: अपना जन्म व्यर्थ न खो और अविलम्ब प्रभु की शरण ग्रहण कर। १४।

(१५)

१. ठठै ठाढि वरती तिन अंतरि हरि चरणी जिन्ह का चितु लागा ।
२. चितु लागा सेई जन निसतरे तउ परसादी सुखु पाइआ । १५ ।

टीका

१. स्मरण के बल से जिनका मन प्रभु-चरणों में लग्न होता है, उनके हृदय में शान्ति होती है ।
२. जिनका मन स्मरण में लग्न है वे संसार-सागर से पार हो गए हैं, तुम्हारी कृपा से उन्हें सुख प्राप्त हुआ हैं । १५ ।

(१६)

१. डडै डंफु करहु किआ प्राणी जो किछु होआ सु सभु चलणा ।
२. तिसै सरेवहु ता सुखु पावहु सरब निरंतरि रवि रहिआ । १६ ।

पद-अर्थ

डंफु—दम्भ, दिखावा ।

टीका

१. हे जीव, दिखावा क्यों करता है ? समस्त संसार नश्वर है ।
२. उस प्रभु का स्मरण करो जो विश्व में व्याप्त है, तब सुख प्राप्त होगा । १६ ।

(१७)

१. ढढै ढाहि उसारें आपे जिउ तिसु भावै तिवै करे ।
२. करि करि वेखै हुकमु चलाए तिसु निसतारे जा कउ नदरि करे । १७ ।

टीका

१. परमात्मा स्वयं ही संसार को नष्ट करता है, स्वयं ही बनाता है। जैसे उसे अच्छा लगता है वैसे ही करता है।

२. वह संसार उत्पन्न करके उसकी रक्षा करता है, अपना शासन चलाता हैं और जिस पर कृपा करता है, उसे संसार से पार कर देता है। १७।

(१८)

१. रगाएँ रवतु रहै घट अंतरि हरि गुरा गावै सोई।
२. आपे आपि मिलाए करता पुनरपि जनमु न होई। १८।

पद-अर्थ

रवतु—समा रहा है; **पुनरपि**—पुन:।

टीका

१. जिस जीव को अपने हृदय में व्याप्त प्रभु दिखाई दे जाए वह उसके गुरा गाता है।

२. जब प्रभु किसी को अपने साथ मिला लेता है तब उसका पुन: (मरण) नहीं होता। १८।

(१९)

१. ततै तारू भवजलु होआ ता का अंतु ना पाइआ।
२. ना तरना तुलहा हम बूडसि तारि लेहि तारण राइआ। १९।

टीका

१. यह संसार-समुद्र बहुत गहरा है। इसका दूसरा किनारा भी नहीं

मिलता ।

२. हमारे पास न कोई बड़ी नाव है न कोई छोटी नाव है। हम डूब जाएँगे, हे पार करने में समर्थ स्वामी, हमें पार करो । १६ ।

(२०)

१. थथै थानि थानंतरि सोई जा का कीग्रा सभु होग्रा ।

२. किग्रा भरमु किआ माइआ कहीऐ जो तिसु भावै सोई भला । २० ।

टीका

१. जिस प्रभु का बनाया हुआ यह संसार है, वह इसमें प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है ।

२. यह भ्रम है श्रौर यह माया है—यह कहना व्यर्थ है, (जब कि वह स्वयं ही करण-कारण है)—जो उसे अच्छा लगता है, वही होता है । २० ।

(२१)

१. ददै दोसु न देऊ किसै दोसु करंमा आपणिआ ।

२. जो मैं कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना । २१ ।

टीका

१. मुझे किसी अन्य पर दोषारोप नहीं करना चाहिए। केवल अपने (अशुभ) कर्मों को ही दोष देना उचित है ।

२. (क्योंकि) जो कर्म मैंने किए हैं, उनका फल मैं पाता हूँ ? (हे भाई,) दूसरों को दोष न दे । २१ ।

(२२)

१. धधै धारि कला जिनि छोडी हरि चीजी जिनि रंग कीआ ।

२. तिस दा दीआ सभनी लीआ करमी करमी हुकमु पाइआ । २२ ।

टीका

१. जिस प्रभु ने समस्त सृष्टि में अपनी शक्ति व्याप्त कर रखी है और जिसने प्रत्येक वस्तु को (भिन्न-भिन्न) रंग दिया है,—

२. उसका दिया हुआ ही प्रत्येक प्राणी लेता है; परन्तु प्रत्येक प्राणी के अपने-अपने कर्म के अनुसार प्रभु का आदेश चलता है । २२ ।

(२३)

१. नंनै नाह भोग नित भोगै ना डीठा ना संम्हलिआ ।

२. गली हउ सोहागणि भैणे कंतु न कबहूँ मैं मिलिआ । २३ ।

टीका

१. प्रभु पति अपनी सुहागिनों से नित्य रमण करता है परन्तु मैंने उसे न आज तक देखा है और न कभी स्मरण किया है ।

२. मैं केवल कथनमात्र से ही सुहागिन बनी फिरती हूँ मुझे प्रियतम कभी नहीं मिला । २३ ।

(२४)

१. पपै पातिसाहु परमेसरु वेखण कउ परपंचु कीआ ।

२. देखै बूझै सभ किछु जाणै अंतरि बाहरि रवि रहिआ । २४ ।

पद-अर्थ

परपंचु—पाँच तत्त्वों का विस्तार, संसार ।

टीका

१. परमेश्वर राजा है । उसने अपने देखने के लिए (मनोविनोदार्थ)

येह संसार बनाया है ।

२. वह स्वयं प्रत्येक जीव की रक्षा करता है, मनों को जानता है, सब कुछ जानता है, क्योंकि भीतर बाहर प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है । २४ ।

(२५)

१. फफै फाही सभ जगु फासा जम कै संगलि बंधि लइआ ।

२. गुर परसादी से नर उबरे जि हरि सरणागति भजि पइआ । २५ ।

टीका

१. समस्त संसार माया के पाश में बद्ध है । अत: इसको यमदूतों ने अपनी शृखलाओं से बांध रखा है ।

२. गुरु की कृपा से वे जीव बचते हैं जो दौड़कर प्रभु-शरण में आ जाते हैं । २५ ।

(२६)

१. बबै बाजी खेलण लागा चउपड़ि कीते चारि जुगा ।

२. जीअ जंत सभ सारी कीते पासा ढालणि आपि लगा । २६ ।

टीका

१. प्रभु ने स्वयं ही चारों युग चौसर के पार्श्व (पल्ले) बनाए हैं, और वह स्वयं ही खेल खेल रहा है ।

२. समस्त जीव जन्तु नर्द (गोट) हैं और वह स्वयं ही पासे फेंक रहा है । २६ ।

(२७)

१. भभै भालहि से फलु पावहि गुर परसादी जिन्ह कउ भउ पइआ ।

२. मनमुख फिरहि न चेतहि मूड़े लख चउरासीह फेरु पइआ । २७ ।

टीका

१. गुरु की कृपा से जिनके हृदय में प्रभु का भय ठहरता है और जो उसकी खोज करते हैं, वही फल प्राप्त करते हैं।

२. मनोमुख मारे-मारे फिरते हैं। वे उसका स्मरण नहीं करते। उन्हें जन्म-मरण के चक्र में फँसना पड़ता है। २७।

(२८)

१. मंमै मोहु मरणु मधुसूदनु मरणु भइआ तब चेतविआ।

२. काइआ भीतरि अवरो पड़िआ मंमा अखरु वीसारिआ। २८।

पद-अर्थ

मधुसूदनु—मधु राक्षस के मारने वाला, कृष्ण, प्रभु।

टीका

१. (म अक्षर की जगत् के लिए महती अर्थवत्ता है। यह मोह, मरण और मधुसूदन तीनों का ही बोधक हैं) मोह जीव के लिए मृत्यु लाता है, (जन्म-मरण का कारण बनता है)। क्योंकि, इस दिशा में मधुसूदन प्रभु, विस्मृत रहता है और उसकी स्मृति तब ही होती है जब मृत्यु आकर सम्मुख खड़ी हो जाती है।

२. जब तक शरीर में शक्ति रही तब तक यह जीव और कुछ भी पढ़ता रहा (विषय-विकारों का चिन्तन करता रहा) और इसे 'म' अक्षर भूला रहा (यदि 'म' अक्षर मन में रहता तो मोह से बचता मधुसूदन का स्मरण करता और जन्म-मरण से मुक्ति पाता)। २८।

(२९)

१. ययै जनमु न होवी कद ही जेकरि सचु पछाणै।

२. गुरमुखि आखै गुरमुखि बूझै गुरमुखि एको जाणै। २९।

टीका

१, यदि जीव सत्य प्रभु को पहचान लेता है तो वह जन्म-मरण से निकल जाता है।

२. वह जीव पुनः गुरु-शिक्षा से प्रभु की ही गुण-स्तुति करता है, उसे समझता है और उसको ही सर्वत्र व्याप्त जानता है। २९।

(३०)

१. **रारै रवि रहिआ सभ अंतरि जेते कीए जंता।**

२. **जंत उपाइ धंधै सभ लाए करमु होआ तिन नामु लइआ। ३०।**

टीका

१. जितने ही जीव-जन्तु प्रभु ने बनाए हैं, वह उन सबमें व्याप्त है।

२. उसने जीवों को उत्पन्न करके माया के धन्धों में लगा दिया है; परन्तु जिस पर उसकी कृपा होती है उसे नाम मिल जाता है। ३०।

(३१)

१. **ललै लाइ धंधै जिनि छोडी मीठा माइआ मोहु कीआ।**

२. **खाणा पीणा सम करि सहणा भाणै ता के हुकमु पइआ। ३१।**

टीका

१. जिस परमात्मा ने सृष्टि को माया के धंधों में लगाया है और जिसने जीवों के लिए माया का मधुर मोह बना दिया है,—

२. उसकी इच्छा के अनुसार जीवों को भी खाना पीना मिले (शुभ हो अथवा अशुभ) एक समान स्वीकार करना पड़ता है। यह उसका आदेश है। ३१।

(३२)

१. **ववै वासुदेउ परमेसरु वेखण कउ जिनि वेसु कीआ।**

२. वेखै चाखै सभ किछु जाणै अंतरि बाहरि रवि रहिआ । ३२ ।

पद-अर्थ

वासुदेउ—व्यापक हरि ।

टीका

१. प्रभु स्वयं ही सर्वव्यापक बना है । उसने जगत्-कौतुक देखने के लिए स्वयं ही (निर्गुण से सगुण) रूप बनाया है ।

२. वह स्वयं जगत् की संभाल करता है और प्रत्येक के हृदय की जानता है, (क्योंकि) भीतर-बाहर सर्वत्र व्याप्त है । ३२ ।

(३३)

१. झाड़ै राड़ि करहि किआ प्राणी तिसहि धिआवहु जि अमरू होआ ।

२. तिसहि धिआवहु सचि समावहु ओसु विटहु कुरवाणु कीआ । ३३ ।

पद-अर्थ

राड़ि—झगड़ा; अमरु—मृत्यु रहित ।

टीका

१. हे प्राणी, धन्धों के झगड़े क्यों करता है ? उसका स्मरण कर जो सदा स्थिर है ।

२. उसका स्मरण करो और उस सत्य में समाहित हो जाओ । मैंने उस पर सब कुछ न्योछावर कर दिया है । ३३ ।

(३४)

१. हाहै होरु न कोई दाता जीअ उपाइ जिनि रिजकु दीआ ।

२. हरिनामु धिश्राइहु हरिनामि समाबहु श्रनदिनु लाहा हरिनाम लीश्रा । ३४ ।

टीका

१. जिस प्रभु ने जीव उत्पन्न करके उन्हें जीविका दी है, उसके अतिरिक्त कोई अन्य दाता नहीं है ।

२. (हे भाई, अतः) उसके नाम का ही स्मरण करो और उसके नाम में ही लीन होश्रो । मैंने तो रात-दिन हरि-नाम का ही लाभ प्राप्त किया है । ३४ ।

(३५)

१. श्राइड़ै श्रापि करे जिनि छोडी जो किछु करणा सु करि रहिआ ।

२. करे कराए सभ किछु जाणै नानक साइर इव कहिश्रा । ३५ ।

टीका

१. जिस प्रभु ने स्वयं सृष्टि-रचना कर छोड़ी है, जिस प्रकार उसे अच्छा लगता है वह उसी प्रकार कर रहा हे ।

२. वह स्वयं ही करने वाला है, स्वयं ही जीवों से कराने वाला है, सब कुछ जानने वाला है । हे नानक कवि, तूने इस प्रकार कहा है । ३३ ।

१ओं सतिगुर प्रसादि ।

राग़ु श्रासा महला १

छंत (१)

१. मुंध जोबनि बालड़ीए मेरा पिरु रलीश्राला राम ।

२. धन पिर नेहु धणा रसि प्रीति दइश्राला राम ।

३. धन पिरहि मेला होइ सुआमी आपि प्रभु किरपा करे ।

४. सेजा सुहावी संगि पिर कै सात सर श्रंम्रित भरे ।

५. करि दइआ मइआ दइआल साचे सबदि मिलि गुण गावओ ।
६. नानका हरि बरु देखि बिगसी मुंध मनि ओमाहओ । १ ।
७. मुंध सहजि सलोनड़ीए इक प्रेमि बिनंती राम ।
८. मैं मनि तनि हरि भावै प्रभु संगमि राती राम ।
९. प्रभु प्रेमि राती हरि बिनंती नामि हरि कै सुखि बसै ।
१०. तउ गुण पछाणहि ता प्रभु जाणहि गुणह वसि अवगण नसै ।
११. तुधु बाझू इकु तिलु रहि न साका कहणि सुनणि न धीजए ।
१२. नानका प्रिउ प्रिउ करि पुकारे रसन रसि मनु भीजए । २ ।
१३. सखीहो सहेलीड़ीहो मेरा पिरु वणजारा राम ।
१४. हरिनामो वणंजड़िआ रसि मोलि अपारा राम ।
१५. मोलि अमोलो सच घरि ढोलो प्रभ भावै ता मुंध भली ।
१६. इकि संगि हरि कै करहि रलीआ हउ पुकारी दरि खली ।
१७. करण कारण समरथ स्रीधर आपि कारजु सारए ।
१८. नानक नदरी धन सोहागणि सबदु अभ साधारए । ३ ।
१९. हम घरि साचा सोहिलड़ा प्रभ आइअड़े मीता राम ।
२०. रावे रंगि रातड़िआ मनु लीअड़ा दीता राम ।
२१. आपणा मनु दीआ हरि वरु लीआ जिउ भावै तिउ रावए ।
२२. तनु मनु पिर आगै सबदि सभागै घरि अम्रित फलु पावए ।
२३. बुधि पाठि न पाईऐ बहु चतुराईऐ भाइ मिलै मनि भाणे ।
२४. नानक ठाकुर मीत हमारे हम नाही लोकाणे । ४ । १ ।

पद-अर्थ

मुंध—मुग्धानारी; **जोबनि**—यौवन में, (पूर्ण) यौवनावस्था में; **बालड़ीए**—अज्ञे; **रलीअाला**—आन्तरिक स्रोत; **धन**—नारी; **सात सर**—सातों सरोवर, पांच इन्द्रियां, मन और बुद्धि; **सलोनड़ीए**—हे सुन्दर नेत्रों वाली; **संगमि**—मेल में; **ढोलो**—प्रिय; **स्रीधर**—लक्ष्मी का आश्रय; माया का पति, विष्णु, ईश्वर; **लोकाणे**—पराए, अन्य ।

टीका

१. हे पूर्ण यौवनशालिनी अज्ञ नारी, (क्या तुझे ज्ञात है कि) मेरा प्रभु पति आनन्द का स्रोत है।

२. यदि उस प्रभु-पति से जीव रूपी नारी का गहरा प्रेम हो जाए तो कृपालु प्रभु प्रसन्न होकर उसे अपना प्रेम देता है।

३. तत्पश्चात् स्वामी प्रभु कृपा करता है और जीव रूपी नारी का प्रभु पति के साथ मिलाप होता है।

४. पति के साथ पत्नी का संयोग होने पर पत्नी का हृदय रूपी शयनपर्यङ्क सुखदायक हो जाता है और उसके सातों सरोवर अमृत से परिपूर्ण हो जाते हैं।

५. हे स्थिर, दयालु प्रभु, मुझ पर भी कृपा करो कि शब्द में मिलकर (जुड़कर) तुम्हारे गुण गाऊँ (और तुम्हारा संयोग प्राप्त करूँ)।

६. (नानक) जीव रूपी नारी हरि वर को देखकर प्रसन्न होती है और उसके हृदय में (प्रभु के साथ संयुक्त रहने का) चाव होता है। १।

७. हे स्वाभाविक सुन्दर नयनों वाली नारी, मैं (तुझ से) प्रेम की एक बात कहती हूं।

८. मेरे मन और तन को प्रभु अच्छा लगता है, और मैं उसके मिलन-सुख से मत्त हूँ।

९. जो जीव रूपी नारी प्रभु-प्रेम में मत्त है, वह उससे केवल नाम मांगती है और नाम में सुखी रहती है।

१०. हे प्रभु, जब जीव रूपी नारियां तुम्हारे गुणों को पहिचान जाती है तब वे प्रभु से मिल जाती है, उनमें गुण आ जाते हैं और उनके अवगुण चले जाते हैं।

११. हे प्रभु, मैं तुम्हारे बिना एक क्षणमात्र नहीं रह सकती। मुझे केवल कथन और श्रवणमात्र से धैर्य प्राप्त नहीं होता।

१२. (नानक) अब मेरी रसना प्रभु को 'हे प्रिय', 'हे प्रिय' कहकर याद करती है। मेरी जिह्वा आनन्द से पूर्ण है और मन प्रेम से आर्द्र है। २।

१३. हे सखी सहेलियों, मेरा प्रभु पति प्रेम का व्यापारी है।

१४. जिसने उसे नाम का व्यापार दिया है। वह प्रेम द्वारा इतनी उच्च हो जाती है कि उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता।

१५. प्रभु प्रियतम के हृदय-गृह में आने से जीव रूपी नारी अमूल्य मूल्य वाली हो जाती है—जो स्त्री प्रभु को अच्छी लग गई, उसी को अच्छी जानो।

१६. कुछ जीव रूपी नारियां प्रभु के साथ मिलकर आनन्द प्राप्त करती हैं; परन्तु मैं अभी द्वार पर खड़ी उसे पुकार रही हूँ।

१७. माया का पति वह (प्रभु) स्वयं सर्वकलासमर्थ है, कारण उत्पन्न करने वाला है, वह ही कार्य सम्पूर्ण करता है (मेरी पुकार सुन कर मुझे भी अपने साथ मिला लेगा)।

१८. (नानक) प्रभु की एक कृपा दृष्टि से जीव रूपी नारी सौभाग्यवती हो जाती है और गुरु का शब्द उसके हृदय को अवलम्ब देता है। ३।

१९. मेरे हृदय में हर्ष का संगीत गुंजित है। प्रभु मित्र (मेरे हृदय-घर में) आया है।

२०. वह प्रभु-प्रेम में अनुरक्तों को स्वयं आकर आनन्दित करता है। वे उसका मन ले लेते हैं और अपना मन उसे दे देते हैं।

२१. जिसने भी अपना मन प्रभु को समर्पित किया है उसने प्रभु-पति को प्राप्त किया है। तत्पश्चात् उसे जिस प्रकार अच्छा लगता है वह उसी प्रकार उन्हें आनन्दित करता है।

२२. जो तन-मन प्रभु के अर्पण करती है, वह शब्द-द्वारा सौभाग्यवती हो जाती है और अपने हृदय में अमृत प्राप्त कर लेती है।

२३. प्रभु पाठों और चतुराइयों से प्राप्त नहीं होता। वह प्रेम के बल से मिलता है, यदि उसके मन को किसी का प्रेम अच्छा लगे।

२४. (नानक) प्रभु जी हमारे मित्र हैं, (और हम उनके हैं) हम कोई पराए तो नहीं हैं। ४। १।

(२)

१. अनहदो अनहदु वाजै रुण झुणकारे राम।

२. मेरा मनो मेरा मनु राता लाल पिआरे राम।

३. अनदिनु राता मनु वैरागी सुंन मंडलि घरु पाइआ ।
४. आदि पुरखु अपरंपरु पिआरा सतिगुरि अलखु लखाइआ ।
५. आसणि वैसणि थिरु नाराइणु तितु मनु राता वीचारे ।
६. नानक नामि रते वैरागी अनहद रुण झुणकारे । १ ।
७. तितु अगम तितु अगमपुरे कहु कितु विधि जाईऐ राम ।
८. सचु संजमी सारि गुणा गुर सबदु कमाईऐ राम ।
९. सचु सबदु कमाईऐ निजघरि जाईऐ पाईऐ गुणी निधाना ।
१०. तितु साखा मूलु पतु नहीं डाली सिरि सभना परधाना ।
११. जपु तपु करि करि संजम थाकी हठि निग्रहि नही पाइऐ ।
१२. नानक सहजि मिले जगजीवन सतिगुर बूझ बुझाईऐ । २ ।
१३. गुरु सागरी रतनागरु तितु रतन घणेरे राम ।
१४. करि मजनो सपत सरे मन निरमल मेरे राम ।
१५. निरमल जलि न्हाए जा प्रभ भाए पंच मिले वीचारे ।
१६. कामु करोधु कपटु विखिआ तजि सचु नामु उरिधारे ।
१७. हउमै लोभ लहरि लब थाके पाए दीन दइआला ।
१८. नानक गुर समानि तीरथु नही कोई साचे गुर गोपाला । ३ ।
१९. हउ बनु बनो देखि रही त्रिणु देखि सबाइआ राम ।
२०. त्रिभवणो तुझहि कीआ सभु जगतु सबाइआ राम ।
२१. तेरा सभु कीआ तूं थिरु थीआ तुधु सभानि को नाही ।
२२. तूं दाता सभ जाचिक तेरे तुधु बिनु किसु सालाही ।
२३. अणमंगिआ दानु दीजै दाते तेरी भगति भरे भंडारा ।
२४. रामनाम बिनु मुकति न होई नानकु कहै वीचारा । ४ । २ ।

पद अर्थ

अनहदो अनहद—बजाए बिना बजने वाला, संगीतात्मक आध्यात्मिक आनन्द; **रुण झुणकारे**—रुणत्कार तथा झुणत्कार अर्थात रुनझुन, घूंघरू झांझरों की ध्वनि; **अपंरपरु**—अनन्त; **अलखु**—अलक्ष्य, अज्ञेय; **अगमपुरे**—वह अगम्य नगर जहां हरि रहता है; **हठि निग्रहि**—हठ द्वारा इन्द्रियों को

रोकने से; **रतनागरु**—रत्नों (गुणों की खान); **घणेरा**—बहुत; **मजनो**—स्नान; **सपत सरे**—सात समुद्रों में, गुरु संगति में; **जाचिक**—याचक।

टीका

१. मेरे भीतर अनहद बाजों की झनकार हो रही है (मानो आध्यात्मिक आनन्द संगीत हो गया है)।
२. (क्योंकि) मेरा मन प्रिय प्रभु में अनुरक्त है।
३. यह मेरा मन, अब माया की ओर से विरक्त होकर दिन-रात प्रभु में अनुरक्त रहता है इसने (आत्म-मंडल की) निर्विकल्प दशा में पहुंच कर अपना घर (ठिकाना, आत्मस्वरूप) प्राप्त कर लिया है।
४. मुझे सद्गुरु ने वह अलक्ष्य प्रभु दिखा दिया है जो सब का आदि है, सर्व व्यापक है, परात्पर है और सब का प्रिय है।
५. जो प्रभु अपने स्थान में और अपने आसन में स्थिरतया विराजमान है उसमें मेरा मन गुरु के विचार से अनुरक्त हो गया है।
६. (नानक) इस प्रकार जो भी माया से विरक्त होकर नाम में अनुरक्त हो जाते हैं, उनके मन में आध्यात्मिक आनन्द बना रहता है। १।
७. हे सहेलियो, (सत्संगियो) प्रभु के अगम्य नगर में किस प्रकार पहुँचा जाता है?
८. (उत्तर यह है कि) सत्य और इन्द्रिय संयम का आचरण हो हरि के
९. इस प्रकार सत्य और शब्द की साधना के द्वारा आत्मस्वरूप में पहुँचा जाता है। वहां पहुँच कर गुणों का निधान प्रभु प्राप्त किया जाता है।
१०. प्रभु वह वृक्ष है जिसकी न शाखा है, न जड़ है, न पत्ते हैं (अर्थात् वह त्रिगुणातीत हैं) परन्तु जिसका शासन सबसे ऊपर है, उसे मिलने के लिए तीनों गुणों से ऊपर सहजावस्था में जाना पड़ेगा।
११. केवल जप, तप, संयम और हठ द्वारा इन्द्रियों का नियक्षण करके भी जगत् परिश्रान्त हो गया है—इस प्रकार भी प्रभु नहीं मिलता।
१२. (नानक) सहजावस्था में पहुँच कर जगत् का जीवन प्रभु मिलता है और सद्गुरु ही इस प्रकार की बुद्धि प्रदान करता है। २।
१३. गुरु सागर है. रत्नों की खान है, उसमें अनेक रत्न (गुण) हैं।
१४. हे मेरे मन, गुरु संगीत-रूपी सात समुन्द्रों में स्नान करके निर्मल होगा।

१५. ऐसे निर्मल जल (गुरु संगति) में कोई तभी स्नान करता है, जब वह प्रभु को अच्छा लगे। तब वह पांच गुणों—सत्य, सन्तोष, दया, धर्म, धैर्य को गुरु के विचार की सहायता से प्राप्त करता है।

१६. और काम, क्रोध, कपट के विषयों का त्याग करके सदा स्थिर नाम को हृदय में बसाता है।

१७. जब दीनों पर दया करने वाला परमात्मा मिलता है तब अहंकार, लालच और लोभ का वेग समाप्त हो जाता है।

१८. (नानक) गुरु के समान और कोई तीर्थ नहीं है। गुरु सत्य गोपाल (प्रभु) का रूप है। ३।

१९. हे प्रभु, मैं समस्त जंगल और घास का तिनका-तिनका देख चुकी हूँ।

२०. (मुझे यही ज्ञान हुआ है कि) तुमने ही तीनों भुवन बनाए हैं, तुमने ही अखिल जगत् का निर्माण किया है।

२१. सब कुछ तुम्हारा ही किया हुआ है; तुम सदा स्थिर रहने वाले हो; तुम्हारे समान और कोई नहीं हैं।

२२. तुम देन देने वाले हो; सभी तुम से याचना करने वाले हैं; मैं तुम्हारे अतिरिक्त और किसकी प्रशंसा करूं।

२३. हे दाता, तुम जीवों के मांगे बिना ही दिए जाते हो; तुम्हारे भक्ति के भाण्डागार परिपूर्ण हैं।

२४. (अन्त में) नानक यह तात्विक विचार कहता है कि ऐसे परमात्मा के नाम-स्मरण के बिना किसी को भुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। ४। २।

(३)

१. मेरा मनो मेरा मनु राता राम पिआरे राम।

२. सचु साहिबो आदि पुरखु अपरंपरो धारे राम।

३. अगम अगोचरु अपर अपारा पारब्रह्मु परधानो।

४. आदि जुगादी है भी होसी अवरु झूठा सभु मानो।

५. करम धरम की सार न जाणै सुरति मुकति किउ पाईऐ।

६. नानक गुरमुखि सबदि पछाणै अहिनिसि नामु धिआईऐ। १।

७. मेरा मनो मेरा मनु मानिआ नामु सखाई राम।

८. हउमै ममता माइआ संगि न जाई राम ।
९. माता पिता भाई सुत चतुराई संगि त संपै नारे ।
१०. साइर की पुत्री परहरि तिआगी चरण तलै वीचारे ।
११. आदि पुरखि इकु चलतु दिखाइआ जह देखा तह सोई ।
१२. नानक हर की भगति न छोडउ सहजे होइ सु होई । २ ।
१३. मेरा मनो मेरा मनु निरमलु साचु समाले राम ।
१४. अवगण मेटि चले गुण संगम नाले राम ।
१५. अवगण परहरि करणी सारी दरि सच सचिआरो ।
१६. आवणु जावणु ठाकि रहाए गुरमुखि ततु वीचारो ।
१७. साजनु मीतु सुजाणु सखा तूं सचि मिलै वडिआई ।
१८. नानक नामु रतनु परगासिआ ऐसी गुरमति पाई । ३ ।
१९. सच अंजनो अंजनु सारि निरंजनि राता राम ।
२०. मनि तनि रवि रहिआ जग जीवनों दाता राम ।
२१. जग जीवनु दाता हरि मनि राता सहजि मिलै मेलाइऐ ।
२२. साध सभा संता की संगति नदरि प्रभू सुखु पाइआ ।
२३. हरि की भगति रते बैरागी चुके मोह पिआसा ।
२४. नानक हउमै मारि पतीणे विरले दास उदासा । ४ । ३ ।

पद-अर्थ

धारे—आश्रय देता है; **अगम**—अगम्य; **अगोचरु**—जो इन्द्रिय-ग्राह्य न हो; **परधानो**—शिरोमणि; **सखाई**—सखा, साथी; **ममता**—निजत्व-भावना; **संपै**—सम्पत्ति; **साइर दी पुत्री**—सागर की पुत्री, लक्ष्मी, माया; **अंजनो**—सुरमा; **बैरागी**—वैराग्यवान्, विरक्त; **पतीणे**—प्रत्यय (विश्वास) से भर गए; **उदासा**—उदासीन, विरक्त, त्यागी ।

टीका

१. मेरा मन प्रिय परमात्मा के नाम में अनुरक्त हो गया है ।

२. (उस परमात्मा के नाम में) जो सत्य है, स्वामी है, आदि पुरुष (सब का आदि) है, परात्पर, सब को अवलम्ब देता है।

३. जो अगम्य है, जो इन्द्रियातीत है, जो परात्पर है, जो अनंत है, जो सर्वप्रधान है।

४. जो सृष्टि के और युगों के आरम्भ से विद्यमान है, जो अब भी है और आगे भी रहेगा—उसके अतिरिक्त अन्य समस्त मिथ्या (नश्वर) है।

५. मेरा मन धार्मिक कर्मकाण्डों को गुणवाला नहीं जानता,(इस मन को कर्मकाण्ड का ज्ञान नहीं) न इसे यह ज्ञान है कि (लोकाख्यात) मुक्ति किस प्रकार प्राप्त होती है।

६. (नानक) गुरु के उपदेश से शब्द में अनुरक्त होकर मेरा मन इस तत्त्व को पहचानता है कि हरि के नाम का स्मरण दिन-रात करना चाहिए। १।

७. मेरा मन इस निश्चय पर पहुँचा कि नाम ही (सदा साथ देने वाला) साथी है।

८. अहंकार तथा पदार्थों का मोह जीव का साथ देने वाला नहीं है।

९. न ही माता, पिता, भ्राता, पुत्र, धन, पत्नी एवं चातुर्य साथ देने वाले हैं।

१०. (अत:) मैंने समुद्र की पुत्री (माया) का पूर्ण त्याग कर दिया है, मैंने गुरु के द्वारा प्रदत्त ज्ञान से इसका तिरस्कार कर दिया है।

११. आदि पुरुष (परमात्मा) ने मुझे अद्भुत कौतुक दिखाया है कि मैं अब जिधर देखता हूँ मुझे वही दिखाई देता है।

१२. अत: (नानक) मैं प्रभु-भक्ति नहीं छोड़ूंगा। (मुझे अब ज्ञात हुआ है कि) इस संसार में जो कुछ हो रहा है वह सहज रूप से (स्वत:) उसकी आज्ञा के अनुसार हो रहा है। २।

१३. मेरा मन सत्य प्रभु का स्मरण करके निर्मल हो गया है।

१४. अब मेरा मन अवगुणों का नाश करके और गुणों को साथ लेकर (जीवन-यात्रा में) चल पड़ा है।

१५. जो अपने अवगुणों को दूर कर देता है और अपने कर्म निर्मल कर लेता है वह सत्य प्रभु की सभा में सत्यवान माना जाता है।

१६. वह गुरु के उपदेश से वास्तविकता को समझ कर अपना जन्म-मरण समाप्त कर देता है ।

१७. हे प्रभु, तुम ही मेरे सुहृद हो, मित्र हो, बुद्धिमान साथी हो । तुम्हारे सत्य नाम में अनुरक्त होने से गौरव मिलता है ।

१८. (नानक) मुझे ऐसी गुरु-शिक्षा प्राप्त हुई है कि मेरे हृदय में नाम-रत्न प्रकाशित हो गया है । ३ ।

१६. सत्य सुरमा है । मैं इस सुरमे को लगा कर माया-रहित प्रभु के नाम में अनुरक्त हो गया हूँ ।

२०. (अब) सम्पूर्ण जगत् को जीवन देने वाला प्रभु मेरे मन और तन में बस गया है ।

२१. जो जगत् का जीवन और सब को देन देने वाला है, मेरा मन उसमें अनुरक्त हो गया है, इसने उसे सहज रूप से प्राप्त कर लिया है और (गुरु ने) इसे उससे मिला दिया है ।

२२. प्रभु की कृपा से गुरु-मुखों और सन्तों की संगति में रह कर मुझे सुख प्राप्त हो गया है ।

२३. जो प्रभु के नाम में अनुरक्त हैं वे वास्तव में विरागी हैं और उनके मोह तथा उनकी तृष्णा का नाश हो गया है ।

२४. (नानक) ऐसे विरक्त सेवक विरले हैं जो अहंकार को नष्ट कर देते हैं और प्रभु-नाम में जिन का पूर्ण विश्वास हो जाता है । ४ । ३ ।

(४)

१. तूं सभनी थाई जिथै हउ जाई साचा सिरजणहारु जीउ ।
२. सभना का दाता करम विधाता दूख बिसारणहारु जीउ ।
३. दूख बिसारणहारु सुआमी कीता जा का होवै ।
४. कोट कोटंतर पापा केरे एक घड़ी महि खोवै ।
५. हंस सि हंसा सि बगा घट घट करे बीचारु जीउ ।
६. तूं सभनी थाई जिथै हउ जाई साचा सिरजणहारु जीउ । १ ।
७. जिन्ह इक मनि धिआइआ तिन्ह सुखु पाइआ ते विरले संसारि जीउ ।

८. तिन जमु नेड़ि न आवै गुर सबदु कमावै कबहु न आवहि हारि जीउ ।

९. ते कबहु न हारहि हरि हरि गुण सारहि तिन्ह जमु नेड़ि न आवै ।

१०. जंमणु मरणु तिन्हा का चूका जो हरि लागे पावै ।

११. गुरमति हरि रसु हरि फलु पाइआ हरि हरि नामु उरधारि जीउ ।

१२. जिन्ह इकु मनि धिआइआ तिन्ह सुखु पाइआ ते विरले संसारि जी । २ ।

१३. जिनि जगतु उपाइआ धंधै लाइआ तिसै विटहु कुरबाणु जीउ ।

१४. ता की सेव करीजै लाहा लीजै हरि दरगह पाईऐ माणु जीउ ।

१५. हरि दरगह मानु सोई जनु पावै जो नरु एकु पछाणै ।

१६. ओहु नव निधि पावै गुरमति हरि धिआवै नित हरि गुण आखि वखाणै ।

१७. अहिनिसि नामु तिसै का लीजै हरि ऊतमु पुरखु परधानु जीउ ।

१८. जिनि जगतु उपाइआ धंधै लाइआ हउ तिसै विटहु कुरबानु जीउ । ३ ।

१९. नामु लैनि सि सोहहि तिन सुख फल होवहि मानहि से जिणि जाहि जीउ ।

२०. तिन फल तोटि न आवै जा तिसु भावै जे जुग केते जाहि जीउ ।

२१. जे जुग केते जाहि सुआमी तिन फल तोटि न आवै ।

२२. तिन्ह जरा न मरणा नरकि न परणा जो हरिनामु धिआवै ।

२३. हरि हरि करहि सि सूकहि नाही नानक पीड़ न खाइ जीउ ।

२४. नामु लैन्हि सि सोहहि तिन्ह सुखफल होवहि मानहि से जिणि जाहि जीउ । ४ । १ । ४ ।

पद-अर्थ

करम विधाता—कर्मों के अनुसार फल देने वाला; **कोट कोटंतर**—करोड़ों, अगणित; **हंस**—अर्थात् उत्तम पुरुष; **बग**—अर्थात् पाखण्डी, पापी पुरुष; **विटहु**—उस पर; **वखाणै**—वर्णन करता है; **जरा**—वृद्धावस्था; **सूकहि**—सूखते हैं ।

टीका

१. हे प्रभु, मैं जहां भी जाता हूं, वहीं तुम मुझे सर्वव्यापक दिखाई देते हो। तुम सत्य (सर्वदा स्थिर) हो, संसार के स्रष्टा हो।

२. तुम समस्त जीवों को देने वाले हो। तुम समस्त मनुष्यों को उनके कर्मों के अनुसार फल देने वाले हो।

३. प्रभु सब के दुःख नाश करने वाला है, सब का स्वामी है, वही सब कुछ करता है।

४. वह जीवों के असंख्य पाप एक क्षण में नष्ट कर देता हैं।

५. वह प्रत्येक जीव के मन का स्पष्ट विचार (निर्णय) इस प्रकार करता है कि जो हंस (उत्तम पुरुष) हैं उन्हें हंस ठहराता है और जो बगले (पापी, पाखण्डी) हैं उन्हें बगले ठहराता है।

६. हे प्रभु, मैं जहाँ भी जाता हूं, तुम मुझे सर्वत्र विद्यमान दिखाई देते हो। तुम सत्य (सदा स्थिर) हो, तुम संसार के स्रष्टा हो। १।

७. जिन्होंने एकाग्र मन से उसका स्मरण किया है उन्होंने सुख प्राप्त किया—परन्तु संसार में ऐसे विरले ही होते हैं।

८. (जो हैं) यमराज उनके निकट नहीं आता। (क्योंकि) वे शब्द की उपार्जना करते हैं वे कभी जीवन के खेल में हार कर नहीं आते।

९. वे जीवन के खेल में नहीं हारते; (क्योंकि) वे अपने अन्तःकरण में प्रभु के गुण बसाते हैं। यमराज उनके निकट नहीं आता।

१०. जो मनुष्य प्रभु के चरणों में ध्यान लगाते हैं, उन सबका जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है।

११. उन्होंने गुरु की शिक्षा लेकर नाम के रस का आस्वादन किया है, नाम रूपी फल प्राप्त किया हैं और हृदय के भीतर नाम बसाया है।

१२. जिन्होंने एकाग्र होकर स्मरण किया है, उन्होंने सुख प्राप्त किया है—परन्तु ऐसे जीव संसार में विरले ही हैं। २।

१३. जिस प्रभु ने संसार उत्पन्न किया है और जीवों को जगत् के धंधों में लगाया है, मैं उस पर न्यौछावर हूं।

१४. उस प्रभु की सेवा में लगना चाहिए, संसार में यह लाभ प्राप्त करना चाहिए—इसी प्रकार उसकी सभा में प्रतिष्ठा मिलती है।

१५. प्रभु की सभा में उसी को मान मिलता है, जो एक प्रभु को ही प्रत्येक स्थान पर विद्‌यमान जान लेता है ।—

१६. उसको मानो अभिनव भाण्डागार प्राप्त हो जाते हैं, वह गुरु की शिक्षा से नाम का स्मरण करता है और उसके गुण गाता और वर्णन करता है ।

१७. दिन-रात उस प्रभु का नाम स्मरण करना चाहिए जो उत्तम है, सर्वव्यापक है और सबसे महान् है ।

१८. जिस प्रभु ने संसार उत्पन्न किया है और जीवों को जगत् के धंधों में लगाया है, मैं उस पर बलिहारी जाता हूं । ३ ।

१६ जो जीव प्रभु के नाम का स्मरण करते हैं, वे ईश्वरीय सभा में शोभा पाते हैं, उन्हें सुख रूपी फल मिलता है, वे सभी स्थानों पर आदर पाते हैं, वे जीवन के खेल में विजयी होकर जाते हैं ।

२०. उन्हें सुख रूपी फल में कभी कमी नहीं आती चाहे कितने हीं युग बीत जाएँ । क्योंकि, प्रभु को यही अच्छा लगता है ।

२१. हे स्वामी, स्मरण करने वालों को नाम-स्मरण द्‌वारा प्राप्त हुए फल में कभी कमी नहीं आती, चाहे कितने ही युग बीत जाएँ ।

२२. जो भी नाम-स्मरण करते है वे न वृद्‌ध होते हैं, न मरते हैं और न नरक में पड़ते हैं ।

२३. जो नाम का स्मरण करते हैं, सूखते नहीं (सदा हरे भरे, खिले, रहते हैं) (नानक) उन्हें कभी दुःख नहीं होता ।

२४. जो नाम-स्मरण करते हैं, वे ईश्वरीय सभा में शोभा पाते हैं, उन्हें सुख-रूपी फल मिलता है, वे प्रत्येक स्थान पर आदर पाते हैं, वे जीवन के खेल में विजयी होकर जाते हैं । ४ । १४ ।

(५)

१. तूं सुणि हरणा कालिआ की वाड़ीऐ राता राम ।

२. बिखु फलु मीठा चारि दिन फिरि होवै ताता राम ।

३. फिरि होइ ताता खरा माता नामु बिनु परतापए ।

४. ओहु जेव साइर देइ लहरी बिजुल जिवै चमकए ।

५. हरि बाझु राखा कोइ नाही सोइ तुझहि बिसारिआ ।
६. सचु कहै नानकु चेति रे मन मरहि हरणा कालिआ । १ ।
७. भवरा फूलि भवंतिआ दुखु अति भारी राम ।
८. मैं गुर पूछिआ आपणा साचा बीचारी राम ।
९. बीचारि सतिगुरु मुझै पूछिआ भवरु बेली रातओ ।
१०. सूरजु चड़िआ पिंडु पड़िआ तेलु तावणि तातओ ।
११. जम मगि बाधा खाहि चोटा सबद बिनु बेतालिआ ।
१२. सचु कहै नानकु चेति रे मन मरहि भवरा कालिआ । २ ।
१३. मेरे जीअड़िआ परदेसीआ कितु पवहि जंजाले राम ।
१४. साचा साहिबु मनि वसै की फासहि जमजाले राम ।
१५. मछुली विछुंनी नैण रुंनी जालु वधिकि पाइआ ।
१६. संसारु माइआ मोहु मीठा अंति भरमु चुकाइआ ।
१७. भगति करि चितु लाइ हरि सिउ छोडि मनहु अंदेसिआ ।
१८. सचु कहै नानकु चेति रे मन जीअड़िआ परदेसीआ । ३ ।
१९. नदीआ वाह विछुंनिआ मेला संजोगी राम ।
२०. जुगु जुगु मीठा बिसु भरे को जाणै जोगी राम ।
२१. कोई सहजि जाणै हरि पछाणै सतिगुरू जिनि चेतिआ ।
२२. बिनु नाम हरि के भरमि भूले पचहि मुगध अचेतिआ ।
२३. हरिनामु भगति न रिदै साचा से अंति धाही रुंनिआ ।
२४. सचु कहै नानकु सबदि साचै मेलि चिरी विछुंनिआ । ४ । १ । ५ ।

पद-अर्थ

हरणा—हे हरिण रूपी मन; **वाड़ीऐ**—सांसारिक विषयों की वाटिका में; **राता**—रक्त, मत्त; **ताता**—तप्त, दुःखदायक; **खरा माता**—अतिमत्त; **परतापए**—दुःख देता है; **जेव**—जिस प्रकार; **साइर**—समुद्र; **बेली**—बेला, लता; **सूरजु चड़िआ**—आयु रूपी रात्रि समाप्त हो गई; **पिंडु पड़िआ**—शरीर गिर पड़ा; **तावणि**—कड़ाही में; **बेतालिआ**—भूत-प्रेत; **बधिकि**—बधिक, मछेरा; **पचहि**—नष्ट होते हैं; **धाही**—धाड़ें मारकर; **चिरी**—

चिरकाल से !

टीका

१. हे कृष्ण हरिण, मेरे मन, सुन (मैं तुझसे पूछता हूं कि) तू संसार-वाटिका में मत्त हुआ क्यों फिरता है ?

२. माया-फल विष है। यह अल्प समय तक मधुर लगता है, फिर (शीघ्र ही) दुःखदायक हो जाता है ?

३. तू जिस फल में अत्यन्त अनुरक्त है वह अन्त में दुःखदायक हो जाएगा। नाम के बिना यह बहुत दुःख देता है।

४. वह (उसी प्रकार अस्थिर है) जिस प्रकार सागर की लहर अथवा बिजली की चमक।

५. परमात्मा के बिना तेरी सहायता करने वाला कोई नहीं और उसी को तू भूला हुआ है।

६. हे कृष्ण हरिण, मेरे मन, नानक तुझ से सत्य कहता है कि तू प्रभु का स्मरण कर; अन्त में तुझे संसार से चले जाना है। १।

७. हे फूल फूल पर फिरने वाले भ्रमर, मेरे मन, इस फिरने में से बहुत दुःख निकलेगा।

८ मैंने अपने गुरु से पूछा है। मेरा गुरु सदा सत्य का विचार करता है (वह जो कहता है सत्य कहता है)।

९. तेरी यह दशा विचार कर मैंने सद्गुरू से पूछा था कि यह मन तो सांसारिक पदार्थ रूपी लता पर उन्मत्त हुआ फिरता है (इसकी क्या दशा होगी ?)।

१०. (गुरु ने बतलाया है कि) जब किसी की जीवन-रात्रि समाप्त हो जाती है तब उसका शरीर गिर पड़ता है और तत्पश्चात् (माया के रसों में लीन रहने के कारण उसे इस प्रकार दण्ड दिया जाता हैं (जिस प्रकार) तेल में तप्त किया जाता है।

११. हे भूत बने प्राणी, शब्द की उपार्जना के बिना तू बंधा हुआ यम के मार्ग पर जाएगा और चोट खाएगा।

१२. हे भ्रमर, मन, नानक तुझसे सत्य कहता है कि तू प्रभु का स्मरण कर; अन्त में तुझे संसार से चले जाना है। २।

१३. हे मेरे परदेशी जीव, तू क्यों (माया के जंजालों में फँस रहा है) ?

१४. यदि सत्य परमात्मा (तेरे) मन में रहता हो तो क्यों तू यमदूतों के पाश में बद्ध हो।

१५. (हे मेरे मन, देख) जब मछेरा जाल फेंकता है तब मछली (मांस-खण्ड के लोभ में फँस जाती है) पानी से अलग हो जाती है और फिर रोती (पछताती है)।

१६. (इसी प्रकार) संसार को माया का मोह मधुर लगता है (परन्तु अन्त में वास्तविकता का बोध होता है) और भ्रम दूर होता है।

१७. हे मन, प्रभु में चित्त लगाकर भक्ति कर अपने अन्दर से चिन्ता, शकाएँ दूर कर।

१८. हे मेरे पर देसी जीव, स्मरण कर, नानक तुझ से सच कहता है। ३।

१९. यदि नदियों की धाराएँ (समुद्र से) वियुक्त होकर भी जीव पुन: मेल भाग्यवश ही होता है। (परमात्मा रूपी समुद्र से वियुक्त होकर भी जीव पुन: भाग्यवश ही मिलता है)।

२०. कोई विरला योगी ही (माया से अलिप्त होकर, और परमात्मा में अनुरक्त हुआ मनुष्य) समझता हैं कि माया का मोह चाहे कितनी देर तक मधुर रहे परन्तु अन्दर विष से पूर्ण रहता है।

२१. कोई विरला, जो सद्गुरु को मन में रखता है, तीन गुणों से ऊपर उठ कर इस तथ्य को जानता है, वही प्रभु को पहचानता है।

२२. नाम के बिना माया की भ्रान्ति में फँसकर अनेक असावधान, मूर्ख मनुष्य नष्ट होते हैं।

२३. जो नाम की भक्ति नहीं करते और अपने हृदय में प्रभु को नहीं बसाते वे अन्त में फूट-फूट कर रोते हैं।

२४. नानक सत्य कहता है कि प्रभु चिरकाल से वियुक्त हुए भक्त जनों को शब्द-द्वारा स्वयं अपने साथ मिला लेता है। ४। १५।

एक ओं सतिनाम् करता पुरखु निरभउ निरवैरू अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरप्रसादि ॥

आसा महला। १। वार सलोका नालि सलोक भी
महले पहिले लिखे टुंडे असराजे की धुनी ॥

यह आसा राग में उच्चरित हुई 'वार' है। यह वार केवल 'पउड़ी'

ही नहीं प्रत्युत इसके साथ प्रथम महल्ले के 'सलोक' भी लगा दिए गए हैं। इस 'वार' की 'पउड़ियाँ' उस लय में गानी हैं जिसमें टुंडे असराजा की 'वार' गाई जाती है।

राजा सारंग के पुत्र, असराज को उसके सौतेले भाइयों (शरदूल और सुलतान खाँ) ने क्षत-विक्षत करके कुँए में फेंक दिया था। कुछ बनजारे उसे वहाँ से निकालकर उस देश में ले गए जहाँ का राजा निःसन्तान मर गया था। मन्त्रियों के निर्णय के अनुसार नगर में सब से पूर्व प्रविष्ट होने के कारण, असराज राजा बनाया गया। अपने भाइयों से इसका युद्ध हुआ। उसमें यह विजयी हुआ और अपने पिता के सिंहासन का स्वामी बना। इस घटना को देश के भाटों ने जिस 'बार' में अभिव्यक्त किया उस 'बार' की लय में आसा की 'वार' गानी है। विज्ञप्ति-इस 'वार' में द्वितीय महल के 'सलोक' भी हैं। वे 'सलोक' यहाँ दे दिए गए हैं, परन्तु उनके पद-अर्थ और उनका टीका यहाँ नहीं दिए गए)।

(१)

सलोक महला—१

१. **बलिहारी गुर आपणे दिउहाड़ी सद वार।**
२. **जिनि माणस ते देवते कीए करत न लागी वार। १।**

पद-अर्थ

दिउहाड़ी—दिन में; **सद वार**—सौ वार; **वार**—देर।

टीका

१. मैं अपने गुरु पर दिन में सौ बार बलिहारी जाता हूं।
२. जिस गुरु ने मनुष्यों से देवता बना दिए हैं और ऐसा करते हुए उसे देर भी नहीं लगी। १।

महला १

१. जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार ।
२. एते चानण होदिआं गुर बिनु घोर अंधार । २ ।

महला १

१. नानक गुरू न चेतनी मन आपणै सुचेत ।
२. छुटे तिल बूआड़ जिउ सुंञे अंदरि खेत ।
३. खेतै अंदरि छुटिआ कहु नानक सउ नाह ।
४. फलीअहि फुलीअहि बपुड़े भी तन विचि सुआह । ३ ।

पद-अर्थ

न चेतनी—स्मरण नहीं करते; अपने ध्यान में नहीं लाते, आवश्यकता नहीं समझते; **सुचेत**—निपुण, चतुर; **तिल बुआड़**—जले हुए तिल; **सउ नाह**—सौ स्वामी, सौ पति; **बपुड़े**—बिचारा; **सुआहु**--राख ।

टीका

१. (नानक) जो मनुष्य गुरु का स्मरण नहीं करते (गुरु की आवश्यकता नहीं समझते) और अपने मन के भीतर (अपने आपको ही) बुद्धिमान् समझते हैं (किसी और का पथ-प्रदर्शन स्वीकृत नहीं करते,—

२. उन्हें ऐसे समझो जैसे खाली खेत में स्वामी से हीन जले हुए तिल होते हैं ।

३. (नानक) तू कह (सत्य जान) कि खेत में स्वामीहीन पड़े हुए जले तिलों के सौ स्वामी आकर बन जाते हैं (जो आया उठाकर ले जाता है)। उसी प्रकार जो निर्गुण हैं उनका मार्ग धुंधला होता है । उनकी बुद्धि पर प्रत्येक व्यक्ति अपना प्रभाव डाल सकता है) ।

४. चाहे वे तिल बाहय रूप में फलते-फूलते भी दिखाई देते हैं, परन्तु उन बेचारों के अन्दर तो राख ही भरी होती है । ३ ।

पउड़ी १

१. आपीनै आपु साजिओ आपीनै रचिओ नाउ ।
२. दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ ।
३. दाता करता आपि तूँ तुसि देवहि करहि पसाउ ।
४. तूँ जाणोई सभसै दे लैसहि जिंदु कवाउ ।
५. करि आसणु डिठो चाउ । १ ।

पद-अर्थ

आपीनै—आप ही ने, प्रभु ने आप ही; **आपु**—अपना आप; **रचिओ नाउ**—आत्मस्वरूप अभिव्यक्त किया, सगुण रूप में प्रकट हुए, नाम बनाया; **दुयी**—अपने आप से भिन्न, अन्य; **चाउ**—चाव, मनोरंजन, लीला; **तुसि**—तुष्ट होकर, प्रसन्न होकर; **पसाउ**—प्रसन्नता, कृपा, दान; **जाणोई**—जानने वाला; **जिंद**—जीवन; **कवाउ**—वेश (जीवन ही), शरीर ।

टीका

१. प्रभु ने स्वयं ही अपना आप (निर्गुण रूप) निर्मित किया और स्वयं ही अपने आत्मस्वरूप अर्थात् नाम (सगुण) को बनाया (निर्गुण और सगुण दोनों रूप उसके अपने बनाए हुए हैं) ।
२. अपने आप के अतिरिक्त, फिर, उसने प्रकृति बनाई जिसमें आसन जमाकर वह अपना रचा हुआ, यह चाव, यह मनोरंजन (जगत्) देख रहा है (यह उसका सर्व-व्यापक रूप है—निर्गुण और सगुण के अतिरिक्त वह सर्वव्यापक है, अपनी रचना के भीतर बसता है) ।
३. हे प्रभु, तुम स्वयं ही उत्पन्न करने वाले हो, तुम स्वयं ही संतुष्ट होकर कृपा करने वाले हो ।
४. तुम सबके मनों की जानने वाले हो; तुम स्वयं ही आत्मा और शरीर पुनः स्वयं ही ले लेते हो ।
५. तुम प्रकृति में आसन जमाकर अपना बनाया हुआ चाव (जगत्) देख

रहे हो। १।

(२)

सलोक महला १

१. सचे तेरे खंड सचे तेरे ब्रहमंड।
२. सचे तेरे लोअ सचे तेरे आकार।
३. सचे तेरे करणे सरब बीचार।
४. सचा तेरा अमरु सचा दीबाणु।
५. सचा तेरा हुकमु सचा फुरमाणु।
६. सचा तेरा करमु सचा नीसाणु।
७. सचे तुधु आखहि लख करोड़ि।
८. सचै सभि ताणि सचै सभि जोरि।
९. सची तेरी सिफति सची सालाह।
१०. सची तेरी कुदरति सचे पातिसाह।
११. नानक सचु धिआइनि सचु।
१२. जो मरि जंमे सु कचु निकचु। १।

पद-अर्थ

खंड—सृष्ठि के भाग; **ब्रहमंड**—समस्त सृष्टि; **लोअ**—लोक; **आकार**—शारीरिक रचना; **करणे**—कार्य; **अमरु**—शासन, बादशाही; **दीबाणु**—कचहरी, राजसभा; **फुरमानु**—आदेश; **करम**—कृपा; **नीसाणु**—(प्रामाणिकता की) मुद्रा का चिह्न; **सचै**—सत्य के; **सच**—सत्य स्वरुप प्रभु को (अन्तिम दो 'तुकों' में 'सचु' शब्द प्रयुक्त हुआ है और प्रथम 'तुकों' में 'सचे' अथवा 'सचा'। इस प्रकार अर्थों में अन्तर हो गया है। प्रथम में अर्थ है 'संसार में व्याप्त सत्याएँ 'वस्तुतत्त्व)' और फिर सत्य-स्वरूप और कच्चे स्वरूप का भेद दिखलाया गया है); **कचु निकचु**—नितान्त कच्चे।

टीका

१. हे प्रभु, तुम्हारे (उत्पादित) और ब्रह्माण्ड सत हैं (वस्तुतत्त्व हैं, सत्य है, सद्भाववान्, हैं; केवल मारीचिका नहीं है)।

२. तुम्हारे (उत्पादित) लोक और आकार भी सत् हैं।

३. तुम्हारे कार्य ओर उन कार्यों के चलाने के तुम्हारे विचार भी सत हैं।

४. तुम्हारा शासन और तुम्हारी राज्यसभा (कचहरी) सत् हैं (तुम्हारे अविचाल्य नियमों के अनुसार तुम्हारी राज्यसभा में सब को ठीक-ठीक लेखा देना पड़ता है)।

५. तुम्हारा शासन और तुम्हारा आदेश सत् हैं।

६. तुम्हारी कृपा और तुम्हारी (स्वीकृति की) मुद्राएँ सत् हैं (कृपा का प्रबन्ध भी कर रखा है)।

७. तुम्हारे स्मरण करने वाले लाखों करोड़ों प्राणी सत हैं।

८. (समस्त सृष्टि) सत् प्रभु की शक्ति और उसके वल के अधीन हैं (उसके आदेश का पालन करती है)।

९. तुम्हारे गुण सत् हैं, तुम्हारी स्तुति सत् है।

१०. हे सत् अधीश्वर, तुम्हारी यह समस्त प्रकृति सत है।

११. (नानक) जो मनुष्य सत् स्वरूप प्रभु का स्मरण करते हैं वे स्वयं भी सत् स्वरूप हो जाते हैं।

१२. (परन्तु) जो (सत् स्वरुप प्रभु का स्मरण नहीं करते हैं और इस हेतु) जन्म-मरण के चक्र में वद्ध रहते हैं, वे नितान्त कच्चे हैं।

महला १

१. वडी वडिआई जा वडा नाउ।

२. वडी वडिआई जा सचु निआउ।

३. वडी वडिआई जा निहचल थाउ।

४. वडी वडिआई जाणै आलाउ।

५. वडी वडिआई बुझै सभि भाउ।

६. वडी वडिग्राई जा पुछि न दाति ।

७. वडी वडिग्राई जा ग्रापे ग्रापि ।

८. नानक कार न कथनी जाइ ।

९. कीता करणा सरब रजाइ । २ ।

पद-ग्रर्थ

सचु—नितान्त रहित, पूर्ण; **निहचल**—निश्चल; **ग्रालाउ**—वचन, ग्रालपित; **भाउ**—हृदय के भाव; **कार**—कर्म; **रचित**—खेल; **रजाइ**—-आदेश में ।

टीका

१. प्रभु की प्रशंसा महती है। क्योंकि, उसका नाम (ग्रभिव्यन्जित जगत्) महान् है (जेता कीग्रा तेता नाउं)।

२. प्रभु की प्रशसा महती है। क्योंकि, उसका न्याय सत्य (पूर्ण) है।

३. प्रभु की प्रशंसा महती है। क्योंकि उसका ग्रासन अविचाल्य है (उसका शासन नित्य प्रवर्तमान रहता है)।

४. प्रभु की प्रशंसा महती है। क्योंकि, वह प्रत्येक के हृदय का कथित भाव जानता है।

५. प्रभु की प्रशंसा महती है। क्योंकि, वह प्रत्येक प्राणी के हृदय के भाव को जानता है।

६. प्रभु की प्रशंसा महती है। क्योंकि, वह किसी को पूछकर देन नहीं देता।

७. प्रभु की प्रशंसा महती है। क्योंकि, वह अपने सदृश आप ही हैं।

८. (नानक) उसके रचित खेल का वर्णन नहीं हो सकता।

९. उसके द्वारा किया हुग्रा समस्त कार्य (जगत्) उसके आदेश के ग्रनुसार चल रहा है। २।

महला २

१. इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु ।

२. इकन्हा हुकमि समाइ लए इकन्हा हुकमे करे विणासु ।
३. इकन्हा भाणै कढि लए इकन्हा माइआ विचि निवासु ।
४. एव भि आखि न जापई जि किसै आणे रासि ।
५. नानक गुरमुखि जाणीऐ जाकउ आपि करे परगासु । ३ ।

पउड़ी २

१. नानक जीअ उपाइ कै लिखि नावै धरमु बहालिआ ।
२. ओथै सचे ही सचि निबड़ै चुणि वखि कढे जजमालिआ ।
३. थाउ न पाइनि कूड़िआर मुह कालै दोजकि चालिआ ।
४. तेरै नाइ रते से जिणि गए हारि गए सि ठगण वालिआ ।
५. लिखि नावै धरमु बहालिआ । २ ।

पद-अर्थ

उपाइकै—उत्पन्न करके; **नावै**—हिसाब, कर्मों का लेख; **धरमु**—धर्म का राजा; **निबड़ै**—निपटता है, पहुँच पाता है, स्वीकृत होता है; **जजमालिआ**—मिथ्याचारी, मिथ्याभाषी, कुकर्मी; **थाउ न पाइनि**—स्थान नहीं मिलेगा; **मुह काले**—अपमानित; **दोज़कि**—नरक को; **जिणि**—जीत गए; **ठगण वालिआ**—ठग का कर्म करने वाले ।

टीका

१. (नानक) प्रभु ने प्राणियों को उत्पन्न करके उन पर धर्म स्थापित कर दिया है जिससे वह उनके किए हुए कार्यों का लेखा लिखता रहे ।
२. उस धर्मराज की कचहरी में सत्यपरायण ही (निभते हैं क्योंकि वहाँ) प्रत्येक प्राणी सत्य के आश्रय से पहुँच पाता है। वहाँ मिथ्याभा-षियों (नीच वृत्ति वालों) को चुन कर पृथक् कर दिया जाता है ।
३. उसकी कचहरी में मिथ्याचारियों को स्थान नहीं मिलता (प्रत्युत) उनका अपमान होता है और उन्हें नरकों की ओर धकेला जाता है ।

४. हे प्रभु, जो मनुष्य तुम्हारे नाम में रंगे होते हैं वे जीवन के खेल में जीत जाते हैं और प्रवंचक हार जाते हैं।

५. प्रभु ने जीवों के सिर पर धर्मराज नियुक्त कर रखा है जिससे वह उनके द्वारा किए हुए कर्मों का लेखा लिखता रहे (संस्कारों के रूप में जीव के कर्म उसके आत्मा के भीतर लिखे जाते हैं)।२।

(३)

१. **विसमादु नाद विसमादु वेद।**
२. **विसमादु जीअ विसमादु भेद।**
३. **विसमादु रूप विसमादु रंग।**
४. **विसमादु नागे फिरहि जंत।**
५. **विसमादु पउणु विसमादु पाणी।**
६. **विसमादु अगनी खेडहि विडाणी।**
७. **विसमादु धरती विसमादु खाणी।**
८. **विसमादु सादि लगहि पराणी।**
९. **विसमादु संजोगु विसमादु विजोगु।**
१०. **विसमादु भुख विसमादु भोगु।**
११. **विसमादु सिफति विसमादु सालाह।**
१२. **विसमादु उझड़ विससादु राह।**
१३. **विसमादु नेड़ै विसमादु दूरि।**
१४. **विसमादु देखै हाजरा हजूरि।**
१५. **वेखि विडाणु रहिआ विसमादु।**
१६. **नानक बुझणु पूरै भागि।१।**

पद-अर्थ

विसमादु—आश्चर्यजनक अवस्था; **नाद**—राग, आवाज; **अगनी**—अग्नियाँ (बडवानल, जठराग्नि, दावानल, क्रोधाग्नि, चिन्ताग्नि आदि); **खाणी**—उत्पत्ति के स्रोत (अण्डज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज्ज); **सादि**—

स्वाद में; **संजोगु**—मेल का नियम; **वियोगु**— वियोग का नियम; **उभड़** — कुमार्ग; **विडाणु**—आश्चर्यपूर्ण खेल ।

टीका

१. (यह देख कर मनुष्य विस्मय-विमुग्ध हो जाता है) आश्चर्य होता है कि कितने नाद हैं और कितने धर्म-ग्रन्थ (ज्ञान के भाण्डागार) हैं ।

२. विस्मय (आश्चर्य) छा जाता है कि कितने ही जीव हैं और उनके कितने ही पारस्परिक भेद है ।

३. विस्मय (आश्चर्य) छा जाता है कि जीवों के अनन्त रूप और रंग हैं ।

४. विस्मय (आश्चर्य) छा जाता है कि कितने जीव जन्तु नग्न ही फिरते हैं ।

५. जल और वायु विस्मयकारक हैं ।

६. विस्मय (आश्चर्य) छा जाता है कि कितनी ही अग्नियाँ हैं जो आश्चर्यजनक खेल कर रही हैं ।

७. पृथ्वी और उत्पत्ति की खानों को देखकर विस्मय (आश्चर्य) होता है ।

८. विस्मय (आश्चर्य) छा जाता है कि जीव किन-किन आस्वादों में लग्न है ।

९. संसार में मेल (संयोग) और विछोह (वियोग) के नियम को सक्रिय देखकर विस्मय छा जाता है ।

१०. जीवों की भूख और उनकी तृप्ति के साधनों को देखकर विस्मय छा जाता है।

११. प्रभु की गुण-स्तुति होती हुई देखकर विस्मय छा जाता है ।

१२. विस्मय होता है कि कितने ही जीव कुमार्गगामी हैं और कितने ही सन्मार्गगामी हैं ।

१३. विस्मय होता है कि किनने ही प्राणी प्रभु को निकट देख लेते हैं और कितने ही उसे दूर समझते हैं ।

१४. विस्मय होता है कि अन्य कितने ही उसे सर्वत्र व्यापक देखते हैं ।

१५. इस अद्भुत खेल को देखकर विस्मय हो रहा है।

१६. परन्तु (नानक) सौभाग्य से ही इस विस्मय को समझा जा सकता है। १।

महला १

१. कुदरति दिसै कुदरति सुणीऐ कुदरति भउ सुख सारु।
२. कुदरति पाताली आकासी कुदरति सरब आकारु।
३. कुदरति वेद पुराण कतेबा कुदरति सरब वीचारु।
४. कुदरति खाणा पीणा पैन्हणु कुदरति सरब पिआरु।
५. कुदरति जाती जिनसी रंगी कुदरति जीअ जहान।
६. कुदरति नेकीआ कुदरति बदीआ कुदरति मानु अभिमानु।
७. कुदरति पउणु पाणी बैसंतरु कुदरति धरती खाकु।
८. सभ तेरी कुदरति तूं कादिरु करता पाकी नाई पाकु।
९. नानक हुकमै अंदरि वेखै वरतै ताको ताकु। २।

पद-अर्थ

कुदरति—शक्ति, शक्ति का प्रकटीकरण, शक्ति का सूचक; **आकारु**—शारीरिक रचना; **कतेबा**—मुसलमानों और ईसाइयों की धर्म-पुस्तकें; **जाती**—जातियाँ; **जिनसी**—वस्तुओं के प्रकार, नमूने; **अभिमानु**—अपमान; **बैसंतरु**—अग्नि; **धरती खाकु**—पृथ्वी की मिट्टी; **कादिरु**—प्रकृति का स्वामी; **पाकी**—पवित्र; **नाई**—प्रशंसा; **वरतै ताको ताकु**—अकेला स्वयं ही विद्यमान है।

टीका

१. जो कुछ दिखाई दे रहा है, तुम्हारी शक्ति की अभिव्यक्ति है; जो कुछ सुना जा रहा है तुम्हारी शक्ति का सूचक है; यह प्रकृति भय का भाव उत्पन्न करती है और सुखों का मूल भी है। प्रकृति के अलौकिक चमत्कार कितनों के भीतर एक भय सा उत्पन्न करते हैं और वे कितनों के लिए सुख का मूल बन जाते हैं।

२. पाताल और आकाश में तुम्हारी प्रकृति प्रकट हो रही है। यह समस्त दृश्यमान जगत् तुम्हारी ही प्रकृति है।

३. वेद, पुराण, पुस्तकें और सम्पूर्ण चिन्तन तुम्हारी ही प्रकृति (के चमत्कार) हैं।

४. खान, पान और परिधान यह समस्त तुम्हारी प्रकृति है। जीवों के भीतर व्याप्त समस्त प्रेम तुम्हारी प्रकृति है।

५. जातियों, वस्तुओं रंगों में और संसार के जीवों में तुम्हारी प्रकृति प्रकट हो रही है।

६. जीवों में कहीं उत्तमता और अधमता के भाव, कहीं मान और अपमान के भाव तुम्हारी ही प्रकृति के भिन्न-भिन्न रंग हैं।

७. प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही वायु, जल, अग्नि और भूमि की धूलि सब तुम्हारी ही प्रकृति को प्रकट करते हैं।

८. हे प्रभु, यह समस्त तुम्हारी शक्ति सक्रिय है। तुम इसके स्वामी हो; इसके स्रष्टा हो; तुम्हारी प्रशंसा पवित्र है; क्योंकि, तुम स्वयं पवित्र हो।

९. (नानक) प्रभु समस्त रचना को अपने शासन के भीतर रखकर इसकी रक्षा करता है और (सर्वत्र) स्वयं ही विद्यमान है। २।

पउड़ी ३

१. आपीनै भोग भोगि कै होइ भसमड़ि भउरु सिधाइआ।
२. वडा होआ दुनीदारु गलि संगलु घति चलाइआ।
३. अगै करणी कीरति वाचीऐ बहि लेखा करि समझाइआ।
४. थाउ न होवी पउदीई हुणि सुणीऐ किआ रूआइआ।
५. मनि अंधै जनमु गवाइआ। ३।

पद-अर्थ

आपीनै—स्वयं ही इस जीव ने (अपनी दुर्दशा की है); **भोग भोगि कै**—ऐश (ऐश्वर्य), रिश्वत (उत्कोच) के भोग भोगकर; **भसमड़ि**—भस्म की ढेरी; **भउरु**—अर्थात् आत्मा, जीवात्मा; **सिधाइआ**—चला गया;

वडा होआ—मर गया; **दुनीदार**—माया-मग्न; **कीरति**—गुण-स्तुति; **वाचीऐ**—जाँचे पड़ताले जाते हैं; **थाउ**—स्थान नहीं मिलता (सिर छिपाने के लिए); **पउदीई**—जूतियों की मार पड़ते हुए; **रूआइआ**—रोने की ।

टीका

१. इस माया-ग्रस्त जीव ने स्वयं ऐश-आराम रूपी रिश्वत के भोग भोगकर (अन्त में) (अपनी दुर्दशा की है) । इस का शरीर भस्म की ढेरी हो जाता है, आत्मा (जीवात्मा) शरीर त्यागकर चला जाता है ।

२. साँसारिक (माया-मग्न) मरता है और उसके गले में शृंखला डालकर वह आगे लाया जाता है ।

३. आगे धर्मराज की सभा में उसके द्वारा किए कर्मों का लेखा देखा जाता है और सारा हिसाब उसे भले प्रकार समझाया जाता है ।

४. (फिर) जूतियों की मार पड़ते हुए उसे सिर छिपाने के लिए कहीं स्थान नहीं मिलता । उसके रोने-पीटने की कोई सुनाई नहीं होती ।

५. अन्धे मन (मूर्ख जीव) ने अपना जन्म व्यर्थ नष्ट कर लिया है । ३ ।

(४)

सलोकु महला १

१. भै विचि पवणु वहै सदवाउ ।
२. भै विचि चलहि लख दरीआउ ।
३. भै विचि अगनि कढै वेगारि ।
४. भै विचि धरती दबी भारि ।
५. भै विचि इंदु फिरै सिर भारि ।
६. भै विचि राजा धरम दुआरु ।
७. भै विचि सूरजु भै विचि चंदु ।
८. कोह करोड़ी चलत न अंतु ।
९. भै विचि सिध बुध सुर नाथ ।

१०. भै विचि आडाणै आकास ।
११. भै विचि जोध महाबल सूर ।
१२. भै विचि आवहि जावहि पूर ।
१३. सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेखु ।
१४. नानक निरभउ निरंकारु सचु एकु । १ ।

पद-अर्थ

भै—(प्रभु के) भय; **सदवाउ**—शाश्वत, सदा; **दबी भारि**—बोझ के नीचे दबी हुई है; **इंदु**—राजा इन्द्र, मेध; **आडाणै**—अड़े रहते हैं, तने रहते हैं; **सूर**—शूर, वीर; **पूर**—समूह, बहुत जीव; **सगलिआ**—सभी के ।

टीका

१. वायु सदा प्रभु के भय से चलती है ।
२. लाखों नदियाँ उसके भय से प्रवावित हैं ।
३. अग्नि अपने लिए नियुक्त कार्यों को उसके भय से कर रही है ।
४. पृथ्वी उसके भयवश ही भार के नीचे दबी हुई है ।
५. राजा इन्द्र (मेध) उसके भयवश ही सिर पर भार लिए फिरता हैं ।
६. धर्मराज की सभा भी उसके भयवश ही चलती है ।
७. सूर्य और चन्द्रमा उसके भयवश हैं,—
८. जो करोड़ों कोस चलते हैं और (उनके मार्ग का) अन्त नहीं है ।
९. सिद्ध, ज्ञानी, देवता और योगी उसके भयवश हैं ।
१०. आकाश उसके भय में तने रहते हैं ।
११. योद्धा और महाबली शूरवीर उसके भयवश हैं ।
१२. जीवों के समूह उसके भय में जन्मते मरते हैं ।
१३. सभी जीवों के मस्तक पर प्रभु के भय का लेख लिखा हुआ है ।
१४. (नानक) केवल सत्य (सदा स्थिर रहने वाला) निराकार प्रभु ही

भय रहित है ।

महला १

१. नानक निरभउ निरंकारु होरि केते राम रवाल ।
२. केतीआ कंन्ह कहाणीआ केते बेद बीचार ।
३. केते नवहि मंगते गिड़ि मुड़ि पूरहि ताल ।
४. बाजारी बाजार महि आइ कढहि बाजार ।
५. गावहि राजे राणीआ बोलहि आल पताल ।
६. लख टकिआ के मुंदड़े लख टकिआ के हार ।
७. जितु तनि पाईअहि नानका से तन होवहि छार ।
८. गिआनु न गलीई ढूढीऐ कथना करड़ा सारु ।
९. करमि मिलै ता पाईऐ होर हिकमति हुकमु खुआरु । २ ।

पद-अर्थ

रवाल—धूलि, तुच्छ; **कंन्ह कहाणीआ**—कृष्ण की कथाएँ; **गिड़ि मुड़ि**—पुन: पुन:; **बाजारी**—रास करने वाले; **आल पताल**—धर और पाताल के यहाँ वहाँ के, प्रत्येक प्रकार के; **मुंदड़े**—बाले; **छार**—राख; **करड़ा सारु**—लोहे के समान कठोर; **हिकमति**—योजना, ढंग ।

टीका

१. (नानक) एक निराकार ईश्वर ही भयरहित हैं, अन्य अनेक राम आदि (उसके सम्मुख) तुच्छ हैं ।
२. वैसे ही कृष्ण की अनेक कथाएँ और वेदों के अनेक विचार भी तुच्छ हैं ।
३. कितने ही जन भक्तिभाव प्रकट करने के लिए याचकों के रुप में नाचते हैं ? पुन: पुन: ताल देते हैं ।
४. रास करने वाले बाजार में आकर रास करते हैं ।

५. राजाओं और रानियों की कथाएँ गा-गाकर सुनाते हैं और प्रत्येक प्रकार के श्लोक पढ़ते हैं।

६. उन्होंने लाखों रुपयों के बाले और लाखों रुपयों के हार पहने हुए हैं।

७. (नानक) वे नहीं जानते कि ये बाले और हार जिस शरीर पर पहने जाते हैं वह शरीर राख हो जाता है।

८. पहले प्रभु का शुद्ध स्वरूप बुद्धि में लाना चाहिए, उसका यथार्थ ज्ञान होना चाहिए, परन्तु प्रभु का ज्ञान बातों से प्राप्त नहीं होता—उसे वाणी से व्यक्त करना ऐसा कठिन है जैसा लोहा।

९. यदि उसकी कृपा हो तो वह मिलता है, न कोई योजना चलती है न आदेश (बल)। आगे 'पउड़ी' में बतलाया गया है कि जब कृपा होती है तब सद्गुरु मिलता है जो सत्य (ज्ञान) की बुद्धि देता है और फिर प्रभु से मिलाता है)। २।

पउड़ी ४

१. **नदरि करहि जे आपणी ता नदरी सतिगुरु पाइआ।**
२. **एहु जीउ बहुते जनम भरंमिआ ता सतिगुरि सबदु सुणाइआ।**
३. **सतिगुर जेवडु दाता को नही सभि सुणिअहु लोक सबाइआ।**
४. **सतिगुरि मिलिऐ सचु पाइआ जिन्ही विचहु आपु गवाइआ।**
५. **जिनि सचो सचु बुझाइआ। ४।**

पद-अर्थ

नदरि—कृपा; **सबाइआ**—सभी, समग्र; **जिनी**—जिन जीवों ने।

टीका

१. हे प्रभु, यदि तुम किसी जीव पर कृपा करो तो तुम्हारी कृपा से उसे सद्गुरु मिलता है।

२. यह जीव जब अनेक जन्मों में भटक चुका (तब तुम्हारी कृपा हुई), इसी को सद्गुरु ने अपना शब्द सुनाया।

३. हे समस्त जनो, सुनो, कि सद्गुरु के तुल्य कोई अन्य दाता नहीं है।
४. जिन जीवों ने अहंभाव मिटा दिया है, उन्हें सद्गुरु मिलता है और सद्गुरु के मिलने से उन्हें सत्य प्राप्त हो जाता है,—
५. गुरु सद्गुरु के मिलन से जो शुद्ध सत्य की समझ देता है। ४।

(५)

सलोकु महला १

१. घड़ीआ सभे गोपीआ पहर कंन्ह गोपाल।
२. गहणे पउणु पाणी बैसंतरु चंदु सूरजु अवतार।
३. सगली धरती मालु धनु वरतणि सरब जंजाल।
४. नानक मुसै गिआनु विहूणी खाइ गइआ जमकालु। १।

पद-अर्थ

घड़ी—चौबीस मिनट का समय; **गोपीआ**—गोपालिकाएँ, गुजरियाँ; **कंन्ह**—गोपाल कृष्ण; **जंजाल**—धंधे, झमेले; **मुसै**—लूटी जा रही है; **विहूणी**—रिक्त शून्य, विहीन।

टीका

१. (प्रभु की रासलीला ऐसे हो रही है) घड़ियाँ मानो (रास में नाचने वाली स्त्रियाँ) गोपियाँ हैं और प्रहर गोपाल कृष्ण है।
२. वायु जल और अग्नि मानो आभूषण हैं (जो गोपियों और कृष्ण ने पहने हुए हैं। और चन्द्रमा तथा सूर्य मानो अवतार हैं (जिनके स्वाँग उतारे जाते हैं)।
३. पृथ्वी की समग्र वस्तुएँ मानो नाटक की सामग्री है और संसार के समस्त धन्धे रास के भीतर होने वाली (घटनाएँ) हैं।
४. (नानक) संसार के लोग (जो इस ईश्वरीय रास को नहीं जानते) ज्ञान रहित हैं और इस कारण ठगे जा रहे हैं। इन्हें यमराज खाए जा रहा है। १।

महला १

१. बाइनि चेले नचनि गुर ।
२. पैर हलाइन्हि फेरन्हि सिर ।
३. उडि उडि रावा झाटै पाइ ।
४. वेखै लोकु हसै घरि जाइ ।
५. रोटीआ कारणि पूरहि ताल ।
६. आपु पछाड़हि धरती नालि ।
७. गावनि गोपीआ गावनि कान्ह ।
८. गावनि सीता राजे राम ।
९. निरभउ निरंकारु सचु नामु ।
१०. जा का कीआ सगल जहानु ।
११. सेवक सेवहि करमि चड़ाउ ।
१२. भिनी रैणि जिन्हा मनि चाउ ।
१३. सिखी सिखिआ गुर वीचारि ।
१४. नदरी करमि लघाए पारि ।
१५. केलू चरखा चकी चकु ।
१६. थल वारोले बहुतु अनंतु ।
१७. लाटू माधाणीआ अनगाह ।
१८. पंखी भउदीआ लैनि न साह ।
१९. सूऐ चाड़ि भवाईअहि जंत ।
२०. नानक भउदिआ गणत न अंत ।
२१. बंधन बंधि भवाए सोइ ।
२२. पइऐ किरति नचै सभु कोइ ।
२३. नचि नचि हसहि चलहि से रोइ ।
२४. उडि न जाही सिध न होहि ।
२५. नचणु कुदणु मन का चाउ ।
२६. नानक जिन्ह मनि भउ तिन्हा मनि भाउ । २ ।

पद-अर्थ

वाइनि—(बाजे) बजाते हैं; **रावा**—मिट्टी; धूलि; **झाटे**—सिर के बालों में; **पूरहि**—पूर्ण करते हैं, बजाते हैं; **पछाड़हि**—पटक कर फेंकते हैं; **करमि चड़ाउ**—शुभ कर्म द्वारा पूजा-द्रव्य देते हैं; **भिंनी रैणि**—आयु रूपी रात्रि भीगी हुई है; **थल वारोले**—मरुस्थलों के वात्याचक्र (बगूले); **अनगाह**—खलिहान में गाहने वाले अन्न-पूले जिन्हें बैल नीचे डाले अन्न के ऊपर खींचते रहते हैं; **पंखी**—पक्षी; **सूऐ**—सूले के ऊपर; **किरति**—कर्मों के अनुसार बने संस्कारों के समूह हैं; **चलहि**—चलते हैं; **भाउ**—**प्रेम** ।

टीका

१. (रासों में) शिष्य बाजे बजाते हैं, गुरु नाचते हैं ।

२. (नृत्य के समय गुरु) पैर हिलाते है, सिर घुमाते हैं ।

३. उड़-उड़ कर धूल उन के सिर के बालों पर पड़ती है ।

४. लोग (यह कौतुक) देखते हैं, हँसते हैं और वापिस घर चले जाते हैं ।

५. (रासधारी) अपनी जीविका के लिए ताली पीटते हैं ।

६. अपने आप को धड़ाम भूमि पर गिराते हैं ।

७. (रासधारी) गोपियाँ बन-बन कर गाते हैं, कृष्ण बन-बन कर गाते हैं ।

८. सीता बन कर, राम आदि राजा बन कर गाते हैं (यह सब पूजा नहीं, रोटी के उपाय हैं) ।

९. (वास्तविक पूजा क्या है ?) प्रभु निराकार है, निर्भय है, जिसका नाम सत्य है,—

१०. और समस्त संसार जिसका बनाया हुआ ।

११. उस प्रभु के सेवक उसकी ही सेवा करते हैं, शुभ कर्मों द्वारा उसे भेंट चढ़ाते है ।

१२. ऐसे सेवकों की जीवन रुपी रात्रि रस से भीगी है (आनन्द में व्यतीत होती है, जिन के हृदय में निराकार प्रभु का प्रेम है) ।

१३. गुरु-सिक्खों ने गुरु के विचार द्वारा यही शिक्षा ली है (कि पूजा

केवल प्रभु की करनी है)।

१४. निराकार प्रभु अपनी देन से उन्हें पार लगाता है।

१५. (यदि केवल नाचने कूदने, सिर फिराने या ताली पीटने से) पूजा होती हो तो कोल्हू, चर्खा, चक्की और चाक सदा चलते रहते हैं;

१६. मरुस्थलों में वायु के असंख्य झोंके भंवर बनाते हैं।

१७. लाट्ट, मथनी और अनाज गाहने वाले रस्से में बंध पूंला भी घूमता है।

१८. कई चिड़ियां उड़ती रहतीं हैं और सांस भी नहीं लेती हैं।

१९. कई जीव सूली पर चढ़ा कर घुमाए जाते हैं।

२०. (नानक) घूमने वाले जीवों का अन्त नहीं पाया जाता।

२१. (एक अन्य प्रकार का घूमना भी है) प्रभु जीवों को कर्मों के बन्धनों के अनुसार बाँधकर घुमाता है।

२२. अपने-अपने किए कर्मों के संस्कारों के अनुसार प्रत्येक प्राणी नाच रहा है।

२३. जो यहाँ नाच-नाच कर हँसते हैं वे अन्त समय यहाँ से रोते जाते हैं।

२४. (उन्हें कर्मों के फल भोगने पड़ते हैं। नाचने, कूदने और सरल साधनों से वे कर्म-फल से बच नहीं सकते) वे उड़ कर कहीं जा नहीं सकते, न सिद्ध हो जाते हैं (कि चमत्कार के किसी बल से कर्मों से मुक्ति प्राप्त कर सकें)।

२५. नाचना, कूदना केवल मन का चाव है।

२६. (नानक) जिनके मन में प्रभु का भय है उनके मन में ही प्रभु का प्रेम उत्पन्न होता है। २।

पउड़ी ५

१. नाउ तेरा निरंकारु है नाइ लइऐ नरकि न जाईऐ।

२. जीउ पिंडु सभु तिसदा दे खाजै आखि गवाईऐ।

३. जे लोड़हि चंगा आपणा करि पुंनहु नीचु सदाईऐ।

४. जे जरवाणा परहरै जरु वेस करेदी आईऐ।

५. को रहै न भरीऐ पाईऐ । ५ ।

पद-अर्थ

जीउ पिंडु—प्राण और शरीर; **जरवाणा**—श्वेत वेश वृद्धावस्था; **परहरै**—दूर हटाए, टाल दें; **भरीऐ पाईऐ**—पाई[1] भरी जाती है, श्वास पूरे हो जाते हैं।

टीका

१. हे प्रभु ! तुम्हारा नाम निराकार है। यदि तुम्हारे नाम का स्मरण किया जाए तो नरक-गमन नहीं होता है।

२. प्राण और शरीर सब कुछ उस प्रभु का दिया हुआ है। जो वह देता है जीव खाता है, (इसके विरुद्ध कुछ और कहना) कह कर खोना है (व्यर्थ है)।

३. हे जीव ! यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो सत्कर्म कर और नम्र रह (क्योंकि जीवन समाप्त होता जा रहा है)।

४. यदि कोई बृद्धावस्था को दूर रखने का यत्न करे तो भी वह कई रूप धारण करके आ जाती है;—

५. और जब आयु की पाई भरी जाती है (श्वास पूरे हो जाते हैं) तब कोई भी यहां रह नहीं सकता है। ५।

(६)

सलोक महला १

१. मुसलमाना सिफ़ति सरीअत पड़ि पड़ि करहि बीचारु ।

२. बंदे से जि पवहि बिचि बंदी वेखण कउ दीदारु ।

३. हिन्दू सालाही सालाहनि दरसनि रूपि अपारु ।

४. तीरथि नावहि अरचा पूजा अगर वासु बहकारु ।

---

१. 'पाई' एक प्राचीन परिमाण का नाम है। इसे ही पड़ोप या पड़ोपा कहते हैं।

५. जोगी-सुंनि धिआवन्हि जेते अलख नामु करतारु ।

६. सूखम मूरति नामु निरंजन काइआ का आकारु ।

७. सतीआ मनि संतोखु उपजै देणै कै वीचारि ।

८. दे दे मंगहि सहसा गूणा सोभ करे संसारु ।

९. चोरा जारा तै कुड़िआरा खाराबा वेकार ।

१०. इकि होदा खाइ चलहि ऐथाउ तिना भि काई कार ।

११. जलि थलि जीआ पुरीआ लोआ आकारा आकार ।

१२. ओइ जि आखहि सु तूं है जाणहि तिना भि तेरी सार ।

१३. नानक भगता भुख सलाहणु सचु नामु आधारु ।

१४. सदा अनंदि रहहि दिनु राती गुणवंतिआ पाछारु । १ ।

पद-अर्थ

मुसलमाना—मुसलमानों को; **सरीअति**—शरह, धर्मशास्त्र; **बन्दी**—पाबन्दी; **सालाही**—स्तुति योग्य; **अरचा**—पूजा; **अगर वासु**—चन्दन की सुगन्ध; **बहकारु**—महक, सुगन्ध; **सुंनि**—निर्विकल्प समाधि में; **सूखम मूरति**—ब्रह्म का वह रूप जो इन्द्रियों का विषय नहीं; **सतीआ**—दान करने वाले; **जारा**—व्यभिचारी लोग; **वेकार**—विकारी लोग; **होदा**—प्राप्त वस्तु; **पाछारु**—पांवों की धूल ।

टीका

१. (यहां गुरु जी मनुष्यों के जीवन पर सामूहिक दृष्टिपात करके जीवों को अपने-अपने विचार और रुचि के अनुसार प्रभु की आज्ञा में अपना-जीवन-उद्देश्य पूर्ण करते देखते हैं और इसका याथार्थिक चित्र अंकित करके दिखाते हैं) मुसलमानों को धर्मशास्त्र की प्रशंसा प्रिय लगती है; वे धर्मशास्त्र को पढ़-पढ़ कर विचार करते हैं ।

२. (और इस विश्वास पर पहुँचते हैं कि) प्रभु के मानव (सेवक) वे हैं जो उसका दर्शन प्राप्त करने के लिए धर्मशास्त्र के नियमों के बन्धन में पड़ते हैं (वे समझते हैं कि अपने जीवन को पहले धर्म-शास्त्र के अनुसार अनुशासन में ढालना आवश्यक है, ईश्वर के

दर्शन तत्पश्चात् होते है) ।

३. हिन्दु लोग स्तोतव्य प्रभु की स्तुति करते हैं, उसके दर्शनों के लिए उस अनन्त को आकार में (बांधते हैं); क्योंकि, ध्यान जोड़ने के लिए मन कोई स्थूल रूप चाहता है ।

४. वे तीर्थों पर जाकर स्नान करते हैं और चन्दन की सुगन्ध और अन्य सुगन्धित द्रव्यों से मूर्तियों की अर्चना से पूजा करते हैं ।

५. योगी लोग निर्विकल्प समाधि में लीन होकर प्रभु का ध्यान करते हैं, भगवान् को अलक्ष्य का नाम देकर उसका स्मरण करते हैं ।

६. (वे उसे) सूक्ष्म-स्वरूप तथा इन्द्रियों के द्वारा आग्राह्य मानते हैं, उसे निरंजन का नाम देते हैं (माया के प्रभाव से ऊपर समझते हैं), परन्तु ध्यान जोड़ने के लिए उसे कोई शारीरिक रूप देते हैं (क्योंकि मन ध्यान जोड़ने के लिए कोई स्थूल रूप चाहता है) ।

७. (किसी अभाव-ग्रस्त को) दान देने का विचार करके दानियों के मन में सन्तोष उत्पन्न होता है ।

८. वे दान देकर उस दान से सहस्रों गुणा अधिक (किसी न किसी रूप में) प्रभु से मांगते हैं और (यह भी चाहते हैं कि) लोग उनकी प्रशंसा करें ।

९. (दूसरी ओर संसार में) असंख्य अन्य व्यभिचारी, मिथ्याभाषी नीच और विकारी लोग भी है,—

१०. जो (विकारों में) पीछे की हुई किसी कमाई को समाप्त करके (यहां से) जाते हैं, उन्हें उस प्रभु ने ही (अपनी ईश्वरीय व्यवस्था में कोई ऐसा) कार्य सौंप दिया है (उसकी आज्ञा के बाहर कोई भी नहीं; नीच भी वही कार्य करते हैं जो उस प्रभु को इष्ट है) ।

११. जल: पृथ्वी, पुरियों, लोकों और ब्रह्माण्डों के जीव,—

१२. जो कुछ कहते हैं, वह (हे प्रभु) तुम ही जानते हो। उनकी रक्षा भी तुम ही करते हो ।

१३. (नानक) भक्तों को प्रभु की स्तुति करने की भूख होती है। सत्य नाम उनका आश्रय है ।

१४. वे शाश्वत आनन्द में रहते हैं और अपने आपको गुणवानों के चरणों की धूलि समझते हैं । १ ।

महला १

१. मिटी मुसलमान की पेड़ै पई कुम्हिआर ।
२. घड़ि भांडे इटा कीआ जलदी करे पुकार ।
३. जलि जलि रोवै बपुड़ी झड़ि झड़ि पवहि अंगिआरु ।
४. नानक जिनि करतै कारणु कीआ सो जाणै करतारु । २ ।

पद-अर्थ

पेड़ै—वश में; **कीआ**—बनाई हुई वस्तुओं को; **जलदी**—जलती हुई; **बपुड़ी**—बेचारी ।

टीका

१. (मृत्यु के पश्चात् जीव का क्या बनता है ? इस का उत्तर हरि के पास है जिसने यह जगत-खेल बनाया है। मुसलमानों के एक विश्वास के उदाहरण से यह तथ्य समझाया गया है।) कब्रिस्तान की मिट्टी कुम्हार के वश में हो जाती है ।
२. वह उस मिट्टी के बर्तन तथा ईटें बनाता है और (उन्हें आवे में रख देता है) जहाँ वह मिट्टी जलती हुई मानों पुकार करती है ।
३. विचारी मिट्टी जलती है और रोती है और उसमें से अंगारे निकलते हैं ।
४. (नानक) जिस स्रष्टा ने जीव की रचना की है, वही जानता है (कि इस मिट्टी के स्वामी, आत्मा, का क्या बनेगा । यदि यह बात ठीक हो कि दाबने के बाद आत्मा स्वर्ग में जाती है तो मुसलमान की मिट्टी भी कुम्हार के हाथ से आवे की आग में पड़ सकती है। दब कर अथवा जल कर कैसे भी हो शरीर तो मिट्टी का ढेर हो जाना है। अपने कर्मों के अनुसार आत्मा को नरक अथवा स्वर्ग मिलता है)। ३ ।

पउड़ी ६

१. बिनु सतिगुर किनै न पाइओ बिनु सतिगुर किनै न पाइआ ।

२. सतिगुर विचि आपु रखिओनु करि परगटु आखि सुणाइआ ।
३. सतिगुर मिलिऐ सदा मुकतु है जिनि विचहु मोहु चुकाइआ ।
४. उतमु एहु बीचारु है जिनि सचे सिउ चितु लाइआ ।
५. जग जीवनु दाता पाइआ । ६ ।

पद-अर्थ

रखिओनु—रख दिया है ।

टीका

१. किसी जीव को सद्गुरु की शरण के) बिना प्रभु नहीं मिला, (यह बात निश्चित है कि) वह गुरु के बिना किसी को कभी नही मिला ।
२. सद्गुरु में उस प्रभु ने अपने आपको प्रतिष्ठित किया है—यह बात मैंने स्पष्ट सुना दी है ।
३. जो मनुष्य ऐसे सद्गुरु को प्राप्त कर लेता है जिस ने माया का मोह नष्ट कर दिया है, वह सदा के लिए मुक्त हो जाता है ।
४. समस्त विचारों में श्रेष्ठ विचार यह है कि जिसने सत्य प्रभु में (गुरु के उपदेश से) सुरति जोड़ी है,—
५. उसे जगत् का जीवनदाता 'प्रभु' मिल जाता है । ६ ।

(७)

सलोकु महला १

१. हउ विचि आइआ हउ विचि गइआ ।
२. हउ विचि जंमिआ हउ विचि मुआ ।
३. हउ विचि दिता हउ विचि लइआ ।
४. हउ विचि खटिआ हउ विचि गइआ ।
५. हउ विचि सचिआरु कूड़िआरु ।
६. हउ विचि पाप पुंन वीचारु ।

७. हउ विचि नरकि सुरगि अवतार।
८. हउ विचि हसै हउ विचि रोवै।
९. हउ विचि भरीऐ हउ विचि धोवै।
१०. हउ विचि जाती जिनसी खोवै।
११. हउ विचि मूरखु हउ विचि सिआणा।
१२. मोख मुकति की सार न जाणा।
१३. हउ विचि माइआ हउ विचि छाइआ।
१४. हउमै करि करि जंत उपाइआ।
१५. हउमै बूझै ता दर सूझै।
१६. गिआन विहूणा कथि कथि लूझै।
१७. नानक हुकमी लिखीऐ लेखु।
१८. जेहा वेखहि तेहा वेखु। १।

पद-अर्थ

अवतार—जन्म लेता (पड़ता) है; **जाती जिनसी**—जाति और श्रेणी; **सार**—सुधि, खबर; **छाइआ**—माया की छाया, भ्रम; **बूझै**—समझे; **लूझै**—परिदेवन करता है, मन में रोता झींकता है, कुढ़ता है।

टीका

१. अहन्ता के साथ जीव संसार में आता है और अहन्ता के साथ यहाँ से चला जाता है।
२. अहन्ता में ही वह जन्म लेता है, अहन्ता में ही मरता है।
३. अहन्ता में भरा वह किसी को देता है, अहन्ता में भरा किसी से लेता है।
४. अहन्ता में भरा वह कमाई करता है, अहन्ता में भरा कमाई गँवा देता है।
५. अहन्ता में भरा ही वह सदाचार और अहन्ता में भरा ही दुराचार बनाता है।

६. अहन्ता में भरा ही वह (अपने आप को ज्ञानी प्रकट करके) पाप-पुण्य का विचार करता है।

७. 'मैं', 'मैं' करता हुआ वह नरक अथवा स्वर्ग में जन्म लेता है।

८. अहन्ता में भरा ही वह कभी हँसता है, कभी रोता है।

९. अहन्ता में भरा ही वह पापों के मल से लिप्त होता है और अहन्ता में भरा ही इस मल को धोता है।

१०. अहन्ता में भरा ही वह जाति, श्रेणी (के भ्रम) में पढ़कर (अपना आप) गँवा देता है।

११. अहन्ता में भरा ही वह कभी मूर्ख होता है और कभी बुद्धिमान् होता है।

१२. अहन्ता में भरा रहने से इसे मुक्ति का बोध नहीं होता है।

१३. अहन्ता में रहने के कारण ही वह माया के प्रभाव को मानता है, और अहन्ता में भरा होने से ही भ्रमों में रहता है।

१४. अहन्त्व करने से (जीव) जन्म धारण करता है।

१५. यदि इसे अहन्त्व का ज्ञान हो जाए तो इसे प्रभु का द्वार मिल जाए।

१६. इस ज्ञान के बिना वह केवल बातें करके दुःखी होता रहता है।

१७. परन्तु (नानक) इस अहन्त्व का लेख भी प्रभु के आदेश के अनुसार ही लिखा जाता है ('हउमै एहो हुकमु है')।

१८. जिस प्रकार तू आदेश को देखता हैं उसी प्रकार तू इस लेख को देख ले (जितना स्पष्ट तूने आदेश को पहचाना है, उतना स्पष्ट तेरा व्यक्तित्व बना है 'हउमै दीरघु रोगु है दारु भी इसु माहि।')। १।

महला २

१. **हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि।**

२. **हउमै एह बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि।**

३. **हउमै किथहु उपजै कितु संजमि इह जाइ।**

४. **हउमै एहो हुकमु है पइऐ किरति फिराहि।**

५. हउमै दीरघ रोगु है दारु भी इसु माहि ।
६. किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबदु कमाहि ।
७. नानक कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि । २ ।

पउड़ी ७

१. सेव कीती संतोखीईं जिन्ही सचो सचु धिआइआ ।
२. ओन्ही मंदे पैरु न रखिओ करि सुक्रितु धरमु कमाइआ ।
३. ओन्ही दुनीआ तोड़े बंधना अंनु पाणी थोड़ा खाइआ ।
४. तूं बखसीसी अगला नित देवहि चड़हि सवाइआ ।
५. वडिआई वडा पाइआ । ७ ।

पद-अर्थ

संतोखीईं—सन्तोखी मनुष्यों ने; **सुक्रितु**—शुभ कर्म; **अगला**—बहुत; **सवाइआ**—और अधिक; **वडिआई**—प्रशंसा करते हुए, स्तुति द्वारा ।

टीका

१. (अहन्त्व से मुक्ति पाने का साधन सेवा है, परन्तु) सेवा सन्तोषी मनुष्य कर सकते हैं जिन्होंने केवल सत्य प्रभु की उपासना की है ।
२. वे अशुभ कर्मों में पैर नहीं रखते, वे शुभ कर्म करके अपना धर्म पालन करते हैं ।
३. उन्होंने माया के बन्धन तोड़ दिए हैं, वे (केवल शारीरिक निर्वाह के लिए) थोड़ा खाते-पीते हैं ।
४. हे प्रभु ! तुम अपार कृपा करने वाले हो । तुम सदा देते हो और अधिक देते हो ।
५. स्तुति के बल से संतोषी जीवों ने महान् प्रभु को प्राप्त किया है । ७ ।

(८)

सलोक महला १

१. पुरखां बिरखां तीरथां तटां मेघां खेतांह ।

२. दीपां लोआं मंडलां खंडां वरभंडाह ।
३. अंडज जेरज उतभुजां खाणी सेतजांह ।
४. सो मिति जाणं नानका सरां मेरां जंताह ।
५. नानक जंत उपाइ के संभाले सभनाह ।
६. जिनि करतै करणा कीआ चिता भि करणी ताह ।
७. सो करता चिता करे जिनि उपाइआ जगु ।
८. तिसु जोहारी सुआसति तिसु तिसु दीवाणु अभगु ।
९. नानक सचे नाम बिनु किआ टिका किआ तगु । १ ।

पद-अर्थ

बिरखां—वृक्षों; **तटां**—नदियों के किनारे; **मेघां**—बादलों; **वरभंडाह**—ब्रह्माण्डों; **अंडज**—अंडे से उत्पन्न जीव; **उतभुजां**—पृथ्वी से उगने वाले वनस्पति; **सेतजाह**—(स्वेदज)पसीने से उत्पन्न जीव; **मिति**—माप, परिमाण; **सरा**—समुद्रों; **मेरा**—पर्वतों; **ताह**—उसने; **जोहारी**—प्रणाम; **सुअसति**—कल्याण हो, जय हो; **दीवाणु**—अर्थात् आश्रय; **अभगु**—न टूटने वाली; **तगु**—अर्थात् यज्ञोपवीत् ।

टीका

१. मनुष्यों, वृक्षों, तीर्थों, नदियों, मेघों, खेतों, —
२. द्वीपों, लोकों, मण्डलों, ब्रह्माण्डों,—
३. अण्डज, जरायुज, उद्भिज्ज, स्वेदज जीवों,—
४. समुद्रों और पर्वतों पर रहने वाले जीवों—इन समस्त की गणना की इयत्ता केवल प्रभु आप ही जानता है ।
५. (नानक) वह समस्त जीव उत्पन्न करके आप उनकी संभाल करता करता है ।
६. जिस स्रष्टा प्रभु ने समस्त सृष्टि बनाई है, उसी को इसके पालन चिन्ता है ।
७. उस स्रष्टा को ही, जिसने जगत् उत्पन्न किया है, उसके पालन की

चिन्ना रहती है ।

८. मैं उसे प्रणाम करता हूँ; उसे स्वस्ति; उसका आश्रय अटल है ।

६. (नानक) सत्य प्रभु के नाम के स्मरण के बिना यह तिलक, यज्ञोपवीत आदि धार्मिक चिह्न किस प्रयोजन के हैं ? । १ ।

महला १

१. लख नेकीआ चंगिआईआ लख पुंना परवाणु ।
२. लख तप उपरि तीरथां सहज जोग बेबाण ।
३. लख सूरतण संगराम रण महि छुटहि पराण ।
४. लख सुरती लख गिआन धिआन पड़ीअहि पाठ पुराण ।
५. जिनि करतै करणा कीआ लिखिआ आवण जाणु ।
६. नानक मती मिथिआ करमु सचा नीसाणु । २ ।

पद-अर्थ

पुंना परवाणु—स्वीकृत समझे गए, पुण्य; **बेबाण**—जंगलों में; **सूरतण**—युद्धों में वीरता; **छुटहि पराण**—प्राण निकल जाएं; **सुरती**—श्रुतियों के, वेदों के; **मिथिआ**—व्यर्थ; **करमु**—कृपा; **नीसाणु**—प्रमाण-चिह्न ।

टीका

१. लाखों शुभ कर्म तथा अन्य सत् कार्य किए जाएं, लाखों प्रसिद्ध पुण्य कर्म किए जाएं;—

२. लाखों तीर्थों पर जाकर तपश्चरण किया जाए और वनों में (योगियों के मत के अनुसार सहज योग किया जाए);—

३. युद्ध में वीरता के लाखों पराक्रम दिखाए जाएँ, और युद्ध में ही प्राण दे दिए जाएँ;—

४. श्रुतियों के लाखों पाठ किए जाएँ, लाखों ज्ञान-चर्चाएं की जाएं, लाखों ध्यान धरे जाएं और पुराणों के लाखों पाठ किए जाएँ;—

५. (परन्तु यदि नाम नहीं तो इन सब का कुछ भी फल नहीं) उस स्रष्टा ने यह सृष्टि बनाई है; जन्म-मरण निश्चित किया हुआ है।

६. (नानक उपर्युक्त) सब चतुराइयां (जन्म-मरण) से मुक्ति दिलाने के लिए निष्फल हैं। उसकी कृपा ही (हरि की स्वीकृति के लिए वास्तविक प्रमाण-पत्र हैं। २।

पउड़ी—८

१. साचा साहिबु एक तूं जिनि सचो सचु वरताइआ।
२. जिस तूं देहि तिस मिलै सचु ता तिन्ही सचु कमाइआ।
३. सतिगुरि मिलिऐ सचु पाइआ जिन्ह कै हिरदै सचु वसाइआ।
४. मूरख सचु न जाणन्ही मनमुखी जनमु गवाइआ।
५. विचि दुनीआ काहे आइआ। ८।

टीका

१. हे प्रभु, संसार के वास्तविक स्वामी केवल तुम ही हो जिसने जगत् में सत्य वितीर्ण किया है।

२. जिसे तुम सत्य दो उसे ही मिल सकता है और फिर वह सत्य की साधना करता है।

३. सद्गुरु की शरण लेने से केवल उन्होंने सत्य पाया है, जिनके हृदय में सद्गुरु ने सत्य को भली-भांति स्थिर कर दिया है।

४. मूर्खों (मनोमुख पुरुषों) को सत्य का बोध नहीं होता; वे जन्म निष्फल गवां देते हैं।

५. उनका संसार में जन्म लेना किस लिए है ?। ८।

(९)

सलोकु महला १

१. पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ।
२. पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात।

३. पड़िअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास ।

४. पड़िऐ जेती आरजा अड़िअहि जेते सास ।

५. नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख । १ ।

पद-अर्थ

साथ—(संस्कृत शब्द 'सार्थ') (ऊँटों पर लदे हुए) काफ़िले; **खात**—(संस्कृत शब्द) गर्त, गढ़ा; **मास**—महीने; **झखणा झाख**--माथा पच्ची करना ।

टीका

१. यदि मनुष्य इतनी पुस्तकें पढ़ ले कि उन पुस्तकों से गाड़ियाँ भरी जा सकें; यदि मनुष्य की पढ़ी हुई पुस्तकों से ऊँठों के काफिले लादे जा सकें;—

२. यदि मनुष्य इतनी पुस्तकें पढ़ लें कि उनसे नाव भरी जा सके;—

२. यदि मनुष्य पढ़-पढ़ कर आयु के समस्त अर्थ बिता, यदि दे पढ़-पढ़ के वर्ष के सभी महीने बिताएँ जाएँ;—

४. यदि पढ़-पढ़ कर समस्त आयु बिताई जाए, यदि पढ़-पढ़ कर आयु के समस्त श्वास बिताए जाएँ,—

५. तो भी, हे नानक, प्रभु की सभा में केवल एक बात ही स्वीकृत होती है, (कि क्या इतना पढ़कर हम परमात्मा के निकट जा सके हैं ?); अन्यथा पुस्तकों का इतना पठन-पाठन अहंकार में की गई माथा-पच्ची है । १ ।

महला १

१. लिखि लिखि पड़िआ तेता कड़िआ ।

२. बहु तीरथ भविआ तेतो लविआ ।

३. बहु भेख कीआ देही दुखु दीआ ।

४. सहु वे जीआ अपणा कीआ ।

५. अंनु न खाइआ सादु गवाइआ ।

६. बहु दुखु पाइआ दूजा भाइआ ।

७. बसत्र न पहिरै अहिनिसि कहरै ।

८. मोनि विगूता किउ जागै गुर बिनु सूता ।

९. पग उपेताणा अपणा कीआ कमाणा ।

१०. अलु मलु खाई सिरि छाई पाई ।

११. मूरखि अंधै पति गवाई ।

१२. विणु नावै किछु थाइ न पाई ।

१३. रहै बेबाणी मड़ी मसाणी ।

१४. अंधु न जाणै फिरि पछुताणी ।

१५. सतिगुरु भेटे सो सुखु पाए ।

१६. हरि का नामु मंनि वसाए ।

१७. नानक नदरि करे सो पाए ।

१८. आस अंदेसे ते निहकेवलु हउमै सबदि जलाए । २ ।

पद-अर्थ

कड़िआ—जला हुआ; **लविआ**—बहुत बोलता है; **अहिनिसि**—दिन रात; **कहरै**—कष्ट झेलता है; **मोनि**—मौन समाधि में; **विगूता**—दुःखी हुआ; **पग उपेताणा**—पैर से नंगा; **अलु मलु**—गन्दगी; **बेबाणी**—जंगलों में; **भेटे**—मिले; नदरि—कृपा; निहकेवलु—निर्लेप, स्वतत्र ।

टीका

१. (नाम भुलाकर) कोई मनुष्य जितना अधिक लिखा पढ़ा है वह उतना ही अधिक (अहंकार में) जला है ।

२. कोई तीर्थों पर जितना अधिक घूमा है, वह उतना ही अधिक बोलता है (तीर्थों आदि की बातें बतलाए जाता है परन्तु आन्तरिक रूप से खोखला है) ।

३. किसी ने जितने अधिक वेष धारण किए हैं उसने उतना अधिक

शरीर को कष्ट ही दिया है (क्योंकि नाम के बिना धार्मिक वेष शरीर के लिए भारमात्र हैं)।

४. सो हे जीव ! (यह कष्ट तेरे अपने भ्रान्त विचारों के परिणाम हैं), अपने किए का फल भोग।

५. यदि किसी ने अन्न का त्याग कर रखा है तो उसने अपना ही (स्वाभाविक) स्वाद ही गँवा दिया है।

६. (भूखा रहकर) वह बहुत दुःख सहता है। प्रभु को छोड़कर उसे कुछ अन्य ही अच्छा लगा है।

७. यदि किसी ने वस्त्र नहीं पहने तो उसने दिन-रात अपने शरीर का कष्ट सहा है।

८. यदि कोई मौनधारी होकर (सत्य मार्ग से) भ्रष्ट हो गया है तो गुरु के बिना अज्ञान की निद्रा में सोते हुए को कौन जगाएगा ?

९. यदि कोई पैरों से नंगा (फिरता है) तो वह केवल अपने कर्मों का फल भोग रहा है (कांटे चुभेंगे और दुःखी होगा)।

१०. यदि कोई मलिन वस्तुएँ खाता है, अथवा सिर में राख डालता है,—

११. तो उस अज्ञानी, मूर्ख, ने अपनी ही प्रतिष्ठा खोई है।

१२. (स्मरणीय है कि) नाम के अतिरिक्त प्रभु की सभा में और कुछ भी स्वीकृत नहीं होता है।

१३. यदि कोई जंगलों में, अथवा श्मशानों में रहता है,—

१४. तो वह अज्ञानी है जिसे वास्तविकता का पता नहीं, वह अन्त में पछताता है।

१५. जो सद्गुरु को प्राप्त करता है उसे सुख प्राप्त होता है।—

१६. (क्योंकि) वह हरि का नाम हृदय में बसाता है।

१७. परन्तु (नानक) जिस पर प्रभु कृपा करता है उसे ही गुरु मिलता है,—

१८. वही संसार की आशा और भय से रहित होता है और अहंकार को गुरु के शब्द के बल से जलाता है। २।

पउड़ी ९

१. भगत तेरे मनि भावदे दरि सोहनि कीरति गावदे।

२. **नानक करमा बाहरे दरि ढोअ न लहन्ही धावदे ।**

३. **इकि मूलु न बुझन्हि आपणा अणहोदा आप गणाइदे ।**

४. **हउ ढाढीका नीच जाति होरि उतम जाति सदाइदे ।**

५. **तिन मंगा जि तुझै धिआइदे । ९ ।**

पद-अर्थ

कीरति—यश, गुण; **बाहरे**—शून्य; **ढोआ**—आश्रय; **धावदे**—भटकते हैं; **मूलु**—मूल, तात्पर्य, वास्तविकता (ढाढी-भाट स्तुतिकारक); **ढाढीका**—छोटा सा भाट ।

टीका

१. हे प्रभु ! तुम्हें मन में अपने भक्त अच्छे लगते हैं जो तुम्हारे द्वार पर तुम्हारा यशोगान करते हुए शोभायमान हो रहे हैं ।

२. (नानक) भाग्यहीन मनुष्य भटकते फिरते हैं, उन्हें तुम्हारे द्वार पर आश्रय नहीं मिलता ।

३. कई जीव अपनी वास्तविकता को नहीं जानते हैं । वे गुणहीन होते हुए भी अपने आपको महान् कहलवाते हैं ।

४. हे प्रभु ! मैं तुम्हारे द्वार का साधारण जाति का एक भाट हूँ । अन्य लोग अपने आप को उत्तम जाति वाले कहलवाते हैं ।

५. (परन्तु) मैं उनकी संगति माँगता हूँ जो तुम्हारा नाम जपते हैं । ९ ।

(१०)

सलोक महला १

१. **कूड़ु राजा कूड़ु परजा कूड़ु सभु संसारु ।**

२. **कूड़ु मंडप कूड़ु माड़ी कूड़ु बैसणहारु ।**

३. **कूड़ु सुइना कूड़ु रुपा कूड़ु पैन्हणहारु ।**

४. **कूड़ु काइआ कूड़ु कपड़ु कूड़ु रुपु अपारु ।**

५. कूड़ु मीग्रा कूड़ु बीबी खपि होए ख्वारु ।
६. कूड़ि कूड़ै नेहु लगा विसरिआ करतारु ।
७. किसु नालि कीचै दोसती सभु जगु चलणहारु ।
८. कूड़ु मिठा कूड़ु माखिउ कूड़ु डोबे पूरु ।
९. नानकु वखाणै बेनती तुधु बाझु कूड़ो कूड़ु । १ ।

पद-अर्थ

कूड़ु—झूठ, मिथ्या; **मंडप**—ऊँचे बड़े मकान; **माड़ी**—महल, ऊँचे मकान; **बैसणहारु**—बैठने वाले; **काइआ**—शरीर; **मीग्रा**—पति; **बीबी**—पत्नी; **पूरु**—समूह, बहुत जीव; **वखाणै**—कहता है ।

टीका

१. (वे व्यक्ति, वे स्थान, वे राजमहल, वे कामकाज, वे धन तथा अन्य पदार्थ जिनसे प्रभु-प्रेम उत्पन्न नहीं होता है मिथ्या हैं । उनका फल दुःख और दोष है 'ग्रोड़क सचि रही'; 'तुधु बांझ कूड़ो कूड़ु) मिथ्या है राजा, मिथ्या है समस्त संसार ।
२. मिथ्या हैं मण्डप और महल, मिथ्या हैं उनमें बैठने वाले ।
३. मिथ्या है स्वर्ण, मिथ्या है रजत, और मिथ्या हैं स्वर्ण-रजत धारण करने वाले ।
४. मिथ्या है शरीर, मिथ्या हैं वस्त्र और मिथ्या है प्रबल सौन्दर्य ।
५. मिथ्या है पति और मिथ्या है पत्नी जो विषयों में लीन हो कर दुःखी होते हैं ।
६. मिथ्या मनुष्य का प्रेम मिथ्या के साथ है उसे स्रष्टा प्रभु विस्मृत है ।
७. (इस संसार में) किसके साथ प्रेम किया जाए ? समस्त संसार ही नश्वर है ।
८. तथापि मिथ्या मधुर लगता हैं, मधु के समान मधुर लगता है, चाहे यह मिथ्यात्व असंख्य (अनेक जीव) डुबा रहा है ।

९. नानक प्रार्थना करता है कि हे प्रभु ! तुम्हारे अतिरिक्त समस्त मिथ्या ही मिथ्या है । १ ।

महला १

१. सचु ता परु जाणीऐ जा रिदै सचा होइ ।
२. कूड़ की मलु उतरै तनु करे हछा धोइ ।
३. सचु ता परु जाणीऐ जा सचि धरे पिआरु ।
४. नाउ सुणि मनु रहसीऐ ता पाए मोखदुआरु ।
५. सचु ता परु जाणीऐ जा जुगति जाणै जीउ ।
६. धरति काइआ साधि कै विचि देइ करता बीउ ।
७. सचु ता परु जाणीऐ जा सिख सची लेइ ।
८. दइआ जाणै जीअ की किछु पुंनु दानु करेइ ।
९. सचु ता परु जाणीऐ जा आतम तीरथि करे निवासु ।
१०. सतिगुरू नो पुछि कै बहि रहै करे निवासु ।
११. सचु सभना होइ दारू पाप कढै धोइ ।
१२. नानकु वखाणै बेनती जिन सचु पलै होइ । २ ।

पद-अर्थ

रहसीऐ—प्रसन्न हो; **मोखदुआरु**—मोक्ष का द्वार, मुक्ति; **आतम तीरथि**—आत्मा रूपी तीर्थ ।

टीका

१. (मिथ्या कैसे नष्ट हो ? सत्य कैसे प्राप्त हो ?) का ज्ञान यदि सत्य प्रभु जीव के हृदय में टिक जाए तो सत्य का ज्ञान होता है ।
२. तभी मिथ्या का मल नष्ट होता है और जीव अपने मन को धोकर स्वच्छ कर देता है ।
३. यदि जीव सत्य प्रभु से प्रेम करे तो सत्य का बोध होता है ।
४. इतना प्रेम हो जाए कि प्रभु का नाम सुनकर जीव खिल पड़े, तभी वह मुक्ति को प्राप्त करेगा ।

५. यदि जीव को आध्यात्मिक जीवन की मुक्ति का पता हो तो उसे सत्य का बोध होता है।

६. शरीर रूपी पृथ्वी को भली-भांति तैयार करके उसमें उस स्रष्टा का नाम रूपी बीज बोए।

७. यदि जीव (सत्य गुरु की) सत्य शिक्षा प्राप्त करे तो उसे सत्य का ज्ञान होता है।

८. वह जीवों पर दया करनी जानता हो और कुछ पुण्यदान भी करे।

९. सत्य का ज्ञान तब होता है जब मनुष्य अपने आत्मा रूपी तीर्थ पर स्नान करे।

१०. सद्गुरु की शिक्षा लेकर आत्मा रूपी तीर्थ पर अपना ठिकाना बना कर टिका रहे।

११. सत्य समस्त रोगों का औषध है। यह पाप रूपी रोगों को धोकर मन से निकाल देता है।

१२. नानक उनके सम्मुख (सत्य के दान के लिए) प्रार्थना करता है जिनके पास सत्य होता है। २।

पउड़ी १०

१. दानु महिंडा तली खाकु जे मिलै त मसतकि लाईऐ।

२. कूड़ लालचु छडीऐ होइ इक मनि अलखु धिआईऐ।

३. फलु तेवेहो पाईऐ जेवेही कार कमाईऐ।

४. जे होवै पूरबि लिखिआ ता धूड़ि तिन्हा दी पाईऐ।

५. मति थोड़ि सेव गवाईऐ। १०।

पद-अर्थ

दानु—दान माँगता हूं; **तली खाकु**—चरणों की धूलि; **तेवेहो**—**वैसा**; **पूरबि**—पहले से, आदि से; **मति**—बुद्धि।

टीका

१. मैं चाहता हूं कि (सत्य की कमाई करने वालों की) चरण-धूलि

मुझे मिले और यदि मिले तो मैं उसे अपने मस्तक पर लगाऊँ।

२. माया-जन्य पदार्थों का यिथ्या लोभ छोड़ देना चाहिए और एकाग्रचित्त होकर उस अलक्ष्य, प्रभु, का स्मरण करना चाहिए।

३. जिस प्रकार की कोई सेवा करता है वैसा ही उसे फल प्राप्त होता है (सत्यवादियों की शरण लेकर की गई सेवा का मूल्य और है तथा अपनी बुद्धि के पीछे लगकर की गई सेवा का और)।

४. यदि पहले से भाग्य में लिखा हो तो सत्य की साधना करने वालों के चरणों की धूलि मिलती है।

५. (नहीं तो) केवल अपनी अल्पबुद्धि के आश्रय रहकर की गई सेवा नष्ट हो जाती है (व्यर्थ हो जाती है)। १०।

सलोक महला १

१. सचि कालु कूड़ु वरतिआ कलि कालख बेताल।
२. बीउ बीजि पति लै गए अब किउ उगवै दालि।
३. जे इकु होइ त उगवै रुती हू रुति होइ।
४. नानक पाहै बाहरा को रंग न सोइ।
५. भै विचि खुंबि चड़ाईऐ सरमु पाहु तनि होइ।
६. नानक भगती जे रपै कूड़ै सोइ न कोइ। १।

पद-अर्थ

सचि—सत्य के कारण, सत्य के दृष्टिकोण से; **कलि कालख**—कलियुग (के पापों की) कालिख; **दालि**—दो हिस्सों में किए हुए दाने; **पाहै**—पानी; **रपै**—रंगा जाए; **सोई**—ख़बर, समाचार का ज्ञान।

टीका

१. सत्य का अभाव हो गया है। मिथ्या सब ओर फैल गया है और कलियुग के जीव (पापों की) कालिख के कारण भूत बन गए हैं।

२. जिन्होंने (धर्म, सत्य और सत्कर्म में विश्वास रूपी) बीज बोया था, वे प्रतिष्ठा लेकर (प्रभु के घर) चले गए, परन्तु अब अश्रद्धा और

(द्वैत भाव रूपी) दाल कैसे उगे ?

३. कोई बीज तब उगता है जब वह पूर्ण (अखण्डित) हो और ऋतु भी सुखदायक हो।

४. (नानक) जैसे माया के बिना कोरे कपड़े को दिया रंग उस पर जमता नहीं (वैसे ही कोरे मन पर भी प्रभु-भक्ति का रंग नहीं जमता)।

५. (वह ऐसे जमता है) पहले कोरे मन को हरि के भय रूपी खुम पर चढ़ाना चाहिए और तन में उद्यम रूपी माया लगानी चाहिए।

६. (नानक) फिर यदि प्रेम के रंग में मन को रंगा जाए तो इस तक मिथ्या की गन्ध तक भी नहीं पहुंच सकती। १।

महला १

१. **लबु पापु दुइ राजा महता कूड़ होआ सिकदारु।**
२. **कामु नेबु सदि पुछीऐ बहि बहि करे बीचारु।**
३. **अंधी रयति गिआन विहूणी भाहि भरे मुरदारु।**
४. **गिआनी नचहि वाजे वावहि रूप करहि सीगारु।**
५. **उचे कूकहि वादा गावहि जोधा का वीचारु।**
६. **मूरख पंडित हिकमति हुजति संजै करहि पिआरु।**
७. **धरमी धरमु करहि गावावहि मंगहि मोख दुआरु।**
८. **जती सदावहि जुगति न जाणहि छडि बहहि घरबारु।**
९. **सभु को पूरा आपे होवै घटि न कोई आखै।**
१०. **पति परवाणा पिछै पाईऐ ता नानक तोलिआ जापै। २।**

पद-अर्थ

महता—वज़ीर, मन्त्री; **सिकदार**—सरदार; **नेबु**—नायब, सहायक; **भाहि भरे**—स्वामीभक्ति दिखाती है; **वादा**—झगड़ों (युद्धों) की कहानियाँ; **संजै**—धन संचय करने में; **परवाणा**—अर्थात् प्रतिष्ठा रूपी तोलने का बाट।

टीका

१. (कलियुग में) पाप मानो राजा है, लोभ उसका सचिव है और मिथ्या उसका सरदार है।

२. कामदेव सहायक है जिसे बुलाकर परामर्श किया जाता है और जो इनके साथ बैठकर विचार करता है।

३. इस राज्य की जनता (वे जीव जो इस राज्य के प्रति स्वामीभक्ति दिखाते हैं) ज्ञानहीन है जो मृतकों के समान स्वामीभक्ति दिखाती है (सिर झुकाती है, अधीनता स्वीकार करती है)।

४. (इस राज्य में ज्ञानी, ध्यानी, पंडित और धर्मात्मा भी हैं) ज्ञानी लोग (रासों में) नाचते हैं।—

५. ऊँचा कूदते हैं, युद्धों की कहानियाँ (रामायण, महाभारत, पुराण आदि) गाते हैं और शूरवीरों की बातें करते हैं (और बस वास्तविकता धर्म-साधना कोई नहीं)।

६. पंडित (पढ़े हुए) मूर्ख हैं, चालाकी करते हैं, तर्क भी उपस्थित करते हैं परन्तु धन-सचय से प्रेम करते हैं।

७. धर्मात्मा लोग धर्म का कार्य करते हैं परन्तु धर्म खो देते हैं (क्योंकि आन्तरिक रूप से वासनाओं के अधीन हैं) वे धर्म-कर्म के मूल्य के रूप में मुक्ति माँग लेते हैं (धर्म कर्म, धर्म के लिए नहीं, कामना के अधीन होकर करते हैं)।

८. कई अपने आपको यति कहलवाते हैं परन्तु यतित्व की मुक्ति नहीं जानते हैं, वैसे ही घरबार छोड़ बैठते हैं।

९. (अद्भुत क्रीड़ा है कि) प्रत्येक मनुष्य अपने आपको पूर्ण समझता है। यह कोई नहीं कहता हैं कि मुझ में कोई त्रुटि हैं।

१०. (नानक) तोल में ठीक तुला हुआ, अथवा पूर्ण तुला हुआ, वह समझा जाना चाहिए, जो प्रभु की ओर से प्राप्त प्रतिष्ठा रूपी बाट तराजू के पिछले पलड़े में डालकर तोला जाए, जो प्रभु के घर तोल में पूर्ण उतरे। २।

महला १

१. **वदी सु बजगि नानका सचा वेखै सोइ।**

२. सभनी छाला मारीश्रा करता करे सु होइ ।
३. श्रगै जाति न जोरु है अगै जीउ नवे ।
४. जिन की लेखै पति पवै चंगे सेई केई । ३ ।

पद-अर्थ

वदी—घटित, वृत्त; **वजगि**—बजती है, प्रकट होती है; **छाला मारीश्रा**—प्रयास किया; **जाति**—जातिपंक्ति श्रादि ।

टीका

१. (नानक) जो बात मनुष्य से होती है, वही वहाँ प्रकट होती है। वह सत्य प्रभु (सब के कर्मों को) देखता है।
२. समस्त जीव श्रपना बल लगाते हैं परन्तु वहाँ होता है वही जो स्रष्टा करता है ।
३. श्रागे, प्रभु के घर किसी जाति का बल नहीं चलता । श्रागे पहुँच कर तो समझो जीव नए होते हैं । (जाति पंक्ति यहीं पर रह जाती है । जीवों की पहचान उनके कर्मों से होती है) ।
४. वहाँ वे श्रच्छे हैं जिनकी प्रतिष्ठा परमात्मा के लेखे में प्रमाणित मानी जाए । ३ ।

पउड़ी ११

१. धुरि करमु जिना कउ तुधु पाइश्रा ता तिनी खसमु धिश्राइश्रा ।
२. एना जंता कै वसि किछु नाही तुधु वेकी जगतु उपाइश्रा ।
३. इकना नो तूं मेलि लैहि इकि श्रापुहु तुधु खुश्राइआ ।
४. गुर किरपा ते जाणिश्रा जिथै तुधु श्रापु बुझाइश्रा ।
५. सहजे ही सचि समाइश्रा । ११ ।

पद-श्रर्थ

धुरि—श्रादि से, श्रपनी सभा से; **वेकी**—नाना प्रकार का; **खुश्राइआ**—श्रलग किया; **सहजे**—अपने श्राप ही ।

टीका

१. हे प्रभु ! जिन पर तुमने प्रारम्भ से कृपा की हैं, उन्होंने तुम्हें, स्वामी, को स्मरण किया है ।

२. इन जीवों के अपने वश में तो कुछ नहीं है । तुमने स्वय नाना प्रकार के जीव उत्पन्न किए है ।

३. कितनों को तुम आप अपने साथ मिला लेते हो और कितनों को तुम आप ही अपने से पृथक् कर देते हो ।

४. जिस जीव ने गुरु-कृपा से तुम्हें जान लिया है, उस गुरु की कृपा से जिसके भीतर तुम ने अपने आपको प्रकट कर रखा है ।

५. वह जीव स्वत: ही सत्य के द्वारा (गुरु से सत्य प्राप्त करके) तुम में मिल जाता है । ११ ।

(१२)

सलोकु महला १

१. दुखु दारू सुखु रोगु भइआ जा सुखु तामि न होई ।
२. तूं करता करणा मै नाही जा हउ करी न होई । १ ।
३. बलिहारी कुदरति वसिआ ।
४. तेरा अंतु न जाई लखिआ । १ । रहाउ ।
५. जाति महि जोति जोति महि जाता अकल कला भरपूरि रहिआ ।
६. तूं सचा साहिबु सिफति सुआलिउ जिनि कीती सो पारि पइआ ।
७. कहु नानक करते कीआ बाता जो किछु करणा सु करि रहिआ । २ ।

पद-अर्थ

तामि—तब, वहाँ, तो; **हउ**—मैं; **जाति**—जीवों में; **जाता**—सृष्टि; **सुआलिउ**—सुन्दर ।

टीका

१. (हे प्रभु तुम्हारी रचना में तुम्हारा अटल आदेश कार्य कर रहा है और सब शुभ है, यहां कुछ अशुभ नहीं। तुम्हारी अपनी व्यवस्था में प्रत्येक वस्तु का अपना स्थान है जिसे थोथी बुद्धि समझ नहीं सकती।) दुःख भी जीवों के लिए औषध हो जाता है और सुख रोग हो जाता है। जहां सुख है वहां तुम नहीं होते (सुखी लोग तुम्हें भूल जाते हैं, और फिर समस्त रोग उत्पन्न हो जाते है)।

२. हे प्रभु, तुम संसार के कारणों का कारण=प्रधान कारण—हो, मुझसे कुछ नहीं होता, यदि मैं (अपने बल से) करता हूं तो हो नहीं सकता।

३. प्रकृति में व्याप्त हे प्रभु ! मैं तुम पर बलिहारी जाता हूं।

४. तुम्हारा अन्त प्राप्त नहीं किया जा सकता। १। विश्राम।

५ जीवों में तुम्हारी ज्योति है और तुम्हारी ज्योति में समस्त सृष्टि है। तुम सर्वत्र ऐसी कला (चातुर्य) के साथ प्रवेश करते हो कि कला की विद्यमानता दिखाई ही नहीं देती।

६. तुम वास्तविक स्वामी हो। तुम्हारी स्तुति सुन्दर है; जिसने तुम्हारी स्तुति की है वह संसार-सागर से पार हो गया है।

७. (नानक कह कि) यह समस्त लीला-क्रीड़ा उस कर्ता की है उसे जो कुछ अच्छा लगता है वह वही करता है। १।

महला २

१. जोग सबदं गिआन सबदं वेद सबदं ब्राह्मणह।
२. खत्री सबदं सूर सबदं सूद्र सबदं पराक्रितह।
३. सरब सबदं एक सबदं जे को जाणै भेउ।
४. नानकु ताका दासु है सोई निरंजन देउ। ३।

महला २

१. एक किसनं सरब देवा देव देवात आतमा।
२. आतमा बासु देवसि जेको जाणै भेउ।
३. नानक ताका दासु है सोई निरंजन देउ। ४।

महला १

१. कुंभे बधा जलु रहै जल बिनु कुंभु न होइ ।

२. गिआन का बधा मनु रहै गुर बिनु गिआनु न होइ । ५ ।

पद-अर्थ

कुंभे—घड़े का ।

टीका

१. जैसे घड़े का बँधा हुआ पानी टिका रहता है चाहे पानी के बिना घड़ा नहीं बन सकता,—

२. वैसे ज्ञान का बँधा हुआ मन टिका रहता है चाहे गुरु (के विशाल मन) के बिना ज्ञान नहीं होता । ४ ।

पउड़ी १२

१. पड़िआ होवै गुनहगारु ता ओमी साधु न मारीऐ ।

२. जेहा घाले घालणा तेवेहो नाउ पचारीऐ ।

३. ऐसी कला न खेडीऐ जितु दरगह गइआ हारीऐ ।

४. पड़िआ अतै ओमीआ वीचारु अगै वीचारीऐ ।

५. मुहि चलै सु अगै मारीऐ । १२ ।

पद-अर्थ

ओमी—निरक्षर; **तेवेहो**—वैसा; **पचारीऐ**—प्रचलित होता है, प्रसिद्ध होता है, माना जाता है; **कला**—खेल; **मुहि**—स्वेच्छाचारी ।

टीका

१. यदि कोई पढ़ा लिखा पुरुष अशुभ कर्म करने लग जाए तो इसका यह भाव नहीं कि अशिक्षितों के लिए कोई आशा नहीं. यदि असत्कर्मकारी शिक्षितों को मार पड़ती है तो सत्कर्मकारी निरक्षरों को मार नही पड़ेगी ।—

२. क्योंकि कोई जैसा कर्म करता है प्रभु की सभा में वैसा ही उसका नाम प्रसिद्ध होता है ।

३. अत: ऐसा खेल नहीं खेलना चाहिए जिससे प्रभु की सभा में बाजी हारनी पड़े ।

४. शिक्षित और अशिक्षित के कर्मों का विचार (निर्णय) आगे जाकर (प्रभु के घर) होता है ।

५. जो स्वेच्छाचारी होकर कर्म करता है उने ईश्वर के घर में दण्ड दिया जाता है । १२ ।

(१३)

सलोकु महला १

१. नानक मेरु सरीर का इकु रथु इकु रथवाहु ।
२. जुगु जुगु फेरि वटाईअहि गिआनी बुझहि ताहि ।
३. सतजुगि रथु संतोख का धरमु अगै रथवाहु ।
४. त्रेतै रथु जतै का जोरु अगै रथुवाहु ।
५. दुआपुरि रथु तपै का सतु अगै रथवाहु ।
६. कलजुगि रथु अगनि का कूड़ अगै रथवाहु । १ ।

पद-अर्थ

मेरु—माला का मुख्य दाना, तात्पर्य समस्त जीवों के शरीरों में मुख्य शरीर अर्थात् मनुष्य शरीर, मनुष्य जीवन; **रथु**—वाहन, सवारी; **रथवाहु**—रथवान्; **जुग जुग**—भिन्न भिन्न कालों में; **फेरि वटाईअहि**—फिर फिर बदलते रहे हैं; **सतु**—अर्थात् दान ।

टीका

१. (नानक) मनुष्य जीवन का एक रथ है और एक रथवान् है (जीवन की एक टेक है जिस पर चढ़कर जीवन चलता है और जीवन का एक नेता है जिसके निदेशन में जीवन चलता है।)

२. ये दोनों भिन्न-भिन्न कालों में पुन: पुन: बदलते रहे हैं; बुद्धिमान् व्यक्ति यह बात समझते हैं।

३. सत्ययुग (कृतयुग) के समय रथ सन्तोष है; आगे रथवान् धर्म है (सन्तोष में टिककर जीव धर्म के निदेशन में चलते थे)।

४. त्रेता युग में मनुष्य जीवन का रथ यतित्व (संयम) है और रथवाहक है बल (शूरता)।

५. द्वापर में रथ तप है और रथवान् है सत्य (दान)।

६. कलियुग में मनुष्य जीवन का रथ तृष्णा रूपी अग्नि है और रथवान् है असत्य (मिथ्या)। १।

महला १

१. साम कहै सेतंबर सुआमी सचमहि आछै साचि रहे।
२. सभु को सचि समावै।
३. रिगु कहै रहिआ भरपूरि।
४. राम नामु देवा महि सूरु।
५. नाइ लइऐ पराछत जाहि।
६. नानक तउ मोखंतरु पाहि।
७. जुज महि जोरि छली चंद्रावलि कान्ह क्रिसनु जादमु भइआ।
८. पारजातु गोपी लै आइआ बिंद्राबन महि रंगु कीआ।
९. कलि महि बेदु अथरबणु हूआ नाउ खुदाई अलहु भइआ।
१०. नील बसत्र ले कपड़े पहिरे तुरक पठाणी अमलु कीआ।
११. चारे वेद होए सचिआर।
१२. पड़हि गुणहि तिन चार वीचार।
१३. भाउ भगति करि नीचु सदाए।

१४. **तउ नानक मोखंतरु पाए । २ ।**

पद-अर्थ

साम—सामवेद; **सुग्रामि**—स्वामी, परमात्मा; **सेतंबर**—श्वेत रंग वाला; **सच महि ग्राछै**—(मनुष्य) सत्य में ग्राता था; **सूरु**—(सूर्य) राम का नाम); **पराछत**—पाप; **जुज**—यजुर्वेद; **जादमु**—यादवों के वंश में; **ग्रमलु**—राज्य; **चार बीचार**—चारु विचार; **मोखंतरु**—मोक्षान्तर, मोक्ष, मुक्ति ।

टीका

१. सामवेद कहता है कि (कृतयुग में) जगत् के स्वामी का नाम 'सेतंबर' माना जाता था, तब मनुष्य सत्य में ही ग्राता था ग्रौर सत्य में ही रहता था ।

२. तब समस्त जीव सत्य में ही समा जाते थे ।

३. ऋग्वेद कहता है कि (त्रेता युग में) राम जी सर्वव्यापक माने जाते थे ।—

४. राम जी का नाम सब देवताग्रों में सूर्य के समान भास्वर था ।—

५. यह नाम लेने से पाप नष्ट होते थे,—

६. ग्रौर इस प्रकार जीव मुक्ति प्राप्त करते थे ।

७. यजुर्वेद कहता है, कि (द्वापर में) स्मामी का नाम साँवला कृष्ण था, जो यादवकुल का था ग्रौर जो बल से चंद्रावली को छलकर ले ग्राया था,—

८. जो अपनी गोपी (सत्यभामा) के लिए पारिजात वृक्ष (इन्द्र के उपवन) से ले ग्राया था ग्रौर जिसने वृन्दावन में कौतुक किए थे ।

९. कलियुग में अथर्ववेद प्रधान हुआ और जगत् के स्वामी का नाम 'खुदा' ग्रथवा 'अल्लाह' प्रसिद्ध हुग्रा ।

१०. तुर्कों, पठानों का राज्य हुग्रा जिन्होंने नीले कपड़े पहने हुए थे ।

११. इस प्रकार चारों वेद अपने समय सत्य हुए हैं (समय-समय पर निदेशन देते रहे हैं),

१२. जो उन्हें पढ़ते समझते रहे हैं उन्हें सुन्दर विचार मिलते रहे हैं।
१३. (नानक) किसी समय भी, यदि कोई मनुष्य प्रेमाभक्ति के कारण विनम्र रहता है,—
१४. तो उसे मुक्ति मिलती है। २।

पउड़ी १३

१. सतिगुर विटहु वारिआ जितु मिलिऐ खसमु समालिआ।
२. जिनि करि उपदेसु गिआनु अंजनु दीआ इन्ही नेत्री जगतु निहालिआ।
३. खसमु छोडि दूजै लगे डुबे से वणजारिआ।
४. सतिगुरु है बोहिथा विरलै किनै वीचारिआ।
५. करि किरपा पारि उतारिआ। १३।

पद-अर्थ

विटहु—के ऊपर; **समालिआ**—स्मरण किया; **अंजनु**—सुरमा; **निहालिआ**—देखा; **बोहिथा**—वोहित, जहाज; **विरलै**—किसी विरले ने।

टीका

१. मैं अपने गुरु पर बलिहारी हूं जिसके मिलने से मैंने अपने स्वामी का स्मरण किया है,—
२. जिस गुरु ने उपदेश करके मानों मुझे ज्ञान का यह सुरमा दे दिया है जिससे मैंने जगत् की वास्तविकता देख ली है।
३. (और मुझे ज्ञात हो गया है कि) जो मनुष्य स्वामी, प्रभु, को छोड़ कर किसी अन्य के पीछे लगे हैं, वे नष्ट हुए हैं।
४. (संसार-सागर से पार होने के लिए) गुरु जलयान है; परन्तु किसी विरले ने इस बात को विचारा है।
५. गुरु ने कृपा करके मुझे संसार-सागर से पार कर दिया है। १३।

सलोकु महला १

१. सिंमल रुखु सराइरा अति दीरघ अति मुचु ।

२. ओइ जि आवहि आस करि जाहि निरासे कितु ।

३. फल फिके फुल बकबके कंमि न आवहि पत ।

४. मिठतु नीवी नानका गुण चंगिआईआ ततु ।

५. सभु कोऊ निवै आप कउ पर किउ निवै न कोइ ।

६. धरि ताराजू तोलीऐ निवै सु गउरा होइ ।

७. अपराधी दूणा निवै जो हंता मिरगाहि ।

८. सीसि निवाइऐ किआ थीऐ जा रिदै कुसुधे जाहि । १ ।

पद-अर्थ

सिंमल रुखु—सेमल का वृक्ष; **सराइरा**—तीर जैसा सीधा; **दीरघ**—बड़ा; **मुचु**—मोटा; **कितु**—क्यों; **बकबके**—आस्वाद रहित; **पत**—पत्र; **ताराजु**—तराजू; **गउरा**—गुरु, भारी; **हंता**—मारता है; **मिरगाहि**—मृगों को; **थीऐ**—होता है; **कुसुधे**—कुशुद्ध, मलिन ।

टीका

१. सेमल का वृक्ष (कितना) सीधा, बहुत बड़ा और मोटा होता है ।—

२. (फिर बताओ कि) वे पक्षी जो आशा करके (सेमल वृक्ष की ओर) आते हैं, क्यों निराश चले जाते हैं ?

३. (इसलिए कि) इसके फल फीके हैं, फूल स्वादहीन हैं और पत्ते भी (खाने के) काम नहीं आते हैं ।

४. (नानक) मधुरता नम्र है (मधुर फलों से लदी वृक्ष की शाखा झुक जाती है) समस्त गुणों और भद्रताओं का सार भी नम्रता है (जिस पुरुष में गुण तथा भद्रता होगी वह अवश्य विनम्र बनेगा) ।

५. (यद्यपि यह सत्य है कि जगत् में) प्रत्येक मनुष्य स्वार्थ के लिए

झुकता है, किसी अन्य के लिए कोई नहीं झुकता।—

६. (परन्तु यह नहीं चाहिए कि) यदि तुला में रखकर किसी वस्तु को तोला जाए तो भारी पलड़ा वह है जो झुकता है (व्यक्तित्व की महत्ता नम्रता में है)।

७. (नम्रता मन से उत्पन्न होनी चाहिए) शिकारी, जो मृगों को मारता है, दुहरा होकर झुकता है।

८. (परन्तु) केवल सिर झुकाने से क्या हो सकता है। (क्या लाभ है !) यदि हृदय के भीतर मलिनता हो। १।

महला १

१. पड़ि पुसतक संधिआ बादं।
२. सिल पूजसि बगुल समाधं।
३. मुखि झूठ बिभूखण सारं।
४. त्रैपाल तिहाल बिचारं।
५. गलि माला तिलकु लिलाटं।
६. दुइ धोती बसत्र कपाटं।
७. जे जाणसि ब्रहमं करमं।
८. सभि फोकट निसचउ करमं।
९. कहु नानक निहचउ धिआवै।
१०. विणु सतिगुर वाट न पावै। २।

पद-अर्थ

बादं—विवाद करता है; **सिल**—अर्थात् पाषाण की मूर्ति; **बगुल**—बगुले के समान; **बिभूखण**—आभूषण; **सारं**—लोहे के; **त्रैपाल**—तीन पंक्तियों का गायत्री पाठ; **लिलाटं**—मस्तक पर; **कपाटं**—कपाल पर, सिर पर; **वाट**—मार्ग।

टीका

१. (पंडित वेद आदि धार्मिक) पुस्तकें पढ़ कर संध्या करता है, दूसरों से चर्चा करता है;—

२. पाषाण की मूर्ति पूजता है, बगुले के समान समाधि लगाता है;—

३. मुख से भूठ बोलता है (इतना चतुर है कि) लोहे के गहनों को सोने के सिद्ध करके बतलाता है;—

४. तीन पंक्तियों वाली गायत्री दिन में तीन बार विचारता है;—

५. गले में माला (धारण करता है) और मस्तक पर तिलक (लगाता है);

६. दो धोतियां रखता है और (ध्यान के समय) सिर पर (गीला) कपड़ा रखता है।

७. (परन्तु) यदि यह पंडित परमात्मा के कर्म (प्रभु का आचार) जानता हो;—

८. तो निश्चय ही ये समस्त कर्म उसे व्यर्थ प्रतीत होंगे।

९. (नानक, कहो कि) जीव को श्रद्धावान् होकर प्रभु का स्मरण करना चाहिए।

१०. परन्तु गुरु के बिना यह मार्ग नहीं मिलता। २।

पउड़ी १४

१. **कपड़ु रूपु सुहावणा छडि दुनीआ अंदरि जावणा।**

२. **मंदा चंगा आपणा आपे ही कीता पावणा।**

३. **हुकम कीए मनि भावदे राहि भीड़ै अगै जावणा।**

४. **नंगा दोजकि चलिआ ता दिसै खरा डरावणा।**

५. **करि अउगण पछोतावणा। ४।**

पद-अर्थ

कपड़ु—वस्त्र; **राहि**—मार्ग; **भीड़ै**—संकीर्ण, तंग; **दोजकि**—नरक में; **खरा डरावणा**—बहुत भयंकर, कुरूप।

टीका

१. (जीव) सुन्दर वस्त्र और सुन्दर रूप इसी संसार में छोड़कर चला जाएगा।

२. (उसे) अपने किए शुभ-अशुभ कर्मों का फल आगे जाकर मिलेगा।

३. जिसने यहां मन-भाया शासन किया है, उसे आगे संकीर्ण मार्ग से निकलना होगा (कर्मों का लेखा देते हुए दुःख भुगतना पड़ेगा।)

४. ऐसा जीव नंगा करके (वास्तविक रूप में) प्रकट करके नरक में धकेला जाता है। वह तब महाकुरूप दिखाई देता है (मलिन आत्मा नग्न रूप में दिखाई देता है)।

५. (सत्य है) नीच कर्मों के कारण अन्त में पश्चाताप करना ही पड़ता है। १४।

(१५)

सलोकु महला १

१. दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु।

२. एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे घतु।

३. ना एहु तुटै न मलु लगै ना एहु जलै न जाइ।

४. धंनु सु माणस नानका जो गलि चले पाइ।

५. चउकड़ि मुलि अणाइआ बहि चउकै पाइआ।

६. सिखा कंनि चड़ाईआ गुरु ब्राहमणु थिआ।

७. ओहु मुआ ओहु झड़ि पइआ वेतगा गइआ। १।

पद-अर्थ

सतु—सत्य; **न जाइ**—नष्ट नहीं होता; **चउकड़ि**—चार कौड़ियों से; **सिखा**—शिक्षा, दीक्षा; **झड़ि**—(जल कर) गिर गया; **वेतगा**—तग्गे के जनेऊ के बिना।

टीका

१. दया रूपी कपास हो, सन्तोष रूप सूत हो, संयम रूपी गांठें हों और सत्य के ऐंठन हों।

२. यह जनेऊ आत्मा के काम आने वाला है, हे पांडे ! यदि तेरे पास यह जनेऊ है तो मेरे (गले में) डाल दे।

३. यह जनेऊ न टूटेगा, न मैला होगा, न जलेगा, न नष्ट होगा।

४. (नानक) वे मनुष्य धन्य हैं जो ऐसा जनेऊ गले में डालकर यहां से चले जाते हैं।

५. (हे पंडित ! जो जनेऊ तू पहिनता है) यह तो तू चार कौडियां मूल्य देकर मँगवा लेता है, फिर तू (यजमान के) चौकें में बैठकर (उसके गले में) डाल देता है।

६. फिर उसके कान में शिक्षा भर दी जाती है और ब्राह्मण गुरु हो हो जाता है।

७. जब वह (जनेऊ को पहिनने वाला प्राणी) मर गया तब जनेऊ शरीर से गिर पड़ता है और प्राणी जनेऊ के बिना ही (संसार से) चला जाता है। १।

महला १

१. लख चोरीआ लख जारीआ लख कूड़ीआ लख गालि।

२. लख ठगीआ पहिनामीआ राति दिनसु जीअ नालि।

३. तगु कपाहहु कतीऐ बाम्हणु बटे आइ।

४. कुहि बकरा रिंन्हि खाइआ सभु को आखै पाइ।

५. होइ पुराणा सुटीऐ भी फिरि पाईऐ होरु।

६. नानक तगु न तुटई जे तगि होवै जोरु। २।

पद-अर्थ

जारीआ—जार-कर्म, पर—नारी गमन; पहिनामीआ—गुप्त।

टीका

१. (मनुष्य) लाखों चोरियां, लाखों जार-कर्म और लाखों झूठी बातें करता है, गालियां बकता है;—

२. लाखों धोखेबाज़ी और लाखों पाप छिप-छिपकर रात-दिन करता है।

३. (फिर भी बाहर से इसने जनेऊ पहना हुआ है जिसका) धागा कपास से काता गया है और जिसे ब्राह्मण ने आकर बनाया है।

४. (इस जनेऊ के पहनने के समय) बकरा मारकर, पकाकर, घर आए सम्बन्धियों को खिलाया गया था और सबने (महापरितोष से) कहा था कि इसने जनेऊ पहना है।

५. जब यह जनेऊ पुराना हो जाता है तब फेंक दिया जाता है और दूसरा पहन लिया जाता है।

६. (नानक) यदि जनेऊ में (आत्मिक) शक्ति (दया, सन्तोष आदि का बल) हो तो वह टूटता नहीं। २।

महला १

१. नाइ मंनिऐ पति ऊपजै सालाही सचु सूतु।

२. दरगह अंदरि पाईऐ तगु न तूटसि पूत। ३।

पद-अर्थ

पति—प्रतिष्ठा, शोभा (धागे का पक्कापन); **सालाही**—स्तुति; **पूत**—पवित्र।

टीका

१. प्रभु का नाम मानने से धागे की शोभा (परिपक्वता उत्पन्न होती है, प्रभु की स्तुति के द्वारा वास्तविक (आत्मिक बलवाला) धागा बनता है।

२. यदि ऐसा पवित्र धागा (जनेऊ) पहन कर कोई ईश्वरीय सभा में जाए तो यह टूटता नहीं। ३।

१. तगु न इंद्री तगु न नारी ।
२. भलके थुक पवै नित दाड़ी ।
३. तगु न पैरी तगु न हथी ।
४. तगु न जिहवा तगु न अखी ।
५. वेतगा आपे वतै ।
६. वटि धागे अवरा घतै ।
७. लै भाड़ि करे वीआहु ।
८. कढि कागलु दसे राहु ।
९. सुणि वेखहु लोका एहु विडाणु ।
१०. मनि अन्धा नाउ सुजाणु । ५ ।

पद-अर्थ

तगु—तग्गा, धागा; **इंद्री**—इन्द्रियों को; **नारी**—नाड़ियों को; **भलके**—प्रतिदिन; **वतै**—फिरता है; **भाड़ि**—भाड़ा, किराया, मज़दूरी, दक्षिणा; **कागलु**—कागज़, पत्री; **विडाणु**—अद्‌भुत तमाशा; **सुजाणु**—बुद्‌धिमान्, ज्ञानी ।

टीका

१. न इन्द्रियों के लिए कोई धागा बनाया जाता हैं न नाड़ियों के लिए। (विषय-विकारों की ओर दौड़ती इन्द्रियों और नाड़ियों को रोकने के लिए कोई प्रबन्ध नहीं किया जाता है) ।
२. (परिणाम यह होता है कि) प्रतिदिन (दाढ़ी में थूक पड़ता है) अनादर होता है ।
३. न पैरों को, और न हाथों को, धागा बाँधा जाता है ।
४. न जीभ को धागा है, न आँखों को है।
५. पण्डित आप तो ऊपर बताए धागे के बिना फिरता है;

६. परन्तु दूसरों को धागे बना-बना कर पहनाए जाता है;—
७. (अपने ही यजमान की पुत्रियों) के विवाह दक्षिणा लेकर करता है;
८. पत्री निकाल कर उन्हें मार्ग भी बताता है।
९. हे लोगो ! सुनो, देखो यह अद्भुत कौतुक है।
१०. (पण्डित आप तो) अन्धा (अज्ञानी) है परन्तु अपना नाम उसने सुजान (ज्ञानवान्) रखा हुआ है। ४।

पउड़ी १५

१. साहिबु होइ दइआलु किरपा करे ता साई कार कराइसी।
२. सो सेवकु सेवा करे जिस नो हुकमु मनाइसी।
३. हुकमि मंनिए होवै परवाणु ता खसमै का महलु पाइसी।
४. खसमै भावै सो करे मनहु चिंदिआ सो फलु, पाइसी।
५. ता दरगाह पैधा जाइसी। १५।

पद-अर्थ

महलु—घर; **मनहु चिंदिआ**—मन से चिन्तित, इष्ट; **पैधा**—परिधान धारण करके;

टीका

१. (जिस सेवक के ऊपर) स्वामी प्रभु, दयालु हो वह कृपा करके उससे ही काम करवाता है (जो उसे अच्छा लगता है)।
२. वही सेवक प्रभु की सेवा करता है, जिसे वह आप अपनी इच्छा के अनुसार चलाता है।
३. आज्ञा मानने से ही वह प्रभु के घर स्वीकृत होता है और प्रभु के घर पहुँचता है।
४. जब सेवक वही कुछ करता है जो प्रभु को इष्ट है तब उसे मनोवांछित फल मिलता है।
५. वह प्रभु के घर परिधान धारण करके (सम्मान से) जाता है। १५।

सलोकु महला १

१. **गऊ बिराहमण कउ करु लावहु गोबरि तरणु न जाई ।**
२. **धोती टिका तै जपमाली धानु मलेछां खाई ।**
३. **अंतरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरका भाई ।**
४. **छोडीले पाखण्डा ।**
५. **नामि लइऐ जाहि तरंदा । १ ।**

पद-अर्थ

करु—कर, शुल्क; **धानु**—दिया हुआ पदार्थ; **संजमु**—आचार, व्यवहार, रहन-सहन ।

टीका

१. हे भाई ! (एक ओर तो) तू गौ और ब्राह्मणों के ऊपर (नदी के घाटों पर) कर लगाता है (और दूसरी ओर पवित्र होने के लिए गौ के गोबर से चौंका लीपता है); तू गोबर (से चौंका लीपने) से संसार से पार नहीं हो सकता है ।
२. (एक ओर) तू धोती पहनता है, तिलक लगाता है और जपमाला फेरता है, परन्तु दूसरी ओर म्लेच्छों (जिन्हें तू म्लेच्छ कहता है उन शासकों) के दिए हुए पदार्थ खाता है ।
३. अन्दर बैठकर (चोरी चोरी) तू पूजा करता है (परन्तु तुर्कों को प्रसन्न करने के लिए) बाहर मुसलमानों की पुस्तकें पढ़ता है और तुर्कों वाला रहन-सहन रखता है ।
४. तू यह पाखण्ड छोड़ दे ।
५. तू नाम के स्मरण से ही संसार-सागर से पार होगा । १ ।

महला १

१. **माणसखाणे करहि निवाज ।**
२. **छुरी वगाइनी तिन गलि ताग ।**

३. तिन घरि ब्रहमण पूरहि नाद ।
४. उन्हा भि आवहि ओई साद ।
५. कूड़ी रासि कूड़ा वापारु ।
६. कूडु बोलि करहि आहारु ।
७. सरम धरम का डेरा दूरि ।
८. नानक कूडु रहिआ भरपूरि ।
९. मथै टिका तेड़ि धोती करवाई ।
१०. हथि छुरि जगत कासाई ।
११. नील वसत्र पहिरि होवहि परवाणु ।
१२. मलेछ धानु ले पूजहि पुराणु ।
१३. अभाखिआ का कुठा बकरा खाणा ।
१४. चउके उपरि किसै न जाणा ।
१५. दे कै चउका कढी कार ।
१६. उपरि आइ बैठे कूड़िआर ।
१७. मतु भिटै वे मतु भिटै ।
१८. इहु अंनु असाडा फिटै ।
१९. तनि फिटै फेड़ करेनि ।
२०. मनि जूठै चुली भरेनि ।
२१. कहु नानक सचु धिआईऐ ।
२२. सुचि होवै ता सचु पाईऐ । २ ।

पद-अर्थ

माणसखाणे—मनुष्य खा जाने वाले, रक्त पीने वाले अफसर, रिश्वत लेने वाले; **निवाज**—नमाज; **नाद**—शंख; **आहारु**—भोजन; **करवाई**—कक्षा (बग़ल) में दबा रखा है; **फेड़**—बुरे कर्म ।

टीका

१. मनुष्यों का रक्त पीने वाले (अत्याचारी मुसलमान शासक) नमाजें पढ़ते हैं ।

२. छुरी चलाने वाले (अत्याचारी हिन्दु) गले में जनेऊ पहिनते हैं।
३. ब्राह्मण (उन हिन्दुओं) के घर जाकर शंख बजाते हैं।
४. उन ब्राह्मणों को भी ऐसे भोजन से वही स्वाद आते हैं (जो अत्याचारी हिन्दुओं की अधर्म की कमाई से उन्हें घृणा नहीं होती। उस कमाई को उसी प्रकार स्वाद से खाते हैं जिस प्रकार वे हिन्दु)।
५. इन लोगों की पूंजी असत्य है और ये असत्य का व्यापार करते हैं।
६. मिथ्या वचन बोल-बोल कर ये जीविका कमाते हैं।
७. लज्जा, धर्म कहीं दिखाई नहीं देता।
८. (नानक) सब ओर असत्य फैल रहा है।
९. (हिन्दुओं के) मस्तक पर तिलक हैं और वे धोती का किनारा बग़ल में दबा कर चलते हैं।
१०. (परन्तु) इनके हाथ में अत्याचार की छुरी है। ये संसार के लिए बाधक हैं (ये अत्याचार करते हैं)।
११. ये नीले रंग के वस्त्र पहिनकर (तुर्कों की कचहरियों में) स्वीकृत होते हैं।
१२. ये (जिन्हें म्लेच्छ कहते हैं उन) म्लेच्छों के पास से ही धान लेकर पुराणों की पूजा भी कर लेते हैं (मानसिक रूप से दास बने हुए हैं फिर भी अपने आपको धार्मिक समझते हैं।
१३. (हिन्दु) अन्य भाषा, अरबी, का कलमा पढ़कर काटा हुआ बकरा खाते हैं।
१४. (और वे फिर भी कहते हैं कि) हमारे चौके में कोई अन्य न जाए।
१५. गोबर से चौका लीप कर उसके ऊपर रेखाएं बना देते हैं (उन्हें मानसिक दासता की चिन्ता नहीं। वे मिथ्या धार्मिक पवित्रता किए जाते हैं।)
१६. परन्तु चौके में आकर बैठते हैं वे जो आप झूठे हैं।
१७. (ये दूसरों से कहते हैं कि हमारे चौके में न आना) कहीं हमारा चौका भ्रष्ट न हो जाए।—
१८. और हमारा तैयार किया भोजन भ्रष्ट हो जाए।
१९. ये अपवित्र शरीर से नीच कर्म करते हैं,—
२०. मलिन मन से ही कुल्ला करते हैं।
२१. (नानक) कहो कि सत्य प्रभु का स्मरण करना चाहिए।
२२. परन्तु वह सत्य प्रभु मिलता तब है जब मन की शुचिता हो। २।

पउड़ी १६

१. चितै अंदरि सभु को वेखि नदरी हेठि चलाइदा ।
२. आपे दे वडिआईआ आपे ही करम कराइदा ।
३. वडहु वडा वड मेदनी सिरे सिरि धंधै लाइदा ।
४. नदरि उपठी जे करे सुलताना घाहु कराइदा ।
५. दरि मंगनि भिख न पाइदा । १६ ।

पद-अर्थ

चितै—ध्यान; **मेदनी**—सृष्टि; **सिरे सिरि**—एक-एक करके, प्रत्येक को; **घाहु**—घास, तृण ।

टीका

१. प्रभु सब जीवों को ध्यान में रखता है और अपनी दृष्टि के नीचे ही सबको कार्यों में लगाता है ।
२. आप ही जीवों को महत्ता देता है, आप ही उनसे काम कराता है ।
३. प्रभु महान् से महान् है, उसकी बनाई सृष्टि महती है । वह प्रत्येक जीव को काम में लगाता है ।
४. यदि वह क्रोध करे तो बादशाहों को तृण से भी हल्का कर देता है ।
५. (इतना हल्का कि यदि वह) किसी द्वार पर जाकर मांगे भी तो उन्हें कोई भिक्षा नहीं देता । १६ ।

(१७)

सलोकु महला १

१. जे मोहाका घरु मुहै घरु मुहि पितरी देइ ।
२. अगै वसतु सिञाणीऐ पितरी चोर करेइ ।
३. वढीअहि हथ दलाल के मुसफी एह करेइ ।
४. नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले देइ । १ ।

पद-अर्थ

मोहाका—चोर; **पितरी**—पितरों के निमित्त; **मुसफी**—न्याय ।

टीका

१. यदि चोर (किसीं का) घर लूटे, और (पराया) घर लूटकर (लूटा हुआ पदार्थ) पितरों आदि के निमित्त दान करे,—
२. तो आगे (परलोक में) वह पदार्थ पहचाना जाएगा। अतः उस चोर के पितर चोर ठहराए जाएंगे ।
३. यह न्याय किया जायगा कि मध्यगामी ब्राह्मण के (जिसने बीच में पड़कर यह माल दिलाया था) हाथ काटे जाएंगे ।
४. (नानक) आगे तो जीव को वही मिलता है जो उसने परिश्रम से अर्जित किया है और उसमें से दान दिया है। १ ।

महला १

१. जिउ जोरू सिरनावणी आवै वारो वार ।
२. जूठे जूठा मुखि वसै नित नित होइ खुआरु ।
३. सूचे एहि न आखीअहि बहनि जि पिंडा धोइ ।
४. सूचे सेई नानका जिन मनि वसिआ सोइ । २ ।

पद-अर्थ

जोरू—स्त्री को; **सिरनावणी**—मासिक रजोधर्म; **जूठे**—भूठे मनुष्य को ।

टीका

१. जैसे स्त्री को प्रतिमास (रजो धर्म) होता है।
२. इसी प्रकार भूठे मनुष्य के मुख में भूठ बसता है और इससे वह सदा अपवित्र होता रहता है ।
३. वे पवित्र नहीं कहे जा सकते जो केवल शरीर धोकर बैठ जाते हैं ।
४. (नानक) पवित्र वही होते हैं जिनके हृदय में सत्य प्रभु रहता है । २ ।

पउड़ी १७

१. तुरे पलाणे पउण वेग हर रंगी हरम सवारिआ ।
२. कोठे मंडप माड़ीआ लाइ बैठे करि पासारिआ ।
३. चीज करनी मनि भावदे हरि बुझनि नाही हारिआ ।
४. करि फुरमाइसि खाइआ वेखि महलति मरणु विसारिआ ।
५. जरु आई जोबनि हारिआ । १७ ।

पद-अर्थ

तुरे—तुरंग, घोड़े; पलाणे—काठियों से सजे हुए; पउण वेग—वायुवत् वेगवान्; हरम—रनिवास; मंडप—महल; चीज—चोज, मौजें, आनन्द; हारिआ—हार जाते हैं; फुरमाइसि—शासन; महलति—महलात, महलों को; जरु—जरा, वृद्धावस्था ।

टीका

१. जिनके पास काठियों से सुसज्जित, वायु की चाल वाले घोड़े हैं और जिन्होंने अपने रनिवासों को सब प्रकार से सजाया हुआ है,—
२. जो अपने भव्य कोठों, महलों और राजमहलों में वैभव फैलाकर बैठते हैं,—
३. जो मनमानी रंग-रलियां करते हैं और प्रभु को नहीं पहचानते हैं वे मनुष्य जन्म हार जाते हैं ।
४. वे शासन करते हैं, आमोद-प्रमोद में रहते हैं, अपने महलों को देखकर मृत्यु को भुला देते हैं ।
५. परन्तु अन्त में उन्हें भी यौवन के हारने पर वार्धक्य आ दबाता है । १७ ।

(१८)

१. जेकरि सूतकु मंनीऐ सभतै सूतकु होइ ।
२. गोहे अतै लकड़ी अंदरि कीड़ा होइ ।
३. जेते दाणे अंन के जीआ बाझु न कोइ ।

४. पहिला पाणी जीउ है जितु हरिआ सभु कोइ ।
५. सूतकु किउकर रखीऐ सूतकु पवै रसोइ ।
६. नानक सूतकु एव न उतरै गिम्रानु उतारे धोइ । १ ।

पद-अर्थ

सभतै—स्थान पर; बाझु—बिना; रखीऐ—रोकना ।

टीका

१. यदि मान लें सूतक सचमुच होता है तो फिर वह प्रत्येक स्थान पर होगा (सूतक से कभी भी बचा नहीं जा सकता) ।
२. (क्योंकि) गोबर और लकड़ी में कीड़ा होता है (कीड़े जन्मते हैं और सूतक फैलाते रहते हैं) ।
३. अनाज के जितने दाने है वे भी जीवों से शून्य नहीं हैं ।
४. पहले पानी ही जीव है क्योंकि इस से प्रत्येक जीव हरा हो जाता है ।
५. सूतक को कैसे रोकें, वह तो रसोई में आ घुसता है ।
६. (नानक) सूतक (का भ्रम इस प्रकार) नहीं उतरता । इसे तो ज्ञान ही धो कर उतारता है । १ ।

महला १

१. मन का सूतक लोभु है जिहवा सूतकु कूड़ु ।
२. अखी सूतकु वेखणा पर त्रिअ पर धन रूपु ।
३. कंनी सूतकु कंनि पै लाइतबारी खाहि ।
४. नानक हंसा आदमी बधे जमपुरि जाहि । २ ।

पद-अर्थ

जिहवा—जीभ; त्रिआ—स्त्री; लाइतबारी—चुगली; हंसा—हंस रूपी मनुष्य; बाहर से स्वच्छ मनुष्य ।

पउड़ी—१७

१. **तुरे पलाणे पउण वेग हर रंगी हरम सवारिआ ।**

२. **कोठे मंडप माड़ीआ लाइ बैठे करि पासारिआ ।**

३. **चीज करनी मनि भावदे हरि बुझनि नाही हारिआ ।**

४. **करि फुरमाइसि खाइआ वेखि महलति मरणु विसारिआ ।**

५. **जरु आई जोवनि हारिआ । १७ ।**

पद-अर्थ

तुरे—तुरंग, घोड़े; **पलाणे**—काठियों से सजे हुए; **पउण वेग**—वायुवत् वेगवान्; **हरम**—रनिवास; **मंडप**—महल; **चीज**—चोज, मौजे, आनन्द; **हारिआ**—हार जाते हैं; **फुरमाइसि**—शासन; **महलति**—महलात, महलों को; **जरु**—जरा, वृद्धावस्था ।

टीका

१. जिनके पास काठियों से सुसज्जित, वायु की चाल वाले घोड़े हैं और जिन्होंने अपने रनिवासों को सब प्रकार से सजाया हुआ है ।—

२. जो अपने भव्य कोठों, महलों और राजमहलों में वैभव फैलाकर बैठते हैं—

३. जो मनमानी रंग-रलियां करते हैं और प्रभु को नहीं पहचानते हैं वे मनुष्य जन्म हार जाते हैं ।

४. वे शासन करते हैं, आमोद-प्रमोद में रहते हैं, अपने महलों को देखकर मृत्यु को भुला देते हैं ।

५. परन्तु अन्त में उन्हें भी यौवन के हारने पर वार्धक्य आ दबाता है । १७ ।

(१८)

१. **जेकरि सूतकु मंनीऐ सभतै सूतकु होइ ।**

२. **गोहे अतै लकड़ी अंदरि कीड़ा होइ ।**

३. **जेते दाणे अंन के जीआ बाझु जे कोइ ।**

४. पहिला पाणी जीउ है जितु हरिआ सभु कोइ ।
५. सूतकु किउकर रखीऐ सूतकु पवै रसोइ ।
६. नानक सूतकु एव न उतरै गिआनु उतारे धोइ । १ ।

पद-अर्थ

सभतै—स्थान पर; **बाझु**—बिना; **रखीऐ**—रोकना ।

टीका

१. यदि मान लें सूतक सचमुच होता है, तो फिर वह प्रत्येक स्थान पर होगा (सूतक से कभी भी बचा नहीं जा सकता) ।
२. (क्योंकि) गोबर और लकड़ी में कीड़ा होता है (कीड़े जन्मते हैं और सूतक फैलाते रहते हैं) ।
३. अनाज के जितने दाने है वे भी जीवों से शून्य नहीं हैं ।
४. पहले पानी ही जीव है क्योंकि इस से प्रत्येक जीव हरा हो जाता है ।
५. सूतक को कैसे रोकें, वह तो रसोई में आ घुसता है ।
६. (नानक) सूतक (का भ्रम इस प्रकार) नहीं उतरता, इसे तो ज्ञान ही धो कर उतारता है । १ ।

महला १

१. मन का सूतक लोभु है जिहवा सूतकु कूड़ु ।
२. अखी सूतकु वेखणा पर त्रिअ पर धन रूप ।
३. कंनी सूतकु कंनि पै लाइतबारी खाहि ।
४. नानक हंसा आदमी बधे जमपुरि जाहि । २ ।

पद-अर्थ

जिहवा—जीभ; **त्रिआ**—स्त्री; **लाइतबारी**—चुगली; **हंसा**—हंस रूपी मनुष्य, बाहर से स्वच्छ मनुष्य ।

टीका

१. मन का सूतक लोभ है (लोभ मन को अपवित्र करता है), जीभ का सूतक असत्य-भाषण है।
२. नेत्रों का सूतक परनारी, परकीय धन और रूप को (कुदृष्टि से) देखना है।
३. कानों का सूतक कानों से पराई चुगली सुनना है।
४. (नानक, ऐसे सूतकों के कारण) हंस-सदृश सुन्दर मनुष्य भी बांधे हुए नरक में जाते हैं। २।

महला १

१. सभो सूतकु भरमु है दूजै लगै जाइ।
२. जंमणु मरणा हुकमु है भाणै आवै जाइ।
३. खाणा पीणा पवित्र है दितोनु रिजकु संबाहि।
४. नानक जिनी गुरमुखि बुझिआ तिना सूतकु नाहि। ३।

पद-अर्थ

सभै—समस्त ही, सर्वथा ही।

टीका

१. सूतक (का विचार) कि वह एक से दूसरे को जा लगता है, सर्वथा भ्रम है।
२ जीवों का जन्म लेना और मरना प्रभु की आज्ञा है—प्रभु की इच्छा के अनुसार जीव जन्मते और मरते हैं।
३. (पदार्थों का) खाना-पीना जो उस (हरि) ने जीविका के रूप में दिया है, सब पवित्र है।
४. (नानक) जिन्होंने गुरु से इस बात को समझ लिया है, उन्हें सूतक नहीं लगता। ३।

पउड़ी १८

१. सतिगुरु वडा करि सालाहीऐ जिसु विचि वडीआ वडिआईआ।
२. सहि मेले ता नदरी आईआ।

३. जा तिसु भाणा ता मनि वसाईग्रा ।
४. करि हुकमु मसतकि हथु धरि विचहु मारि कढीग्रा बुरिग्राईग्रा ।
५. सहि तुठै नउ निधि पाईआ । १८ ।

पद-ग्रर्थ

वडिग्राईआ—महान् गुण; **सहि**—शाह ने, स्वामी ने ।

टीका

१. सद्गुरु को बड़ा मान कर उसकी स्तुति गानी चाहिए । उसमें बड़े-बड़े गुण हैं ।
२. जिन मनुष्यों को स्वामी, प्रभु, ने गुरु से मिलाया है, उन्हें उसके गुण दिखाई पड़ते हैं,—
३. और वे गुण उनके मन में ही बसते हैं यदि प्रभु-स्वामी को अच्छा लगे ।
४. उनके मस्तक पर हाथ रखकर प्रभु अपनी ग्राज्ञा के अनुसार उनके मन में से ग्रवगुण मार कर निकाल देता हैं ।
५. स्वामी के प्रसन्न होने से नव निधि (सब पदार्थ) मिलते हैं । १८ ।

सलोकु महला १

१. पहिला सुचा ग्रापि होइ सुचै बैठा ग्राइ ।
२. सुचे ग्रगै रखिग्रोनु कोइ न भिटिग्रो जाइ ।
३. सुचा होइ कै जेविआ लगा पड़णि सलोकु ।
४. कुहथी जाई सटिग्रा किसु एहु लगा दोखु ।
५. ग्रंनु देवता पाणी देवता बैसंतरु देवता लूणु पंजवा पाइग्रा घिरतु ।
६. ता होग्रा पाकु पवितु ।
७. पापी सिउ तनु गडिआ थुका पईग्रा तितु ।
८. जितु मुखि नामु न ऊचरहि विनु नावै रस खाहि ।
९. नानक एवै जाणीऐ तितु मुखि थुका पाहि । १ ।

पद-अर्थ

सुचं—पवित्र चौके में; **भिटिओ**—स्पर्श किया; **जेविआ**—खाया; **कुहथी**—अशुद्ध स्थान; **देवता**—पवित्र; **घिरतु**—घी; **पाकु**—पवित्र; **गडिआ**—मिलाया।

टीका

१. (ब्राह्मण) पहले पवित्र होकर (स्नान करके) पवित्र चौके में आ बैठता है।

२. (यजमानों की ओर से) उसके सम्मुख पवित्र (परोसे हुए थाल) रखे जाते हैं, जिन्हें किसी अन्य ने अभी चौके में जाकर स्पर्श नहीं किया।

३. (ब्राह्मण) पवित्र होकर उस पवित्र भोजन को खाता है और फिर श्लोक पढ़ता है।

४. (अन्त में वह भोजन विष्णु के रूप) में गन्दी जगह गिराया जाता है। बताओ यह दोष किसे लगा ?

५. जन्न, जल, अग्नि और लवण चारों ही देवता हैं (पवित्र हैं) और पाँचवा घी भी पवित्र है जो उसमें डाला जाता है।

६. इस प्रकार पवित्र भोजन प्रस्तुत किया जाता है।

७. (परन्तु) यह देवता (पवित्र भोजन) शरीर जब पापी पुरुष से मिला तब यह (पवित्र भोजन गन्दगी में बदल गया और) इस पर थूक पड़ता है।

८. इसी प्रकार जिस मुंह से मनुष्य नाम नहीं स्मरण करते और ऐसे नामहीन मुंह से स्वादु भोजन खाते हैं,—

९. (नानक) ऐसे मानो कि उस मुंह पर भी थूक पड़ता है। १।

महला १

१. भंडि जंमीऐ भंडि निमीऐ भंडि मंगणु वीआहु।

२. भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु।

३. भंडु मुआ भंडु भालीऐ भंडि होवै बंधानु ।
४. सो किउ मन्दा आखीऐ जितु जंमहि राजान ।
५. भंडहु ही भंडु ऊपजै भंडै बाझु न कोइ ।
६. नानक भंडै बाहरा ऐको सचा सोइ ।
७. जितु मुखि सदा सालाहीऐ भागा रती चारि ।
८. नानक ते मुख ऊजले तितु सचै दरबारि । २ ।

पद-अर्थ

भंडि—भाण्ड, पात्र, तात्पर्य नारी से; **राहु**—मार्ग, (उत्पत्ति का क्रम); **बंधानु**—समाज के बन्धन; **रती चारि**—भाग्य की चार रक्तिकाएँ अर्थात् मणियां, तात्पर्य सौभाग्य ।

टीका

१. स्त्री से मनुष्य का जन्म होता है; स्त्री के गर्भ में ही शरीर बनता है, स्त्री के साथ ही सगाई तथा विवाह होता है ।
२. स्त्री के सम्बन्ध से ही (सुसराल, मायका) सम्बन्धी बनते है । स्त्री से उत्पत्ति का क्रम चलता है ।
३. यदि एक स्त्री मर जाए तो दूसरी स्त्री की तलाश की जाती है । स्त्री के आश्रय से ही समाज की स्थापना होती है ।
४. वह स्त्री क्यों बुरी कही जाए जिससे राजा लोग जन्म लेते है ।
५. स्त्री से सृष्टि उत्पन्न होती हैं । संसार में कोई जीव स्त्री के बिना उत्पन्न नहीं हुआ ।
६. (नानक) केवल एक सत्य प्रभु ही है जो स्त्री से उत्पन्न नहीं हुआ ।
७. (चाहे पुरुष हो, चाहे स्त्री) जिस मुख से सदा प्रभु के गुण गाए जाते हैं उस पर भाग्य की मणि है, उसका भाग्य अच्छा होता है ।
८. (नानक) उस सत्य प्रभु के घर वे मुख ही कान्तिमान् होते हैं । २ ।

पउड़ी—१९

१. सभु को आखै आपणा जिसु नाही सो चुणि कढीऐ ।

२. **कीता आपो आपरणा आये ही लेखा संढीऐ ।**

३. **जा रहरणा नाही ऐतु जगि ता काइतु गारबि हंढीऐ ।**

४. **मंदा किसै न आखीऐ पड़ि अखरु एहो बुझीऐ ।**

५. **मूरखै नालि न लुझीऐ । १९ ।**

पद-अर्थ

लेखा संढीऐ—हिसाब चुकाया जाता है; **काइतु**—किस लिए; **गारबि हढीऐ**—अहंकार में फिरें; **मंदा**—नीच; **लुझीऐ**—उलझें, झगड़ा करें।

टीका

१. प्रत्येक मनुष्य अपना ही (विचार) कहता है (प्रत्येक अपना विचार, अपना विश्वास, अपना परमात्मा, अपना धर्म ही सत्य समझता है, अहंकारवश दावा करता है और व्यर्थ वाद-विवाद करता है); जो इस प्रकार नहीं कहता, उसे अलग करके मुझे बतलाओ (कदाचित् कोई बिरला ही होगा)।

२. (यह मानसिक दशा अच्छी नहीं। न तो अपने आपको निर्भम समझो, न दूसरों को पूर्णतया भ्रान्त समझो। इसका परिणाम यह होता है कि जीवन के मूल्य अनुचित बने रहते हैं और जीवन असफल जाता है) पुन: सभी को अपने-अपने कर्मों का लेखा स्वयं ही चुकाना पड़ता है।

३. जब इस संसार में सदा रहना नहीं है तब अहंकार में भरकर क्यों दावे करते फिरें ?

४. (अहंकारवश) किसी को अपशब्द नहीं कहना चाहिए, पढ़-सुनकर इतना ज्ञान तो होना ही चाहिए।

५. (किसी दशा में भी) किसी मूर्ख के साथ वाद-विवाद में उलझना नहीं चाहिए (क्योंकि, वह समझ की बात नहीं मानेगा)। १९ ।

सलोकु महला १

१. नानक फिकै बोलिऐ तनु मनु फिका होइ ।
२. फिको फिका सदीऐ फिके फिकी सोइ ।
३. फिका दरगह सटीऐ मुहि थुका फिके पाइ ।
४. फिका मूरखु आखीऐ पाणा लहै सजाइ । १ ।

पद-अर्थ

फिका—रसहीन, कटु; सोइ—प्रसिद्धि; पाणा—जूतियां ।

टीका

१. (नानक) नीरस शब्द कहने से अपने तन और मन भी फीके (नीरस) हो जाते हैं ।

२. नीरस शब्द कहने वाले को दूसरे भी फीका कहते हैं । उसकी प्रसिद्धि भी फीकेपन के लिए होती है ।

३. नीरस शब्द बोलने वाले को प्रभु की सभा में धक्के मिलते हैं और उसके मुख पर थूका जाता है (उसका तिरस्कार होता है) ।

४. फीका मनुष्य मूर्ख कहलाता है और दण्ड के रूप में उसे जूतों की मार पड़ती है । १ ।

महला १

१. अंदरहु झूठे पैज बाहरि दुनीआ अंदरि फैलु ।
२. अठसठि तीरथ जे नावहि उतरै नाही मैलु ।
३. जिन्ह पटु अंदरि बाहरि गुदड़ु ते भले संसारि ।
४. तिन्ह नेहु लगा रब सेती देखने वीचारि ।
५. रंगि हसहि रंगि रोवहि चप भी करि जाहि ।

६. परवाह नाही किसै केरी बाभु सचे नाह ।
७. दरिवाट उपरि खरचु मंगा जबै देइ त खाहि ।
८. दीबानु एको कलम एका हमा तुम्हा मेलु ।
९. दरि लए लेखा पीड़ि छुटै नानका जिउ तेलु । २ ।

पद अर्थ

पैंज—प्रतिष्ठा, कीर्ति; **फैलु**—प्रसार, फैलाव (दिखावा); **पटु**—रेशम; **गुदड़ु**—फटे पुराने कपड़े; **रंगि**—प्रेमवश; **दरिवाट**—(हरि) की सभा में; **दीबान**—सभा; **हमा तुमा**—छोटे बड़े; **पीड़ि छुटै**—जैसे कोल्हु में तिल आदि निपीडित किए जाते हैं ऐसे ही वह निपीडित करके फेंक दिया जाता है।

टीका

१. जिन मनुष्यों का मन मिथ्या से पूर्ण है, और बाहर जिनकी झूठी प्रतिष्ठा हैं तथा जिन्होंने जगत् में दिखावा बनाए रखा है,
२. वे चाहे अड़सठ तीर्थों में स्नान करलें तो भी उनके मन का मल नहीं उतरता।
३. जो मनुष्य भीतर से रेशम के समान सुन्दर है परन्तु बाहर से जीर्ण शीर्ण वस्त्रों में लिपटे दिखाई देते हैं, वे ही जगत् में उत्तम है।
४. प्रभु से उनका प्रेम है और वे प्रभु के दर्शनों के विचार से उससे प्रेम करते हैं।
५. वे प्रभु-प्रेम में ही हंसते हैं, प्रभु-प्रेम में ही रोते हैं और प्रभु-प्रेम में ही चुप हो जाते हैं।
६. उन्हें सत्य गति प्रभु के अतिरिक्त अन्य किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं है।
७. वे प्रभु के द्वार-मार्ग में खड़े होकर नाम रूपी भोजन मांगते हैं और जब भगवान् देता है, तब खाते हैं।
८. (वे जानते हैं कि) न्याय करने वाली सभा एक है, न्याय-निर्णय

लिखने वाला कलम एक है और उस सभा में ऊँच-नीच, छोटे-बड़े सब समान हैं।

६. (प्रभु) सभा में लेखा मांगता है और अशुभ कर्म करने वालों को इस प्रकार पीड़ा देता है जिस प्रकार तेल निकाला जाता है। २।

पउड़ी—२०

१. आपे ही करणा कीओ कल आपे ही तै धारीऐ।
२. देखहि कीता आपणा धरि कची पकी सारीऐ।
३. जो आइआ सो चलसी सभु कोई आई वारीऐ।
४. जिस के जीअ पराण हहि किउ साहिबु मनहु विसारीऐ।
५. आपण हथी आपणा आपे ही काजु सवारीऐ। २०।

पद-अर्थ

करणा—रचना, सृष्टि; **कल**—शक्ति, सत्ता; **धारीऐ**—धारण की हुई है, स्थिर की हुई है; **धरि**—धर कर, बनाकर; **सारीऐ**—नर्द, जीव रूपी सार (नर्द)।

टीका

१. हे प्रभु, तुमने स्वयं ही सृष्टि बनाई है और स्वयं ही अपनी शक्ति से इसको अवलम्ब दे रखा है।
२. तुम स्वयं ही जीवरूपी कच्ची पक्की नर्द बनाकर अपने किए हुए इस खेल की संभाल करते हो।
३. जो भी जीव उत्पन्न हुआ है, वह यहां से चला जाएगा, सब की बारी आएगी।
४. (अत:) जिस प्रभु के दिए हुए जीव और प्राण हैं, उसे किस प्रकार हृदय से विस्मृत किया जाए।
५. (प्रत्युत) अपने हाथों से (अपने उद्यम से) अपना कार्य (मनुष्य जन्म को सफल करने का कार्य) स्वयं ही सिद्ध करना चाहिए। २०।

सलोकु म. २

१. एह किनेही आसकी दूजै लगै जाइ ।
२. नानक आसकु काढीऐ सदही रहै समाइ ।
३. चंगै चंगा करि मंने मंदा होइ ।
४. आसकु एहु न आखीऐ जि लेखै वरतै सोइ । १ ।

महला २

१. सलामु जबाबु दोवै करे मुंढहु घुथा जाइ ।
२. नानक दोवै कूड़ीआ थाइ न काई पाइ । २ ।

पउड़ी—२१

१. जितु सेविऐ सुखु पाईऐ सो साहिबु सदा समालीऐ ।
२. जितु कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ ।
३. मंदा मूलि न कीचई दे लंमी नदरि निहालीऐ ।
४. जिउ साहिब नालि न हारीऐ तेवेहा पासा ढालीऐ ।
५. किछु लाहे उपरि घालीऐ । २१ ।

पद-अर्थ

लंमी नदरि—दूरदर्शी; **तेवेहा**—ऐसी; **पासा ढालीऐ**—खेल खेलना चाहिए, जीवन खेल; **घालीऐ**—कमाई कीजिए ।

टीका

१. जिस स्वामी के स्मरण से सुख मिलता है, उस स्वामी का स्मरण सदा करना चाहिए ।
२. जब प्रत्येक मनुष्य को अपने किए हुए कर्मों का ही फल मिलता है तो फिर अशुभ कमाई क्यों की जाए (अशुभ कर्म क्यों किए जाएँ) ।

३. असत् कार्य सर्वथा नहीं करना चाहिए, दूरदर्शिता से देखना चाहिए कि असत् कर्म का फल क्या होगा ?

४. प्रत्युत ऐसा खेल खेलना चाहिए (इस प्रकार जीवन बिताना चाहिए) कि प्रभु से प्रेम न टूटे ।

५. (यह बहुमूल्य मनुष्य जन्म प्राप्त करके) कोई लाभदायिनी शुभ उपार्जना करनी चाहिए । २१ ।

(२२)

सलोकु म. २

१. चाकरु लगै चाकरी नाले गारबु वादु ।
२. गला करे घनेरीआ खसम न पाए सादु ।
३. आपु गवाइ सेवा करे ता किछु पाए मानु ।
४. नानक जिसनो लगा तिसु मिलै लगा सो परवानु । १ ।

महला १

१. जो जीइ होइ सु उगवै मुह का कहिआ वाउ ।
२. बीजे बिखु मंगै अंम्रितु वेखहु एहु निआउ । २ ।

पद-अर्थ

जीइ—हृदय में; **उगवै**—प्रकट होता है; **मुह**—मुख; **वाउ**—वायु के समान, खाली, व्यर्थ; **बिखु**—विष ।

टीका

१. जो कुछ मन में होता है, वही कुछ बाहर प्रकट होता है; व्यर्थ में ही मुख से बात निकालनी वायु के समान है ।

२. विष का बीज-वयन करके अमृत की इच्छा, यह कैसा न्याय है ? (मन में विष होने पर बाहर भी विष ही निकलता है ।)

महला २

१. नालि इआणे दोसती कदे न आवै रासि ।
२. जेहा जाणै तेहों वरतै वेखहु को निरजासि ।
३. वसतू अंदरि वसतु समावै दूजी होवै पासि ।
४. साहिब सेती हुकमु न चलै कही बणै अरदासि ।
५. कूड़ कमाणै कूड़ो होवै नानक सिफति विगासि । ३ ।

महला २

१. नालि इआणे दोसती वडारू सिउनेहु ।
२. पाणी अंदरि लीक जिउ तिसदा थाउ न थेहु । ४ ।

महला २

१. होइ इआणा करे कंमु आणि न सकै रासि ।
२. जे इक अध चंगी करे दूजो भी वेरासि । ५ ।

पउड़ी—२२

१. चाकरु लगै चाकरी जे चलै खसमै भाइ ।
२. हुरमति तिस नो अगली ओहु वजहु भि दूणा खाइ ।
३. खसमै करे बराबरी फिरि गैरति अंदरि पाइ ।
४. वजहु गवाए अगला मुहे मुहि पाणा खाइ ।
५. जिस दा दिता खावणा तिसु कहीऐ साबासि ।
६. नानक हुकमु न चलई नालि खसम चलै अरदासि । २२ ।

पद-अर्थ

चाकरु—सेवक; **हुरमति**—मान, आदर; **वजहु**—वेतन; **गैरति**—लज्जित-भाव, शर्मिन्दिगी; **अगला**—पहले मिली हुई; **पाणा**—जूतियाँ; **साबासि**—धन्यवाद ।

टीका

१. वह सेवक ही यथार्थ सेवा करता है, जो स्वामी की इच्छा के अनुसार कार्य करता है।

२. ऐसे सेवकों को मान भी बहुत मिलता है और वेतन भी दुगना पाता है।

३. परन्तु जो सेवक स्वामी की समानता करता है, उसके बराबर होकर चलता है, उसकी इच्छा का अनुसरण नहीं करता उसे लज्जित होना पड़ता है।

४. वह पूर्व कमाई भी खो बैठता है और मुंह पर जूतों की मार भी खाता है।

५. (नानक) स्वामी के सम्मुख आज्ञा (अपनी इच्छा) नही चलती। वहां पर तो प्रार्थना (विनती) करनी पड़ती है। २२।

(२३)

सलोकु महला २

१. एह किनेही दाति आपस ते जो पाईऐ।
२. नानक सा करमाति साहिब तुठै जो मिलै। १।

महला २

१. एह किनेही चाकरी जितु भउ खसम न जाइ।
२. नानक सेवकु काढीऐ जि सेती खसम समाइ। २।

पउड़ी—२३

१. नानक अंत न जापनी हरि ता के पारावार।
२. आपि कराए साखती फिरि आपि कराए मार।
३. इकन्हा गली जंजीरीआ इकि तुरी चढ़हि बिसीआर।
४. आपि कराए करे आपि हउ कै सिउ करी पुकार।

५. नानक करणा जिनि कीआ फिरि तिस ही करणी सार । २३ ।

पद-अर्थ

साखती—साख्त, बनावटी, उत्पत्ति; **मार**—बुद्धि; **तुरी**—अश्व; **बिसीआर**—अधिक, बहुत; **सार**—समाचार, ख़बर, रक्षा ।

टीका

१. (नानक) उस प्रभु का अन्त नहीं पाया जा सकता; उसका पारावार नहीं मिलता ।

२. वह स्वयं ही जीवों की सृष्टि करता है । और स्वयं ही उनका संहार कर देता है ।

३. कई जीवों के गले में शृंखला पड़ती है (दास हैं) और बहुत से जीव घोड़ों पर चढ़ते हैं (लौकिक प्रताप वाले हैं) ।

४. (यह समस्त खेल) वह स्वयं ही कराता है और स्वयं ही करता है-- मैं उसके अतिरिक्त अन्य किसको अपने मन की पुकार सुनाऊँ ? (किसके सम्मुख प्रार्थना करूँ ?)

५. (नानक) जिस प्रभु ने संसार की रचना की है पुन: उसे ही संसार की रक्षा भी करनी है । २३ ।

(२४)

सलोकु महला १

१. आपे भांडे साजिअनु आपे पूरणु देइ ।
२. इकन्ही दुधु समाईऐ इकि चुलै रहन्हि चड़े ।
३. इकि निहाली पै सवन्हि इकि उपरि रहिन खड़े ।
४. तिन्हा सवारे नानका जिन कउ नदरि करे । १ ।

पद-अर्थ

भांडे—जीव रूपी बर्तन; **पूरणु देइ**—भरता है; **निहाली**—बिछौने ।

टीका

१. प्रभु ने जीव रूपी वर्तन स्वयं ही बनाए हैं और स्वयं ही इन्हें (दुःख सुख से) भरता है।

२. कुछ वर्तनों में दूध रहता है और कुछ चूल्हे पर चढ़े रहते हैं। (कई मनुष्य सुन्दर पदार्थ भोगते हैं और कई मनुष्य कष्टों में पड़े रहते हैं।

३. बहुत से मनुष्य बिछौनों पर सोते हैं और वहुत से मनुष्य उनके लिए खड़े होकर पहरा देते हैं।

४. परन्तु (नानक) प्रभु जिन पर कृपादृष्टि करता है, उनका जीवन सुधार देता है। १।

महला—२

१. आपे साजे करे आपि जाई भि रखै आपि।
२. तिसु विचि जंत उपाइ कै डेखै थापि उथापि।
३. किस नो कहीऐ नानका सभु किछु आपे आपि।

पउड़ी—२४

१. वडे कीआ वडिआईआ किछु कहणा कहणु न जाइ।
२. सो करता कादर करीमु दे जीआ रिजकु संबाहि।
३. साई कार कमावणी धुरि छोडी तिनै पाइ।
४. नानक एको बाहरी होर दूजी नाही जाइ।
५. सो करे जि तिसै रजाइ। २४।

पद-अर्थ

कादर—प्रकृति का स्वामी, समर्थ; **करीमु**—कृपा करने वाला; **संबाहि**—लाकर देता है;

टीका

१. महान् प्रभु के गुणों का वर्णन नहीं हो सकता।

२. वह स्वयं ही स्रष्टा है, प्रकृति का स्वामी है, कृपा करने वाला है और जीवों को भोजन लाकर प्रदान करता है।

३. जीव वही कुछ करेंगे जो प्रभु ने प्रारम्भ से उनके भाग्य में निश्चित कर दिया है।

४. (नानक) एक प्रभु के अवलम्ब के बिना अन्य कोई स्थान नहीं है।

५. प्रभु वही कुछ करता है जो उसकी इच्छा होती है। २४।

रागु गूजरी

१ओं सतिनाम करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥
रागु गूजरी महला १ चउपदे घरु। १।

१

१. **तेरा नामु करी चनणाठीआ जे मनु उरसा होइ।**

२. **करणी कुंगू जे रलै घट अंतरि पूजा होइ। १।**

३. **पूजा कीचै नामु धिआईऐ बिनु नावै पूज न होइ। १। रहाउ।**

४. **बाहरि देव पखालीअहि जे मनु धोवै कोइ।**

५. **जूठि लहै जीउ माजीऐ मोख पइआणा होइ। २।**

६. **पसू मिलहि चंगिआईआ खड़ु खावहि अंम्रितु देहि।**

७. **नाम विहूणे आदमी ध्रिगु जीवण करम करेहि। ३।**

८. **नेड़ा है दूरि न जाणिअहु नित सारे संम्हाले।**

९. **जो देवे सो खावणा कहु नानक साचा हे। ४। १।**

पद-अर्थ

चनणाठीआ—चन्दन की लकड़ी का टुकड़ा; **उरसा**—चन्दन घिसाने

के लिए पत्थर का गोल टुकड़ा; **कुंगू**—केसर; **कीचै**—कीजिए; **पखालीअहि**—धोए जाते हैं; **खडु**—खर, तृण, घास; **अंम्रितु**—दूध रूपी अमृत; **विहूणे**—विहीन, शून्य ।

टीका

१. हे प्रभु यदि तुम्हारा नाम मैं चन्दन की लकड़ी बना लूं, यदि मेरा मन हुरसा हो जाए;

२. और यदि (शुभ) कर्म का केसर इनके साथ मिल जाए तो तुम्हारी पूजा मेरे भीतर ही सम्पन्न हो जाएगी । १ ।

३. हे भाई, यही पूजा की जाए कि नाम का स्मरण किया जाए, नाम के अतिरिक्त अन्य पूजा पूजा नहीं समझनी चाहिए । १ । रहाउ ।

४. जिस प्रकार ठाकुर बाहर से (जल से) धोए जाते हैं, उसी प्रकार यदि मनुष्य अपने मन को नाम-स्मरण से धोए,

५. तो (उसके पापों की) उच्छिष्टता उतर जाती हैं, उसका मन स्वच्छ हो जाता है और संसार से प्रस्थान मुक्तिशाली हो जाता है । (वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है) । २ ।

६. पशुओं की प्रशंसा होती है; क्योंकि वे घास खाते हैं और दूध जैसा अमृत पदार्थ देते हैं ।

७. परन्तु मनुष्यों के जीवन को धिक्कार है, उनके कर्मों को धिक्कार है, जो नाम से शून्य हैं (ऐसे जीवन से कोई गुण उत्पन्न नहीं होता) । ३ ।

८. हे भाई, प्रभु निकट है, दूर न समझो, यह प्रतिदिन सबकी सुधि लेता है ।

९. जो वह देता हैं, वह हम खाते हैं, (नानक) सत्य केवल वह ही है । ४ । १ ।

(२)

१. नाभि कमल ते ब्रहमा उपजे वेद पड़हि मुखि कंठि सवारि ।

२. ता को अंतु न जाई लखणा आवत रहै गुबारि । १ ।

३. प्रीतम किउ बिसरहि मेरे प्राण अधार ।

४. जा की भगति करहि जन पूरे मुनिजन सेवहि गुर वीचारि । १ । रहाउ ।

५. रवि ससि दीपक जा के त्रिभवणि एका जोति मुरारि ।

६. गुरमुखि होइ सु अहिनिसि निरमलु मनमुखि रैणि अंधारि । २ ।

७. सिध समाधि करहि नित झगरा दुहु लोचन किआ हेरै ।

८. अंतरि जोति सबदु धुनि जागै सतिगुरु झगरु निबेरै । ३ ।

९. सुरिनर नाथ बेअंत अजोनी साचै महलि अपारा ।

१०. नानक सहजि मिले जग जीवन नदरि करहु निसतारा । ४ । २ ।

पद-अर्थ

नाभि—नाभि; **रवि**—सूर्य; **ससि**—चन्द्र- **अहिनिसि**—दिन-रात, सदा; **हेरै**—देखता है; **सुरिनर**—देवोषम पुरुष, महापुरुष; **नाथ**—बड़े योगी; **निसतारा**—उद्धार ।

टीका

१. (विष्णु की) नाभि से निकले कमल से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए जो मुख और गले को सँवार-सँवार कर वेदों को पढ़ने लगे ।

२. परन्तु वे उस भगवान् का अन्त न पा सके और अंधेरे में भटकते रहे (अन्त प्राप्त करने के लिए वे कमल की नाली में चले गए और कितने ही युग अन्धकार में भटकते रहे थे) । १ ।

३. हे मेरे प्रिय, हे मेरे जीवन के अवलम्ब, मैं तुम्हें कैसे विस्मृत कर सकता हूं । (नहीं कर सकता) क्योंकि, तुम मेरे प्राणों का आधार हो ।

४. (तुम वह हो) जिस की भक्ति-पूर्ण पुरुष करते हैं और ऋषि-मुनि गुरु के दिए ज्ञान के अनुसार जिसका स्मरण करते हैं । १ । रहाउ ।

५. सूर्य और चन्द्रमा जिसके दीपक हैं और जिस मुरारि की ज्योति तीनों भुवनों में व्याप्त है ।

६. जो गुरु के निर्दिष्ट मार्ग पर चलता है वह सदा पवित्र है, परन्तु जो मनोमुख है उसकी आयु रूपी रात्रि अन्धकार (अज्ञान) में बीतती है। २।

७. सिद्ध लोग (प्रभु के दर्शनों के लिए) समाधि में लीन अपने मन के साथ नित्य संघर्ष करते हैं; परन्तु उस निराकार को वे दो बाह्य चक्षुओं से क्या देखेंगे ?
('नानक से अखड़ीआं बिअनि जिनि डिसंदो मा पिरी')।

८. इस झगड़े (संघर्ष) को सद्गुरु ही निपटाता है (समाप्त करता है)। जब भीतर शब्द की ध्वनि निरन्तर उठती है (अन्तरात्मा में गुरु का शब्द बसकर उच्च स्थिति में ले जाता है) तब अन्दर बसती हुई ज्योति जाग पड़ती है (हरि के दर्शन हो जाते हैं)। ३।

९. अनन्त देवोषद पुरुष और महान् योगी उस अजन्मे और स्थिर प्रभु के अपार महल में (पूजने का यत्न करते रहे हैं, उसके दर्शनों के लिए)।

१०. परन्तु, (नानक) जगत् के जीवन हरि सहजावस्था में पहुँचने पर ही मिलते हैं। हे प्रभु, मुझ पर कृपा करके मेरा भी उद्धार करो।४। २।

गूजरी असटपदीआं (अष्टपदीपद्यगुम्फ) महला। १।

१. एक नगरी पंच चोर बसीअले बरजत चोरी धावै।
२. त्रिहदस माल रखै जो नानक मोख मुकति सो पावै। १।
३. चेतहु बासुदेउ बनवाली।
४. रामु रिदै जयमाली। १। रहाउ।
५. उरध मूल जिसु साख तलाहा चारि बेद जितु लागे।
६. सहज भाइ जाइ ते नानक पारब्रह्म लिव जागे। २।
७. पारजातु धरि आगनि मेरै पुहप पत्र ततु डाला।
८. सरब जोति निरंजन संभू छोडहु बहुतु जंजाला। ३।
९. सुणि सिखवंते नानकु बिनवै छोडहु माइआ जाला।
१०. मनि बीचारि एक लिव लागी पुनरपि जनमु न काला। ४।
११. सो गुरू सो सिखु कथीअले सो वैदु जि जाणै रोगी।

१२. तिसु कारणि कंमु न धंधा नाही धंधे गिरही जोगी । ५ ।
१३. कामु कोधु अहंकार तजीअले लोभु मोहु तिस माइआ ।
१४. मनि ततु अविगतु धिआइआ गुर परसादी पाइआ । ६ ।
१५. गिआनु धिआनु सभ दाति कथीअले सेत बरन सभि दूता ।
१६. ब्रह्म कमल मधु तासु रसादं जागत नाही सूता । ७ ।
१७. महा गंभीर पत्र पाताला नानक सरब जुआइआ ।
१८. उपदेस गुरू मम पुनहि न गरभं बिखु तजि अंम्रितु पीआइआ ।८।१।

पद-अर्थ

नगरी—शरीर रूपी नगर; **पंच चोर**—कामादि पांच चोर; **बसीअले**—बसते हैं; **बरजत**—रोकने पर भी; **त्रिहदस**—तेरह, तीन गुण और दस विषय; **माल**—आत्मिक गुण; **चेतहु**—स्मरण करो; **बासदेउ**—वासुदेव; सर्वव्यापी प्रभु; **बनवाली**—वनस्पति जिसकी माला है, विष्णु, प्रभु; **उरध**—ऊपर को; **मूल**—जड़; **तलाहां**—नीचे; **पारजातु**—एक कल्पित वृक्ष जो समस्त कामनाएं पूर्ण करता है; **आगनि**—आंगन में; **सिखवंते**—शिक्षा देने वाले; **सेत बरन**—श्वेत रंग के; **रसादं**—रसास्वादन करने वाला; **जुआइआ**—जुड़ा हुआ; **पुनहि**—पुन: ; **गरभं**—गर्भ ।

टीका

१. एक शरीर रूपी नगर में पांच चोर (कामादिक) बसे हुए हैं । और प्रत्येक चोर रोकते-रोकते भी चोरी करने के लिए दौड़ जाता है ।
२. जो मनुष्य आध्यात्मिक गुणों का धन तेरह (तीन गुण और दस विषयों) से बचाकर रखता है, (नानक) वह मुक्ति पाता है । १ ।
३. हे भाई, सर्वव्यापक वासुदेव और विष्णु भगवान् का स्मरण करो ।
४. राम को हृदय में रखो, इसी को जपमाला बनाओ । १ । रहाउ ।
५. (माया) जिसका मूल ऊपर को है (माया का जन्म प्रभु से हुआ है, प्रभु माया का मूल है और शाखाएँ नीचे की ओर हैं, जिन शाखाओं को चार वेद रूपी पत्ते लगे हैं (भाव यह कि मानो तीन गुण

त्रिगुणात्मक माया की शाखाएं हैं। तीनों गुणों का विस्तार चार वेद करते हैं)।

६. वह सहज ही उनसे परे हट जाती है (नानक) जिनकी लगन प्रभु से लगी रहती है । २ ।

७. पारिजात, प्रभु, मेरे हृदय-आंगन में प्रकट हुआ है सत्य जिसके पुष्प, पत्र और शाखा हैं।

८. उसकी ज्योति सर्वत्र है, वह माया के प्रभाव से परे हैं। वह स्वयंभु है, (उसका स्मरण करो) और समस्त प्रपंचों का त्याग कर दो । ३ ।

९. हे शिक्षा धारण करने वाले गुरुमुखो सुनो, नानक विनति करता है. माया के बन्धन त्याग दो।

१०. जिस मनुष्य के मन में गुरु के विचार से एक प्रभु की लगन लग जाती है पुन: उसका न जन्म होता है और न मृत्यु । ४ ।

११. वह (शिक्षाधारी) गुरु कहा जा सकता है। वह शिष्य तो है ही, वह वैद्य भी है; क्योंकि, वह आध्यात्मिक रोगियों के रोग समझ लेता है।

१२. वह प्रभु के कार्य में लगा है अत: सांसारिक कार्य उसके लिए धन्धे नहीं। वह माया के धन्धे में नहीं फँसता; वह गृहस्थी होता हुआ भी योगी है। ५ ।

१३. उसने काम, क्रोध और अहंकार का त्याग कर दिया है और लोभ, मोह और माया की तृष्णा त्याग दी है।

१४. उसने अपने मन में अविनाशी तत्त्व (सत्) प्रभु का स्मरण किया है और माया की तृष्णा त्याग दी है।

१५. प्रभु-ज्ञान और प्रभु में सुरति लगना सब उसकी कृपा कही जानी चाहिए। (जिसे यह दान मिलता है उसके) कामादि (बैरियों) का रंग श्वेत (आभाहीन) हो जाता है।

१६. वह प्रभु रूपी कमल का मधु (प्रेम-रस) चख लेता है, वह सदा जागता (सचेत) रहता है और कभी प्रमादी नहीं होता । ७ ।

१७. ब्रह्म रूपी कमल बहुत गहरा है, उसके पत्ते पाताल तक गए हैं (उसका विस्तार अनन्त है); (नानक) वह सबके साथ जुड़ा हुआ है (सर्वव्यापक है)।

१८. गुरु के उपदेश के कारण मेरा पुन: जन्म नहीं होगा। क्योंकि, मैंने विष (माया) का त्याग करके नाम अमृत का पान किया है। ८। १।

(२)

१. कवन कवन जाचहि प्रभ दाते ताके अंत न परहि सुमार।
२. जैसी भूख होइ अभ अंतरि तूँ समरथु सचु देवणहार। १।
३. ऐ जी जपु तपु संजमु सचु अधार।
४. हरि हरि नामु देहि सुखु पाईऐ तेरी भगति भरे भंडार। १। रहाउ।
५. सुंन समाधि कहहि लिव लागे एका एकी सबदु बीचार।
६. जलु थलु धरणि गगनु तह नाही आप आपु कीआ करतार। २।
७. ना तदि माइआ मगनु न छाइआ न सूरज चंद न जोति अपार।
८. सरब द्रिसटि लोचन अभ अंतरि एका नदरि सु त्रिभवण सार। ३।
९. पवणु पाणी अगनि तिनि कीआ ब्रहमा बिसनु महेस अकार।
१०. सरबे जाचिक तूँ प्रभु दाता दाति करे अपुनै बीचार। ४।
११. कोटि तेतीस जाचहि प्रभ नाइक देदे तोटि नाही भंडार।
१२. उधै भांडै कछु न समावै सीधै अंम्रितु परै निहार। ५।
१३. सिध समाधी अंतरि जाचहि रिधि सिधि जाचि करहि जैकार।
१४. जैसी पिआस होइ मन अंतरि तैसो जलु देवहि परकार। ६।
१५. बड़े भाग गुर सेवहि अपुना भेदु नाही गुरदेव मुरार।
१६. ता कउ कालु नाही जमु जोहै बूझहि अंतरि सबदु बीचार। ७।
१७. अब तब अवरु न मागउ हरि पहि नामु निरंजन दीजै पिआरि।
१८. नानक चात्रिकु अंम्रित मागै हरि जसु दीजै किरपा धारि। ८। २।

पद-अर्थ

जाचहि—मांगते हैं; **सुमार**—गणना; **अभ**—हृदय; **ऐ जी**—हे जी (दाता); **सुँन समाधि**—शून्य समाधि; **मगनु**—मत्त; **सरब द्रिसटि**—सब को देखने वाली; **नाइक**—स्वामी; **उधै**—उलटा; **निहार**—देख ले; **भेदु**—अन्तर; **अब तब**—कभी भी।

टीका

१. हे दानी, प्रभु, कौन-कौन (याचक हैं जो तुम्हारे द्वार से) मांगते हैं, (बहुत से हैं), उनकी गणना का अन्त नहीं पाया जा सकता।

२. किसी (मांगने वाले) के हृदय में जैसी भूख होती है, तुम देने में समर्थ हो और ठीक-ठीक देने वाले हो (तुम वह देते हो जो तुम्हारी इच्छा के अनुसार उचित है)। १।

३. हे दाता, जप, तप, संयम तथा सत्य ही मेरे जीवन का अवलम्ब हैं।

४. यदि तुम नाम की देन दो तो ही सुख प्राप्त होता है। तुम्हारे पास नाम-भक्ति के भाण्डागार भरे पड़े है। १। रहाउ।

५. हे दाता, जब निर्विकल्प समाधि में अपनी सुरति जोड़कर रहते थे तब आपका एक शब्द (हुक्म) था और एक ही विचार था (अभी तक आपके हुक्म और आपके विचार ने भिन्न-भिन्न आकृतियां गृहण नहीं की थीं);

६. तब, हे कर्त्ता, जल, स्थल: भूमि और आकाश नहीं होते थे, तुमने अपने आपको (निर्गुण रूप में) स्वयं ही बनाया हुआ था। २।

७. तब, न माया थी, न माया की छाया (माया के प्रभाव) के नीचे कोई जीव मत्त था, न सूर्य था, न चन्द्र, न तुम्हारी अपार ज्योति का प्रकाश हुआ था।

८. सबको देखने वाली आंख, तीनों भुवनों की सुधि लेने वाली तुम्हारी एक दृष्टि अभी तक तुम्हारे मन के भीतर ही थी। ३।

९. फिर जब उस प्रभु ने वायु, जल और अग्नि बनाए और ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि के आकार उत्पन्न किए,

१०. तब से, हे प्रभु, तुम्हारे उत्पादित समस्त जीव तुम्हारे याचक हुए हैं और तुम ही एक दाता हो; परन्तु तुम अपने विचार के अनुसार कृपाकरते-हो। ४।

११. हे स्वामी प्रभु, तेंतीस करोड़ देवता भी तुम्हारे द्वार से मांगते हैं। तुम देते हो। तुम्हारे भाण्डागारों में कभी न्यूनता नहीं होती।

१२. (तुम्हारी देन अनन्त है), उलटे वर्तनों (मनोमुखों) में कुछ नही समा सकता। सीधे पड़े (गुरुमुखों) बर्तनों में अमृत पड़ता है—यह सत्य

(विचारकर देख ले । ५ ।

१३. समाधि में लीन सिद्ध-गण तुम से याचना करते हैं, ऋद्धियों-सिद्धियों (चमत्कार-शक्तियों) को मांगकर तुम्हारा जय-जयकार करते हैं।

१४. किसी के मन में जैसी प्यास होती है, वह अपनी इच्छा के अनुसार उसे उसी प्रकार का जल देता है। ६।

१५. (अब नाम की देन मांगने वाले गिनाए जाते हैं) जो गुरु की सेवा में लगते हैं वे महाभाग्यशाली हैं, उन्हें गुरु और प्रभु में अन्तर नहीं दिखाई देता।

१६. उन्हें फिर मृत्यु प्राप्त नहीं होती, न यमराज उनकी ओर देखता है, वे अपने मन के भीतर शब्द और विचार को समझते हैं। ७।

१७. अतः मैं भी प्रभु की ओर से कभी भी कुछ नहीं मांगता (मैं केवल यह मांगता हूं कि) हे निरंजन प्रभु, प्रेम के साथ मुझे अपना नाम प्रदान करो।

१८. (नानक) मैं चातक अमृत नाम का जल मांगता हूं। कृपा करके मुझे गुणस्तुति प्रदान करो। ८। २।

(३)

१. ऐ जी जनमि मरै आवै फुनि जावै बिनु गुर गति नहीं काई।

२. गुरमुखि प्राणी नामे राते नामे गति पति पाई। १।

३. भाई रे रामनामि चितु लाई।

४. गुर परसादी हरिप्रभ जाचे ऐसी नाम बडाई। १। रहाउ।

५. ऐ जो बहुते भेख करहि भिखिआ कउ केते उदरु भरन कै ताई।

६. बिनु हरि भगति नाही सुखु प्रानी बिनु गुर गरबु न जाई। २।

७. ऐ जी कालु सदा सिर ऊपरि ठाढे जनमि जनमि वैराई।

८. साचै सबदि रते से बाचे सतिगुर बूझ बुझाई। ३।

९. गुर सरणाई जोहि न साकै दूतु न सकै संताई।

१०. अविगत नाथ निरंजनि राते निरभउ सिउ लिव लाई। ४।

११. ऐ जीउ नाम दिड़हु नामे लिव लावहु सतिगुर टेक टिकाई।

१२. जो तिसु भावै सोई करसी किरतु न मेटिआ जाई। ५।

१३. ऐ जो भागि परे गुर सरणि तुम्हारी मैं अवर न दूजो भाई ।
१४. अब तब एको एकु पुकारउ आदि जुगादि सखाई । ६ ।
१५. ऐ जो राखहु पैज नाम अपुने की तुझ ही सिउ बनि आई ।
१६. करि किरपा गुर दरसु दिखावहु हउमै सबदि जलाई । ७ ।
१७. ऐ जी किआ मागउ किछु रहै न दीसै इसु जग महि आइआ जाई ।
१८. नानक नामु पदारथु दीजै हिरदै कंठि बणाई । ८ । ३ ।

पद-अर्थ

जनमि—उत्पन्न होकर; **फुनि**—पुन:; **गति**—मुक्ति; **पति**—प्रतिष्ठा; **उदरु**—पेट; **ठाढ़े**—खड़ा है; **वैराई**—वैरी; **बाचे**—बच गए; **जोहि**—देखता; **संताई**—दु:ख देता; **अवगति**—अविनाशी; **टेक टिकाई**—अवलम्ब दिया है; **कंठी**—कण्ठी माला ।

टीका

१. हे भाई, (गुरु के बिना) मनुष्य जन्म लेकर मरता है, फिर आता है और जाता है । गुरु के बिना किसी को मुक्ति नहीं मिलती ।
२. गुरु की शरण लेने वाले गुरुमुख जीव नाम में रगे रहते हैं और वे नाम-द्वारा मुक्ति पाते हैं और (प्रभु की सभा में) प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं । १ ।
३. हे भाई, राम-नाम में मन लगाना चाहिए ।
४. फिर गुरु की कृपा से मनुष्य केवल हरि को चाहता है, (अन्य वस्तुएँ नहीं मांगता) नाम की महत्ता ऐसी होती है । १ । रहाउ ।
५. हे भाई, बहुत से मनुष्य शिक्षा प्राप्त करने के लिए वेष बनाते हैं । वे केवल पेट भरने के लिए वेष धारण करते हैं ।
६. (परन्तु) प्रभु की भक्ति के बिना प्राणी को सुख नहीं होता और गुरु की शरण के बिना अहंकार नहीं मिटता । २ ।
७. हे भाई, गुरु के बिना मृत्यु सदा सिर पर खड़ी रहती है और प्रत्येक जन्म में हमारी वैरिणी रहती है (क्योंकि जन्म-मरण का चक्र केवल

गुरु समाप्त करता है)।

८. जो सत्य शब्द के द्वारा नाम में लीन होते हैं, वे (मृत्यु से) बचते हैं, और नाम का ज्ञान सद्गुरु देता है। ३।

९. गुरु की शरण लेने से काल मनुष्य की ओर नहीं देखता (वह जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है)। यमराज का भय उसे सन्ताप नहीं दे सकता।

१०. (क्योंकि फिर) अविनाशी माया से परे और निर्भय स्वामी में लगन लग जाती है, (निर्भय प्रभु यमदूतों का भय काटता है और अविनाशी प्रभु जन्म-मरण से निकाल कर अमर कर देता है)। ४।

११. हे भाई, नाम दृढ़ करो, नाम में मन लगाओ, सद्गुरु ने सबको यही अवलम्ब दिया है।

१२. (उसके आदेश के अनुसार) जो प्रभु को अच्छा लगता है, वह वही करेगा, मनुष्यों के कर्मों का फल (संस्कारों के रूप में) मिट नहीं सकता। ५।

१३. (अतः) हे गुरु जी, मैं दौड़कर आपकी शरण में आया हूँ, मेरा और कोई आश्रय नहीं है।

१४. (कृपा कीजिए कि) मैं सदा एक परमात्मा का नाम पुकारता रहूं जो युग-युगों तक (सदा) साथी होता है। ६।

१५. हे प्रभु जी, अपने नाम की लज्जा रखो, (कृपा करो कि) तुमसे मेरी प्रीति सदा बनी रहे।

१६. कृपा करो और मुझे गुरु के दर्शन कराओ जो शब्द-द्वारा मेरे अहं भाव को जला दे। ७।

१७. हे प्रभु जी, तुम्हारे नाम के अतिरिक्त मैं क्या माँगू ? अन्य वस्तुएँ इस संसार में स्थिर नहीं दिखाई देतीं। जो यहां आता है चला जाता है।

१८. (नानक प्रार्थना कर कि) हे दाता, मुझे अपना नाम रूपी पदार्थ दो जिसे मैं हृदय की कंठी (माला) बना लूं। ८। ३।

(४)

१. **ऐ जी ना हम उत्तम नीच न महिम हरि सरणागति हरि के लोग।**

२. नाम रते केवल वैरागी सोग बिजोग बिसरजित रोग । १ ।

३. भाई रे गुर किरपा ते भगति ठाकुर की ।

४. सतिगुर वाकि हिरदै हरि निरमलु ना जम काणि न जम की बाकी । १ । रहाउ ।

५. हरि गुण रसन रवहि प्रभ संगे जो तिसु भावै सहजि हरी ।

६. बिनु हरिनाम क्रिया जगि जीवनु हरि बिनु निहफल मेक घरी । २ ।

७. ऐ जो खोटे ठउर नाही घरि बाहरि निंदक गति नहीं काई ।

८. रोस करै प्रभु बखस न मेटै नित नित चड़ै सवाई । ३ ।

९. ऐ जो गुर को दाति न मेटै कोई मेरै ठाकुरि आपि दिवाई ।

१०. निंदक कर काले मुख निंदा जिन्ह गुर की दाति न भाई । ४ ।

११. ऐ जो सरणि परे प्रभू बखसि मिलावै बिलम न अधूरा राई ।

१२. आनद मूलु नाथु सिरि नाथा सतिगुरू मेलि मिलाई । ५ ।

१३. ऐ जो सदा दइआलु दइआ करि रविआ गुरमति भ्रमनि चुकाई ।

१४. पारसु भेटि कंचनु धातु होई सतिसंगति की वडिआई । ६ ।

१५. हरि जलु निरमलु मनु इसनानी मजनु सतिगुरु भाई ।

१६. पुनरपि जनमु नाही जन संगति जोती जोति मिलाई । ७ ।

१७. तूँ वड पुरखु अगंम तरोवरु हम पंखी तुझ माही ।

१८. नानक नामु निरंजन दीजै जुगि जुगि सबदि सलाही । ८ । ४ ।

पद-अर्थ

मधिम—मध्यम श्रेणी के; **बिसरजित**—विसृष्ट, छोड़े हुए, बिसारे हुए; **रवहि**—गाते हैं; **मेक**—एक; **रोसु**—रोष क्रोध; **बिलम**—विलम्ब; **अधूआ राई**—आधी राई के समान; **पुनरपि**—पुनः; **तरोवरु**—तरुवर वृक्ष।

टीका

१. हे भाई, अब हम न उत्तम (जाति), न नीच (जाति) और न ही किसी मध्यम जाति के हैं क्योंकि प्रभु की शरण में आ गये हैं (जो जाति, कुल और वर्ण से रहित है); अब हम भगवान् के भक्तों में

परिगणित हो गए है ।

२. जो (भगवान् की शरण लेकर) नाम में अनुरक्त हैं, वहीं पूर्ण विरागी (माया से विरक्त) हैं और उन्होंने सब दु:ख, वियोग और रोग विसृष्ट कर दिए हैं । १ ।

३. हे भाई, गुरु की कृपा से ही स्वामी प्रभु की भक्ति मिलती है ।

४. यदि सद्गुरु के वचन (शब्द) से निर्मल हरि हृदय में बसे तो न धर्मराज की अधीनता रहती है और न ही कोई यम का लेखा देना रह जाता है । १ । रहाउ ।

५. (जो नाम में अनुरक्त हैं) वे हरि के गुण जिह्वा से गाते हैं, उसे साथ समझते हैं, जो उसे अच्छा लगता है, वह हरि की इच्छा मानकर स्वीकार करते हैं ।

६. उन्हें नाम के बिना जगत् में जींना व्यर्थ दिखाई देता है । उनके लिए प्रभु के बिना एक घड़ी भी निष्फल हो जाती है । २ ।

७. हे भाई (भक्तों के विरोधी) खोटे निन्दक को घर बाहर, कहीं भी, आश्रय नहीं मिलता, निन्दक की नीच दशा होती हैं (दुर्गति होती है) ।

८. (निन्दक) भक्तों पर क्रोध करता है, परन्तु (इस कारण) प्रभु अपने भक्तों पर कृपा बन्द नहीं करता प्रत्युत और अधिक कृपा करता है । २ ।

९. हे भाई, गुरु का दिया दान (नाम) कोई नहीं रोक सकता । यह देन मेरे प्रभु स्वामी द्वारा स्वयं दिलवाई जाती है ।

१०. निन्दा करने से उन निन्दकों के मुख काले होते हैं (वे अपकीर्तित होते हैं) जिन्हें गुरु द्वारा भक्तों को दी हुई देन अच्छी नहीं लगती । ४ ।

११. जो मनुष्य (निन्दकों के सहित) प्रभु की शरण ले लेते हैं, प्रभु उनके पाप क्षमा करके उन्हें अपने साथ मिला लेता है और ऐसा करते हुए राई जितनी (थोड़ी सी) देर भी नहीं करता ।

१२. प्रभु आनन्द का मूल (स्रोत) है, राजाओं (नाथों) का राजा है । सद्गुरु उसके साथ योग करा देता है । ५ ।

१३. प्रभु सदा कृपालु है, कृपा करके सबके भीतर बसता है, गुरु की शिक्षा के द्वारा संशय मिटाता है ।

१४. जैसे पारस की यह महत्ता है कि लोहा आदि धातु उसका स्पर्श करके

सोना हो जाती है उसी प्रकार सद्गुरु की संगति को भी यही महत्ता है (जो संगति में आता है शुद्ध हो जाता है)। ६।

१५. हरि का नाम निर्मल जल है, मन स्नान करने वाला है, सद्गुरु स्नान कराने वाला है।

१६. सद्गुरु के सेवकों की संगति के प्रताप से पुनः जन्म नहीं होता, सद्गुरु प्रभु-ज्योति में ज्योति मिला देता है। ७।

१७. हे प्रभु, तुम महान् पुरुष हो, तुम अगम्य हो, तुम मानो वृक्ष हो, हम सब पक्षी तुम्हारे आश्रित हैं।

१८. (नानक प्रार्थना कर कि) हे निरंजन प्रभु, आप नाम प्रदान करें जिससे हम नित्य शब्द-द्वारा आपके गुण गाते रहें। ८। ४।

(५)

१. भगति प्रेम आराधित सचु पिआस परम हितं।
२. बिललाप बिलल बिनंतीआ सुख भाई चित हितं। १।
३. जपि मन नामु हरि सरणी।
४. संसार सागर तारि तारण रम नाम करि करणी। १। रहाउ।
५. ए मन मिरत सुभ चिंतं गुर सबदि हरि रमणं।
६. मति ततु गिआनं कलिआण निधानं हरिनाम मनि रमणं। २।
७. चलचित वित भ्रमा भ्रमं जगु मोह मगन हितं।
८. थिरु नाम भगति दिढं मती गुर वाकि सबद रतं। ३।
९ भरमाति भरमु न चूकई जगु जनमि बिआपि खपं।
१० असथानु हरि निहकेवलं सति मती नाम तपं। ४।
११. इहु जगु मोह हेत बिआपितं दुखु अधिक जनम मरणं
१२. भजु सरणि सतिगुर ऊबरहि हरिनामु रिद रमणं। ५।
१३. गुरमति निहचल मनि मनु मनं सहज बीचारं
१४. सो मनु निरमलु जितु साचु अंतरि गिआन रतनु सारं। ६।
१५. भै भाइ भगति तरु भवजलु मना चितु लाइ हरि चरणी।
१६. हरिनामु हिरदै पवित्र पावनु इहु सरीरु तउ सरणी। ७।
१७. लब लोभ लहरि निवारणं हरिनाम रासि मनं।

१८. मनु मारि तुही निरंजना कहु नानका सरनं । ८ । १ । ५ ।

पद-अर्थ

आराधितं—आराधना करते हैं; **बिललाप**—विलाप; **तारण**—तरणि, जलयान; **रम**—उच्चारण; **मिरत**—मृत्यु; **सुभ चितं**—शुभचिन्तक, हितैषी; **चलवित**—चन्चल; **वित**—धन; **बिआधि**—रोग; **खपं**—क्लेश सहता है; **बिआपितं**—व्यापक हुआ है, चिपटा हुआ है; **निवारणं**—दूर कर देती है ।

टीका

१. (जो मनुष्य) प्रेमवती भक्ति से सत्य (प्रभु) की आराधना करते हैं और अत्यन्त प्रेम के प्यासे हैं.

२. वे विलापवती प्रार्थनाएं करते हैं और उन्हें चित्त के प्रेम-भाव के कारण समस्त सुख होते हैं । १ ।

३. हे मेरे मन, नाम जप और हरि की शरण ग्रहण कर ।

४. (नाम) संसार-सागर से पार करने वाला पोत है । नामोच्चारण कर । यह शुभ कर्म कर । १ । रहाउ ।

५. हे मेरे मन, मृत्यु भी (जीव की) शुभचिन्तिका हो जाती है, यदि गुरु के शब्द से हरि के नाम का स्मरण किया जाए ।

६. बुद्धि तत्व-ज्ञानवती हो जाती है और सुखों का भाण्डागार प्राप्त हो जाता है, यदि मन में हरि के नाम का उच्चारण हो । २ ।

७. चन्चल धन आता जाता है; विश्व उसके मोह में मत्त हो रहा है ।

८. नाम स्थिर रहने वाला है, भक्तों ने यह शिक्षा दृढ़ की है । वे गुरु के उपदेश से शब्द में अनुरक्त रहते है । ३ ।

९. जन्म-मरण में भटकना समाप्त नहीं होता, संसार विविध योनियों में जन्म लेने के रोग में क्लेश सहता है ।

१०. हरि का निवास-स्थान (ऊपर कहीं व्याधि से) मुक्त है । अत: उसके नाम का तप करना ही सत्य बुद्धि है । ४ ।

११. इस संसार को मोह का प्रेम चिपटा हुआ है, अत: इसे जन्म-मरण का प्रबल दु:ख लगा हुआ है ।

१२. सद्गुरु की शरण में दौड़कर जा, वहां हरि का नाम हृदय में बसाने से तर जाएगा । ५ ।

१३. गुरु की निश्चल शिक्षा मन में हो तो मन ज्ञान के विचार को मान जाता है ।

१४. वह मन पवित्र है जिसके भीतर सत्य है, और ज्ञान का वास्तविक रत्न है । ६ ।

१५. हे मेरे मन, संसार-सागर को (हरि के) भय और भक्ति-भाव से पार कर ले और हरि के चरणों में मन लगा ।

१६, हृदय में पवित्रपावन हरि का नाम रखकर (कह, हे हरि,) यह शरीर तेरी शरण है । ७ ।

१७. हरि के नाम की पूंजी मन में रख, जो लोभ-लालच की बाढ़ दूर कर देती है ।

१८. हे निरंजन, तुम मेरे मन को मार दो (वश में कर दो), (नानक) मैं तुम्हारी शरण आया हूँ । ४ । १ । ५ :

रागु बिहागड़ा

एक ओं सतिगुर प्रसादि ।

बिहागड़े की वार महला ४

सलोकु मरदाना १

१. कलि कलवाली कामु मदु मनूआ पीवणहारु ।

२. कोध कटोरी मोहि भरी पीलावा अहंकारु ।

३. मजलस कूड़े लब की पी पी होइ खुआरु खुआरु ।

४. करणी लाहणि सतु गुडु सचु सरा करि सारु ।

५. गुण मंडे करि सीलु धिउ सरमु मासु आहारु ।

६. गुरमुखि पाईऐ नानका खाधै जाहि विकार । १ ।

पद-अर्थ

कलि —कलियुग, कलियुगी स्वभाव; **कुलवाली**—मदिरा की मटकी; **वदु**—मद, मदिरा; **मजलस**—सभा; **लाहणि**—मसाले सहित मटकी; **मंडेरोटियां**; **सील**—उत्तम स्वभाव ।

टीका

१. कलियुगी स्वभाव मदिरा निकालने वाली मटकी है। इसमें काम मद्य है और मन मद्यपायी है ।

२. क्रोध कटोरी है, मोह ने कटोरी में मदिरा भरी है और अहंकार पिलाने वाला है ।

३. मिथ्या लोभ सभा है और (मन) इस मदिरा को पी पीकर दुःखी हो रहा है ।

४. (परन्तु हे जीव, तू) शुभ कर्म को मदिरा की मसाले-सहित मटकी बना, केत्य को गुड़ बना, तथा सत्य नाम को उत्तम मदिरा बना ।

५. गुणों को रोटी बना, उत्तम स्वभाव को घी बना, और लज्जा को मांस-भोजन बना ।

६. (नानक) यह भोजन गुरु के समक्ष होने से मिलता है और इसके खाने से समस्त विकार दूर होते हैं। १ ।

मरदाना १

१. काइआ लाहिण आपु मदु मजलस त्रिसना धातु ।

२. मनसा कटोरी कूड़ि भरी पीलाए जमकालु ।

३. इतु मदि पीतै नानका बहुते खटीअहि विकार ।

४. गिआनु गुड़ु सालाह मंडे भउ मासु आहारु ।

५. नानक इहु भोजनु सचु है सचु नाम आधारु । २ ।

पद-अर्थ

काइआ—शरीर; **आतु**—अहंभाव, अहंकार; **त्रिसना धातु**—तृष्णा

की दौड़-भाग, लालच वाली दौड़-भाग; **मनसा**—वासना की कटोरी; **गिम्रानु**---परमात्मा का ज्ञान; **भउ**--भय; **धातु**—दौड़-भाग, भटकना; **म्राधारु**—म्राश्रय ।

टीका

१. शरीर मानो मदिरा की (मसाले सहित) मटकी है, अहंकार मद्य है और तृष्णा में भटकना समा है ।

२. मानो वासना कटोरी है जो असत्य से पूर्ण है और यम-काल पिलाने वाला है ।

३. (नानक) इस मद्य के पीने से अनेक विकार एकत्र किए जाते हैं ।

४. (परन्तु यदि) प्रभु का ज्ञान गुड़ हो, प्रभु की गुणस्तुति रोटियां हो और प्रभु का भय मांस का भोजन हो.—

५. तो, (नानक) यह भोजन वास्तविक है; क्योंकि, सत्य नाम ही जीवन का आधार हो सकता है । २ ।

सलोक

१. कांथां लाहणि आपु मदु अम्रित तिस की धार ।

२. सत संगति सिउ मेलापु होइ लिव कटोरी अंम्रित भरी पी पी कटहि बिकार । ३ ।

पद-अर्थ

आपु—आत्मज्ञान; **धार**—धारा; **लिव**—प्रभु का ध्यान ।

टीका

१. (यदि) शरीर की मटकी बने, आत्मज्ञान मदिरा बने और नाम-अमृत उसकी धारा हो ।

२. सत्संगति में मेल (सभा) हो, प्रभु का ध्यान कटोरी बने, तो जानो कि यह कटोरी अमृत से पूर्ण है, जिसे पी-पी कर विकार नष्ट होते हैं । ३ ।

सलोक महला ।

१. कलि अंदरी नानका जिंनां दा अउतारु ।

२. पूतु जिनूरा धीअ जिनूरी जोरू जिना दा सिकदारु । १ ।

पद-अर्थ

कली—कलियुग; **जिंनां**—मनुष्य जिन्नभूत हैं; **जिनूरा**—छोटा जिन्न; **जोरू**—पत्नी; **सिकदारू**—हाकिम, सरदार, नेता ।

टीका

१. (नानक) कलियुगी स्वभाव वाले जीव मानो भूत उत्पन्न होकर पले हैं ।

२. उनके पुत्र और उनकी पुत्रियां मानो भूत और भूतनियां हैं और पत्नी उन सब भूत-प्रेतों की अग्रगामिनी है । १ ।

महला १

१. हिंदू मूले भूले अखुटी जांही ।

२. नारदि कहिआ सि पूज करांही ।

३. अंधे गुंगे अंध अंधारु ।

४. पाथरु ले पूजहि मुगध गवार ।

५. ओहि जा आपि डुबे तुम कहा तरणहारु । २ ।

पद-अर्थ

मूले—प्रारम्भ से ही, मूल रूप से ही; **अखुटी**—कुमार्ग; **नारदि**—नारद ऋषि जिसने 'पंच-रात्र' में मूर्ति पूजा लिखी है ।

टीका

१. हिन्दू प्रारम्भ से ही भूले हैं (परमात्मा की पूजा छोड़कर, मूर्तिपूजा

में लगे हुए हैं) और कुमार्ग पर जा रहे हैं।

२. जो नारद ने उन्हें उपदेश दिया है (कि मूर्तिपूजा करो तो वही) पूजा करते हैं।

३. ये अन्धे गूंगे हैं जो घोर अज्ञान में भटक रहे हैं।

४. ये मूर्ख लोग, (ग्रामीण, असभ्य), पाषाण की मूर्ति पूजते हैं।

५. (हे भाई) वे पाषाण जो स्वयं डूबते हैं आपको किस प्रकार पार होने के योग्य बना देंगे। २।

रागु वडहंसु

एकओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु।
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि॥

रागु वडहंसु महला १

पदे

१

१. अमली अमलु न अंबड़ै मछी नी नरु होइ।
२. जो रते सहि आपणे तिन भावै सभु कोइ। १।
३. हउ वारी वंञां खंनीऐ वंञा तउ साहिब के नावै। १। रहाउ।
४. साहिबु सफलिओ रुखड़ा अंम्रितु जा का नाउ।
५. जिन पीआ ते त्रिपत भए हउ तिन बलिहारै जाउ। २।
६. मै की नदरि न आवही वसही हभीआं नालि।
७. तिखा तिहाइआ किउ लहै जा सर भीतरि पालि। ३।
८. नानकु तेरा बाणीआ तू साहिबु मै रासि।
९. मन ते धोखा ता लहै जा सिफति करी अरदासि। ४। १।

पद-अर्थ

अमली—मादक द्रव्य सेवी; **अंबड़ै**—मिले, पहुँचे; **खंनीऐ-वंञा**—

टुकड़े-टुकड़े होकर न्यौछावर होऊँ; **सफलिश्रो**—फल से युक्त; **त्रिपत**—तृप्त हो गए; **मै**—मुझको; **हभीश्रां**—सभी; **सर**—जलाशय; **पालि**—दीवार; **वाणीश्रा**—व्यापारी; **रासि**—पूंजी; **धोखा**—भ्रम; **अरदासि**—प्रार्थना ।

टीका

१. जैसे मादक द्रव्य-सेवी को मादक द्रव्य न मिले अथवा मछली को पानी न मिले तो वे तड़पते हैं, (उसी प्रकार प्रभु-भक्त उसके बिना दुःखी होते हैं) ।

२. जो अपने स्वामी प्रभु के प्रेम में अनुरक्त हैं, (उनका लक्षण यह है कि) उन्हें प्रत्येक प्राणी अच्छा लगता है (क्योंकि उन्हें प्रत्येक प्राणी में प्रभु व्याप्त दिखाई देता है, प्रत्येक प्राणी उसका नाम होकर दिखाई देता है) । १ ।

३. हे प्रभु, मैं तुम स्वामी के नामों पर न्यौछावर हूँ, (समस्त जीव तुम्हारा ही नाम हैं) । १ । रहाउ ।

४. प्रभु-स्वामी एक फलदायी वृक्ष है, जिसका फल अमृत नाम है ।

५. जिन्होंने उस अमृत-नाम का पान किया है, वे तृप्त हो गए हैं, मैं उन पर बलिहारी जाता हूँ । २ ।

६. हे प्रभु, तुम मुझे दिखाई क्यों नहीं देते हो (जबकि) तुम सभी के साथ रहते हो (सब के भीतर बसते हो, मेरे भीतर भी हो) ।

७. परन्तु मेरे जैसे किसी प्यासे की प्यास कैसे शान्त हो (जबकि) मुझ प्यासे और तुम जलाशय के मध्य (भ्रम की) दीवार खड़ी है । ३ ।

८. हे प्रभु, नानक तुम्हारे नाम का व्यापारी बना है, तुम स्वामी मेरी पूंजी हो ।

९. (मैं समझता हूँ कि) मेरे मन का भ्रम तब मिट सकता है जब मैं तुम्हारी गुणस्तुति में लगूं और इसी देन के लिए प्रार्थना करता रहूँ (तब तुम मुझे अवश्य दिखाई दोगे) । ४ । १ ।

(२)

१. **गुणवंती सहु राधिका निरगुण कूके काइ ।**

२. जे गुणवंती थी रहै ता भी सहु रावण जाइ । १ ।

३. मेरा कंतु रीसालु की धन अवरा राने जी । १ । रहाउ ।

४. करणी कामण जे थीऐ जे मनु धागा होइ ।

५. माणकु मुलि न पाईऐ लीजै चिति परेइ । २ ।

६. राहु दसाई न जुलां आखां अंमड़ीआसु ।

७. तै सह नालि अकूअणा किउ थीवै घरवासु । ३ ।

८. नानक एकी बाहरा दूजा नाही कोइ ।

९. तै सह लगी जे रहै भी सहु रावै सोइ । ४ । २ ।

पद-अर्थ

गुणवंती—गुणवती नारी, गुरुमुख; **निरगुणि**—गुणहीन नारी, मनोमुख; **कूके**—रोती है; **थी रहै**—हो जाए; **रीसालू**—रसों का घर; **धन**—नारी; **करणी**—शुभ कर्म; **कामण**—जादू; **माणुक**—हीरा, माणिक्य; **दसाई**—पूछती हूँ; **जुला**—चलूं, प्रस्थान करूं; **अंमड़ीआसु**—पहुँच गई; **अकूअणा**—बोलचाल नहीं; **घरवासु**—घर का वास; **बाहरा**—बिना; **लगी**—जुड़ी रहे ।

टीका

१. गुणवती (गुरुमुख) जीव रूपी नारी प्रभु-पति के मिलाप का आनन्द प्राप्त करती है, निर्गुण (मनोमुख) क्यों रोती हैं (कि मेल नहीं हुआ, गुणों के बिना मेल नहीं हो सकता) ।

२. परन्तु यदि लह गुणवती हो जाए तो वह भी प्रभु-पति के मिलन का आनन्द प्राप्त कर सकती है । १ ।

३. मेरे प्रभु-पति समस्त सुखों के घर हैं, फिर जीव नारी सुखों को भोगने के लिए अन्य साधन क्यों खोजती है ? । १ । रहाउ ।

४. यदि (जीव रूपी नारी) शुभ कर्म को जादू बनाए और अपने मन को धागा बनाए,—

५. तो उसे (नाम रूपी) माणिक्य को जो किसी (साम्पत्तिक) मूल्य से प्राप्त नहीं होता, चित्त रूपी धागे में पिरो लेना चाहिए । २ ।

६. हे प्रभु ! तुम्हारे (देश का) मार्ग पूछती हूँ परन्तु उस माग पर चलती नहीं। व्यर्थ ही कहती हूँ कि मैं तुम्हारे देश पहुँच गई हूँ।

७. जब तुम्हारे साथ मेरी बोलचाल नहीं है, मेरा वास तुम्हारे घर किस प्रकार हो सकता है। ३।

८. (नानक) एक प्रभु के अतिरिक्त अन्य कोई सुखों का स्रोत नहीं है।

९. उस प्रभु-पति के साथ जो जीव रूपी नारी जुड़ी रहे तो वह भी उसके मिलाप का आनन्द प्राप्त कर लेती है। ४। २;

(३)

१. मोरी रुणझुण लाइआ भैणे सावणु आइआ।
२. तेरे मूंध कटारे जेवडा तिनि लोभी लोभ लुभाइआ।
३. तेरे दरसन विटहु खंनीऐ वंञा तेरे नाम विटहु कुरबाणो।
४. जा तू ता मै माणु कीआ है तुधु बिनु केहा मेरा माणो।
५. चूड़ा भंनु पलंघ सिउ मुंधे सणु बाही सणु बाहा।
६. एते वेस करेदीए मुंधे सहु राती अवराहा।
७. ना मनीआरु न चूड़ीआ ना से वंगुड़ीआहा।
८. जो सह कंठि न लगीआ जलनु सि बाहड़ीआहा।
९. सभि सहीआ सहु रावणि गईआ हउ दाधी कै दरि जावा।
१०. अंमाली हउ खरी सुचजी तै सह एकि न भावा।
११. माठि गुंदाई पटीआ भरीऐ माग संधूरे।
१२. अगै गई न मंनीआ मरउ विसूरि विसूरे।
१३. मै रोवंदी सभु जुग रुना रुंनड़े वणहु पंखेरू।
१४. इकु न रुना मेरे तनु का बिरहा जिनि हउ पिरहु विछोड़ी।
१५. सुपने आइआ भी गइआ मै जलु भरिआ रोइ।
१६. आइ न सका तुझ कनि पिआरे भेजि न सका कोइ।
१७. आउ सभागी नीदड़ीए मतु सहु देखा सोई।
१८. तै साहिब की बात जि आखै कहु नानक किआ दीजै।
१९. सीसु वढे करि बैसणु दीजै विणु सिर सेव करीजै।
१०. किउ न मरीजै जीअड़ा ना दीजै जा सहु भइआ विड़ाणा। १। ३।

पद-अर्थ

मोरी—मोरों ने; **रुण-झुण**—मधुर, हर्ष का गीत; **मुंध**—मुग्धा नारी; **कटारे**—कटार; **जेवडा**—रस्सी; **भंन**—तोड़कर; **मनीश्रारु**—चूड़ियां चढ़ाने वाला, गुरु; **वंगड़ीश्राह**—छोटी चूड़ियां; **दाथी**—(वियोग में) जली **श्रंबाली**—अम्ब आली, सहेली, सखी; **माठि गुंदाई पटीश्रा**—अत्यन्त दबा कर पट्टियां बनाईं; **विसूरि विसूरे**—दुःखी होकर; **बिरहा**—वियोग; **जल**—आंसू; **कनि**—पास, **सुभागी**—भाग्यवाली; **विडाणा**—बेगाना, परकीय।

टीका

१. (जीव रूपी नारी अपने रूपरंग और शृंगार के मान में पहले समझती है कि मैंने प्रभु पति को प्रसन्न कर रखा है और इस प्रकार कहती है) हे बहिनों, श्रावण मास आ गया है, मोरों ने मधुर गीत गाने आरम्भ कर दिए हैं (मिलन के लिए कितना सुन्दर समय है)।

२. (अतिमान में अपने आपको संबोधन करती है) हे स्त्री, (हृदयों के वेधक) तेरे नयन-कटार रस्सियों के समान जकड़ लेते हैं। इन्होंने प्रभु-पति को तेरे प्रेम में मोहित कर रखा है (वह स्वयं ही तुझे मिलेगा)।

३. (यह कहते ही उसके सम्मुख प्रियतम का सुन्दर स्वरूप आ जाता है और वह लज्जित हो जाती है) मैं तेरे दर्शन पर बलिहारी जाती हूं, मैं तेरे नाम पर न्यौछावर हो जाती हूं।

४. यदि मैंने मान किया है तो इसलिए कि तू मेरा है, नहीं तो मुझे किस बात का अभिमान हो सकता है?

५. (अब उसे अपने वास्तविक रूप का बोध हो जाता है और उसे हार-शृंगार सारहीन लगने लगते हैं) हे स्त्री, अपनी चूड़ियों को पलंग सहित तोड़ दे और पट्टियों सहित अपनी बाहों को (तोड़ दे)।

६. हे इतने शृंगार करने वाली, तेरा प्रियतम तो अन्य नारियों से प्रेम करता है (तुझे किसका अभिमान है?)।

७. न तूने उस चूड़ियों के चढ़ाने वाले गुरु की शरण ली है), न तेरे पास (गुणों और भक्ति भाव की) वे बड़ी तथा छोटी चूड़ियां हैं

जिन्हें पहनकर प्रभु पति से मिला जा सकता है।

८. तेरी वे बाहें, जो पति के गले में नहीं लगीं, जल जाएँ।

९. समस्त सखियां प्रभु पति से मिलने का आनन्द प्राप्त करने गई हैं, मैं (वियोग की अग्नि में) जली हुई किसके द्वार पर जाऊँ ?

१०. हे सखी, मैं अच्छी गुणवती हूँ (गुणवती कहां हूँ) जब कि हे पति, तुझे किसी भी कारण से (किसी एक के कारण भी) प्रिय नहीं।

११. मैंने दबा-दबा कर पट्टियां भी गुंधवाई हैं और सिर की मांग सिन्दूर से भरी है।

१२. परन्तु आगे जाकर मैं स्वीकृत नहीं होऊँगी, अतः मैं दुःखी होकर मरती हूँ।

१३. मैं रो रही हूं. (मेरी दुःखावस्था ऐसी है कि) मुझ रोती हुई को देखकर समस्त संसार रोने लग गया है और वन के पक्षी भी रोने लग गए हैं।

१४. परन्तु मेरे अभ्यन्तर का वियोग, जिसने मुझे पति से वियुक्त किया था, नहीं रोया (यदि रोया तो अब तक समस्त वियोग दूर हो गया होता)।

१५. हे प्रभु, तुम मुझे एक बार स्वप्न में (जब मैं लोक से विरक्त होकर तुम्हारे ध्यान में जाग्रत थी) मिले थे और वियुक्त हो गए थे, मैं आंसू भरकर रोई थी।

१६. हे प्रभु, मैं तुम्हारे समीप नहीं पहुँच सकती और न ही किसी को तुम्हारे समीप भेज सकती हूं। (गुणहीन होने के कारण न मैं आप तुम्हारे समीप तक पहुँच सकती हूं, न कोई अन्य मुझ गुणहीन के लिए जाने को प्रस्तुत है)।

१७. हे सौभाग्यवती निद्रा तू ही आ जा कि शायद पति के दर्शन हो जाएं जैसे कि एक बार आई थी।

१८. नानक, कह कि हे मेरे मालिक कि जिससे कदाचित् समाचार सुनाए, तो उसे भेंट में क्या दिया जाए ?

१९. (उत्तम यह है) उसे बैठने के लिये सिर काट कर दिया जाए। निर्मुण्ड होकर उसकी सेवा की जाए।

२०. जब प्रभु पति परकीय हो गया हो (जैसे मेरा हो गया हैं) तब (उसे मनाने के लिए) क्यों न अहंभाव नष्ट किया जाए और क्यों न उस पर जीवन वार दिया जाए ?। १३।

वडहंसु महला--१ छंत

(१)

१. काइआ कूड़ि विगाड़ि काहे नाईऐ ।
२. नाता सो परवाणु सचु कमाइऐ ।
३. जब साच अंदरि होइ साचा लामि साचा पाईऐ ।
४. लिखे बाझहु सुरति नाही बोलि बोलि गवाईऐ ।
५. जिथे जाइ बहीऐ भला कहीऐ सुरति सबदु लिखाईऐ ।
६. काइआ कूड़ि विगाड़ि काहे नाईऐ । १ ।
७. ता मैं कहिआ कहणु जा तुझै कहाइआ ।
८. अंम्रितु हरि का नामु मेरै मनि भाइआ ।
९. नामु मीठा मनहि लागा दूखि डेरा ढाहिआ ।
१०. सूखु मन महि आइ वसिआ जामि तै फुरमाइआ ।
११. नदरि तुधु अरदासि मेरी जिनि आपु उपाइआ ।
१२. ता मै कहिआ कहणु जा तुझै कहाइआ । २ ।
१३. वारी खसमु कढाए किरतु कमावणा ।
१४. मंदा किसै न आखि झगड़ा पावणा ।
१५. नह पाइ झगड़ा सुआमि सेती आपि आपु वञावणा ।
१६. जिसु नालि संगति करि सरीकी जाइ किआ रूआवणा ।
१७. जो देई सहणा मनहि कहणा आखि नाही बावणा ।
१८. वारी खसमु कढ़ाए किरतु कमावणा । ३ ।
१९. सभ उपाईअनु आपि आपे नदरि करे ।
२०. कउड़ा कोइ न मागै मीठा सभ मागै ।
२१. सभु कोइ मीठा मंगि देखै खसम भावै सो करे ।
२२. किछु पुन दान अनेक करणी नाम तुलि न समसरे ।
२३. नानका जिन नामु मिलिआ करमु होआ धुरि कदे ।
२४. सभ उपाईअनु आपि आपे नदरि करे । ४ । १ ।

पद-अर्थ

बिगाड़ि—बिगाड़कर, मलिन करके; **तामि**—तब; **सुरति**—ज्ञान; **कहिआ**—(नाम) कहा, स्मरण किया; **जामि**—जब; **बारी**—जन्म की वारी; **वावणा**—(गाल) बजाना, व्यर्थ बोलना, बकना- **कउड़ा**—दुःख; **मीठा**—सुख; **समसरे**—सहना, समान ;

टीका

१. शरीर को मिथ्या से मलिन करके (तीर्थ) स्थान का क्या लाभ है ?

२. प्रभु को वह स्नान स्वीकार है जो जीवन में सत्य की साधना की जाए।

३. जब सत्यमय जीवन व्यतीत करके कोई सत्यपरायण बने, तब उसे सत्य प्रभु मिलता है।

४. (अच्छे) लेख लिखे बिना, (शुभ कर्म किए बिना) यथार्थ बुद्धि नहीं बनती, व्यर्थ में बोल-बोल कर (मिथ्या बड़ी बड़ी बातें करके) निरर्थक प्रयास किया जाता है।

५. (अकः) जहां भी जाकर बैठें, भद्र वार्तालाप करें और अपनी सुरति में नाम शब्द लिखाएँ (उत्कीर्ण करलें, अंकित करलें)।

६. शरीर को मिथ्या से मलिन करके स्नान का क्या लाभ है ? । १ ।

७. हे प्रभु, मैं तुम्हारा नाम तब ही उच्चारण (स्मरण) कर सका हूं, जब तुमने स्वयं मुझसे स्मरण कराया है।

८. (उसकी कृपा से ही) प्रभु का अमृत नाम मेरे मन को प्रिय लगा है।

९ जब मेरे मन को नाम प्रिय लगा तब दुःखों ने अपना डेरा उठा लिया।

१०. हे प्रभु, परन्तु जब तुमने आदेश किया, तब सुख मेरे हृदय में आ बसा।

११. मेरा काम केवल प्रार्थना है, कृपा करना तेरा काम है (मैं कुछ भी नहीं) मेरा सारा कुछ तूने ही बनाया है।

१२. हे प्रभु, मैं तुम्हारा नाम तब ही स्मरण कर सकता हूं जब तुम स्वयं मुझसे स्मरण कराओ। २।

१३. स्वामी प्रभु जीवों के (किए) कर्मों के अनुसार जन्म देता है।

१४. अत: किसी को अभद्र कहकर विवाद नहीं करना चाहिए (सब कुछ उसी के नियमों के अनुसार होता है। अभद्र भी उसके आदेश के अनुसार होते हैं) अभद्र को अभद्र कहना प्रभु के साथ विवाद है।

१५. स्वामी के साथ विवाद नहीं करना चाहिए, इस प्रकार अपने आपको नष्ट करना है।

१६. जिस स्वामी के साथ (अविच्छेद्य) सम्बन्ध है (जीवनाधार होने से पक्का नाता है) उसके साथ सम्बन्धिता (समानता) के भाव से उपालम्भ की बात क्यों की जाए।

१७. (प्रत्युत) जो वह दे वह (प्रसन्न होकर) सहना चाहिए; अपने मन को ही समझना चाहिए; मुख से उपालम्भ के शब्द कहकर व्यर्थ अपलाप नहीं करना चाहिए।

१८. स्वामी प्रभु जीवों के (किए हुए) कर्मों के अनुसार जन्म देता है। ३।

१९. परमात्मा ने समस्त सृष्टि स्वयं बनाई है और वह प्रत्येक जीव पर अपनी कृपा-दृष्टि रखता है।

२०. (जीव इस तत्त्व को नहीं समझते) कोई भी दु:ख नहीं मांगता, सभी सुख मांगते हैं।

२१. परन्तु सभी मांग-मांग कर देख लेते हैं कि जो स्वामी को भाता है वही वह करता है।

२२. पुण्य-दान अथवा अन्य अनेक कर्म नाम के तुल्य नहीं (नाम की देन सबसे महान् है)।

२३. (नानक) जिन्हें नाम मिला है उन पर चिरकाल से, प्रारम्भ से (प्रभु की सभा से) कृपा हुई है।

२४. परमात्मा ने समस्त सृष्टि स्वयं बनाई है और वह प्रत्येक जीव पर अपनी कृपादृष्टि रखता है। ४। १।

(२)

१. करहु दइआ तेरा नामु वखाणा।

२. सभ उपाईऐ आपि आपे सरब समाणा।

३. सरबे समाणा आपि तूहै उपाइ धंधै लाईग्रा ।

४. इकि तुझ ही कीए राजे इकना भिख भवाईग्रा ।

५. लोभु मोहु तुझु कीग्रा मीठा एतु भरमि भुलाणा ।

६. सदा दइग्रा करहु आपणी तामि नामु वखाणा । १ ।

७. नामु तेरा है साचा सदा मैं मनि भाणा ।

८. दूखु गइग्रा सुखु ग्राइ समाणा ।

९. गावनि सुरिनर सुघड़ सुजाणा ।

१०. सुरिनर सुघड़ सुजाण गावहि जो तेरै मनि भावहे ।

११. माइग्रा मोहे चेतहि नाही अहिला जनमु गवावहे ।

१२. इकि मूड़ मुगध न चेतहि मूले जो ग्राइआ तिसु जाणा ।

१३. नामु तेरा सदा साचा सोइ मैं मनि भाणा । २ ।

१४. तेरा वखतु सुहावा ग्रंम्रितु तेरी बाणी ।

१५. सेवक सेवहि भाउ करि लागा साउ पराणी ।

१६. साउ प्राणी तिना लागा जिनी ग्रंम्रितु पाइग्रा ।

१७. नामि तेरै जोइ राते नित चड़हि सवाइआ ।

१८. इकु करमु धरमु न होइ संजमु जामि न एकु पछाणी ।

१९. वखतु सुहावा सदा तेरा ग्रंम्रित तेरी बाणी । ३ ।

२०. हउ बलिहारी साचे नावै ।

२१. राजु तेरा कबहु न जावै ।

२२. राजो त तेरा सदा निहचलु एहु कबहु न जावए ।

२३. चाकरु त तेरा सोइ होवै जोइ सहजि समावए ।

२४. दुसमनु त दूखु न लगै मूले पापु नेड़ि न ग्रावए ।

२५. हउ बलिहारी सदा होवा एक तेरे नावए । ४ ।

२६. जुगह जुगंतरि भगत तुमारे ।

२७. कीरति करहि सुग्रामी तेरे दुग्रारे ।

२८. साचा मुरारे तामि जापहि जामि मंनि बसावहे ।

२९. भरमो भुलावा तुझहि कीग्रा जामि एहु चुकावहे ।

३०. गुर परसादी करहु किरपा लेहु जमहु उबारे ।

३१. जुगहु जुगंतरि भगत तुमारे । ५ ।
३२. वडे मेरे साहिबा अलख अपारा ।
३३. किउकरि करउ बेनंती हउ आखि न जाणा ।
३४. नदरि करहि ता साचु पछाणा ।
३५. साचो पछाणा तामि तेरा जामि आपि बुझावहे ।
३६. दूख भूख संसारि कीए सहसा एहु चुकावहे ।
३७. बिनवंति नानकु जाइ सहसा बुझै गुर बीचारा ।
३८. वडा साहिबु है आपि अलख अपारा । ६ ।
३९. तेरे बंके लोइण दंत रीसाला ।
४०. सोहणे नक जिन लंमड़े वाला ।
४१. कंचन काइआ सुइने की ढाला ।
४२. सोवंन ढाला क्रिसन माला जपहु तुसी सहेलीहो ।
४३. जम दुआरि न होहु खड़ीआ सिख सुणहु सहेलीहो ।
४४. हंस हंसा बग बगा लहै मन की जाला ।
४५. बंके लोइण दंत रीसाला । ७ ।
४६. तेरी चाल सुहावी मधुराड़ी बाणी ।
४७. कुहकनि कोकिला तरल जुआणी ।
४८. तरला जुआणी आपि भाणी इछ मन की पूरीए ।
४९. सारंग जिउ पगु धरै ठिमि ठिमि आपि आपु संधूरए ।
५०. स्रीरंग रानी फिरै माती उदकु गंगा वाणी ।
५१. बिनवंति नानकु दासु हरि का तेरी चाल सुहावी मधुराड़ी वाणी । ८ । २ ।

पद-अर्थ

वखाणा—जपूं; धंधै—काम काज में; भिख भवाईआ—भिक्षा के लिए घुमाता है; सुरिनर—देवोपम पुरुष, उत्तम पुरुष; अहिला—श्रेष्ठ, उत्तम; मूले—नितान्त; वखतु—समय; भाउ—प्रेम; सउ—स्वाद; चाकरु—सेवक, दास; सहजि—तीन गुणों से ऊपर चतुर्थ पद; जुगह जुगंतरि—युग

युगों में; **उबारे**—बचा लिए; **सहसा**—संशय, भ्रम; **बंके**—बांके, सुन्दर; **लोइण**—लोचन, नयन; **दंत रीसाला**—सुन्दर दांत; **लंमड़े**—लम्बे, दीर्घ; **कंचन**—सुवर्ण; **ढाला**—ढली हुई; **सोवंन**—सुवर्ण की; **क्रिसन माला**—कृष्ण की माला जो घुटनों तक की, जयमाला; **महेलीहो**—महिलाओ, नारियो; **जाला**—जंग, मैल; **मधुराड़ी**—मीठी, मधुर; **वाणी**—बोली; **कुहकनि**—कूकती हैं; **कोकिला**—कोयल; **तरल**—चमकीली, चंचल; **जुआणी**—यौवन; **सारंग**—हस्ती; **पग**—पाद; **ठिमि ठिसि**—मटक मटक कर; **संधूरए**—मस्त होता है; **स्रीरंग**—लक्ष्मी का पति, प्रभु; **मालो**—मस्त; **उदकु**—जल; **वाणी**—तुल्य, जैसे।

टीका

१. हे प्रभु, कृपा करो कि मैं तुम्हारा नाम स्मरण कर सकूं।

२. तुमने स्वयं ही समस्त सृष्टि उत्पन्न की है और सब में स्वयं ही व्यापक हो।

३. तुम स्वयं सबमें समाए हुए हो, तुमने स्वयं सृष्टि उत्पन्न करके प्रत्येक प्राणी को काम-काज में लगा रखा है।

४. तुम ने कितनों को राजा बना दिया है, और कितनों को भिक्षा के लिए (द्वार-द्वार) घुमाते हो।

५. तुमने स्वयं ही मनुष्यों के लिए लोभ-मोह मधुर कर दिया है और उन्हें भ्रम में डाल दिया हैं।

६. हे प्रभु, सदा अपनी कृपा करो जिससे मैं तुम्हारा नाम स्मरण करता रहूं। १।

७. हे प्रभु, तुम्हारा नाम सत्य है। अतः मेरे मन को सदा अच्छा लगता है।

८. अब (नाम जपकर) मेरा दुःख नष्ट हुआ है और सुख मेरे हृयब में आ बसा है।

९. उत्तम, पटु और बुद्धिमान् पुरुष तुम्मारे नाम के गीत गाते हैं।

१०. तुम्हारी गुण-स्तुति वे उत्तम, पटु और बुद्धिमान् पुरुष करते हैं जो तुम्हें प्रिय लगते हैं।

११. माया के मोह में फँसे कई लोग तुम्हारा स्मरण नहीं करते। वे

उत्तम मनुष्य जन्म व्यर्थ गवां देते हैं ।

१२. कई मूढ़, मूर्ख सर्वथा तुम्हारा स्मरण नहीं करते (और यह भूल जाते हैं कि) जो संसार में आया है उसे मरना है ।

१३. हे प्रभु, तुम्हारा नाम सदा सत्य है और मेरे मन को प्रिय लगता है। २।

१४. तुम्हारा समय (वह समय जब तुम याद आओ तुम्हारा समय है) सुन्दर है, तुम्हारी बाणी (गुणस्तुति) अमर करने वाली है ।

१५. जिन प्राणियों को तुम्हारे नाम का चस्का लग गया है वे तुम्हारे सेवक होकर, प्रेम के साथ, तुम्हारा नाम-स्मरण करते हैं ।

१६. परन्तु (नाम का चसका) उन्हें ही लगा है जिन्होंने नाम-अमृत प्राप्त कर लिया है ।

१७. जो तुम्हारे नाम में अनुरक्त हैं, वे सदा फलते-फूलते हैं ।

१८. जब तक मुझे तुम्हारे एक नाम की पहचान नही होती, मेरा अन्य कोई भी कर्म, धर्म और संयम सार्थक नहीं ।

१९. तुम्हारा समय (जब तुम स्मरण आओ) सुन्दर है, तुम्हारी बाणी (गुण-स्तुति) अमर करने वाली है । ३ ।

२०. हे प्रभु, मैं तुम्हारे सत्य नाम पर न्यौछावर हूं ।

२१. तुम्हारा राज्य कभी नष्ट नहीं होता ।

२२. हे हरि, तुम्हारा राज्य सदा अविचाल्य है । यह कभी नष्ट नहीं होता ।

२३. (इस राज्य में) तुम्हारा सेवक वही बनता है जो सहजावस्था में विचरता है ।

२४. शत्रु अथवा दुःख सर्वथा उसके समीप नहीं आता, न पाप उसके निकट आता है ।

२५. मैं सदा तुम्हारे एक नाम का बलिहारी हूँ । ४ ।

२६. हे प्रभु, युगों-युगों से तुम्हारे भक्त होते आए हैं ।

२७. वे तुम्हारे द्वार पर खड़े तुम्हारा यशोगान करते रहे हैं ।

२८. वे सच्चे मुरारी प्रभु को जपते हैं । हे प्रभु, वे तुम्हारा सत्य नाम तब ही जपते हैं जब तुम अपना प्रेम उनके हृदय में बसाते हो ।

२९. (और तुम प्रेम उनके हृदय में तब बसाते हो) जब तुम पहले उनका

संशय भ्रम दूर कर देते हो तो उत्पन्न भी तुम्हीं करते हो।

३०. तुम ही गुरु के द्वारा कृपा करते हो और अपने भक्तों को यमदूतों से बचा लेते हो।

३१. हे प्रभु, युगों-युगों से तुम्हारे भक्त होते आए हैं। ५।

३२. हे मेरे महान् स्वामी प्रभु, तुम अलक्ष्य हो और पारावार से रहित हो।

३३. मैं तुम्हारे द्वार पर किस प्रकार विनय करूं, मुझे तो विनय करनी आती भी नहीं।

३४. यदि तुम कृपा करो तो मुझे सत्य का ज्ञान हो।

३५. मैं तुम्हारे सत्य की पहचान तब कर सकता हूँ जब तुम स्वयं ज्ञान दो।

३६. और जब तुम यह भ्रम दूर कर दो कि संसार में दुःख और भूख कहीं अन्य स्थान से नहीं आए, तुमने स्वयं ही उत्पन्न किए हैं।

३७. (नानक) विनती करता है कि) सहसा (भ्रम) तब नष्ट होता है जब मनुष्य गुरु के शब्द का ज्ञान समझता हैं।

३८. मेरा प्रभु महान् स्वामी है, वह अलक्ष्य और अपार है। ६।

३९. (छंद के अन्तिम दो पद्यों में हरि को सुन्दरता को मूर्ति निरुपित किया गया हैं। उसकी सुन्दरता अपार और अलक्ष्य है परन्तु इस जगत् में दृश्यमान सौन्दर्य की भाषा में जितनी कही जा सकती है, वर्णन की गई है) कहने का भाव यह है कि वह जैसे सत्य, ज्ञान का स्रोत हैं वैसे ही सुन्दरता का स्रोत भी है। जैसे उसे सत्य के कारण स्मरण किया जाता है वैसे ही सुन्दरता के कारण भी। सति सुहाणु सदा मनि चाउ जु होइआ।) हे प्रभु, तुम्हारे नयन बाँके हैं और दाँत सुन्दर हैं।

४०. तुम्हारी नाक सुन्दर है और बाल लम्बे हैं।

४१. तुम्हारी देह सुवर्ण के समान शुद्ध है, मानो सुवर्ण की ही ढली हुई है।

४२. हे सहेलियो (सत्संगियो) तुम उस प्रभु के नाम की माला जपो जिस का शरीर सुवर्ण का ढला हुआ है।

४३. हे स्त्रियो, यह मेरी शिक्षा सुनो फिर तुम यम के द्वार पह (कर्मों का लेखा देने के लिए खड़ी नहीं की जाओगी)।

४४. प्रभु के स्मरण से मन का मल उतर जाता है, और बड़े-बड़े बगुलों (महान पाखण्डियों) से बड़े हंस (महान् पवित्र पुरुष) हो जाते हैं।

४५. हे प्रभु, तुम्हारे नयन बाँके हैं और दाँत सुन्दर हैं। ७।

४६. हे प्रभु, तुम्हारी चाल सुन्दर हैं और बोली मीठी मधुर है।

४७. तुम्हारी बोली कोकिलों की कूक के समान (मधुर) है और यौवन उन्माद से पूर्ण है।

४८. यह उन्माद पूर्ण यौवन स्वयं उसे प्रिय है और उसने इस यौवन से अपने मन की इच्छा पूर्ण की है।

४९. वह हाथी के समान मटक-मटक कर चलता है और अपने आपको आप ही मस्त करता है (स्वयं मत्त हो रहा है)।

५०. (सुन्दरता के इस स्रोत) प्रभु के प्रेम में (लक्ष्मी मस्त) फिरती है जैसे गंगा का जल फिरता है।

५१. हरि का दास नानक विनति करता है, हे प्रभु, तुम्हारी चाल सुन्दर है और बोली मधुर है। ४। २।

रागु बडहंसु महला — १

अलाहणीआ (अलाहणी = शोक-गीत)

(१)

१. **धंनु सिरंदा सचा पातिसाहु जिनि जगु धंधै लाइआ।**
२. **भुहलति पुनी पाई भरी जानीअड़ा घति चलाइआ।**
३. **जानी घति चलाइआ लिखिआ आइआ रुने वीर सबाए।**
४. **कांइआ हंस थीआ वेछोड़ा जां दिन पुंने मेरी माए।**
५. **जेहा लिखिआ तेहा पाइआ जेहा पुरबि कमाइआ।**
६. **धंनु सिरंदा सचा पातिसाहु जिनि जगु धंधै लाइआ। १।**
७. **साहिबु सिमरहु मेरे भाईहो सभना एहु पइआणा।**
८. **एथै धंधा कूड़ा चारि दिहा आगै सरपर जाणा।**
९. **आगै सरपर जाणा जिउ मिहमाणा काहे गारबु कीजै।**
१०. **जितु सेविऐ दरगाह सुखु पाईऐ नामु तिसै का लीजै।**

११. आगै हुकमु न चलै मूले सिरि सिरि किआ विहाणा ।
१२. साहिबु सिमरिहु मेरे भाईहो सभना एहु पइआणा । २ ।
१३. जो तिसु भावै संम्रथ सो थीऐ हीलड़ा एहु संसारो ।
१४. जलि थलि महीअलि रवि रहिआ साचड़ा सिरजणहारो ।
१५. साचा सिरजणहारो अलख अपारो ता का अंतु न पाइआ ।
१६. आइआ तिन का सफलु भइआ है इक मनि जिनी धिआइआ ।
१७. ढाहे ढाहि उसारे आपे हुकमि सवारण हारो ।
१८. जो तिसु भावै संम्रथ सो थीऐ हीलड़ा एहु संसारो । ३ ।
१९. नानक रुंना बाबा जाणीऐ जे रोवै लाइ पिआरो ।
२०. वालेवे कारणि बाबा रोईऐ रोवणु सगल बिकारो ।
२१. रोवणु सगल बिकारो गाफलु संसारो माइआ कारणि रोवै ।
२२. चंगा मंदा किछु सूझै नाही इहु तनु एवै खोवै ।
२३. ऐथै आइआ सभु को जासी कूड़ी करहु अहंकारो ।
२४. नानक रुंना बाबा जाणीऐ जे रोवै लाइ पिआरो । ४ । १ ।

पद-अर्थ

अलाहणीआ—मृत्यु के समय, शोक में गाए जाने वाले गीत; **सिरंदा**—स्रष्टा; **धंधै**—काम काज; **मुहलति**—आयु की अवधि; **पुनी**—पूर्ण हुई; **पाई**—कालज्ञानार्थ प्रयोग की जाने वाली जल घटी रूपी प्याली, जीवन का समय; **जानीअड़ा**—प्रिय मित्र; **धति चलाइआ**—आगे कर लिया; **सबाए**—समस्त; **हंस**—आत्मा; **थीआ**—हुआ; **पुने**—पूर्ण हुए; **पुरबि**—पहला; **पइआणा**—कूच करना; **दिहा**—दिनों का; **सरपर**—अवश्य; **गारब**—अहंकार; **विहाणा**—बीतेगी; **संम्रथ**—समर्थ; **हीलड़ा**—बहाना; **ढाहे**—नष्ट करता है; **उसारे**—बनाता है; **वालेवे**—पदार्थों के लिए; **बिकारो**—बेकार, व्यर्थ; **गाफुल**—असावधान; **खोवै**—खोता है ।

टीका

१. धन्य है वह सृष्टि-कर्त्ता, धन्य है वह सदा स्थिर रहने वाला राजा,

जिसने समस्त जीवों को कामकाज में लगा रखा है।

२. जब जीव का समय पूर्ण हो जाता है, जब आयु की प्याली भर जाती है तब इस शरीर के प्रिय मित्र (आत्मा) को पकड़कर आगे कर दिया जाता है।

३. प्रिय, आत्मा, को आगे कर लिया जाता है जब प्रभु की ओर से आदेश आ जाता हे। तब सब सम्बन्धी-भाई रोने लग जाते हैं।

४. हे मेरी माता, जब दिन पूर्ण हो गए तो आत्मा और शरीर का वियोग हो जाता है।

५. फिर जीव ने जो-जो कर्म किए हैं, कर्मों का लेखा उसने आप लिखा है उसके अनुसार उसे फल मिलता है।

६. धन्य है वह सृष्टि-कर्त्ता, धन्य है वह सत्य राजा, जिसने समस्त जीवों को कामकाज में लगा रखा है। १।

७. हे मेरे भाइयो, स्वामी का स्मरण करो। यहाँ से सब को प्रस्थान करना है।

८. संसार के जिन मिथ्या धन्धों में लगे हो, वे अल्पकालिक हैं। यहाँ से आगे अवश्य चले जाना है।

९. जब यहाँ से अवश्य आगे चले जाना है जैसे अभ्यागत चला जाता है तब सांसारिक पदार्थों का अभिमान क्यों किया जाए?

१०. (अत:) जिस प्रभु के स्मरण से सभा में सुख मिले, उसका नाम-स्मरण करना चाहिए।

११. आगे किसी का शासन (बल) नहीं चलता। वहाँ ही ज्ञात होगा कि किसी के ऊपर क्या बीतती है। (कर्मों के अनुसार ही निर्णय होता है)।

१२. हे मेरे भाइयो, स्वामी का स्मरण करो। सभी को यहाँ से जाना है। २।

१३. जो उस शक्तिमान् प्रभु को अच्छा लगता है, वही होता है; यह संसार तो उसने अपनी इच्छा को प्रकट करने का एक ब्याज बना रखा है।

१४. वह सत्य सृष्टि-कर्त्ता जल, भूमि, स्थल और आकाश के मध्य सर्वत्र बसा हुआ है।

१५. वह सत्य कर्त्ता है, अलक्ष्य है, पारावार रहित है और उसका अन्त नहीं पाया जा सकता।

१६. यहाँ उन मनुष्यों का ही जन्म सफल हुआ है जिन्होंने एक मन से उसका स्मरण किया है।

१७. वह प्रभु स्वयं संसार को नष्ट करता है, और नाश करके फिर स्वयं ही बनाता है और अपने आदेश से जीवों को उत्तम जीवन वाला बनाता है।

१८. जो उस शक्तिमान् प्रभु को अच्छा लगता है, वही होता है, यह संसार तो उसने अपनी इच्छा को प्रकट करने का एक ब्याज बना रखा है। ३।

१९. (नानक एक रोना ठीक भी है) रोना उस जीव का ठीक है: भाइयो, जो प्रभु के प्रेम में रोता है।

२०. परन्तु, हे भाई, पदार्थों के कारण रोना सर्वथा व्यर्थ है;

२१. माया के कारण रोने वाला संसार असावधान है, उसका रोना व्यर्थ हैं।

२२. वह सत् असत् में विवेक नहीं कर सकता और वह इस शरीर (जन्म) को व्यर्थ खोता है।

२३. हे भाई, जो भी संसार में आया है, निसन्देह यहाँ से चला जाएगा। तुम मिथ्या में लगकर अहंकार करते हो।

२४. (नानक) रोना उस जीव का ठीक है, भाइयो, जो प्रभु के प्रेम में रोता है। ४।

(२)

१. आवहु मिलहु सहेलीहो सचड़ा नामु लएहां।

२. रोवह बिरहा तन का आपणा साहिबु संम्हालेहां।

३. साहिबु सम्हालिह पंथु निहालिह असा भि उथै जाणा।

४. जिस का कीआ तिन ही लीआ होआ तिसै का भाणा।

५. जो तिनि करि पाइआ सु आगै आइआ असी कि हुकमु करेहा।

६. आवहु मिलहु सहेलीहो सचड़ा नामु लएहा। १।

७. मरणु न मंदा लोका आखीऐ जे मरि जाणै ऐसा कोइ ।

८. सेविहु साहिबु संम्रथु आपणा पंथु सुहेला आगै होइ ।

९. पंथि सुहेलै जावहु तां फलु पावहु अगै मिलै वडाई ।

१०. भेटै सिउ जावहु सचि समावहु तां पति लेखै पाई ।

११. महली जाइ पावहु खसमै भावहु रंग सिउ रलीआ माणै ।

१२. मरणु न मंदा लोका आखीऐ जे कोई मरि जाणै । २ ।

१३. मरणु मुणसा सूरिआ हकु है जो होइ मरनि परवाणो ।

१४. सूरे सेई आगै आखीअहि दरगह पावहि साची माणो ।

१५. दरगह माणु पावहि पति सिउ जावहि आगै दूखु न लागै ।

१६. करि एकु धिआवहि तां फलु पावहि जितु सेविऐ भउ भागै ।

१७. ऊचा नहीं कहणा मन महि रहणा आपे जाणै जाणो ।

१८. मरणु मुणसां सूरिआ हकु है जो होइ मरहि परवाणो । ३ ।

१९. नानक किस नो बाबा रोईऐ बाजी है इहु संसारो ।

२०. कीता वेखै साहिबु आपणा कुदरति करे बीचारो ।

२१. कुदरति बीचारे धारण धारे जिनि कीआ सो जाणै ।

२२. आपे वेखै आपे बूझै आपे हुकमु पछाणै ।

२३. जिनि किछु कीआ सोई जाणै ता का रूपु अपारो ।

२४. नानक किस नो बाबा रोईऐ बाजी है इहु संसारो । ४ । २ ।

पद-अर्थ

लएहां—लें; **पंथु**—(जीवन का) मार्ग; **निहालिह**—देखें, संभालें; **सुहेला**—सरल; **भेटै**—भेंट लेकर; **मुणसां**—मनुष्यों; **हक**—ठीक; **पति**—प्रतिष्ठा; **ऊचा नहीं कहणा**—किसी को उच्च स्वर में मन का भाव प्रकट करने की आवश्यकता नहीं; **मन महि रहणा**—अपने मन के भीतर स्थिर चाहिए; **बाजी**—खेल; **धारण धारे**—अवलम्ब देता है ।

टीका

१. हे सहेलियो (सत्संगियो) आओ, मिलकर बैठें और प्रभु के सत्य नाम

का स्मरण करें ।

२. (हरि से) शरीर के बिछोह (अपने वियोग) पर दुःख प्रकट करें और अपने स्वामी प्रभु का स्मरण करें ।

३. स्वामी प्रभु का स्मरण करें (जीवन के) मार्ग को देखें (इस की संभाल करें) । क्योंकि, हमें भी अन्त में परलोक जाना है, (जहां हमारा यह मृत पति गया है) ।

४. जिस प्रभु ने यह जीव (जो अब मृत्यु को प्राप्त है) उत्पन्न किया था, उसने उसे वापिस ले लिया है, उसी की इच्छा पूर्ण हुई है ।

५. जो इस जीव ने यहां किया है उसे वह आगे भोगना है, हमारा शासन (बल) क्या चल सकता है ।

६. हे सहेलियों, आओ, मिलकर बैठें और प्रभु के सत्य नाम का स्मरण करें । १ ।

७. हे लोगो, मृत्यु को दुष्ट न कहो (मृत्यु अच्छी है) यदि कोई ठीक जीवन व्यतीत करके मरना जानता हो (यह ज्ञान इस प्रकार आता हैं)—

८. अपने समर्थ स्वामी का स्मरण करो, जिससे आगे परलोक का मार्ग भी सुगम हो जाए ।

९. यदि जीवन मार्ग पर सुख से चलोगे, तो इसका ही फल आगे मिलेगा और ईश्वरीय सभा में प्रतिष्ठा प्राप्त करोगे ।

१०. (यदि गुणों की) भेंट लेकर जाओगे तो सत्य प्रभु में समाओगे, तभी तुम्हारी प्रतिष्ठा बढ़ेगी, स्वीकृत होगी ।

११. प्रभु की सभा में स्थान मिलेगा, उसे अच्छे लगोगे और प्रभु पति तुम्हारे साथ मिलकर प्रेम सहित प्रसन्न होगा ।

१२. हे लोगों, मृत्यु को दुष्ट न कहो (मृत्यु अच्छी है) यदि कोई (सही जीवन व्यतीत करके) मरना जानता हो । २ ।

१३. उन शूरवीर पुरुषों का मरना सच्चा (ठीक) है जो यहां प्रामाणिक होकर मरते हैं ।

१४. आगे वही वीर माने जाते हैं जिन्हें सच्ची सभा में प्रतिष्ठा दी जाती है ।

१५. वे सभा में मान प्राप्त करते हैं, प्रतिष्ठा के साथ यहां से जाते हैं

और आगे उन्हें दु:ख नहीं होता ।

१६. जो मनुष्य प्रभु को एक (अनुपमेय) जानकर स्मरण करते हैं, उन्हें फल प्राप्त होता है, प्रभु के स्मरण करने से उनका भय नष्ट होता है।

१७. हे भाई. किसी को उच्च-नीच कहने की आवश्यकता नहीं; अपने मन के भीतर ही स्थिर रहना चाहिए। वह अन्तर्यामी प्रभु प्रत्येक के मन की जानता है।

१८. उन्हीं शूरवीर पुरुषों का मरना ठीक है जो यहां से प्रामाणिक होकर मरते हैं। ३।

१९. (नानक) किस के मरने पर कोई रोए ? यह समस्त संसार ही (चार दिनों का) एक खेल है।

२०. स्वामी प्रभु अपने बनाए संसार की स्वयं संभाल करता है, और सृष्टि (रचना) की समस्त क्रीड़ा को चलाने का विचार करता है।

२१. वह अपनी रचना के चलाने का ध्यान करता है, उसे अवलम्ब देता है। जिस प्रभु ने यह रचना की है वही इसकी आवश्यकताएँ भी जानता है।

२२. प्रभु स्वयं ही सबकी संभाल करता है, स्वयं ही मनों को जानता है और स्वयं ही अपने आदेश को जानता है (कि किस प्रकार खेल को आदेश के अनुसार रखना है)।

२३. जिस प्रभु ने सृष्टि बनाई है, वही इसे जानता है, उसका स्वरूप अनन्त है।

२४. (नानक) किस के मरने पर कोई रोए। भाइयों, यह समस्त संसार ही चार दिन की क्रीड़ा हैं। ४। २।

(३)

१. सचु सिरंदा सचा जाणीऐ सचड़ा परवरदगारो।

२. जिनि आपी नै आप साजिआ सचड़ा अलख अपारो।

३. दइ पुड़ जोड़ि विछोड़िअनु गुर बिनु घोरु अंधारो।

४. सूरज चंदु सिरजिअनु अहिनिसि चलतु वीचारो। १।

५. सचड़ा साहिबु सचु तू सचड़ा देहि पिआरो। रहाउ।

६. तुधु सिरजी मेदनी दुखु सुखु देवणहारो ।
७. नारी पुरख सिरजिऐ बिखु माइआ मोहु पिआरो ।
८. खाणी बाणी तेरीआ देहि जीआ आधारो ।
९. कुदरति तखतु रचाइआ सचि निबेड़णहारो । २ ।
१०. आवागवणु सिरजिआ तू थिरु करणैहारो ।
११. जंमणु मरणा आइ गइआ बधिकु जीउ बिकारो ।
१२. भूडड़ै नामु विसारिआ बुडड़ै किआ तिसु चारो ।
१३. गुण छोडि बिखु लदिआ अवगुण का वणजारो । ३ ।
१४. सदड़े आए तिना जानीआ हुकमि सचे करतारो ।
१५. नारी पुरख विछुंनिआ विछुड़िआ मेलणहारो ।
१६. रूपु ना जाणै सोहणीऐ हुकमि बधी सिरिकारो ।
१७. बालक बिरधि न जाणनी तोड़नि हेतु पिआरो । ४ ।
१८. नउ दर ठाके हुकमि सचै हंसु गइआ गैणारे ।
१९. साधन छुटी मुठी झूठि विधणीआ मिरतकड़ा अङनड़े बारे ।
२०. सुरति मुई मरु माईए महल रुंनी दरवारे ।
२१. रोवहु कंत महेलीहो सचे के गुण सारे । ५ ।
२२. जलि मलि जानी नावालिआ कपड़ि पटि अंबारे ।
२३. वाजे वजे सची बाणीआ पंच मुए मनु मारे ।
२४. जानी विछुंनड़े मेरा मरणु भइआ ध्रिग, जीवणु संसारे ।
२५. जीवतु मरै सु जाणीऐ पिर सचड़ै हेति पिआरे । ६ ।
२६. तुसीं रोवहु रोवण आईहो झूठि मुठी संसारे ।
२७. हउ मुठड़ी धंधे धावणीआ पिरि छोडिअड़ी विधणकारे ।
२८. घरि घरि कंत महेलीआ रूड़ै हेति पिआरे ।
२९. मै पिरु सचु सालाहणा हउ रहसिअड़ी नामि भतारे । ७ ।
३०. गुर मिलिऐ वेसु पलटिआ साधन सचु सीगारो ।
३१. आवहु मिलहु सहेलीहो सिमरहु सिरजणहारो ।
३२. बई अरि नामि सोहागणी सचु सवारणहारो ।
३३. गावहु गीतु न बिरहड़ा नानक ब्रहम बीचारो । ४ । ३ ।

पद-अर्थ

परवरदगारो—परवरदिगार, पालने वाला, प्रभु; **दुइ पुड़**—दोनों पाट, पृथ्वी और आकाश; **अहिनिसि**—दिन रात; **मेदनी**—सृष्टि; **खाणी**—उत्पत्ति के चार स्रोत (जरायुज आदि); **बाणी**—बोलियाँ; **थिरु—**निश्चल; **बधिकु**—बंधा हुआ; **बिकारो**—विकारों में; भूडड़े—अभद्र पुरुष; **बूडड़ै**—डूबता है; **चारो—**चारा; उपाय; **जानीआ**—प्यारों को; **हेतु**—हित, प्रेम; **नउदर**—नौ द्वार, (दो कान, दो आँख, दो नासिका, मुख, गुदा, लिंग); **हंसु**—जीवात्मा; **गैणारे**—आकाश को, ईश्वरीय सभा को; **साधन**—स्त्री; **छुटी**—पति से वियुक्त; **मुठी**—ठगी हुई; **विधणीआं**—प्रियतम (पति) के बिना, विधवा; **मिरतकहा**—मृतक; **अंङनड़े बारे**—आँगन के द्वार में; **सुरति**—बुद्धि, मति; **महेलीहो**—स्त्रियों; **अंबारे**—वस्त्र, कपड़े; **सची वाणीआ**—राम नाम सति है आदि शब्द; **पंच**—पाँच सम्बन्धी; (माता, पिता, भ्राता, पत्नी, पुत्र); **मुए मनु मारे**—मन मार कर, शोक दबा कर, मृत जैसे हो गए; **धाव ीआं**—दुविधाएँ; **विधनकारे**—विधवाएँ; **रूड़ै**—सुंदर प्रभु; **रहसिअड़ी**—आनन्दित; **बईअरि**—वधू; **विरहड़ा**—वियोग।

टीका

१. स्रष्टा प्रभु सत्य है, उसी को सत्य समझो, वह पालनकर्त्ता है।

२. जिस प्रभु ने स्वयं ही अपने आपको बनाया है वह अलक्ष्य और अनन्त सत्य है।

३. उसने पृथ्वी और आकाश के दो पाट मिलाकर (बनाकर) फिर पृथक् पृथक् कर दिए हैं। (उसकी लीला अथाह है) गुरु के बिना (अज्ञान का) घोर अन्धकार रहता है।

४. उसने सूर्य और चन्द्र उत्पन्न किए हैं और इस प्रकार दिन और रात के चक्र का क्रम (खेल) सोचा है। १।

५. हे प्रभु, तुम सदा स्वामी हो, तुम सत्य हो और अपना सत्य प्रेम प्रदान करने वाले हो। रहाउ।

६. हे प्रभु, तुमने ही सृष्टि उत्पन्न की है और तुम ही दुःख-सुख के दाता हो।

७. तुमने ही स्त्रियाँ और पुरुष उत्पन्न किए हैं और उन्हें विष माया का मोह लगाया है।

८. (जरायुज आदि) चारों जीव-जातियों और उनके जीवों की बोलियाँ तुम्हारी ही है और तुम ही जीवों को जीवन-यापन का साधन देते हो।

९. तुमने ही प्रकृति को अपने बैठने का तख्त बनाया है जहाँ बैठकर तुम सत्य से न्याय करते हो। २।

१०. हे स्रष्टा, तुमने ही जन्म-मरण बनाया है, आप स्थिर (सर्वदा विद्य-मान) हो।

११. तुमने ही जन्म मरण बनाया है। अपने विकारी जीवन के कारण जीव जन्म-मरण के चक्र में बद्ध हैं।

१२. नीच-मलिन जीव ने नाम भुला दिया है। फिर यह डूबता है, इसका क्या वश चल सकता है? (यह किस प्रकार बच सकता है)?

१३. गुणों का त्याग करके यह माया-विष को एकत्र करता रहा है और अवगुणों का व्यापारी बना रहा है। ३।

१४. (जब) सत्य स्रष्टा के आदेश के अनुसार (स्त्रियों के) प्रियतमों को मृत्यु के बुलावे आते हैं,—

१५. (तब) स्त्रियों के प्रियतम बिछुड़ जाते हैं! वियोगिनियों को (अब कौन मिलाए), मिलाने वाला तो केवल प्रभु है जिसने स्वयं वियुक्त किया है।

१६. मृत्यु को आदेश पालन करना पड़ता है, वह सुन्दरियों के रूप की चिन्ता नहीं करती (जो आदेश है वही करती है)।

१७. उसके (यमदूत) यह भी चिन्ता नहीं करते कि कोई (मरने वाला) बालक है अथवा वृद्ध। वे समस्त हित-प्यार तोड़ देते हैं। ४।

१८. सत्य प्रभु के आदेश से शरीर के नौ दवार बंद हो गए और हंस (जीवात्मा) आकाश (परलोक) को चला गया।

१९. स्त्री (जिसका पति मर गया) पति से छूट गई। इसे मिथ्या ने ठग लिया और यह विधवा हो गई है, और इसके पति का शव आंगन के द्वार में पड़ा है।

२०. (और वह दुःख में कहती है) हे मां, (इसके मरने से) मेरी बुद्धि

मारी गई है; तू इसके साथ मेरी भी मृत्यु समझ ले। घर के द्वारपर बैठी स्त्री इस प्रकार रोती है।

२१. हे पति-परमेश्वर की जीव स्त्रियों, यदि तुम्हें रोना है तो सत्य प्रभु के गुण याद करके प्रेम वश रोओ। ५।

२२. प्राणी को मल मलकर जल से नहलाया गया और उस पर रेशमी वस्त्र लपेटे गए।

२३. बाजे बजाए गए, ('राम नाम सति है' आदि) अच्छे-अच्छे शब्द गाए गए और निकट सम्बन्धी मन मारकर (दुःख के साथ) मृतकों जैसे हो गए।

२४. (उस समय स्त्री कहती है) मेरे पति के बिछुड़ जाने से मेरा जीवन भी मरने के समान हो गया है संसार में मेरे जीवन को धिक्कार है।

२५. परन्तु वास्तविक मरना तो उसका होता है जो सत्य पति प्रभु के प्रेम के कारण जीवित-भाव को मार दे। ६।

२६. (छंद के आगामी दो पद्यों में एक ज्ञानवती जीव रूपी नारी अपना व्यक्तिगत अनुभव कहती है) हे जीव रूपी नारियो, तुम निरसन्देह रोओ। तुम संसार में रोने के लिए ही आई हो; क्योंकि तुम विश्व की मिथ्या वस्तुओं को सत्य मानकर प्रतारणावस्था में रही हो।

२७. मैं भी प्रतारित होकर जगत् के धन्धों में भटकती रही हूं. और पतिविहीना स्त्रियों वाले कामों के कारण पति द्वारा छोड़ी गई हूं।

२८. (मै जानती हूँ कि) घर-घर में उन स्त्रियों के लिए प्रियतम है जो सुन्दर पति से प्रेम करती हैं।

२९. मैंने भी जब सत्य पति की स्तुति की है तब मुझे सत्य पति के नाम के बल से आनन्द की प्राप्ति हुई है। ७।

३०. गुरु के मिलने से मेरा वेष बदल गया है और मुझ स्त्री को वास्तविक रूप शृंगार मिला है।

३१. हे सहेलियों, आओ, मिलकर बैठें, और मिलकर प्रष्टा प्रभु का स्मरण करें :

३२. वधू (स्त्री) नाम के बल से ही सौभाग्यवती होती है; सत्य प्रभु स्त्री के जीवन को सँवारने वाला है।

३३. (नानक) प्रभु की गुणस्तुति के गीत गाओ, प्रभु का विचार करो

(फिर) प्रभु पति से वियोग नहीं होगा । ४ । ३ ।

(४)

१. जिनि जगु सिरजि समाइआ सो साहिबु कुदरति जाणोवा ।
२. सचड़ा दूरि न भालीऐ घटि घटि सबदु पछाणोवा ।
३. सचु सबदु पछाणहु दूरि न जाणहु जिनि एह रचना राची ।
४. नामु धिआए ता सुखु पाए बिनु नावै पिड़ काची ।
५. जिनि थापी बिधि जाणै सोई किआ को कहै वखाणो ।
६. जिनि जगु थापि वताइआ जालो सो साहिबु परवाणो । १ ।
७. बाबा आइआ है उठि चलणा अध पंधै है संसारोवा ।
८. सिरि सिरि है सचड़ै लिखिआ दुखु सुखु पुरबि वीचारोवा ।
९. दुखु सुखु दीआ जेहा कीआ सो निबहै जीअ नाले ।
१०. जेहे करम कराए करता दूजी कार न भाले ।
११. आपि निरालमु धंधै बाधी करि हुकमु छडावणहारो ।
१२. अजु कलि करदिआं कालु बिआपै दूजै भाइ विकारो । २ ।
१३. जम मारग पंथु न सुझई उझड़ु अंध गुबारोवा ।
१४. ना जलु लेफ तुलाईआ ना भोजन परकारोवा ।
१५. भोजन भाउ न ठंढा पाणी ना कापड़ु सीगारो ।
१६. गलि संगलु सिरि मारे ऊभो ना दीसै घरि बारो ।
१७. इब के राहे जंमनि नाही पछुताणे सिरि भारो ।
१८. बिन साचे को बेली नाही साचा एहु बीचारो । ३ ।
१९. बाबा रोवहि रवहि सु जाणीअहि मिलि रोवै गुण सारेवा ।
२०. रोवै माइआ मुठड़ी धंधड़ा रोवणहारेवा ।
२१. धंधा रोवै मैलु न धोवै सुपनंतरु संसारो ।
२२. जिउ बाजीगरु भरमै भूलै झूठि मुठी अहंकारो ।
२३. आपे मारगि पावणहारा आपे करम कमाए ।
२४. नामि रते गुरि पूरै राखे नानक सहजि सुभाए । ४ । ४ ।

पद-अर्थ

समाइआ—मिला; **जाणेवा**—समझो; **सबदु**—ब्रह्म, प्रभु; **पिड़**—खेल का स्थान (संसार); **थापी**—रची; **विधि**—ढंग; **वताइआ जाल**—जाल विछाया है; **अध पंथै**—बीच में; **पुरबि वीचारोवा**—पिछले कर्मो का चिन्तन; **भाले**—प्राप्त करता; **निरालमु**—निर्लेप; **जम मारग**—मृत्यु के मार्ग; **परकारेवा**—कई प्रकार का; **ऊभौ**—खड़ा; **राहे**—बोए हुए, **भारो**—पाप का भार; **सुपनंतरु**—स्वप्न के भीतर, नितान्त स्वप्न; **सहजि सुभाए**—स्वत: सिद्ध, स्वाभाविक ही।

टीका

१. हे भाई, जिस प्रभु ने संसार को उत्पन्न करके, उसमें अपने आप को रखा हुआ है, उसे उसकी प्रकृति के माध्यम से ही समझो, जिसमें वह समाया हुआ है।

२. उस सच्चे को दूर न समझो, उस ब्रह्म को हृदय में पहचानो ?

३. सत्य प्रभु को (हृदय के भीतर ही) पहचानो, जिसने यह सृष्टि निर्मित की है उसे दूर न समझो। (वह सृष्टि में रहता है)।

४. जो नाम-स्मरण करता है वही सुख प्राप्त करता है, नाम के बिना संसार (का जीवन खेल) कच्चा रहता है (हारा जाता है)।

५. जिस प्रभु ने यह सृष्टि बनाई है, वही इसके चलाने की विधि जानता है; अन्य कोई क्या विप्रतिपत्ति कर सकता है ? (कौन कह सकता है कि ऐसे चाहिए था और ऐसे नहीं चाहिए था)।

६. जिसने जगत् को स्थिर रखकर उस पर मोह रूपी जाल डाल दिया है, उसे स्वामी समझकर मानो (जो वह देता है उसे उचित मानो। १।

७. हे भाई, जो जीव उत्पन्न हुआ है, उसे मरना हैं—यह संसार अर्द्ध मार्ग में है (इसे अभी आगे जाना है)।

८. सत्य प्रभु ने प्रत्येक जीव के सिर पर पिछले कर्मों को सोचकर दु:ख-सुख (का लेख) लिखा है।

९. जो कर्म जीव ने किए हैं, हरि ने उनके अनुसार उसे दुख अथवा सुख दिया है। अत: उसके किए कर्म ही उसका साथ देते हैं (दु:ख अथवा सुख उसके किए कर्मों से ही उत्पन्न हुए हैं)।

१०. जीव वही कर्म करता है जो प्रभु कर्त्तार उससे कराता है, उससे भिन्न अन्य कर्म वह नहीं कर सकता।

११. प्रभु ने सृष्टि को मिथ्या धन्धों में बाँधा है परन्तु वह स्वयं संसार के दोषों से मुक्त है और वह स्वयं ही बद्ध जीवों को आदेश करके छुड़ाता भी है।

१२. जीव द्वैतभाव में लगकर विपरीत कार्य करता है (अपना वास्तविक कर्म, प्रभु स्मरण, भूल जाता है, कहता है आज करूँगा, कल करूँगा) इस प्रकार आज कल करते हुए उसे मृत्यु आकर दबोच लेनी है। २।

१३. (माया-मग्न जीव की मृत्यु का दुःखदायी समय अन्त में आ जाता है) मृत्यु का मार्ग ऐसा निर्जन और घोर अन्धकार से पूर्ण है कि वहाँ मार्ग नहीं दिखाई देता।

१४. उस मार्ग में न पानी न रजाई बिछौना और न नाना प्रकार के भोजन मिलते है।

१५. न भोजन मिलता है, न आदर, न शीतल जल, न वस्त्र, न शृंगार।

१६. प्रत्युत प्राणी के गले में शृंखला पड़ी होती है, (यमराज) सिर पर खड़ा मार करता है, घरबार जीव को सूझता नहीं, घरबार पीछे छोड़ आया है अतः घरबार का अवलम्ब भी कोई नहीं रहा।

१७. उस समय का बोया हुआ कुछ तत्काल नहीं उत्पन्न होता (उस समय का कोई यत्न तत्क्षण नहीं फलता) प्राणी सिर पर पापों का भार उठाकर पश्चाताप करता है।

१८. उस समय सत्य प्रभु के अतिरिक्त उसका कोई साथी नहीं होता; यह विचार सत्य समझो। ३।

१९. हे भाई ठीक रोते हुए उन्हीं को समझना चाहिए जो नाम-स्मरण करते हुए रोते हैं (प्रेम में) जो जीव रूपी नारी मिलकर प्रभु के गुण स्मरण करती हुई रोती है, वही ठीक रोती है।

२०. परन्तु जो जीव रूपी नारी माया की ठगी हुई रोती है, वह सांसारिक धन्धों के लिए रोती है।

२१. जो धन्धों के लिए रोती है, उसके मन का मल दूर नहीं होता; उसके लिए यह जगत् स्वप्न है (स्वप्न की निष्फल भाग दौड़)।—

२२. जैसे बाज़ीगर जीवों को भ्रम में भुला देता है वैसे जीव रूपी नारी अहंकार में मिथ्या वस्तुओं से प्रतारित की जाती है।

२३. (परन्तु जीव के वश क्या है।) प्रभु स्वयं ही किसी को सन्मार्ग पर लाने वाला है और स्वयं ही कर्म करने वाला है।

२४. (नानक) जिन्हें पूर्ण गुरु ने (माया के प्रभाव से बचा लिया है; वे स्वत: ही नाम में रंगे रहते हैं। ४। ४।

(५)

१. बाबा आइआ है उठि चलणा इहु जगु झूठु पसारोवा।
२. सचा घरु सचड़ै सेवीऐ सचु खरा सचिआरोवा।
३. कूड़ि लबि जां थाइ न पासी अगै लहै न ठाओ।
४. अंतरि आउ त बेसहु कहीऐ जिउ सुंञै घरि काओ।
५. जंमणु मरणु वडा वेछोड़ा बिनसै जगु सबाए।
६. लबि धंधै माइआ जगतु भुलाइआ कालु खड़ा रुआए। १।
७. बाबा आवहु भाईहो गलि मिलह मिलि मिलि देह असीसा हे।
८. बाबा सचड़ा मेलु न चुकई प्रीतम कीआ देह असीसा हे।
९. आसीसा देवहो भगति करेवहो मिलिआ का किआ मेलो।
१०. इकि भूले नावहु थेहहु थावहु गुरसबदी सचु खेलो।
११. जम मारगि नहीं जाणा सबदि समाणा जुगि जुगि साचै वेसे।
१२. साजण सैण मिलहु संजोगी गुर मिलि खोलेफासे। २।
१३. बाबा नांगड़ा आइआ जग महि दुखु सुखु लेखु लिखाइआ।
१४. लिखिअड़ा साहा न टलै जेहड़ा पुरबि कमाइआ।
१५. बहि साचै लिखिआ अंम्रितु बिखिआ जितु लाइआ तितु लागा।
१६. कामणिआरी कामण पाए बहुरंगी गलि तागा।

१७. होछी मति भइआ मनु होछा गुड़ सा मखी खाइआ ।
१८. नामरजादु आइआ कलि भीतरि नांगो बंधि चलाइआ । ३ ।
१९. बाबा रोवहु जे किसै रोवणा जानीअड़ा बंधि पठाइआ है ।
२०. लिखिअड़ा लेखु ना मेटीऐ दरि हाकारड़ा आइआ है ।
२१. हाकारा आइआ जा तिसु भाइआ रुने रोवणहार ।
२२. पुत भाई भातीजे रोवहि प्रीतम अति पिआरे ।
२३. भै रोवै गुण सारि समाले को मरै न मुइआ नाले ।
२४. नानक जुगि जुगि जाण सिजाणा रोवहि सचु समाले । ४ । ५ ।

पद-अर्थ

पसारोवा—प्रसार; **सुंवै घरि**—शून्य घर में, उजड़े घर में; **बिनसै**—नष्ट होते हैं; **रुआए**—रुलाता है; **सैण**—साथी; **नांगड़ा**—नग्न; **बहि**—बैठकर; **कामणिआरी**—जादूगरनी, माया; **होछी**—धीरे से; **सा**—समान, जैसे; **नामरजादु**—मर्यादा रहित (नग्न); **पठाइआ**—भेजा; **हाकारड़ा**—बुलावा; **भै**—प्रभु के भय में; **जाण सिजाणा**—अतिबुद्धिमान, बहुत चतुर ।

टीका

१. हे भाई, जो भी जीव (संसार में) आया है, उसे (यहाँ से) चले जाना है; यह संसार है ही मिथ्या का प्रसार ।
२. वास्तविक निवास स्थान सत्य प्रभु के सेवा-स्मरण से (दासता में, शासन में रहने से) मिलता है, फिर सत्य प्राप्त हो जाता है जो सेवक को पूर्ण सदाचारी बनाता है ।
३. मिथ्या अथवा लोभ में रहने से मनुष्य (प्रभु की सभा में) स्वीकृत नहीं होता । वहाँ उसे स्थान नहीं मिलता ।
४. वहाँ उसे कोई आदर के साथ 'भीतर आइए, बैठिए जी' नहीं कहता । उसकी वह दशा होती है जैसे उजड़े घर में कौआ आता है और बैठकर चला जाता है ।

५. उसका जन्म-मरण का चक्र बना रहता है और इस कारण प्रभु से दीर्घ वियोग रहता है—इस प्रकार समस्त संसार नष्ट हो रहा है।

६. माया के धन्धों और लोभ ने समस्त संसार को मोह में डाल रखा है। सिर पर खड़ा काल संसार को रुलाता है (दु:खी करता है। १।

७. हे सत्संगी भाइयो, आओ, गले मिलें और एक-दूसरे को आशीर्वाद दें।

८. सत्य प्रभु के साथ हुआ मेल कभी नहीं टूटता, ऐसे प्रियतम के मेल के लिये आशीर्वाद दो।

९. आशीर्वाद दो और हमारे हाथ मिलकर भक्ति करो (जिससे मिलाप हो) और जिनका एक बार प्रभु से मिलाप हुआ है फिर उनका वियोग नहीं होता।

१०. कई (हमारे-जैसे) जीव नाम और सत्संग को भूले हुए हैं; (उन्हें आशीर्वाद देकर कहो कि मित्रो), गुरु के शब्द की सहायता से सत्य खेल केलो।

११. (उनसे कहो कि) उन्हें मृत्यु के मार्ग पर नहीं जाना चाहिए और उस प्रभु के ज्ञान में लीन रहना चाहिए जिसका युग-युग (प्रत्येक समय) में सत्य वेष है (जो सदा ही सत्यस्वरुप है—"आदि सचु जुगादि सचु, है भी सचु नानक होसी भी सचु')।

१२. तुम सौभाग्यवश उन सज्जन साथियों से मिलोगे जिन्होंने गुरु से मिलकर माया के बन्धन खोल दिए हैं। २।

१३. हे भाई, जीव नग्न रूप में संसार में आता है और पूर्व कर्मों के अनुसार सुख-दु:ख रूपी लेख लिखकर साथ लाता है।

१४. पूर्व किए कर्मों के अनुसार लिखा गया लेख टलता नहीं है।

१५. सत्य प्रभु ने विचारकर, जीव के लिए शुभ और अशुभ कर्म रूपी अमृत और विष का लेख लिखा है; उसने जिधर जीव को लगाया है, वह उधर लगा है।

१६. माया रूपी जादूगरनी ने जीव पर जादू किए हैं और इसके गले में अनेक रंगों वाला (माया के अनेक रसों का) धागा डाल देनी है।

१७. (जिससे) बुद्धि मन्थर हो जाती है, मन भी मन्थर हो जाता है; फिर मक्खी के समान गुड़ खाता है (पदार्थों को भोगने से अपना

नाश कर लेता है जैसे मक्खी गुड़ के मिठास में फंस कर मारी जाती है)।

१८. जीव नग्न रूप में ही संसार में आता है और नग्न ही बाँधकर ले जाया जाता है । ३ ।

१९. हे भाई, रोओ यदि किसी को (अवश्य) रोना ही है। इस रोने का लाभ क्या है ? तुम्हारे इस प्रिय जीव को बाँधकर भेज दिया जाता है।

२०. ईश्वरीय घर से आया बुलावा अमिट है, वह लेख मिटता नहीं है।

२१. बुलावा आता है जब प्रभु की इच्छा होती है और रोने वाले सम्बन्धी रोते हैं।

२२. पुत्र, भ्राता, भतीजे अपने प्रिय सम्बन्धी को रोते हैं।

२३. मृत के साथ कोई नहीं मरता, (रोकर चुप हो जाते हैं, इस रोने का क्या फल निकला ?) परन्तु रोना उसका यथार्थ है जो प्रभु के भय के कारण उसके गुणों का स्मरण करके रोता है।

२४. (नानक) वे सदा ही अति बुद्धिमान हैं जो सत्य प्रभु का स्मरण करते हुए (प्रेम में) रोते हैं। ४ । ५ ।

वडहंस की वार—४

सलोक महला—१

१. जालउ ऐसी रीति जितु मैं पिआरा बीसरै ।

२. नानक साई भली परीति जितु साहिब सेती पति रहै । २ ।

पद-अर्थ

जालउ—जला दूं; **रीति**—परम्परा, मर्यादा; **पति**—प्रतिष्ठा ।

टीका

१. मैं ऐसी परम्परा को जला दूं जिससे मुझे प्रिय प्रभु भूल जाए।

२. (नानक) वह प्रीति वरणीय है जिससे स्वामी प्रभु के साथ प्रतिष्ठा बनी रहे (उस प्रेम में मर्यादा रहे चाहे न रहे । १ ।

सलोकु महला—१

१. घर ही मुंधि बिदेसि पिरु नित झूरे संम्हाले ।
२. मिलदिआ ढिल न होवई जे नीअति रासि करे । १ ।

पद-अर्थ

मुंधि—मुग्ध नारी; **विदेसि**—विदेश; **झूरे**—दु:खी होती, पछताती है; **संम्हाले**—याद करती है; **नीअति**—नीयत, भावना ।

टीका

१. जीव रूप नारी घर में है और पति प्रभु विदेश में (वह आत्मा मण्डल में है और नारी संसार मण्डल में) है । वह नित्य उसका स्मरण करती हुई दु:खी होती है (कि मेल नहीं होता) ।
२. (परन्तु) प्रभु-मिलाप में कोई विलम्ब नहीं होता, यदि वह अपनी भावना शुद्ध कर ले (शुद्ध हृदय से उसे पा लिया जाता है—'सुचि होवै ता सचु पाईए') । १ ।

सलोक महला—१

१. नानक गाली कूड़ीआ बाझु परीति करेइ ।
२. तिचरु जाणै भला करि जिचरु लेवै देइ । २ ।

पद-अर्थ

गाली—बातें; **बाझु**—बिना ।

टीका

१. (नानक) प्रेम किए बिना सब बातें मिथ्या (व्यर्थ) हैं ।
२. (मनुष्य स्वार्थी है) तब तक ही प्रभु को भला जानता है जब तक प्रभु से लेता है और वह उसे देता है (सम्बन्ध लेने देने का है, प्रेम का नहीं) । २ ।

रागु सोरठि

एक ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु।

अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि

सोरठि महला। घरु। चउपदे

१. सभना मरणा आइआ वेछोड़ा सभनाह।
२. पुछहु जाइ सिआणिआ आगै मिलणु किनाह।
३. जिन मेरा साहिबु वीसरै वडड़ी वेदन तिनाह। १।
४. भी सलाहिहु साचा सोइ।
५. जा की नदरि सदा सुखु होइ। रहाउ।
६. वडा करि सालाहणा है भी होसी सोइ।
७. सभना दाता एकु तू माणस दाति न होइ।
८. जो तिसु भावै सो थीऐ रंन कि रुनै होइ। २।
९. धरती उपरी कोट गड़ केती गई वजाइ।
१०. जो असमानि न मावनी तिन नकि नथा पाइ।
११. जे मन जाणहि सूलीआ काहे मिठा खाहि। ३।
१२. नानक अउगुण जेतड़े तेते गली जंजीर।
१३. जे गुण होनि त कटीअनि से भाई से वीर।
१४. अगै गए न मंनीअनि मारि कढहु वेपीर। ४। १।

पद अर्थ

सभनाह—सब को; आगै—ईश्वरीय सभा में जाकर, वडड़ी—बड़ी; वेदन—दु:ख, पीड़ा; भी—फिर फिर; नदरि—कृपादृष्टि से, कृपा से; माणस दाति—मनुष्य के पास देन; रंन की रूनै—नारियों के समान रोईं; कोट गड़—दुर्ग; वजाई—(ढोल) बजा गए; तेते—उतने ही; वीर—भाई; मंनीअनि—माने जाते, स्वीकृत होते; वेपीर—दयाहीन।

टीका

१. समस्त जीवों के लिए मृत्यु अपरिहार्य है (टलती नहीं) और सबका एक दूसरे से वियोग भी अनिवार्य है।

२. परन्तु भाइयो, तुम जाकर बुद्धिमानों, ज्ञानियों से पूछो कि मर कर प्रभु का मिलाप किनको होगा ? (उन्हें, जो नाम स्मरण करते हैं)।

३. और जिन्हें मेरे स्वामी प्रभु का नाम भूल जाता है, उन्हें महा वियोग का) महा दु:ख है।

४. हे भाई, नित्य उस सत्य प्रभु की गुणस्तुति करो।

५. जिसकी कृपा दृष्टि से शाश्वत सुख प्राप्त होता। रहाउ।

६. हे भाई, महा गुणों वाला होने से उसकी स्तुति करनी चाहिए। वह अब विद्यमान हैं और भविष्यत् काल में विद्यमान रहेगा।

७. हे प्रभु, तुम ही सभी को देन देने वाले हो। किसी मनुष्य के पास देन नहीं होती (यदि किसी के पास देने को कुछ है तो वह भी तुम्हारी दी हुई देन है)।

८. जो प्रभु को अच्छा लगता हैं, वह ही होता है; (अत: उसका आदेश मानना चाहिए; कोई शिकायत उचित नहीं) यदि कभी कोई दु:ख आए तो स्त्रियों के समान रोने का कोई लाभ नहीं) पुरुषों के समान दु:ख का सामना करना चाहिए।)

९. कई लोग पृथ्वी के ऊपर दुर्ग बनाकर अपने-अपने हर्ष के वाद्य बजा गए हैं।

१०. (जो इतने अहंकार में थे कि) आकाश के नीचे भी समाते नहीं थे उनकी नाक में भी मृत्यु ने नाथ डाल दी।

११. हे मन, यदि तुझे पापों के फल का ज्ञान हो जो सूली चढ़ने के दु:ख के समान है तो तू विषयों के मधुर सुख क्यों प्राप्त करे। ३।

१२. (नानक) मनुष्य जितने पाप करता है उसके गले में उतने ही बन्धन पड़ते हैं। पापों के कर्मों के संस्कार उसका भविष्य बनाते हैं।

१३. ये बन्धन तब ही काटे जा सकते हैं जब हमारे पास गुण हों। गुण ही हमारे वास्तविक भाई और मित्र हैं।

१४. पाप कर्म आगे (ईश्वरीय सभा में) जाकर सत्कार नहीं पाते। अत:

हे भाइयो, इन निर्दयों को यहीं मारकर निकाल दो । ४ । १ ।

(२)

१. मनु हाली किरसाणी करणी सरमु पाणी तनु खेतु ।
२. नामु बीजु संतोखु सुहागा रखु गरीबी वेसु ।
३. भाउ करम करि जंमसी से धर भागठ देखु । १ ।
४. बाबा माइआ साथि न होइ ।
५. इनि माइआ जगु मोहिआ विरला बूझै कोइ । रहाउ ।
६. हाणु हटु करि आरजा सचु नामु करि वथु ।
७. सुरति सोच करि भांडसाल तिसु विचि तिस नो रखु ।
८. वणजारिआ सिउ वणजु करि लै लाहा मन हसु । २ ।
९. सुणि सासत सउदागरी सतु घोड़े लै चलु ।
१०. खरचु बंनु चंगिआईआ मतु मन जाणहि कलु ।
११. निरंकार कै देसि जाहि ता सुखि लहहि महलु । ३ ।
१२. लाइ चितु करि चाकरी मंनि नामु करि कंमु ।
१३. बंनु बदीआ करि धावणी ता को आखै धंनु ।
१४. नानक वेखै नदरि करि चड़ै चवगण बंनु । ४ । २ ।

पद-अर्थ

हाली—हल चलाने वाला; **करणी**—शुभ कर्म; **सरमु**—श्रम, उद्यम; **भागठ**—भाग्यवान्; **साथि**—साथ; **हाणु हटु**—हाट (दुकान) को चलाने वाला; दुकानदार; **वथु**—वस्तु, सौदा; **भांडसाल**—सौदे वाले बर्तन रखने का स्थान, दुकान; **वणजारिआ**—अर्थात् सन्त साधु; **हसु**—हँस, प्रसन्न हो; **सासतर**—शास्त्र आदि धार्मिक पुस्तकें; **कल**—आने वाला दिन; **बंनु**—रोक दे; **चवगण वंनु**—चतुर्गुण वर्ण, चौगुनी लाली ।

टीका

१. (हे भाई, अपने कामकाज को ऐसे चला कि उस से नाम-धन प्राप्त

हो ।) खेती के लिए मन को हल चलाने वाला बना, शुभ कर्म को खेती का धन्धा (कामकाज). परिश्रम को पानी और शरीर को खेत बना ।

२. नाम को बीज, सन्तोष को सुहागा (मैड़ा, समतलकारक काष्ठ) नम्रता वाले वेष (आचरण) को रोक बना ।

३. प्रभु-प्रेम को खेती के लिए किए गए कई कर्म बना फिर यह खेती फलदायिनी होगी । जो इस प्रकार की खेती करते हैं, उनके घर भाग्यों से पूर्ण देखोगे । १ ।

४. हे भाई, माया (किसी के) साथ नहीं जाती ।

५. (परन्तु) फिर भी इस माया ने समस्त संसार को वश में किया हुआ हैं । कोई बिरला इस तत्व को समझता है (कि माया साथ देने वाली नहीं) । रहाउ ।

६. आयु को दुकानदार बना, सत्य नाम को सौदा समझ ।

७. अपने ध्यान और विचार को दुकान बना; इस पुण्यशाला (दुकान) में नाम-सौदे को रख ।

८. इस सोदे के व्यापारियों (सन्तों. ईश्वरान्वेषकों) के साथ नाम का व्यापार कर । हे मन, यह लाभ प्राप्त करके प्रसन्न हो । २ ।

९. शास्त्र आदि धार्मिक पुस्तकों को सुन, यह सौदागरी कर, सत्य रूपी घोड़े लादकर ले जा ।

१०. सद्गुणों को पाथेय बना; हे मन, कल पर विश्वास न कर (इस व्यापार के लिए आज ही परिश्रम कर) ।

११. यदि तू इस प्रकार हरि के देश जाए तो तुझे सुख में वास मिलेगा । ३ ।

१२. प्रभु में चित्त लगा । इसे वेतन समझ । नाव को (श्रद्धा के साथ) मान, यह वेतन के लिए किया जाने वाला कार्य है ।

१३. पापों को रोक दे, इसे भाग दौड़ (नौकरी की भाग दौड़) बना, तब प्रत्येक व्यक्ति तेरी प्रशंसा करेगा ।

१४. (नानक) यह नौकरी करने से प्रभु तुझे कृपादृष्टि से देखेगा, और तेरे मुख पर चतुर्गुण रक्ताभा आएगी । ४ । २ ।

१. माइ बाप को बेटा नीका ससुरै चतुरु जवाई ।
२. बाल कंनिग्रा को बापु पिग्रारा भाई कौ ग्रति भाई ।
३. हुकमु भइग्रा बाहरु घरु छोडिआ खिन महि भई पराई ।
४. नामु दानु इसनानु न मनमुखि तितु तनि धूड़ि धुमाई । १ ।
५. मनु मानिग्रा नामु सखाई ।
६. पाइ परउ गुर कै बलिहारै जिनि साची बूझ बुझाई । रहाउ ।
७. जग सिउ झूठ प्रीति मनु बेधिग्रा जन सिउ वादु रचाई ।
८. माइआ मगनु ग्रहिनिसि मगु जोहै नामु न लेवै मरै बिखु खाई ।
९. गंधरण वैणि रता हितकारी सबदै सुरति न आई ।
१०. रंगि न राता रसि नही बेधिग्रा मनमुखि पति गवाई । २ ।
११. साध सभा महि सहजु न चाखिग्रा जिहबा रस नही राई ।
१२. मनु तनु धनु ग्रपुना करि जानिग्रा दर की खबरि न पाई ।
१३. ग्रखी मीटि चलिआ ग्रंधिग्रारा घरु दरु दिसै न भाई ।
१४. जम दरि बाधा ठउर न पावै ग्रपुना कीग्रा कमाई । ३ ।
१५. नदरि करे ता अखी वेखा कहणा कथनु न जाई ।
१६. कंनी सुणि सुणि सबदि सलाही ग्रंम्रितु रिदै वसाई ।
१७. निरभउ निरंकारु निरवैरु पूरन जोति समाई ।
१८. नानक गुर विणु भरमु न भागै सचि नामि वडिआई । ४ । ३ ।

पद-ग्रर्थ

नीका—अच्छा, प्रिय; **ससुरै**—श्वशुरालय; **बाल**—बालक, पुत्र; **कंनिग्रा**—कन्या, पुत्री; **धूड़ि धुमाई**—तन पर धूल उड़ उड़कर पड़ी; **मनु मानिग्रा**—मान गया (ग्राश्वस्त हो जाना); **सखाई**—मित्र; **बेधिआ**—बींधा; **वाद रचाई**—विवाद खड़ा किया है; **मगन**—मत्त; **जोहै**—देखता है; **बिखु**—(विषय रूपी) विष; **गंधरण वैणि**—गन्दे गानों से; **हितकारी**—प्रेमी; **राई**—राई भर, थोड़ा भी; **दर**—हरि के घर की; **ग्रंधिग्रारा**—ग्रन्धा ।

टीका

१. माता पिता को पुत्र अच्छा लगना है, श्वशुर को चतुर जामाता अच्छा लगता है।

२. पुत्रपुत्रियों (बच्चों) को पिता प्रिय होता है और भ्राता को भ्राता प्रिय होता है।

३. परन्तु जब प्रभु का आदेश होता है तब (मोह में आबद्ध) जीव घर बाहर छोड़ जाता है और (मोह की) उसकी समस्त (रचना) पराई हो जाती है।

४. इस (मोह में फँसे) मनोमुख के पास न नामस्मरण था, न बाँट कर तृप्त होने का स्वभाव था, न पवित्र आचरण था, उसके शरीर पर अब धूल उड़-उड़कर पड़ रही है। १।

५. जब से मैंने नाम को मित्र बनाया है, मेरा मन आश्वस्त हो गया है।

६. मैं गुरु के चरण छूता हूँ, उस पर न्यौछावर जाता हूँ, जिसने मुझे यह सत्य ज्ञान दिया है। रहाउ।

७. मनोमुख का मन मिथ्या प्रीति में जगत् से संलग्न है और वह प्रभु के सेवकों के साथ विवाद खड़ा रखता है।

८. माया से मत्त वह दिन-रात माया का मार्ग देखता रहता है। नाम नहीं जपता और (विषय विकार रूपी) विष खाता है और मरता है।

९. अश्लील गीतों से प्रेम करता है, शब्द से भी उसकी बुद्धि स्वच्छ नहीं होती।

१०. मनोमुख प्रभु-प्रेम में अनुरक्त नहीं होता, नाम के आनन्द से भी द्रवीभूत नहीं होता, और इस प्रकार अपनी प्रतिष्ठा खो बैठता है। २।

११. सत्संग में जाकर मनोमुख ने कभी सहज का आनन्द नहीं चखा। उसकी जीभ को नाम-रस की बूंद भी प्राप्त नहीं।

१२. वह मन, तन और धन अपना समझता रहा है और उसे प्रभु के द्वार का ज्ञान नहीं हुआ।

१३. इस अन्धे ने जीवन यात्रा नेत्र बंद करके की है। अत: हे भाई,

उसने प्रभु का घर देखा ही नहीं ।

१४. वह यमराज के द्वार पर बँधा हुआ जाता है, रक्षा का कोई स्थान उसे नहीं मिलता, वह अपने कर्मों का ही फल पाता है । ३ ।

१५. यदि प्रभु कृपादृष्टि करे तो मैं उसे आँखों से देख लूँ जिसका वर्णन नहीं हो सकता (उसका वर्णन तो नहीं किया जा सकता, परन्तु आत्मा को उसके दर्शन हो जाते हैं) ।

१६. यदि मैं शब्दों के द्वारा कानों से सुन सुनकर उसकी गुण-स्तुति करू तो उसका नाम अमृत हृदय में बसा लूं ।

१७. वह निर्भय है, निराकार है । उसकी ज्योति पूर्ण रूप से सर्वत्र है ।

१८. (नानक) गुरु के बिना अज्ञान दूर नहीं होता, और जब भ्रम दूर हो जाता है तब सत्य नाम के स्मरण से ईश्वरीय सभा में प्रतिष्ठा मिलती है । ४ । ३ ।

(४)

१. **पुड़ु धरती पुड़ु पाणी आसणु चारि कुंट चउबारा ।**
२. **सगल भवण की मूरति एका मुखि तेरै टकसाला । १ ।**
३. **मेरे साहिबा तेरे चोज विडाणा ।**
४. **जलि थलि महीअल भरि पूरि लीणा आपे सरब समाणा । रहाउ ।**
५. **जह जह देखा तह जोति तुमारी तेरा रूपु किनेहा ।**
६. **इकतु रूपि फिरहि परछंना कोइ न किसही जेहा । २ ।**
७. **अंडज जेरज उतभुज सेतज तेरे कीते जंता ।**
८. **एकु पुरबु मै तेरा देखिआ तू सभना माहि रवंता । ३ ।**
९. **तेरे गुण बहुते मै एकु न जाणिआ मै मूरख किछु दीजै ।**
१०. **प्रणवति नानक सुणि मेरे साहिबा डुबदा पथरु लीजै । ४ । ४ ।**

पद-अर्थ

कुंट—दिशाएँ, **चउबारा**—चार गवाक्षों वाला कोठा; **भवण**—

भुवनों, सृष्टियाँ; **मुखि**—मुख से निकला ग्रादेश; **चोज**—खेल; **विडाणा**—ग्राश्चर्य; **किनेहा**—कैसा (ग्राश्चर्य); **परछंना**—प्रच्छन्न; **पुरबु**—कौतुक, प्रशंसा; **रवंता**—रमा हुग्रा; **पथरु**—पापों के कारण भारी हुआ जीव; **लीजै**—बचा ली।

टीका

१. हे प्रभु, पृथ्वी रूपी पाट तुम्हारा आसन है, जल रूपी पाट तुम्हारा ग्रासन है (जल, स्थल तुम्हारा आसन है), चारों दिशाएँ (चारों ओर) तुम्हारी चौदरा कोठा (निवास स्थान, आसन) है—(प्रत्येक स्थान और प्रत्येक दिशा में तुम ही तुम रहते हो)।

२. सभी भवनों की मूर्ति एक तुम्हारी मूर्ति है (सब में तुम्हारी ज्योति व्याप्त है) ग्रौर उनके बनाने के लिए टकसाल तुम्हारे मुख से निकला ग्रादेश है (कीता पसाउ एको कवाउ)। १।

३. हे मेरे स्वामी, तुम्हारे खेल आश्चर्यपूर्ण हैं।

४. तुम जल में, पृथ्वी में तथा पृथ्वी ग्रौर आकाश के मध्य व्याप्त हो। तुम ही सर्वत्र व्याप्त हो। १।

५. जहाँ दृष्टि जाती है तुम्हारी ही ज्योति दिखाई देती है—परन्तु तुम्हारा रूप कैसा आश्चर्यजनक है।

६. तुम एक ही रूप से भिन्न-भिन्न रूपों में प्रच्छन्नतया घूमते हो। (ज्योति एक ही है परन्तु उस ज्योति ने भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लिए हैं) कोई एक जीव आकृति में किसी दूसरे से नहीं मिलता। २।

७. यद्यपि ग्रण्डज, जरायुज, उद्भिज और स्वेदज समस्त प्राणी तुमने ही उत्पन्न किए हैं,—

८. तथापि कितनी ग्राश्चर्यमय तुम्हारी लीला देखी है कि तुम अपने उत्पादित उन समस्त जीवों में रमे हुए हो। ३।

९. तुम्हारे गुण ग्रनेक हैं, मैं एक भी नहीं जान सका। मुझ मूर्ख को कुछ ज्ञान दो।

१०. नानक विनति करता है—हे मेरे स्वामी सुनो, पापों से पत्थर के समान भारी हुआ मैं (संसार-सागर में) डूब रहा हूं, तुम मुझे

बचा लो। ४।

(५)

१. हउ पापी पतितु परम पाखंडी तू निरमलु निरंकारी।
२. अंम्रितु चाखि परम रसि राते ठाकुर सरणि तुमारी। १।
३. करता तू मै माणु निमाणे।
४. माणु महतु नामु धनु पलै साचै सबदि समाणे। रहाउ।
५. तू पूरा हम ऊरे होछे तू गउरा हम हउरे।
६. तुझ ही मन राते अहिनिसि परभाते हरि रसना जपि मनरे। २।
७. तुम साचे हम तुम ही राचे सबदि भेदि फुनि साचे।
८. अहिनिस नामि रते से सूचे मरि जनमे से काचे। ३।
९. अवरु न दीसै किसु सालाही तिसहि सरीकु न कोई।
१०. प्रणवति नानकु दासनि दासा गुरमति जानिआ सोई। ४। ५।

पद-अर्थ

पतितु—(धर्म) भ्रष्ट, पापी; **निरंकारी**—निराकार; **महतु**—महत्व, गौरव; **ऊरे**—ऊन, न्यून, अपूर्ण; **होछे**—छोटे हृदय वाले; **गउरा**—भारी, गंभीर; **हउरे**—हलके, लघु; **राचे**—अनुरक्त हैं; **भेदि**—बींधे जाकर; **फुनि**—पुन:; **सरीकु**—सजातीय, समान; **प्रणवति**—विनति करता है।

टीका

१. मैं विकारग्रस्त हूँ, (धर्म से) पतित हूँ, बहुत पाखण्डी हूँ, तुम पवित्र हो, निरंकार (निराकार) हो।
२. परन्तु हे स्वामी, अब हम सब तुम्हारी शरण आए हैं, नाम-अमृत चखकर हम परमानन्द में रंग गए हैं। १।
३. हे स्रष्टा, तुम मुझ मानविहीन का मान हो।
४. जिनके पास नाम-धन है, उन्हें मान, गौरव प्राप्त होता है। वे शब्द

के बल से सत्य में लीन रहते हैं। रहाउ।

५. हे प्रभु, तुम पूर्ण हो, हम अपूर्ण हैं और छोटे हृदय वाले हैं; तुम भारी (गंभीर) हो और हम हल्के हैं।

६. परन्तु अब हम दिन, रात और प्रात: तुम्हारे प्रेम में अनुरक्त हैं। हे मन, जीभ से सदा हरि का स्मरण करता रहा कर। २।

७. तुम सत्य हो। अब हम तुम्हारे प्रेम में रँगे हैं (हम जानते हैं कि) तुम्हारे शब्द से भरकर लोग पुन: सच्चे हो जाते हैं।

८. जो दिन-रात नाम में रँगे रहते हैं, वे पवित्र हो जाते हैं; जो (नाम-रहित हैं वे) जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं। ३।

९. अब मुझे परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं दिखाई देता। मैं अन्य किस की स्तुति करूँ? उसके समान कोई नहीं।

१०. नानक विनति करता है कि मैं उनके दासों का दास हूँ जिन्होंने गुरु की शिक्षा से उस प्रभु को जान लिया है। ४। ५।

(६)

१. अलख अपार अगंम अगोचर ना तिसु कालु न करमा।
२. जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिसु भाउ न भरमा। १।
३. साचे सचिआर विटहु कुरबाणु।
४. ना तिसु रूप वरनु नही रेखिआ साचै सबदि नीसाणु। रहाउ।
५. ना तिसु मात-पिता सुत बंधप ना तिसु कामु न नारी।
६. अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जोति तुमारी। २।
७. घट घट अंतरि ब्रहमु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
८. बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई। ३।
९. जंत उपाइ कालु सिरि जंता वसगति जुगति सबाई।
१०. सतिगुरु सेवि पदारथु पावहि छूटहि सबदु कमाई। ४।
११. सूचै भाडै साचु समावै विरले सूचाचारी।
१२. तंते कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी। ५। ६।

पद-अर्थ

अलख—अलक्ष्य, अज्ञेय; **अगंम**—अगम्य; **अगोचर**—जो मन और इन्द्रियों का विषय नहीं; **संभउ**—स्वयंभू; **भाउ**—मोह; **भरमा**—(अज्ञान के कारण) संशय; **विटहु**—से; **वरनु**—वर्ण, रंग; **नीसाणु**—प्रकट (होता है); **अकुल**—कुल रहित; **सबाई**—सर्वत्र; **बजर कपाट**—पाषाणवत् कठोर कपाट; **मुकते**—खुले; **निरभै ताड़ी लाई**—निर्भय हरि में समाधि लगाई है; **जंत**—जीव; **वसगति**—वश में; **सूचाचारी**—अच्छे आचार वाले; **तंतै**—तत्व को (जीवात्मा को); **परम तंतु**—परमात्मा।

टीका

१. वह प्रभु अज्ञेय है, अनन्त है, अगम्य हैं, मन इन्द्रियों से परे है; उसे मृत्यु नहीं लगती, वह कर्मों के अधीन नहीं है।

२. जाति के विचार से वह जाति-रहित है, योनियों में नहीं आता, स्वयं जात है, न उसे मोह है, न (अज्ञान-मूलक) संशय। १।

३. मैं उस परमात्मा पर न्योछावर हूँ जो सत्य है, जो सत्य का स्रोत है।

४. उसका कोई रूप, रंग और आकार-प्रकार नहीं है। सत्य गुरु के ज्ञान से वह (हृदय) में प्रकट हो जाता है। १।

५. न उसके माता-पिता हैं, न पुत्र हैं न सम्बन्धी हैं; न वह काम-वासना से अभिभूत है, न उसकी कोई पत्नी है।

६. वह कुल रहित है, माया के प्रभाव से परे है, परात् पर है। हे प्रभु, तुम्हारी ज्योति सर्वत्र प्रकाशमान है। २।

७. प्रभु प्रत्येक हृदय के भीतर छुपा हुआ है; उसकी ज्योति प्रत्येक हृदय और सब स्थानों में है।

८. उस जीव के (माया के) पाषाण-सदृश कठोर कपाट गुरु की शिक्षा से खुल जाते हैं, जो निर्भय प्रभु में समाधि लगाता है। ३।

९. प्रभु ने जीव उत्पन्न किए हैं और उनके सिर पर मृत्यु बनाई है। उसने जीवों की समस्त जीवन-युक्ति अपने वश में रखी है।

१०. जो जीव सद्गुरु की शरण में पड़कर नाम-पदार्थ प्राप्त करते हैं, वे

उस श्रब्द की उपार्जना करके मुक्त हो जाते हैं। ४।

११. शुचि (पवित्र) हृदय में सत्य प्रभु स्थिर रहता है, परन्तु पवित्र-आचार वाले विरले ही मनुष्य होते हैं।

१२. (नानक, शुद्ध हृदय वाले) जीव को (गुरु ने) परमात्मा मिला दिया है। हे प्रभु. मैं भी तुम्हारी शरण हूँ। ५। ६।

(७)

१. जिउ मीना बिनु पाणीऐ तिउ साकतु मरै पिआस।
२. तिउ हरि बिनु मरीऐ रे मना जो बिरथा जावै सासु। १।
३. मन रे रामनाम जसु लइ।
४. बिनु गुर इहु रसु किउ लहउ गुरू मेलै हरि देइ। रहाउ।
५. संत जना मिलु संगती गुरमुखि तीरथु होइ।
६. अठसठि तीरथ मजना गुर दरसु परापति होई। २।
७. जिउजोगी जत बाहरा तपु नाही सतु संतोखु।
८. तिउ नामै बिनु देहुरी जमु मारै अंतरि दोखु। ३।
९. साकत प्रेमु न पाईऐ हरि पाईऐ सतिगुर भाइ।
१०. सुख दुख दाता गुरु मिलै कहु नानक सिफति समाइ। ४। ७।

पद-अर्थ

मीना—मछली; **साकतु**—शक्ति (माया) का उपासक; **बिरथा**—व्यर्थ, निष्फल; **मजना**—स्नान; **दोखु**—दोष, विकारों का) दुर्गुण।

टीका

१. जैसे मछली पानी के बिना मर जाती हैं वैसे ही माया का प्रेमी प्रभु की प्यास में (प्रभु के बिना) मर जाता है। (शक्ति के उपासक का आत्मा मर जाता है। क्योंकि, आत्मा का जीवनाधार परमात्मा है)।

२. इसी प्रकार, हे मेरे मन. प्रभु के बिना जो भी श्वास व्यर्थ चला

जाता है वह मृत है (मृत्यु के समान है)। १।

३. हे मन, तू राम नाम के स्मरण का यश ले।

४. परन्तु गुरु के बिना मैं नाम-रस कैसे प्राप्त करूँ? प्रभु जिसे गुरु प्राप्त करा देता है, उसे ही यह रस मिलता है। १।

५. हे भाई, तू सन्तों, गुरुमुखों की संगति में रह। गुरु की शरण में पड़ने से तीर्थ हो जाता है।

६. यदि गुरु के दर्शन प्राप्त हों तो मानों अठसठ तीर्थों का स्नान हो जाता है। २।

७. जैसे संयम (इन्द्रियों पर नियंत्रण) के बिना योगी का योग निष्फल है, (जैसे) जहाँ सत्य, संतोष नहीं वहाँ तपस्वी का तप निष्फल है;—

८. वैसे ही नाम के बिना शरीर निष्फल है। धस शरीर को यमराज मारता है; क्योंकि, उसे भीतर विकारों की बुराई है। ३।

९. माया के उपासक की भावना से प्रेमस्वरूप प्रभु नहीं मिलता। प्रभु तो गुरु-प्रेम से मिलता है।

१०. (नानक, कहो कि) जिस जीव को गुरु मिलता है उसे सुखों-दुखों का दाता प्रभु मिल जाता है; तत्पश्चात् वह प्रभु की गुणस्तुति में लीन रहता है। ४। ७।

(८)

१. तू प्रभ दाता दानि मति पूरा हम थारे भेखारी जीउ।

२. मैं किआ मागउ किछु थिरु न रहाई हरि दीजै नामु पिआरी
जीउ। १।

३. घटि घटि रवि रहिआ बनवारी।

४. जलि थलि महीअलि गुपतो वरतै गुर सबदी देखि निहारी।
जीउ। रहाउ।

५. मरत पइआल अकासु दिखाइओ गुरि सतिगुरि किरपा धारी
जीउ।

६. सो ब्रहमु अजोनी है भी होनी घट भीतरि देखु मुरारी
जीउ। २।

७. **जनम मरन कउ इहु जगु बपड़ो इनि दूजै भगति विसारी जीउ ॥**

८. **सतिगुरु मिलै त गुरमति पाईऐ साकत बाजी हारी जीउ । ३ ।**

९. **सतिगुर बंधन तोड़ि निरारे बहुड़ि न गरभ मझारी जीउ ।**

१०. **नानक गिआन रतनु परगासिआ हरि मनि वसिआ निरंकारी जीउ । ४ । ८ ।**

पद-अर्थ

थिरु—स्थिर रहने वाली; **वनवारी**—बनमाला पहनने वाला, विष्णु, प्रभु; **गुपतो**—छिपा हुआ; **निहारी**—देख; **मरत**—मर्त्य लोक, यह पृथ्वी; **पइआल**—पाताल; **बपड़ो**—बेचारा, अभागा; **दूजै**—द्वैत भाव में; **निरारे**—स्वतन्त्र किया है; **मझारी**—मध्य ।

टीका

१. हे प्रभु, तुम देन देने वाले हो, परन्तु तुम देन देने में दुद्धि से परिपूर्ण हो । (आवश्यकता और अपने नियमों के अनुसार देते हो; केवल किसी के माँगने मात्र से नहीं देते) हम तुम्हारे द्वार के भिक्षुक हैं ।

२. हे प्रभु, मैं कौन सी वस्तु माँगू, कोई वस्तु भी स्थिर रहने वाली नहीं; (अतः) तुम मुझे अपना नाम दो, (और कृपा करो कि नाम वस्तु मुझे प्रिय लगे । १ ।

३. प्रभु प्रत्येक हृदय में समा रहा है ।

४. वह जल, स्थल, पृथ्वी और आकाश के मध्य सर्वत्र छिपा हुआ क्रियाशील है—हे भाई, गुरु के शब्द के बल से उसे देख । १ ।

५. सद्‌गुरु ने कृपा की है और मर्त्य लोक, पाताल और आकाश को उसी प्रभु का रूप करके दिखा दिया है ।

६. वह ब्रह्म (प्रभु) योनियों से रहित है, अब विद्यमान है और आगे भी विद्यमान रहेगा; हे भाई, उस मुरारि को अपने हृदय में देख ले । २ ।

७. ये अभागे सांसारिक जीव जन्म-मरण के चक्र में रहते हैं । क्योंकि, इन्होंने द्वैत भाव में प्रभु भक्ति विस्मृत कर दी है ।

८. सद्गुरु मिले तो उसकी दी शिक्षा से भक्ति का मार्ग प्राप्त हो जाता है; नहीं तो माया-प्रेमी जीवन-खेल में हारा हुआ ही है। ३।

९. जिन जीवों के (माया के) बंधन काट कर सद्गुरु ने उन्हें स्वतन्त्र कर दिया है वे जीव पुन: गर्भ-योनि में नहीं आते।

१०. (नानक) जब ज्ञान रूप के साथ गुरु हृदय में प्रकाशमान हो जाता है तब निराकर प्रभु हृदय में आ बसता है। ४। ८।

(९)

१. **जिसु जल निधि कारणि तुम जगि आए सो अंम्रितु गुर पाही जीउ।**

२. **छोडहु वेसु भेख चतुराई दुबिधा इहु फलु नाही जीउ। १।**

३. **मन रे थिरु रहु मतु कत जाही जीउ।**

४. **बाहरि ढूढत बहुतु दुखु पावहि घरि अंम्रितु घट माही जीउ। रहाउ।**

५. **अवगुण छोडि गुणा कउ धावहु करि अवगुण पछुताही जीउ। १।**

६. **सर अपसर की सार न जाणहि फिरि फिरि कीच बुडाही जीउ। २।**

७. **अंतरि मैलु लोभु बहु झूठे बाहरि नावहु काही जीउ।**

८. **निरमल नामु जपहु सद गुरमुखि अंतर की गति ताही जीउ। ३।**

९. **परहरि लोभु निंदा कूड़ु तिआगहु सचु गुर बचनी फलु पाही जीउ।**

१०. **जिउ भावै तिउ राखहु हरि जीउ जन नानक सबदि सलाही जीउ। ४। ९।**

पद-अर्थ

जल निधि—नाम अमृत जल का निधान; **पाही**—पास; **दुबिधा**—

अनिश्चय की दशा में; दो ओर होने में; माया और प्रभु दोनों में; **थिरु**—पक्का, स्थिर; **धावहु**—परिश्रम करो; **सर अपसर**—अच्छे बुरे की; **कीच**—पापों की कीचड़; **परहरि**—परे हटाकर, दूर करके।

टीका

१. हे भाई, जिस जल, (अमृत) के निधान (अर्थात् नाम) के लिए तुम संसार में आए हो, वह गुरु के पास से मिलता है।

२. वह धार्मिक परिधान छोड़ दो जिसमें वेष की पटुता (जगत् को धर्मात्मा बनकर दिखाने की चतुरता) है। इस द्विविधता (द्विमुखी चाल) से नाम अमृत का फल नहीं मिलता। १।

३. हे मेरे मन, अपने भीतर (स्वरूप में) स्थिर रह, इधर-उधर भटकता न फिर।

४. बाहर मार्गणा करने से तू बहुत दुःख पाएगा; तेरे अपने भीतर अमृत है, तेरे हृदय में अमृत है। १।

५. हे मन, अवगुणों का त्याग करके गुणों के लिए उद्यम कर। क्योंकि, अवगुण (पाप) करके सदा पश्चात्ताप होता है।

६. तुझे सत् असत् (कर्म) की पहचान नहीं है। इसी हेतु पुनः पुनः पापों के कर्दम में फँसता है। २।

७. यदि तेरे अन्दर लोभ का मल है और बहुत मिथ्या कर्म करता है तो बाहर से (तीर्थों आदि पर) स्नान किस लिए करता है?

८. गुरु की शिक्षा के अनुसार सदा पवित्र नाम जप; तभी अन्दर की गति (कल्याण-प्राप्ति) होती है। ३।

९. लोभ त्याग, निन्दा और मिथ्या छोड़। गुरु के शब्द से ही सत्य रूप फल मिलेगा।

१०. हे प्रभु, जैसी तुम्हारी इच्छा है वैसे ही मुझे रखो (मुझे यह बल दो कि तुम्हारी इच्छा में रहूँ)। (हे दास नानक, कह) हे प्रभु, मैं गुरु के ज्ञान के अनुसार तुम्हारी गुणस्तुति करता रहूँ। ४। ९।

(१०)

१. अपना घरु मूसत राखि न साकहि की पर घरु जोहन लागा।

२. घरु दरु राखहि जे रसु चाखहि जो गुरमुखि सेवकु लागा । १ ।

३. मन रे समझु कवन मति लागा ।

४. नामु विसारि अन रस लोभाने फिरि पछुताहि अभागा

। रहाउ ।

५. आवत कउ हरख जात कउ रोवहि इहु दुखु सुखु नाले लागा ।

६. आपे दुख सुख भोगि भोगावै गुरमुखि सो अनरागा । २ ।

७. हरि रस ऊपरि अवरु किआ कहीऐ जिनि पीआ सो त्रिपतागा ।

८. माइआ मोहित जिनि इहु रसु खोइआ जा साकत दुरमति

लागा । ३ ।

९. मन का जीउ पवन पति देही देही महि देउ समागा ।

१०. जे तू देहि त हरि रसु गाई मनु त्रिपतै हरि लिव लागा । ४ ।

११. साध संगति महि हरि रसु पाईऐ गुरि मिलिऐ जमभउ भागा ।

१२. नानक रामनामु जपि गुरमुखि हरि पाए मसतकि भागा

। ५ । १० ।

पद-अर्थ

मूसत—लूटा जाता है; **जोहन**—देखना; **अनरस**—अन्य रसों में; **अभागा**—हे अभागे; **हरख**—हर्ष; **अनरागा**—विरागी, मोह से रहित; **त्रिपतागा**—तृप्त हो गया; **दुरमति**—दुर्बुद्धि; **जीउ**—जीवन, ज़िंदगी; **पवन पति**—प्राणों का पति (श्वासों का स्वामी) **समागा**—समाया हुआ ।

टीका

१. हे मन तू लुटता हुआ अपना घर (लुटते हुए गुण) तो बचा नहीं सकता, पराए घर को क्यों देखता है ? (क्यों दूसरों के अवगुणों की आलोचना करता है ?)

२. तू अपना घरबार तब बचा सकता हैं जब हरि-रस का पान करे । परन्तु यह रस वही प्राप्त कर सकया है जो गुरु की शिक्षा के

अनुसार सेवक होकर प्रभु के कार्यों में लगा होता है । १ ।

३. हे मन, समझ जा । कैसी दुर्बुद्धि में लग गया है ।

४. नाम को भुलाकर, अन्य अन्य रसों में मग्न है । हे अभागे, तू अन्त में पछताएगा । १ ।

५. माया आए तो प्रसन्न होता है, यदि जाए तो रोता है । यह सुख-दुःख, हर्ष और विषाद तेरे साथ ही बनाया गया है (यह सुख-दुःख तेरे अपने कर्म से उत्पन्न होता है) ।

६. प्रभु स्वयं ही जीव को (कर्मों के अनुसार) सुख-दुःख के भोगों में डालकर इनका भोग कराता हैं; केवल गुरु की शरण में रहने वाला जीव ही सुख, दुःख से विरक्त रहता । २ ।

७. नाम रस से उत्तम कोई वस्तु नहीं है । जिसने इस रस का पान किया है वह तृप्त हो गया है ।

८. जिसने माया में अनुरक्त होकर नाम-रस का त्याग कर दिया है, वह माया प्रेमी दुर्बुद्धि में जा लगा है । ३ ।

९. वह परमात्मा देव (प्रकाश स्वरूप हरि) जो मन का जीवन है और शरीर प्राणों का पति (स्वामी) है, शरीर के अन्दर भी समा रहा है ।

१०. हे प्रभु, यदि तुम शक्ति प्रदान करो तो मैं तुम्हारी गुणस्तुति करूँ । जिसे प्रभु की लगन लग जाती है उसका मन तृप्त हो जाता है । ४ ।

११. यह नाम-रस साधु-संगति से मिलता है, इस संगति में गुरु के मिलने से यम का भय दूर हो जाता है ।

१२. (नानक) जिसके मस्तक में सौभाग्य अंकित हो वह गुरु की शरण लेकर नाम का स्मरण करके प्रभु को प्राप्त कर लेता है । ५ । १० ।

(११)

१. सरब जीआ सिरि लेखु धुराहू बिनु लेखै नही कोई जीउ ।

२. आपि अलेखु कुदरति करि देखै हुकमि चलाए सोई जीउ । १ ।

३. मन रे राम जपहु सुखु होई ।

४. अहिनिसि गुर के चरन सरेवहु हरि दाता भुगता सोई । रहाउ ।

५. जो अंतरि सो बाहरि देखहु अवरु न दूजा कोई जीउ ।

६. गुरमुखि एक द्रिसटि करि देखहु घटि घटि जोति समोई
जीउ । २ ।

७. चलतौ ठाकि रखहु घरि अपनै गुर मिलिऐ इह मति होई जीउ ।

८. देखि अद्रिसटु रहउ बिसमादी दुखु बिसरै सुखु होई जीउ । ३ ।

९. पीवहु अपिउ परम सुखु पाईऐ निजघरि वासा होई जीउ ।

१०. जनम मरण भव भंजनु गाईऐ पुनरपि जनमु न होई जीउ । ४ ।

११. ततु निरंजनु जोति सबाई सोहं भेदु न कोई जीउ ।

१२. अपरंपर पारब्रह्मु परमेसरु नानक गुर मिलिआ सोई
जीउ । ५ । ११ ।

पद-अर्थ

धुराहू—प्रारम्भ से, प्रभु के घर से; **अहिनिसि**—दिन रात; **समोई**—समा रही है; **चलतै**—भटकता हुआ मन; **ठाकि**—टिका रखो; **अपिउ**—अमृत; **निज घरि**—अपने घर में अपने स्वरूप में; **भव भंजनु**—सांसारिक चक्र नाश करने वाला; **पुनरपि**—पुनः; **सोहं**—सब कुछ वह स्वयं ही है; **भेद**—भिन्न, पृथक् ।

टीका

१. समस्त जीवों के सिर पर कर्मों का लेख प्रारम्भ से लिखा हुआ है। इस लेख से शून्य कोई भी जीव नहीं है ।

२. प्रभु के अपने सिर पर कर्मों का लेख नहीं । वह सृष्टि उत्पन्न करके इसकी सँभाल करता है और फिर अपने आदेश के अनुसार इसे चलाता हैं । १ ।

३. हे मेरे मन, राम का नाम जप । इस प्रकार तुझे सुख मिलेगा ।

४. दित रात परमेश्वर-गुरु के चरण पूज, जो स्वयं ही जीवों का दाता है, और स्वयं ही उनके भीतर प्रविष्ठ होकर भोगों को भोगता है । १ ।

५. हे मन, जो प्रभु तेरे भीतर है, उसे ही बाहर देख । उसके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है ।

६. गुरु की सहायता से समदर्शी होकर देख। प्रत्येक हृदय में एक ज्योति व्याप्त है। २।

७. इस भटकते हुए मन को रोक कर अपने स्थान पर रखो। गुरु के मिलाप से मनुष्य समझता है (कि भटकता मन कैसे स्थान पर फिर किया जाता है)।

८. लोचनागोचर हरि को प्रत्येक जीव में व्याप्त देखकर मैं आश्चर्य-चकित हो रहा हूं। (ऐसा करने से) दुःख नष्ट होता है और सुख मिलता है। ३।

९. हे भाई, नाम अमृत पीओ। इस प्रकार महान् सुख प्राप्त होता है और अपने घर में (अपने स्वरूप में) वास हो जाता है।

१०. यदि उस प्रभु की गुण-स्तुति करें जो जन्म-मरण और संसार चक्र नष्ट करने वाला है तो पुनः जन्म नहीं होता। ४।

११. वह माया से अलिप्त हरि निखिल सृष्टि का तत्व है और उसकी ज्योति सर्वत्र विद्यमान है। सब कुछ स्वयं ही है। उससे भिन्न कुछ नहीं है।

१२. (नानक) जो परात्पर अनन्त प्रभु है वह गुरु होकर मुझे मिला है (वह मेरा गुरु है)। ५। ११।

(१२)

१. जा तिसु भावा तद ही गावा।
२. ता गावे का फलु पावा।
३. गावे का फलु होई।
४. जा आपे देवै सोई। १।
५. मन मेरे गुर बचनी निधि पाई।
६. ताते सच महि रहिआ समाई। रहाउ।
७. गुर साखी अंतरि जागी।
८. ता चंचल मति तिआगी।
९. गुर साखी का उजीआरा।
१०. ता मिटिआ सगल अंध्हारा। २।

११. गुर चरनी मनु लागा ।

१२. ता जम का मारगु भागा ।

१३. भै विचि निरभउ पाइआ ।

१४. ता सहजै कै घरि आइआ । ३ ।

१५. भणति नानकु बूझै को बीचारी ।

१६. इसु जग महि करणी सारी ।

१७. करणी कीरति होई ।

१८. जा आपे मिलिआ सोई । ४ । १ । १२ ।

पद-अर्थ

जा—यदि, जब; गावा—गुणगाना; निधि—निधान; साखी—शिक्षा; उजीआरा—प्रकाश; अंधारा—अन्धकार; सहजै—सहज की अवस्था में; भणति—कहता है ।

टीका

१. यदि (गुण गाने से) उस प्रभु को अच्छा लगूं तो (समझो) मैं उसके गुण सत्य अर्थों में गाऊँगा (तभी मेरा गाया हुआ सफल है) ।

२. मैं उस दशा में गाने का फल प्राप्त कर सकता हूँ (असंख्य लोग गुण गाते रहते हैं, परन्तु उसकी प्रसन्नता प्राप्त नहीं करते । क्योंकि, वे प्रेमोल्लसित होकर नहीं गाते) ।

३. प्रभु की गुणस्तुति गाने का फल भी तब ही मिलता है,—

४. जब प्रभु स्वयं प्रसन्न होकर देता है । १ ।

५. हे मेरे मन, जिसे गुरु के वचनों से नाम (गुणस्तुति) का कोष मिला है,—

६. वह सदा सत्य प्रभु में लीन रहता है । १ ।

७. जब गुरु की शिक्षा मनुष्य के हृदय के भीतर प्रकाशमान होती है,—

८. तब वह मनुष्य उस बुद्धि को छोड़ देता है जो उसे माया में भटकाती है ।

९. जब गुरु की शिक्षा का प्रकाश हृदय में होता है,—
१०. तब समस्त अन्धकार (अज्ञान) समाप्त हो जाता है। २।
११. जब किसी मनुष्य का मन गुरु के चरणों में लगता है,—
१२. तब उसका यम-मार्ग (पापों का मार्ग) समाप्त हो जाता है।
१३. जब मनुष्य प्रभु भय में रहकर निर्भय-प्रभु के साथ मिल जाता है,
१४. तब वह सहजावस्था में स्थिर हो जाता है। ३।
१५. (नानक कहता है कि) कोई विरला विचारवान् ही समझता है कि
१६. इस जगत् में शुभ कर्म ही सारवान् वस्तु है।
१७. परन्तु वह शुभ कर्म हरि के यश से उत्पन्न होता है—
१८. जब कि हरि के यश के बल से वह प्रभु स्वयं ही मिल पड़ता है
।४।१।१२।

सोरठि महला—१

(१)

१. दुबिधा न पड़उ हरि बिनु होरु न पूजउ मड़ै मसाणि न जाई।
२. त्रिसना राचि न पर घरि जावा त्रिसना नामि बुझाई।
३. गर भीतरि घरु गुरू दिखाइआ सहजि रते मन भाई।
४. तू आपे दाना आपे बीना तू देवहि मति साई। १।
५. मनु बैरागि रतउ बैरागी सबदि मनु देखिआ मेरी माई।
६. अंतरि जोति निरंतरि बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाई
। रहाउ।
७. असंख बैरागी कहहि बैराग सो बैरागी जि खसमै भावै।
८. हिरदै सबदि सदा भै रचिआ गुर की कार कमावै।
९. एको चेतै मनूआ न डोलै धावतु वरजि रहावै।
१०. सहजे माता सदा रंगि राता साचे के गुण गावै। २।
११. मनूआ पउणु बिंदु सुखवासी नामि वसै सुख भाई।
१२. जिहवा नेत्र सोत्र सचि राते जलि बूझी तुझहि बुझाई।
१३. आस निरास रहै बैरागी निज घरि ताड़ी लाई।

१४. भिखिआ नामि रजे संतोखी अंम्रितु सहजि पीआई । ३ ।
१५. दुबिधा विचि बैरागु न होवी जब लगु दूजी राई ।
१६. सभु जगु तेरा तू एको दाता अवरु न दूजा भाई ।
१७. मनमुखि जंत दुखि सदा निवासी गुरमुखि दे वडिआई ।
१८. अपर अपार अगंम अगोचर कहणै कीम न पाई । ४ ।
१९. सुंन समाधि महा परमारथु तीनि भवण पति नामं ।
२०. मसतकि लेखु जीआ जगि जोनी सिरि सिरि लेखु सहामं ।
२१. करम सुकरम कराए आपे आपे भगति द्रिड़ामं ।
२२. मनि मुखि जूठि लहै भै मानं आपे गिआनु अगामं ।
२३. जिनि राखिआ सेई सादु जाणनि जिउ गूंगे मठिआई । ५ ।
२४. अकथै का किआ कथीऐ भाई चालउ सदा रजाई ।
२५. गुरु दाता मेले ता मति होवै निगुरे मति न काई ।
२६. जिउ चलाए तिउ चालह भाई होरि किआ को करे चतुराई । ६ ।
२७. इकि भरमि भुलाए इकि भगति राते तेरा खेलु अपारा ।
२८. जितु तुधु लाए तेहा फलु पाइआ तू हुकमि चलावणहारा ।
२९. सेवा करी जे किछु होवै अपणा जीउ पिंडु तुमारा ।
३०. सतिगुरि मिलिऐ किरपा कीनी अंम्रित नामु अधारा । ७ ।
३१. गगनंतरि वासिआ गुण परगासिआ गुण महि गिआन धिआनं ।
३२. नामु मनि भावै कहावै तती ततु वखानं ।
३३. सबदु गुर पीरा गहिर गंभीरा बिनु सबदै जगु बउरानं ।
३४. पूरा बैरागी सहजि सुभागी सचु नानक मनु मानं । ८ । १ ।

पद-अर्थ

दुबिधा—द्वैत भाव, दो ओर ध्यान करना; मड़ै—समाधि, कब्र; मसाणि—श्मशान; बैरागि—वैराग्य में; धावत वरजि रहावै—भटकते मन को रोक रखो; मनूआ पउण—वायु सदृश चंचल मन; दूजी—द्वैत; राई—राई भर (थोड़ी सी); सुंन समाधि—पूर्ण समाधि; परमारथ—तात्विक वस्तु (प्रभु); तीनि भवण पति—तीनों लोकों का स्वामी;

सहामं—सहन करते हैं; **द्रिड़ामं**—दृढ़ कराता है; **गगनंतरि**—गगन में, आकाश में, आत्म-मण्डल में, दशम द्वार में; **ततो तत**—पूर्ण सत्य; **बउरानं**—पागल ।

टीका

१. मैं द्वैत-भाव में नहीं पड़ता । हरि के अतिरिक्त मैं किसी अन्य की पूजा नहीं करता । मैं कब्रों और श्मशानों में नहीं जाता ।

२. मैं तृष्णा के अधीन होकर प्रभु के अतिरिक्त किसी अन्य का अवलम्ब नहीं लेता । मैंने नाम के बल से अपनी तृष्णा समाप्त कर ली है ।

३. मुझे गुरु ने मन में ही प्रभु का स्थान (घर) दिखा दिया है । हे मन रूपी भाई, अब तो हम सहज में लीन रहते हैं ।

४. हे प्रभु, तुम स्वयं ही जानने वाले हो, स्वयं ही पहचानने वाले हो, तुम स्वयं ही मुझे अच्छी बुद्धि देते हो (इस कारण मैं सहज में स्थिर हो गया हूं) । १ ।

५. हे मेरी माँ, मेरा मन प्रभु के वैराग्य में अनुरक्त होकर विरागी हो गया है । मेरे मन में शब्द भर गया है ।

६. मेरे भीतर हरि को ज्योति जग गई है । क्योंकि, बहुत भीतर उसकी वाणी टिक गई है और सत्य प्रभु से अटूट प्रेम लग गया है ।

७. असंख्य विरागी वैराग्य की बातें करते हैं, परन्तु वस्तुत: विरागी वह है जो प्रभु को अच्छा लगता है ।

८. जिसके हृदय में नाम है, जो सदा प्रभु-भय में रहता है और जो गुरु के बतलाए मार्ग पर चलता है,—

९. जो एक प्रभु का स्मरण करता है, जिसका मन भटकता नहीं और जो दौड़ते मन को रोक रखता है;—

१०. जो सहज में लीन है, सदा प्रभु-प्रेम से मत्त है और सत्य प्रभु की गुणस्तुति करता है । २ ।

११. हे भाई, जिस विरागी का वायु-सदृश चंचल मन तनिक भी नाम में बसता है, वह सुखी होता है ।

१२. उसकी जीभ, आँख और कान सत्य में अनुरक्त हो जाते हैं; उसकी तृष्णा-अग्नि बुझ जाती है, जो कि हे हरि तुम ही बुझाते हो।

१३. वह विरागी समस्त आशाओं से ऊपर उठता है और आत्मस्वरूप में समाधि लगाता है।

१४. वह नाम की भिक्षा लेकर तृप्त होता है, सन्तोषी हो जाता हैं। क्योंकि, गुरु ने उसे सहजावस्था में ले जाकर अमृत पिलाया हैं।

१५. द्वैत भाव में वैराग्य नहीं हो सकता। जब तक राई भर भी संशय-भ्रम है (वैराग्य नहीं होता)।

१६. हे प्रभु, समस्त संसार तुम्हारा है। एकमात्र तुम ही देन देने वाले हो; अन्य कोई दाता नहीं है (मुझे भी विरह की देन दो)।

१७. मनोमुख जीव सदा दुःखी रहते हैं; गुरु की शरण लेने वालों को प्रभु गौरव देता है।

१८. हरि पार से, शोभा से रहित हैं, पहुँच से परे हैं, मन इन्द्रियों के द्वारा समझा नहीं जा सकता; कहने से उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता। ४।

१९. पूर्ण समाधि में परम तत्त्व-वक्तु (प्रभु) की प्राप्ति होती है और यह प्राप्ति तीनों लोकों के स्वामी प्रभु के नाम के बल से होती है (जब नाम के द्वारा पूर्ण समाधि लग जाती है तब आत्मा निर्गुण, अरूप ब्रह्म का संयोग प्राप्त कर लेता है)।

२०. (नहीं तो) जीवों के मस्तद के ऊपर (हरि के लिखे) लेख तो है ही। उन लेखों के अनुसार जीव जन्म लेते हैं और अपने लेख के अनुसार ही दुःख-सुख सहने होते हैं।

२१. प्रभु स्वयं ही सत् असत् कर्म कराता है और अपनी भक्ति दृढ़ कराता है।

२२. हरि का भय मनाने से मन और मुख की उच्छिष्टता दूर हो जाती हैं और हरि स्वयं ही अज्ञेय वस्तु (प्रभु) का ज्ञान देता हैं। ५।

२३. जिन्होंने नाम-रस चखा है, वे ही उसका स्वाद जानते हैं; (चाहे वे कह नहीं सकते जैसे) गूंगा मिठाई खाकर इसका स्वाद कह नहीं सकता।

२४. मैं अवर्णनीय प्रभु का क्या वर्णन करूँ? (वर्णन नहीं किया जा

सकता)। अतः (मैं चाहता हूं कि) सदा उसके आदेश के अनुसार चलता रहूं।

२५. परन्तु आदेश के अनुसार चलने का ज्ञान भी तब होता है जब गुरु दाता प्रभु से मिला दे। गुरु-हीन जीव को इसका ज्ञान नहीं हो सकता।

२६. परमात्मा किसी को जैसे चलाता है वैसे ही जीव चलता है। किसी मनुष्य की चतुरता किस कार्य की हो सकती है? । ६।

२७. कितनों को तुमने ही द्विचित्तता में भुलाए रखा है, और कई भक्ति में लगे हैं। तुम्हारा खेल अद्भुत है (बुद्धि से परे है)।

२८. तुमने जीवों को जिस ओर लगा दिया हैं उन्हें वैसा ही फल मिलता है। तुम सबको अपने आदेश के अनुसार चलाने वाले हो।

२९. मैं तुम्हारी सेवा की बात तब करूँ जब कोई वस्तु मेरी अपनी हो। मन और शरीर दोनों ही तुम्हारे है।

३०. सद्गुरु के मिलने से उसकी कृपा हो गई और उसने तुन्हारा अमृत नाम रूपी अवलम्ब दे दिया। ७।

३१. (विरागी) आत्म-मण्डल में रहता है। उसके हृदय में गुणों का प्रकाश होता है; और गुणों के साथ उसे ज्ञान ध्यान आ जाता है।

३२. उसे हरि का नाम प्रिय लगता हैं। वह उसे स्वयं जगाता है और दूसरों को उसका जप कराता है। वह सर्वथा शुद्ध-सत्य-स्वरूप प्रभु की ही बातें करता है।

३३. (उसके भीतर) गुरु-पीर का शब्द बसता है। अतः वह पूर्ण गंभीर हो जाता है, (सत्य है) ज्ञान के बिना विश्व पागल हो गया है।

३४. परन्तु जो पूर्ण विरागी है उसका मन (नानक) सत्य को मानता है, वह ही सहजावस्था में पहुँच कर महाभाग्यवान् हो गया है। ८। १।

(२)

१. आसा मनसा बंधनी भाई करम धरम बंधकारी।

२. पापि पुंनि जगु जाइआ भाई बिनसै नामु विसारी।

३. इह माइआ जगि मोहणी भाई करम सभे वेकारी।

४. सुणि पंडित करमाकारी ।
५. जितु करमि सुखु उपजै भाई सु आतम तनु बीचारी । १ । रहाउ
६. सांसतु बेदु बकै खड़ो भाई करम करहु संसारी ।
७. पाखंडी मैलु न चूकई भाई अंतरि मैलु विकारी ।
८. इन बिधि डूबी माकुरी भाई ऊँडी सिर कै भारी । २ ।
९. दुरमति घणी विगुती भाई दूजै भाइ खुआई ।
१०. बिनु सतिगुर नामु न पाईऐ भाई बिनु नामै भरमु न जाई ।
११. सतिगुरु सेवे ता सुखु पाए भाई आवणु जाणु रहाई । ३ ।
१२. साचु सहजु गुर ते उपजै भाई मनु निरमलु साचि समाई ।
१३. गुर सेवे सोबूझै भाई गुर बिनु मगु न पाई ।
१४. जिसु अंतरि लोभु कि करम कमावै भाई कुड़ु बोलि बिखु खाई । ४ ।
१५. पंडित दही विलोईऐ भाई विचहु निकलै तथु ।
१६. जलु मथीऐ जलु देखीऐ भाई इहु जगु एहा वथु ।
१७. गुर बिन भरमि विगूचीऐ भाई घटि घटि देउ अलखु । ५ ।
१८. इहु जगु तागो सूत को भाई दह दिस बाधो माइ ।
१९. बिनु गुर गाठि न छूटई भाई थाके करम कमाइ ।
२०. इहु जगु भरमि भुलाइआ भाई कहणा किछू न जाइ । ६ ।
२१. गुर मिलिऐ भउ मनि वसै भाई भै मरणा सचु लेखु ।
२२. मजनु दानु चँगिआईआ भाई दरगह नामु विसेखु ।
२३. गुरु अंकसु जिनि नामु दिड़ाइआ भाई मनि वसिआ चूका भेखु ७ ।
२४. इहु तनु हाटु सराफ को भाई वखरु नामु अपारु ।
२५. इहु वखरु वापारी सो द्रिड़ै भाई गुर सबदि करे वीचारु ।
२६. धनु वापारी नानका भाई मेलि करे वापारु । ८ । २ ।

पद-अर्थ

आसा मनसा—आशाएँ और वासनाएँ; बंधनी—बधन (दुविधा)

डालने वाली; **बंधकारी**—बंधन उत्पन्न करने वाले; **जाइश्रा**—उत्पन्न होता है; **करमकारी**—कर्म-धर्म करने वाले; **बकै**—बोलता है; **संसारी**—सांसारिक; **चूकई**—दूर होती है; **माकुरी** – मकड़ी; **ऊंडी**—उलटी; **घणी विगूती**—बहुत दु:खित हुई; **रहाई**—रह जाए, समाप्त हो जाए; **मगु**—मार्ग; **वलोईऐ**—मथा जाए; **तथु**—तथ्य, तत्व, मक्खन; **मथीऐ**—मथें; **वथु**—वस्तु, चीज; **विगूचीऐ**—व्याकुल होता है; **तागो**—धागा; **माइ**—माया ने; **गाठि**—गांठ; **छूटई**—छूटती है, खुलती है; **भउ**—भय; **मजनु**—स्नान; **विसेख**—विशेस; **हाटु**—दूकान; **वखरु**—वाणिजिक वस्तु, सौदा ।

टीका

१. हे भाई, (माया के प्रभाव से) आशाएँ और वासनाएँ बन्धनकारिणी होती हैं, (यहां तक कि) धार्मिक कर्म (पूजा पाट, स्नान आदि) भी बन्धनकारी हो जाते हैं।

२. पाप-पुण्य में पड़कर ससार उत्पन्न होता है, तत्पश्चात् नाम को भुलाकर नष्ट होता है ।

३. इस प्रदार यह माया जगत् में मोहिनी है, और जीव के किए समस्त कर्म व्यर्थ हो जाते हैं । १ ।

४. हे कर्म धर्म करने वाले पण्डित, सुन ।

५. वह कर्म, जिसके करने से सुख उत्पन्न होता है, आत्म-तत्व का चिन्तन है । १ । रहाउ ।

६. हे पण्डित, तू खड़ा होकर वेद-शास्त्र बोयता है, परन्तु समस्त कर्म सांसारिकों के से (माया के अधीन) करता है ।

७. (ऐसे) पाखण्ठ से आभ्यन्तरिक मल दूर नहीं होता । भीतर विकारों का मल टिका रहता है ।

८. इस प्रकार तो मकड़ी उलटी होकर, सिर के भार रहकर (जाल तानकर बीच में आप फँसकर), मरती है । जैसे मकड़ी का यह कर्म उसे ले डूबा है वैसे तेरे कर्म-धर्म निष्फल है । २ ।

९. दुर्बुद्धि में फँस कर बहुत सृष्टि (लोक) ने कष्ट उठाया है और द्वैतभाव में पड़ कर कुमार्ग पकड़ा है ।

१०. सद्गुरु के विना नाम नहीं मिलता और नाम के बिना भ्रम नहीं

जाता।

११. जो सद्‌गुरु को शरण लेता हैं वह सुख प्राप्त करता हैं और उसका जन्म-मरण समाप्त हो जाता है। ३।

१२. सत्य सहज गुरु से उत्पन्न होता है और मन पवित्र होकर सत्य में स्थिर हो जाता है।

१३. जो गुरु की सेवा करता है वह जीवन यापन की यथार्थ विधि को समझ जाता है। गुरु के बिना जीवन का मार्ग नहीं मिलता।

१४. जिसके भीतर लोभ हैं उसके कर्म-धर्म किस प्रयोजन के हैं। वह मिथ्या वचन बोल-बोल कर विष खाता रहता है। ४।

१५. हे पण्डित, यदि दही को मथा जाए तो बीच से (आत्म-तत्वरूप) मक्खन निकलता हैं।

१६. परन्तु यदि पानी मथें तो पानी ही प्राप्त होगा। यह संसार पानी मथकर पानी वस्तु ही प्राप्त कर रहा है।

१७. गुरु के बिना मनुष्य संशयों में ही दुःखी रहता है, चाहे वह अलक्ष्य देव (अज्ञेय प्रभु) प्रत्येक हृदय में बसता है। ५।

१८. यह संसार मानो सूत के धागे से बँधा है जिसके दोनों ओर माया की गांठें हैं।

१९. गुरु के बिना माया की पड़ी हुई दृढ़ गांठ खुलती नहीं, यद्यपि मनुष्य धर्म कर्म करके थक जाते हैं।

२०. यह संसार संशयों में पड़ा भ्रान्त है और (इसकी इतनी दुर्दशा है कि) कुछ नहीं कहा जा सकता। ६।

२१. गुरु के मिलाप से प्रभु-भय मन में आ बसता है और प्रभु के भय से अहंभाव के मरने से (धर्मों का) सत्य लेखा बनता है।

२२. स्नान दान और अन्य गुण सब ठीक हैं, (यदि उन से नाम उत्पन्न हो); क्योंकि, प्रभु की सभा में नाम ही विशेष समझा जाता है।

२३. गुरु वह अंकुश हैं जिसने नाम का उपदेश पक्का कराया है और जब नाम मन में आ बसा है तो (कर्म धर्म का) मिथ्या दम्भ दूर हो गया है। ७।

२४. यह शरीर, जीव, सर्राफ़ की दुकान है और इसमें नाम का अमूल्य सौदा है।

२५. इस सौदे को वह व्यापारी भली-भान्ति प्राप्त करता है जो गुरु के उपदेश की सहायता से विचार करता है।

२६. वह व्यापारी प्रशंसा योग्य है जो गुरु की संगति प्राप्त करके नाम का व्यापार करता है। ८। २।

(३)

१. जिन्ही सतगुरू सेविआ पिआरे तिन्ह के साथ तरे।
२. तिन्हा ठाक न पाईऐ पिआरे अंम्रित रसन हरे।
३. बूडे भारे भै बिना पिआरे तारे नदरि करे। १।
४. भी तू है सालाहणा पिआरे भी तेरी सालाह।
५. विणु बोहिथ भै डुबीऐ पिआरे कंधी पाइ कहाह। १। रहाउ।
६. सालाही सालाहणा पिआरे दूजा अवरु न कोइ।
७. मेरे प्रभ सालाहनि से भले पिआरे सबदि रते रंगु होइ।
८. तिस की संगति जे मिलै पिआरे रसु लै ततु विलोइ। २।
९. पति परवाना साच का पिआरे नाम सचा नीसाणु।
१०. आइआ लिखि लै जावणा पिआरे हुकमी हुकमु पछाणु।
११. गुर बिनु हुकमु न बूझीऐ पिआरे साचे साचा ताणु। ३।
१२. हुकमै अंदरि निमिआ पिआरे हुकमै उदर मझारि।
१३. हुकमै अंदरि जंमिआ पिआरे ऊधउ सिर कै भारि।
१४. गुरमुखि दरगह जाणीऐ पिआरे चलै कारज सारि। ४।
१५. हुकमै अंदरि आइआ पिआरे हुकमै जादो जाइ।
१६. हुकमै बंन्हि चलाईऐ पिआरे मनमुखि लहै सजाइ।
१७. हुकमे सबदि पछाणीऐ पिआरे दरगह पैधा जाइ। ५।
१८. हुकमे गणत गणाईऐ पिआरे हुकमे हउमै देइ।
१९. हुकमे भवै भवाईऐ पिआरे अवगणि मुठी रोइ।
२०. हुकमु सिञापै साह का पिआरे सचु मिलै वडिआई होइ। ६।
२१. आखणि अउखा आखीऐ पिआरे किउ सुणीऐ सचु नाउ।
२२. जिन्ही सो सालाहिआ पिआरे हउ तिन्ह बलिहारै जाउ।

२३. नाउ मिलै संतोखीआं पिआरे नदरी मेलि मिलाउ । ७ ।
२४. काइआ कागदु जे थीऐ पिआरे मनु मसवाणी धारि ।
२५. ललता लखणि सच की पिआरे हरि गुण लिखहु वीचारि ।
२६. धनु लेखारी नानका पिआरे साचु लिखै उरिधारि । ८ । ३ ।

पद-अर्थ

ठाक—रोक; **हरे**—हरि का; **भी**—ही; **बोहिथ**—वोहित, जलयान; **भै**—भव संसार; समुद्र में; **कहाह**—कैसे, कहां; **सालाही**—प्रशंसा योग्य; **निमिआ**—गर्भ में स्थित; **पैधा जाइ**—पहनाया जाता है, ईश्वरीय सभा में आदर के साथ जाता है; **मुठी**—ठगी हुई; **मसवाणि**—दवात; **धारि**—बनालें; **ललता**—जीभ; **लेखणि**—कलम; **उरिधारि**—मन में टिकाकर ।

टीका

१. हे प्रिय मित्र, जिन्होंने सद्गुरु की शरण ली हैं; उनके साथी भी पार उतर गए हैं ।
२. उन्हें परलोक में कोई रोक नहीं होती, उनकी रसना पर अमृत नाम होता है ।
३. लोग जो प्रभु के भय से शून्य हैं, और पापों के कारण भारी हुए है, डूब जाते हैं । जिन पर प्रभु कृपा-दृष्टि करता है उन्हें वह उतार लेता है । १ ।
४. हे प्रिय प्रभु, तुम्हारी ही प्रशंसा करनी चाहिए, तुम्हारे ही गुण गाने चाहिएं ।
५. नाम रूपी पोत के बिना मनुष्य इस समुद्र में डूब जाता है । कोई दूसरे किनारे कैसे लग सकता हैं ? । १ । रहाउ ?
६. प्रशंसायोग्य हरि की प्रशंसा करनी चाहिए, उसके अतिरिक्त कोई अन्य प्रशंसा करने योग्य नहीं है ।
७. जो जीव प्रभु की गुणस्तुति करते हैं, वे अच्छे हैं; वे गुरु के शब्द में अनुरक्त होते हैं, उन्हें हरि-प्रेम का रंग चढ़ता हैं ।
८. यदि उनमें से किसी की संगति प्राप्त हो जाए तो उस संगति में प्रभु-

तत्त्व को मथ कर वह संयोग का रस (आनन्द) लेता हैं । २ ।

९. प्रभु की सभा में प्रतिष्ठा के लिए सत्य का यात्रानुमति-पत्र होता है; उस पर नाम की सत्य मुद्रा अंकित होती है ।

१०. जगत् में आकर ऐसा सत्य पत्र लिख कर ले जाना चाहिए; (अत: भाइयो) आदेष्टा प्रभु का आदेश पहचानो (ऐसे ही सत्य की पहचान) होगी "किव सचिआरा होईऐ .... हुकमि रजाई चलणा ।"

११. गुरु के बिना आदेश समझा नहीं जा सकता; (अत: निराश्रय रहना पड़ता है) उस सत्य हरि का ही सत्य बल होता है । ३ ।

१२. (आदेश के अनुसार समस्त खेल खेला जा रहा हैं । मनुष्य हरि के आदेश से पहले माता के गर्भ में पड़ता है और आदेश से उदर में (निवास पाता है) ।

१३. आदेश से ही सिर के भार, उलटा होकर, उत्पन्न होता है।

१४. जो गुरु की शिक्षा से जीवन का उद्देश्य पूर्ण करके ईश्वरीय सभा में जाता हैं, वह वहां सत्कृत होता है । ४ ।

१५. जीव आदेश से ही संसार में आता हैं और आदेश से ही चला जाता है ।

१६. आदेश से ही मनोमुख बांधकर धकेला जाता है, और वह दण्डित होता है ।

१७. आदेश से ही गुरु के शब्द में जुड़कर मनुष्य प्रभु को पहचानता है और ईश्वरीय सभा में मान के साथ जाता है । ५ ।

१८. प्रभु के आदेश से ही मनुष्य माया की गिनतियों में पड़ता है; आदेश से ही अहंभाव और द्वैतभाव उत्पन्न होते हैं ।

१९. आदेश से ही जीव (कर्मों का बँधा) भटकता है और जन्म-मरण के चक्र में घुमाया जाता है । आदेश से ही सृष्टि अवगुणों से मोहित हुई रोती (दु:खी होती) है ।

२०. यदि स्वामी का आदेश समझ में आ जाए तो सत्य प्राप्त होता है और प्रशंसा मिलती है । ६ ।

२१. प्रभु का नाम जपने में कठिन कहा जाता (समझा जाता) है । हे प्रिय किस प्रकार सत्य नाम (जपें और) सुनें ।

२२. जिन्होंने उस प्रभु की गुणस्तुति की है मैं उन पर न्यौछावर जाता हूं।

२३. यदि मुझे भी नाम मिले तो मैं तृप्त हो जाऊँ और उसकी कृपा-दृष्टि से उसके संयोग में संयुक्त रहूं। ७।

२४. यदि शरीर कागज हो जाए और मन की दवात बना ली जाए,

२५. यदि जीभ सत्य लिखने वाली हो तो, हे भाई, हरि के गुणों को विचार कर लिखो।

२६. (नानक) धन्य है वह लिखने वाला, जो सत्य को अपने मन में ठहरा कर लिख लेता है। ८। ३।

(४)

१. तू गुण दातो निरमलौ भाई निरमलु ना मनु होइ।

२. हम अपराधी निरगुणे भाई तुझ ही ते गुणु सोइ। १।

३. मेरे प्रीतमा तू करता करि वेखु।

४. हउ पापी पाखंडीआ भाई मनि तनि नाम विसेखु। १। रहाउ।

५. बिखु माइआ चितु मोहिआ भाई चतुराई पति खोइ।

६. चित महि ठाकुरु सचि वसै भाई जेगुर गिआनु समोइ। २।

७. रुड़ौ रुड़ौ आखीऐ भाई रुड़ौ लाल चलूलु।

८. जे मनु हरि सिउ बैरागीऐ भाई दरि घरि साचु अभूलु। ३

९. पाताली आकासि तू भाई घरि घरि तू गुण गिआनु।

१०. गुर मिलिऐ सुखु पाइआ भाई चूका मनहु गुमानु। ४।

११. जलि मलि काइआ माजीऐ भाई भी मैला तनु होइ।

१२. गिआनि महारसि नाइऐ भाई मनु तनु निरमलु होइ। ५।

१३. देवी देवा पूजीऐ भाइ किआ मागउ किआ देहि।

१४. पाहणु नीरि पखालीऐ भाई जल महि बूडहि तेहि। ६।

१५. गुर बिनु अलखु न लखीऐ भाई जगु बूडे पति खोइ।

१६. मेरे ठाकुर हाथि वडाईआ भाई जै भावै तै देइ। ७।

१७. बईअरि बोलै मीठुली भाई साचु कहै पिर भाई।

१८. बिरहै बेधी सचि वसी भाई अधिक रही हरिनाइ। ८।

१९. सभु को आखै आपणा भाई गुर ते बुझै सुजानु।

२०. **जो बीधे से ऊबरे भाई सबदु सचा नीसानु । ६ ।**

२१. **ईधनु अधिक सकेलीए भाई पावकु रंचक पाइ ।**

२२. **खिनु पलु नामु रिदै वसै भाई नानक मिलणु सुभाइ । १० । ४ ।**

पद-अर्थ

गुण दातौ—गुण देने वाला; **समोइ**—समावे; **रूड़ौ**—सुन्दर; **लाल चलूलु**—गूढ़ा लाल; **गुमानु**—अभिमान; **पाहणु**—पाषाण, मूर्तियाँ; **पखालीऐ**—धोएँ, स्नान कराएँ; **बूडहि**—डूब जाती हैं; **बइअरि**—स्त्री; **बीधे**—विंधे हुए; **उबरे**—तर गए; **ईधनु**—ईंधन; **अधिक**—बहुत; **सकेलीए**—इकट्ठा करें; **पावक**—अग्नि; **रंचक**—तनिक; **सुभाइ**—सहज ही ।

टीका

१. हे प्रभु, तुम गुणों के दाता हो, तुम पवित्र हो, परन्तु हमारा मन पवित्र नहीं है ।

२. हम पापी गुणहीन हैं; तुम से ही वह गुण मिलता है (जो पवित्र करता है) । १ ।

३. हे मेरे प्रिय, तुम सबके स्रष्टा हो, सब को उत्पन्न करके (अब कृपा करके) सबकी सम्भाल करो ।

४. मैं पापी और पाखण्डी हूं । मेरे तन-मन में अपने नाम की विशेषता दृढ़ करो । १ । रहाउ ।

५. हे प्रभु, जीव का मन इस विष-माया ने मोह रखा है और निस्सार चतुरता से यह अपनी प्रतिष्टा खो बैठता है ।

६. परन्तु यदि गुरु का दिया हुआ ज्ञान इसके मन में समा जाए तो इसके अन्दर स्वामी प्रभु निवास करने लग जाता है और फिर यह सत्य में स्थिर रहता है । २ ।

७. हे भाई, प्रभु को सुन्दर, सुन्दर' कहकर उसकी गुण-स्तुति करनी चाहिए । वह सुन्दर है, उसे (प्रेम का) गहरा लाल रंग चढ़ा रहता है ।

८. यदि कोई मन उससे प्रेम करे तो वह सत्य और अविस्मरणीय प्रभु उसके हृदय में ही प्रकट हो जाता है। ३।

९. हे प्रभु, तुम पाताल में हो, तुम आकाश में हो; तुम प्रत्येक हृदय में हो, तुम जीवों को गुण देते हो, उन्हें गुणों की समझ-बूझ कराते हो।

१०. यदि गुरु का मिलन हो जाए तो जीव सुख पाता है; क्योंकि, मन से अभिमान दूर हो जाता है। ४।

११. यदि मल-मल कर शरीर पानी से धोएं तो भी वह मलिन रहता है।

१२. परन्तु यदि प्रभु ज्ञान के महा रस में स्नान करें तो मन तन पवित्र हो जाते हैं। ५।

१३. यदि देवी-देवताओं की मूर्तियों की पूजा करें तो इनसे क्या मांगू, और ये क्या दे सकते हैं (कुछ भी नहीं)।

१४. यदि पाषाण की मूर्तियाँ पानी में धोएं तो वे डूब जाती हैं (वे पूजने वालों को कैसे पार लगा सकती हैं।)। ६।

१५. गुरु के बिना अलक्ष्य प्रभु जाना नहीं जा सकता; और प्रभु के बिना विश्व पापों में डूबता है और अपना मान खो बैठता है।

१६. (परन्तु जीव के वश क्या है?) समस्त महत्ताएँ स्वामी प्रभु के हाथ में हैं। वह उसे देता है जो उसे अच्छा लगता है। ७।

१७. जो जीव रूपी नारी मधुर वचन बोलती है, सत्य कहती है और प्रभु-पति के प्रेम में रहती है।

१८. प्रेम से विद्ध हुई वह सत्य प्रभु में लीन हो जाती है और बहुत प्रेम करके हरि के नाम में जुड़ी रहती है। ८।

१९. प्रत्येक मनुष्य अपना अपना विचार यथार्थ कहता है (प्रत्येक मनुष्य अपने आपको चतुर समझता है) परन्तु जो गुरु के उपदेश से समझता है वह ही वास्तव में चतुर है।

२०. जो मनुष्य हरि के नाम से बद्ध हो गए, वे पार हो गए; उन पर नाम रूपी सच्ची मुद्रा अंकित हो जाती है। ९।

२१. जैसे बहुत सा ईंधन इकट्ठा करें और तनिक सी अग्नि लगा दें तो वह जल जाता है; –

२२. इसी प्रकार यदि क्षण भर प्रभु का नाम मन में बसे (तो पाप जल जाते हैं) और स्वतः ही प्रभु का मेल हो जाता है। १०। ४।

रागु सोरठि, महले ४ की वार
सलोक महला १

१. **सोरठि सदा सोहावणी जे सचा मनि होइ।**
२. **दंदी मैलु न कतु मनि जीभै सचा सोइ।**
३. **ससुरै पेईऐ भै वसी सतिगुरु सेवि निसंग।**
४. **परहरि कपडु जे पिर मिलै खुसी रावै पिरु संगि।**
५. **सदा सीगारी नाउ मनि कदे न मैलु पतंगु।**
६. **देवर जेठ मुए दुखि ससू का डरु किसु।**
७. **जे पिर भावै नानका करम मणी सभु सचु। १।**

पद-अर्थ

सोरठि—सोरठ रागनी; **सोहावणी**—सुन्दर, सरल; **दंदी मैलु**—दाँतों में मैल (निन्दा रूपी); **कतु**—काट, कटाव (वैर-विरोध) **ससुरै पेईऐ**—श्वशुरालय और पितृगह, (लोक-परलोक); **निसंग**—निःसंकोच; **परिहार**—त्यागकर; **कपड़ु**—वस्त्र, शृंगार आदि; **पतंगु**—रत्ती मात्र; **देवर जेठ**—लोभ-लालच आदि विकार रूप; **ससू**—श्वश्रू (माया); **करम मणी**—भाग्यों की मणि।

टीका

१. सोरठ रागनी जीव रुपी नारी को सदा सुन्दर (सरल) लगे, यदि इस के गाने सुनने से सत्य हरि मन में बसे।

२. (शारीरिक अंगों को सुन्दर ऐसे बनाए) उसके दांतों को मैल न लगे (भाव, निन्दा न करे, अधर्म से कमाया हुआ न खाए) मन में वैर-विरोध न रहे और जिह्वा पर सत्य हरि का नाम रहे।

३. उसे लोक-परलोक में हरि का भय हो और वह निःसंकोच होकर सद्गुरु की सेवा करे।

४. और 'यदि सांसारिक शृंगार त्याग कर जीव रूपी नारी पति-प्रभु से मिल जाए तो पति प्रभु उसे अपने साथ रखकर सत्कृत करता है।

५. जिस स्त्री के मन में नाम हो, वह सदैव ही सुसज्जित है, उसे रत्ती-मात्र भी मैल नहीं लगती।

६. उस नारी के लोभ-लालच आदि विकार दुःखी होकर मर जाते है और उसे माया रूपी श्वश्रू का भी कोई भय नहीं रहता।

७. (नानक) यदि इस प्रकार जीव रुपी नारी प्रभु-पति को प्रिय लग जाए तो उसके मस्तक पर भाग्यों की मणि (उसका समस्त जीवन सत्य-मय समझो) और उसका सब कुछ सत्य हुआ समझो। १।

महला—१

१. इक दझहि इक दबीअहि इकना कुते खाहि।

२. इकि पाणी विचि उसटीअहि इकि भी फिरि हसणि पाहि।

३. नानक एव न जापई किथै जाइ समाहि। २।

पद-अर्थ

दझहि=(मर के) जलाए जाते हैं; **उसटीअहि**—फैंक दिए जाते हैं; हसणि—सूखे हुऐ कूएं में (जिस में पारसी लोग मृतकों को रख देते हैं।)

टीका

१. कुछ मनुष्य मरने पर जलाए जाते हैं, कुछ दाबे जाते हैं, कुछ को कुत्ते खाते है।

२. कुछ पानी में फैंक दिए जाते है, कुछ सूखे कुएं में रख दिए जाते है।

३. परन्तु (नानक) इस प्रकार तो केवल शरीर पर बीतती है) यह ज्ञात नहीं होता कि आत्मा कहाँ जाकर बसते हैं (आत्माओं का कया होता है?)। २।

सलोक महला—१

१. ता की रजाइ लेखिआ पाइ अब किआ कीजै पांडे।

२. हुकमु होआ हासलु तदे होइ निबड़िआ हंढहि जीअ कमांदे। १।

पद-अर्थ

रजाइ—आदेश के अनुसार ; **लेखिआ**—लिखा हुआ लेख ; **हासलु**—प्राप्त हो गया, मिला ; **होइ निबड़िआ**—निर्णय हो गया ; **हंढिहि**—फिरते है ; **कमांदे**—कमाई करते, कर्म करते ।

टीका

१. उस प्रभु के आदेश के अनुसार (जीवों के कर्मों के अनुसार) जो लेख लिखा गया है वह मिलता है । हे पण्डित, अब दु:खी होने से कुछ लाभ नहीं (दु:खी होने के स्थान पर अपना भविष्य अच्छा बनाओ जो आपके अपने हाथ है) ।

२. जब प्रभु का आदेश हुआ तब (कर्मों के अनुसार) जो निर्णय होना था वह हो गया, तदनन्तर प्राणी उसी लेख के अनुसार कर्म करते फिरते हैं । १ ।

रागु धनासरी

एकओं सतिनाम करतापुरखु निरभउ निरवैरु

अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ।

धनासरी महला—१

चउपदे

(१)

१. **जीउ डरतु है आपणा कै सिउ करी पुकार ।**

२. **दूख विसारणु सेविआ सदा सदा दातारु । १ ।**

३. **साहिबु मेरा नीत नवा सदा सदा दातारु । १ । रहाउ ।**

४. **अनदिनु साहिबु सेवीऐ अंति छडाए सोइ ।**

५. **सुणि सुणि मेरी कामणी पारि उतारा होइ । २ ।**

६. **दइआल तेरै नामि तरा ।**

७. **सद कुरबाणै जाउ । १ । रहाउ ।**

८. सरबं साचा एकु है दूजा नाही कोइ ।

९. ता की सेवा सो करे जा कउ नदरि करे । ३ ।

१०. तुधु बाझु पिआरे केव रहा ।

११. सा वडिआई देहि जितु नामि तेरे लागि रहां ।

१२. दूजा नाही कोइ जिसु आगै पिआरे जाइ कहा । १ । रहाउ ।

१३. सेवी साहिबु आपणा अवरु ना जाचंउ कोइ ।

१४. नानकु ता का दासु है बिंद बिंद चुख चुख होइ । ४ ।

१५. साहिब तेरे नाम विटहु बिंद बिंद चुख चुख होइ । १ । रहाउ ।

पद-अर्थ

डरतु—डरता है, काँपता है; **सिउ**—पास; **दूख विसारणु**—दुःखों को दूर करने वाला; **नीत**—नित्य, सदा; **अनदिनु**—प्रत्येक दिन, सदा; **कामणी**—स्त्री, सहेली; **तरा**—पार हो जाता हूं; **सरबं**—सर्वत्र; **नदरि**—कृपा; **अवरु**—अन्य; **जाचंउ**—माँगता हूँ; **बिंद**—क्षण, स्वल्प समय; **चुख**—टुकड़े, बलिहारी जाऊँ ।

टीका

१. (अपने पापों का विचार करके) मेरा मन काँपता है । मैं किसके पास (इस दुःख की) पुकार करूं ?

२. (अतः) मैं उस दानी प्रभु की ही सेवा (याद) करता हूं, जो सदा ही दुःखों को दूर करने वाला है । १ ।

३. मेरा स्वामी प्रभु नित्य नवीन होकर (एक-समान खुले हृदय से) दान देता है । वह सदा ही दाता है । १ । रहाउ ।

४. स्वामी प्रभु की सेवा सर्वदा करनी चाहिए । अन्तः में वही दुखों से मुक्त करता है ।

५. अतः हे मेरी सखी सहेली, सुन (उस प्रभु का स्मरण करने से ही) संसार-सागर से उद्धार होता है । २ ।

६. हे दयालु प्रभु, मैं तुम्हारे नाम की सहायता से ही पार हो सकता हूँ ।

७. मैं तुम्हारे नाम पर सौ बार न्यौछावर जाता हूं। १ । रहाउ ।

८. केवल एक हरि सर्वत्र व्याप्त है; अन्य कोई नहीं है।

९. (परन्तु) उस का स्मरण वह मनुष्य करता है जिस पर उसकी कृपादृष्टि होती है।

१०. हे प्रिय प्रभु, मैं तुम्हारे बिना कैसे रह सकता हूं।

११. तुम मुझे यह मान प्रदान करो कि मैं सदा तुम्हारे स्मरण में लीन रहूँ।

१२. हे प्रिय, अन्य कोई नहीं मैं जिसके सम्मुख (अपनी वेदना) प्रकट कर सकूं। १ । रहाउ ।

१३. मैं अपने स्वामी प्रभु का स्मरण करता हूं और मेरे मन में कोई अन्य अभिकांक्षा नहीं है।

१४. नानक प्रभु स्वामी का दास है। अतः सदा उस पर न्यौछावर हैं। ४ ।

१५. हे स्वामी, मैं सदा तुम्हारे नाम पर बलिहारी होता हूं। १ । रहाउ ।

(२)

१. हम आदमी हाँ इक दमी मुहलति मुहतु न जाणा।

२. नानकु बिनवै तिसै सरेवहु जाके जीअ पराणा। १ ।

३. अंधे जीवना वीचारि देखि केते के दिना। १ । रहाउ ।

४. सासु मासु सभु जीउ तुमारा तू मै खरा पिआरा।

५. नानकु साइरु एव कहतु है सचे परवदगारा। २ ।

६. जे तू किसै न देही मेरे साहिबा किआ को कढै गहणा

७. नानकु बिनवै सो किछु पाईऐ पुरबि लिखे का लहणा। ३ ।

८. नामु खसम का चिति न कीआ कपटी कपटु कमाणा।

९. जम दुआरि जा पकड़ि चलाइआ ता चलदा पछुताणा। ४ ।

१०. जब लगु दुनीआ रहीऐ नानक किछु सुणीऐ किछु कहीऐ।

११. भालि रहे हम रहणु न पाइआ जीवतिआ मरि रहीऐ। ५ । २ ।

पद-अर्थ

इक दमी--दम (श्वास) भरके; **मुहलति**—अवधि; **मुहतु**—मुहूर्त, घड़ी; **मासु**—शरीर; **खरा**—बहुत; **गहणा**—कुछ बदले में देने के लिए, गिरवी रखने के लिए; **भालि रहे**—खोज की है; **रहणु**—सदा का निवास स्थान।

टीका

१. हम एक श्वास के मनुष्य हैं (हमारे जीवन का आधार एक श्वास ही है, क्या पता है, आए न आए?)। न हमें (आयु की) अवधि का ज्ञान है और न मृत्यु आने की घड़ी ज्ञात है।

२. (अतः) नानक विनय करता है कि उस प्रभु का स्मरण करो जिसने जीवन और श्वास दिए हैं। १।

३. हे मूर्ख मनुष्य, विचारकर देख कि जीवन कितने दिन रह सकता है (स्वल्प समय)?। १। रहाउ।

४. हे प्रभु, यह श्वास, शरीर और आत्मा सब तुम्हारे दिए हुए हैं। तुम मुझे अति प्रिय हो।

५. हे पालनकर्ता प्रभु, नानक भी ऐसे कहता है (कि जीवन प्राण तुम्हारे हैं। तुम मुझे अति प्रिय हो। २।

६. हे मेरे स्वामी, यदि तुम किसी को (नाम की) देन न दो तो कोई क्या गहने रखकर यह देन ले सकता है? (तुम्हारी कृपा से ही ले सकता है)।

७. नानक विनय करता है कि जीवो को तो वही कछ प्राप्त होता है जो पहले से जीवों के कर्मों के अनुसार प्रापत होना लिखा हुआ है। ३।

८. मनुष्य ने स्वामी प्रभु के नाम का स्मरण नही किया और पाखण्डी होकर पाखण्ड करता रहा है।

९. जब पकड़ कर मृत्यु के दूवार की ओर धकेला जाता है तब जाता हुआ पश्चात्ताप करने लगता है। ४।

१०. (नानक) जब तक संसार में जीएं, हरि का नाम जपें और सुनें।

११. हमने वहुत मार्गणा की है ; परन्तु इस जगतु में सदा ठहरे रहने का कोई उपाय नहीं है । अत: उचित है कि इस जगत् में जीवति-भाव को मार कर रहें । ५ । २ ।

(३)

१. किउ सिमरी सिवरिया नही जाइ ।
२. तपै हिग्राउ जीग्रड़ा बिललाइ ।
३. सिरजि सवारे साचा सोइ ।
४. तिसु विसरिऐ चंगा किउ होइ । १ ।
५. हिकमति हुकमि न पाइग्रा जाइ ।
६. किउकरि साचि मिलउ मेरी माइ । १ । रहाउ ।
७. वखरु नामु देखण कोई जांइ ।
८. ना की चाखै ना को खाइ ।
९. लोकि पतीणै ना पति होइ ।
१०. ता पति रहै राखै जा सोइ । २ ।
११. जह देखा तह रहिआ समाइ ।
१२. तुधु बिनु दूजी नाही जाइ ।
१३. जे को करे कीतै किग्रा होइ ।
१४. जिसनो बखसे साचा सोइ । ३ ।
१५. हुणि उठि चलणा मुहति कि तालि ।
१६. किग्रा मुहु देसा गुण नही नालि ।
१७. जैसी नदरि करे तैसा होइ ।
१८. विणु नदरि नानक नही कोइ । ४ । १ । ३ ।

पद-अर्थ

किउ—कैसे; **सिवरिआ**—स्मरण किया; **तपै**—जलता है; **हिआउ**—हृदय; **जीग्रड़ा**—ग्रात्मा; **बिललाइ**—बिलकती हैं, पुकार करती है; **सिरजि**—उत्पन्न करके; **हिकमति**—चतुराई, विज्ञता; **हुकमि**—शक्ति से;

वखरू—वस्तु, सौदा; **पतीणै**—विश्वास करने से, सान्त्वना होने से; **पति**—प्रतिष्ठा; **जाइ**—स्थान, आश्रय; **मुहत**—घड़ी; **ताल**—ताली के बजने के समय में; **नदरि**—(कृपा की) दृष्टि।

टीका

१. मैं प्रभु का स्मरण कैसे करूँ? स्मरण कठिन है (यह मन की पवित्रता स्थिरता, लगन और प्रेम चाहता है। अगले 'शब्द' में मन की वह दशा बतलाई गई है जिसमें स्मरण हो जाता है)।

२. (परन्तु स्मरण के विना) मेरा चित्त जलता भी है और आत्मा चीत्कार और क्रन्दन भी करता है।

३. वह सत्य प्रभु, जो समस्त जीवों को उत्पन्न करता है और फिर उन्हें सँवारता भी है,—

४. उसे भुलाकर जीवन अच्छा (सफल) कैसे हो सकता है? (वही तो जीवन का आधार है)। १।

५. वह किसी चतुरता (विज्ञता) से अथवा शासन के बल से प्राप्त नहीं होता।

६. अतः हे मेरी माता, मैं किस प्रकार उस सत्य प्रभु से मिल सकता हूँ। रहाउ।

७. कोई बिरला ही नाम-वस्तु परखने के लिए जाता है।

८. इसे न कोई चखता है, न खाता है (वास्तविक रूप से कोई बिरला ही नाम जपता है। अन्य केवल दिखावा करते हैं, अथवा जप की प्रथा का पालन करते हैं)।

९. लोगों के मनों में विश्वास उत्पन्न करने से ही ईश्वरीय सभा में वास्तविक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती।

१०. प्रतिष्ठा तब रहती हैं, जब प्रभु रखे। २।

११. मैं जिधर देखता हूँ, उधर ही प्रभु व्याप्त दिखाई देता है।

१२. हे प्रभु, तुम्हारे अतिरिक्त मेरे लिए अन्यस्थान (आश्रय) नहीं है।

१३. (तुम्हारी कृपा माँगता हूं। क्योंकि,) यदि कोई जीव यत्न करे तो उसके करने से कुछ नहीं होता।

१४. वह सत्य प्रभु जिस पर कृपा करता है (उसका ही यत्न सफल होता है। ३।

१५. (ज्ञात नहीं कि मुझे यहाँ से) अभी चले जाना अथवा एक घड़ी के अनन्तर, अथवा ताली बजने के समान काल में।

१६. हरि को क्या मुख दिखाऊँगा ? मुझ में कोई गुण नहीं है।

१७. प्रभु किसी पर जिस प्रकार की दृष्टि करता है, वह वैसा ही बन जाता हैं।

१८. (नानक) उसकी दृष्टि (कृपा) के बिना कोई कुछ नहीं बनता।
।४।३।

(४)

१. नदरि करे ता सिमरिआ जाइ।
२. आतमा द्रवै रहै लिव लाइ।
३. आतमा परातमा एको करै।
४. अंतर की दुबिधा अंतरि मरै। १।
५. गुर परसादी पाइआ जाइ।
६. हरि सिउ चितु लागै फिरि कालु न खाइ। १। रहाउ।
७. सचि सिमरिऐ होवै परगासु।
८. ता ते बिखिआ महि रहै उदासु।
९. सतिगुर की ऐसी वडिआई।
१०. पुत्र कलत्र विचे गति पाई। २।
११. ऐसी सेवकु सेवा करै।
१२. जिस का जीउ तिसु आगै धरै।
१३. साहिब भावै सो परवाणु।
१४. सो सेवकु दरगह पावै माणु। ३।
१५. सतिगुरू की मूरति हिरदै वसाए।
१६. जो इछै सोई फलु पाए।
१७. साचा साहिबु किरपा करै।

१८. **सो सेवकु जम ते कैसा डरै । ४ ।**

१६ **भनति नानकु करे वीचारु ।**

२०. **साची बाणी सिउ धरे पिआरु ।**

२१. **ता को पावै मोख दुआरु ।**

२२. **जपु तपु सभु इहु सबदु है सारु । ५ । २ । ४ ।**

पद-अर्थ

द्रवै—पिघलता है, नरम होता है; **परसादी**—कृपा से; **कालु**—मृत्यु; **परगासु**—(ज्ञान का) प्रकाश; **बिखिआ**—विष (माया); **उदासु**—तटस्थ, निर्लेप; **कलत्र**—पत्नी; **मूरति**—आत्मस्वरूप; **भनति**—विनति करता है; **मोख**—मोक्ष, मुक्ति ।

टीका

१. यदि प्रभु कृपा करे तो उसका स्मरण किया जा सकता है ।

२. तब मनुष्य का आत्मा नरम होता (पिघल जाता) है और प्रभु में (प्रेम-पूर्ण) लगन लग जाती है ।

३. वह अपनी आत्मा को परमात्मा के साथ अभिन्न कर लेता है ।

४. (और) उसके मन का द्वैतभाव अन्दर ही नष्ट हो जाता है। १ ।

५. गुरु की कृपा से ही प्रभु प्राप्त हो सकता है ।

६. यदि किसी की प्रीति प्रभु से लग जाए तो फिर उसे मृत्यु नहीं डराती । १ । रहाउ ।

७. सत्य-स्वरूप प्रभु के स्मरण से हृदय के भीतर ज्ञान का प्रकाश होता है ।

८. (जिससे) मनुष्य माया रूपी विष में रहता हुआ भी उससे प्रभावित नहीं होता है ।

६. सद्गुरु की महिमा ऐसी है ।

१०. (कि) मनुष्य पुत्रों और पत्नी के मध्य रहता हुआ मुक्ति प्राप्त कर लेता है । २ ।

११. यदि कोई सेवक होकर प्रभु की ऐसी सेवा करे,—

१२. (कि) जिस प्रभु का दिया हुआ जीव का प्राण है उसके लिए ही अर्पण करदे,—

१३. और जो भी प्रभु को अच्छा लगे वही शिरोधार्य कर,—

१४. तो उस सेवक को प्रभु की सभा में प्रतिष्ठा मिलती है। ३।

१५. यदि कोई सेवक गुरु के आत्मस्वरूप को हृदय में बसाए,—

१६. तो वह मन अभीष्ट फल प्राप्त कर लेगा।—

१७. उस पर सत्य स्वामी कृपा करता है

१८. और वह मृत्यु का भय नहीं खाता। ४।

१९. नानक विनति करता है कि जब जीव विचार करता है—

२०. और सत्य वाणी ('शब्द') से प्रेम करता है,

२१. तब वह मुक्ति के द्वार को प्राप्त करता है।

२२. उसके लिए यह उत्तम 'शब्द' ही वास्तविक जप, तप है। ५। २। ४।

(५)

१. जीउ तपतु है बारो बार।

२. तपि तपि खपै बहुतु बेकार।

३. जै तनि बाणी विसरि जाइ।

४. जिउ पका रोगी विललाइ। १।

५. बहुता बोलणु झखणु होइ।

६. विणु बोले जाणै सभु सोइ। १। रहाउ।

७. जिनि कन कीते अखी नाकु।

८. जिनि जिहवा दिती बोले तातु।

९. जिनि मनु राखिआ अगनी पाइ।

१०. वाजै पवणु आखै सभ जाइ। १।

११. जेता मोहु परीति सुआद।

१२. सभा कालख दागा दाग।

१३. दाग दोस मुहि चलिआ लाइ।

१४. दरगह बैसरा नाही जाइ । ३ ।
१५. करमि मिलै आखणु तेरा नाउ ।
१६. जितु लगि तरणा होरु नाही थाउ ।
१७. जे को डूबै फिरि होवै सार ।
१८. नानक साचा सरब दातार । ४ । ३ । ५ ।

पद-अर्थ

तपतु—जलता है, दुःखी होता है; **बारो-बार**—पुनः पुनः, बार-बार, **बेकार**—विकारों में, दुष्कर्मों में; **पका रोगी**—कोढ़ी; **बिललाइ**—दुःखी होता हैं; **झखणु**—व्यर्थ बकना; **तातु**—तड़ तड़, शीघ्र शीघ्र; **करमि**—कृपा से; **थाउ**—स्थान (आश्रय); **सार**—सँभाल ।

टीका

१. (स्मरण को विस्मृत कर देने से) आत्मा पुनः पुनः दुःखी होता है ।
२. और दुःखी होकर अन्य विकारों में लगता है ।
३. जिस शरीर को (मनुष्य को) बाणी विस्मृत हो जाती है—
४. वह कोढ़ी की भाँति रोता है । १ ।
५. (जो जीव स्मरण से रिक्त है परन्तु दावे कर कर के गाल बजाता है) उसकी समस्त बातें अपलाप (व्यर्थ) हैं ।
६. (क्योंकि) प्रभु मनुष्य के कहे बिना ही जानता है (कि किस के भीतर क्या है) । १ । रहाउ ।
७. जिस प्रभु ने हमारे कर्ण, चक्षु और नासिका बनाए हैं,—
८. जिसने जिह्‌वा दी है जो तड़-तड़ बोलती है,
९. जिसने मन को माता के गर्भ की अग्नि में डालकर बचाए रखा है,—
१०. (जिस प्रभु की कृपा से कानों में) वायु जाकर बजती है और सब बातें मस्तिष्क तक जाकर बतलाती है, (धन्यवाद सहित उसका स्मरण करना चाहिए) । २ ।
११. संसार में जितना मोह है, मिथ्या प्रीति है और रसों के स्वाद हैं,—

१२. वे सब आत्मा को काला करने वाले हैं और उसे विकारों के धब्बों सेभरते हैं।

१३. जो मनुष्य इन दोषों (विकारों) के धब्बे अपने मुख पर लगाकर जाता है,—

१४. उसे प्रभु की सभा में बैठने के लिए स्थान नहीं मिलता। ३।

१५. हे प्रभु, तुम्हारी कृपा से ही तुम्हारा स्मरण कीर्तन होता है।

१६. (ऐसा स्मरण कि) जिससे मनुष्य पार होता है, उसके बिना अन्य कोई आश्रय नहीं है।

१७. जो मनुष्य (नाम रहित होने से पापों के कारण) डूबता हो (तो तुम्हारी कृपा से उसे भी नाम की देन होकर) नाम द्वारा उसकी रक्षा हो जाती है।

१८. (नानक) सत्य प्रभु सब पर कृपा करने वाला है। ४। ३। ५।

(६)

१. चोरु सलाहे चीतु न भीजै।
२. जे बदी करे ता तसू न छीजै।
३. चोर की हामा भरे न कोइ।
४. चोरु कीआ चंगा किउ होइ। १।
५. सुणि मन अंधे कुते कूड़िआर।
६. बिनु बोले बूझीऐ सचिआर। १। रहाउ।
७. चोरु सुआलिउ चोरु सिआणा।
८. खोटे का मुलु एकु दुगाणा।
९. जे साथि रखीए दीजै रलाइ।
१०. जा परखीऐ खोटा होइ जाइ। २।
११. जैसा करे सु तैसा पावै।
१२. आपि बीजि आपे ही खावै।
१३. जे वडिआईआ आपे खाइ।
१४. जेही सुरति तेहै राहि जाइ। ३।

१५. **जे सउ कूड़ीआ कूड़ु कबाड़ु ।**

१६. **भावै सभु आखउ संसार ।**

१७. **तुधु भावै अधी परवाणु ।**

१८. **नानक जाणै जाणु सुजाणु । ४ । ४ । ६ ।**

पद-अर्थ

चोरु—दुर्जन; **तसू**—रत्ती भर; **छीजै**—टूटता, घटता; **हामा**—हामी भरना, जमानत देना, सहायता करनी; **सचिआर**—सत्य हरि; **सुआलिउ**—सुन्दर; **दुगाणा**—दो गन्डे, कौड़ियाँ, तुच्छ मूल्य; **सुरति**—बुद्धि, समझ; **कबाड़ु**—व्यर्थ वस्तुओं को अच्छा बतलाना जैसे कबाड़िये करते हैं; **अंधी**—अज्ञानी।

टीका

१. यदि कोई चोर प्रभु की स्तुति करे तो भी प्रभु का हृदय विश्वस्त नहीं होता (जब तक वह खोटा है, वह दोषी है, पाखण्ड से की हुई स्तुति दोष कम नहीं करती)।

२. यदि वह (चोर) प्रभु की निन्दा करे तो उसके दोष में तनिक सा भी घाटा नहीं पड़ता।

३. और चोर की सहायता भी सभा में कोई नहीं करता।

४. जब वह उसकी सभा में चोर माना गया (ठहराया गया है) तब वह अच्छा कैसे हो सकता है। १।

५. हे मेरे अज्ञानी, लोभी और मिथ्या-पूर्ण मन सुन।

६. (हरि की सभा में कुछ नहीं छिपता और जो मनुष्य सच्चा है वह बिना बोले ही पहचाना जाता है। १। रहाउ।

७. चोर चाहे सुन्दर बन-बन कर कहे और चाहे चतुर हो कर दिखाई दे,—

८. वह खोटा ही है और खोटे का मूल्य दो कौड़ियाँ ही है।

९. यदि खोटा रूपया खरे (शुद्ध) रूपयों के साथ रखा जाए अथवा उनमें मिला दिया जाए,—

१०. तो भी जब परख होगी वह खोटा ही निकलेगा । २ ।

११. जो कर्म वह (चोर) करता है उसे उसका फल मिलता है ।

१२. यदि कोई (दुर्गुणी व्यक्ति) अपनी प्रशंसा आप ही करे,—

१४. (तो भी) जैसी उसकी बुद्धि बनी है उसके अनुसार ही कर्म करता है । ३ ।

१५. यदि (चोर) सौ असत्य बातें करे और निकम्मी वस्तुओं को अच्छी बताए,—

१६. और चाहे समस्त संसार (धोखा खाकर) उसे अच्छा कहे, तो भी वह हरि की दृष्टि में दुर्गुणी ही है ।

१७. परन्तु, हे प्रभु, यदि कोई अज्ञानवान् मनुष्य भी तुम्हें अच्छा लग जाए तो वह सभा में स्वीकृत हो जाता है ।

१८. (नानक), वह ज्ञाता हरि सब कुछ जानता हैं । ४ । ४ । ६ ।

(७)

१. काइआ कागदु मनु परवाणा ।
२. सिर के लेख न पड़ै इआणा ।
३. दरगह घड़ीअहि तीने लेख ।
४. खोटा कांमि न आवै वेखु । १ ।
५. नानक जे विचि रुपा होइ ।
६. खरा खरा आखै सभु कोइ । १ । रहाउ ।
७. कादी कूड़ु बोलि मलु खाइ ।
८. ब्राहमणु नावै जीआ घाइ ।
९. जोगी जुगति न जाणै अंधु ।
१०. तीने ओजाड़े का बंधु । २ ।
११. सो जोगी जो जुगति पछाणै ।
१२. गुरपरसादी एको जाणै ।
१३. काजी सो जो उलटी करै ।
१४. गुर परसानी जीवतु मरै ।

१५. सो ब्राहमणु जो ब्रहमु बीचारै ।

१६. आपि तरै सगले कुल तारै । ३ ।

१७. दानसबंदु सोई दिलि धोवै ।

१८. मुसलमाणु सोई मलु खोवै ।

१९. पड़िआ बूझै सो परवाणु ।

२०. जिसु सिरि दरगह का नीसाणु । ४ । ५ । ७ ।

पद-अर्थ

काइआ—शरीर; **कागदु**—कागज; **परवाणा**—आदेश; **इआणा**—अज्ञानी; **रुपा**—चाँदी; **कादी**—काज़ी; **घाइ**—मारकर, दु:ख देकर; **बंधु**—जो बाँधा जाए, सामान; **उलटी करे**—माया की ओर से चित्त हटा ले ; **दानसबंदु**—दानिशमन्द, बुद्धिमान् ।

टीका

१. शरीर कागज है और मन (स्वभाव, आचरण जो अपने कर्मों से बनता है) उसके ऊपर लिखा हुआ आदेश रूपी लेख हैं।

२. बुद्धिहीन मनुष्य मस्तक पर लिखे कर्मों के लेखों को नहीं पढ़ता (सोचता)। (उसे यह समझना चाहिए कि यदि पिछले कर्मों का फल मैं अब भोग रहा हूँ तो अब ऐसे कर्म करूँ कि मैं कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाऊँ)।

३. प्रभु की सभा में तीनों गुणों के लेख लिखे जाते हैं (जीव उसके आदेश के अनुसार अपने-अपने कर्मों के त्रिगुणीय लेख लिखते जा रहे हैं)।

४. विचारकर के देख लो कि जो भी खोटा सिक्का हैं वह किसी काम नहीं आता। १।

५. (नानक) यदि सिक्के के भीतर चाँदी हो,

६. तो सब लोग उस सिक्के को खरा-खरा कहते हैं। १। रहाउ।

७. काजी असत्य बोल बोल कर मर (अधर्म की कमाई उत्कोच आदि) खाता है,—

८. ब्राह्मण जीवों को मारकर (दुःख देकर) फिर दिखावे के लिए तीर्थों में भी स्नान करता है,—
९. योगी अज्ञानी है, और जीवन की विधि नहीं जानता।
१०. ये तीनों स्वयं अपने विनाश का सामान हैं।
११. वास्तविक योगी वह है जो जीवन की युक्ति जानता है,—
१२. और जो गुरु की कृपा से एक प्रभु को जानता है।
१३. वास्तविक काज़ी वह है जो माया की ओर से चित्त हटा लेता है,
१४. और जो गुरु की कृपा से जीवित-भाव (अहंभाव) को मार लेता है।
१५. वास्तविक ब्राह्मण वह है जो केवल ब्रह्म (प्रभु) को विचारता है,—
१६. वह आप पार उतरता हैं और सम्बन्धियों को पार करता है। ३।
१७. बुद्धिमान वही है जो अपने हृदय को पवित्र करता है।
१८. वास्तविक मुसलमान वही हैं जो मन का मल दूर करता है।
१९. वह पठित पुरुष स्वीकृत होता है जो पठित ग्रन्थ को समझता है (और उसके अनुसार आचरण करता है)।
२०. और जिसके मस्तक पर प्रभु की सभा की स्वीकृति की मुद्रा अंकित है। ४। ५। ७।

(८)

१. कालु नाही जोगु नाही नाही सत का ढबु।
२. थानसट जग भरिसट होए डूबता इव जगु। १।
३. कल महि रामनामु सारु।
४. अखी त मीटहि नाक पकड़हि ठगण कउ संसार। १। रहाउ।
५. आंट सेती नाकु पकड़हि सूझते तिनि लोअ।
६. मगर पाछै कछु न सूझै एहु पदमु अलोअ। २।
७. खत्रीआ त धरमु छोडिआ मलेछ भाखिआ गही।
८. स्रिसटि सभ इक वरन होई धरम की गति रही। ३।
९. असट साज साजि पुराण सोधहि करहि बेद अभिआसु।
१०. बिनु नाम हरि के मुकति नाही कहै नानकु दासु। ४। १। ६। ८।

पद-अर्थ

कालु—समय; **ढबु**—युक्ति, विधि; **थानसट**—इष्ट स्थान; **भरिसट**—गंदे, मलिन, अपवित्र; **डूबता**—डूबता है; **सारु**—श्रेष्ठ, उत्तम; **आंट**—अँगुष्ठ और साथ की दो अंगुलियाँ; **पदमु**—पद्मासन (जिसमें शरीर के अंग मोड़कर कमल की आकृति बना ली जाती है); **मलेछ भाखिआ**—मुसलमानों की भाषा जिसे ये स्वयं म्लेच्छ भाषा कहते हैं फ़ारसी; **वरन**—वर्ण, जाति, भाव, समस्त भारतीय दास हो गए; **असट साज**—पाठ और अर्थ-बोध के आठ अंग, अथवा व्याकरण ग्रन्थ के आठ अध्याय; **साजि**—शोधित करके; **सोधहि**—विचार करते हैं।

टीका

१. (आजकल) न वह समय है (जहाँ धर्म प्रफुल्लित हो), न योग की विधि रह गई है, न ही कोई सत्यनिष्ठ जीवन की विधि जानता है।

२. अब तो जगत् के इष्ट स्थान भी अपवित्र हो गए हैं, इस प्रकार अब जगत् डूब रहा है। १।

३. इस युग में (कलियुग में) केवल राम-नाम का स्मरण ही उत्तम मार्ग है।

४. (परन्तु) पाखण्डी लोग आँख बन्द करके नाक पकड़कर (समाधि का बहाना करके) लोगों को ठगते हैं। १। रहाउ।

५. अंगूठे और साथ की दो अंगुलियों को मिलाकर उससे नाक पकड़कर प्राणायम करते हैं (और दिखावा यह करते हैं) कि हमें तीनों लोकों का ज्ञान है।

६. परन्तु उन्हें अपने पीछे पड़ी हुई वस्तु का ज्ञान नहीं होता। देखो भाई, यह विलक्षण पद्मासन है। २।

७. क्षत्रियों ने अपना क्षत्रिय धर्म (देश की रक्षा करने का कार्य) छोड़ दिया है और उन्होंने दासता में) फारसी भाषा बोली जिसे वह म्लेच्छों की भाषा कहते हैं (नौकरी के लिए) स्वीकार करली है।

८. सभी लोग एक जाति और गोत्र के हो गए हैं (दास की जाति और गोत्र के हो गए हैं) और धर्म-कर्म की मर्यादा नहीं रही है। ३।

९. व्याकरण के आठ अध्यायों को ध्यान में रखकर पण्डित पुराणों का अनुशीलन करते हैं और वेदों का अभ्यास भी करते हैं,

१०. (परन्तु) दास नानक कहता है कि प्रभु-स्मरण के बिना किसी को मुक्ति नहीं मिल सकती । ४ । १ । ६ । ८ ।

(९)

(धनासरी महला १ आरती)

१. गगन मैं थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ।

२. धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती । १ ।

३. कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती ।

४. अनहता सबद वाजंत भेरी । १ । रहाउ ।

५. सहस तव नैन नन नैन है तोहि कउ सहस मूरति नना एक तोही ।

६. सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही । २ ।

७. सभ महि जोति जोति है सोइ ।

८. तिस कै चानणि सभ महि चानणु होइ ।

९. गुर साखी जोति परगटु होइ ।

१०. जो तिसु भावै सु आरती होइ । ३ ।

११. हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही पिआसा ।

१२. क्रिपा जलु देहि नानक सारिंग कउ होइ जा ते तेरै नामि वासा । ।४ । १ । ७ । ९ ।

धनासरी महला—१

असटपदीआं (अष्टपदी-पद्य-गुम्फ)

१. गुरु सागरु रतनी भरपूरे ।

२. अंम्रितु संत चुगहि नही दूरे ।

३. हरि रसु चोग चुगहि प्रभ भावै ।
४. सरवर महि हंसु प्रानपति पावै । १ ।
५. किआ बगु बपुड़ा छपड़ी नाइ ।
६. कीचड़ि डूबै मैलु न जाइ । १ । रहाउ ।
७. रखि रखि चरन धरे वीचारी ।
८. दुबिधा छोडि भए निरंकारी ।
९. मुकति पदारथु हरि रस चाखे ।
१०. आवण जाण रहे गुर राखे । २ ।
११. सरवर हंसा छोडि न जाइ ।
१२. प्रेम भगति करि सहजि समाइ ।
१३. सरवर महि हंसु हंस महि सागरु ।
१४. अकथ कथा गुर बचनी आदरु । ३ ।
१५. सुंन मंडल इकु जोगी बैसे ।
१६. नारि न पुरखु कहहु कोऊ कैसे ।
१७. त्रिभवण जोति रहे लिव लाई ।
१८. सुरि नर नाथ सचे सरणाई । ४ ।
१९. आनंद मूलु अनाथ अधारी ।
२०. गुरमुखि भगति सहजि बीचारी ।
२१. भगति वछल भै काटणहारे ।
२२. हउमै मारि मिले पगु धारे । ५ ।
२३. अनिक जतन करि कालु संताए ।
२४. मरणु लिखाइ मंडल महि आए ।
२५. जनमु पदारथु दुबिधा खोवै ।
२६. आपु न चीनसि भ्रमि भ्रमि रोवै । ६ ।
२७. कहतउ पड़तउ सुणतउ एक ।
२८. धीरज धरमु धरणीधर टेक ।
२९. जतु सतु संजमु रिदै समाए ।
३०. चउथे पद कउ जे मनु पतीआए । ७ ।

३१. **साचे निरमल मैलु न लागे ।**

३२. **गुर कै सबदि भरम भउ भागै ।**

३३. **सूरति मूरति आदि अनुपु ।**

३४. **नानकु जाचै साचु सरुपु । ४ । १ ।**

पद-अर्थ

हंस—सन्त; गुरुमुख; **प्रानपति**—प्राणों का स्वामी, प्रभु; **बगु**—बगुला; **बपुड़ा**—विचारा; **बीचारी**—विचारवान्; **आदरु**—मान, महत्त्व; **सुंन मंडल**—निर्विकल्प ध्यानावस्था; **मूलु**—जड़, स्रोत; **पगु धारे**—पद रखता है; **सूरति मूरति**—सुन्दर रूपवान् प्रभु ।

टीका

१. गुरु मानो एक समुद्र है जो आत्मज्ञान (गुणों) रत्नों से पूर्ण है ।

२. सन्त उस सागर से अमृत नाम, रूपी मोती चुगते हैं और उससे दूर नहीं जाते ।

३. वे नाम रस का चुग्गा चुगते हैं जो प्रभु को अच्छा लगता है ।

४. गुरु रुपी सरोवर से हंस (सन्त) प्राणों के स्वामी प्रभु को प्राप्त कर लेता है । १ ।

५. वराक वक (दम्भी मनुष्य) क्या (व्यर्थ) कर्दम-पूर्ण लघु जलाशय में (कर्मकाण्ड में, प्रथापालनार्थ किए जाने वाले पूजा-पाठ में) स्नान करता है ।

६. उसका मल नहीं उतरता, प्रत्युत वह कर्दम में डूबता है । १ । रहाउ ।

७. विचारवान् पुरुष सोच-सोच कर कदम रखता है ।

८. वह द्वैतभाव का त्याग करके निराकार का हो जाता है ।

९. वह हरि-रस चखता है और मुक्ति का पदार्थ प्राप्त कर लेता है ।

१०. गुरु द्वारा रक्षित होने से उसका जन्म-मरण समाप्त हो जाता है । २ ।

११. गुरु रूपी सरोवर का त्याग करके सन्त रूपी हंस अन्यत्र नहीं जाता ।

१२. वह प्रेमाभक्ति, से सहजावस्था (चतुर्थ पद) में स्थिर हो जाता है ।

१३. गुरु सरोवर में सन्त हंस ठहरा रहता है और सन्त के हृदय में गुरु-सागर अपना प्रकाश भर देता है।

१४. उस प्रभु को, जिसकी कथा अकथनीय है (वर्णन से परे है), गुरु की वाणी की सहायता से आदर देता रहता है (गुणस्तुति में लग्न रहता है)। ३।

१५. हरि योग निर्विकल्प समाधि की अवस्था में बैठा है।

१६. वह न स्त्री है, न पुरुष है। कोई क्या कहे कि वह कैसा है ?

१७. परन्तु उसने तीनों लोकों में अर्थात् समस्त सृष्टि में अपनी ज्योति भर रखी है और उस सृष्टि में ध्यान लगाए रखता है (सबकी सुधि लेता है)।

१८. देव, मनुष्य और महान् योगी उस सत्य प्रभु की शरण हैं। ४।

१९. वह प्रभु आनन्द का स्रोत है और निराश्रयों का आश्रय है।

२०. गुरुमुख लोग भक्ति-द्वारा सहजावस्था में पहुँचकर उसका विचार करते हैं।

२१. वह प्रभु भक्ति का प्रेमी है और भय का नाशक है।

२२. अहंभाव को मारकर गुरुमुख मनुष्य उसके मार्ग पर कदम रखता है और उससे मिलता है। ५।

२३. (दूसरी ओर दम्भी कर्मकाण्डी) अनेक धर्म-कर्म के यत्न करते हैं, फिर भी उनकी मृत्यु होती है।

२४. वे मरने का (जन्म-मरण का) लेख लिख कर ही संसार मण्डल में आए हैं।

२५. दम्भी जीव जीवन को द्वैतभाव में खो देता है।

२६. वह अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता और भटक-भटक कर दु:खी होता है। ६।

२७. जो मनुष्य एक प्रभु का ही वर्णन करता है, उसी के विषय में पढ़ता और सुनता है,—

२८. उसका धर्म धैर्य हो जाता है। क्योंकि, उसका अवलम्ब भूमि का आश्रय भूत प्रभु है।

२९. वह पुरुष यतित्व, सत्यनिष्ठत्व और संयम को हृदय में धारण कर लेता है,—

३०. यदि उसका मन चतुर्थ पद में विश्वस्त हो जाए । ७ ।

३१. जिन्हें सत्य प्रभु ने पवित्र किया है उन्हें पुनः मल नहीं लगता ।

३२. गुरु की बाणी से उनका भ्रम और भय नष्ट होता है ।

३२. जो प्रभु सुन्दर रूपवान् है, सबका आदि है और उपमा से परे है,—

३४. नानक उस सत्यस्वरूप से याचना करता है । ८ । १ ।

(२)

१. सहजि मिलै मिलिआ परवाणु ।

२. ना तिसु मरणु न आवणु जाणु ।

३. ठाकुर महि दासु दास महि सोइ ।

४. जह देखा तह अवरु न कोइ । १ ।

५. गुरमुखि भगति सहज घरु पाईऐ ।

६. बिनु गुर भेटे मरि आइऐ जाईऐ । १ । रहाउ ।

७. सो गुरु करउ जि साचु द्रिड़ावै ।

८. अकथु कथावै सबदि मिलावै ।

९. हरि के लोग अवर नही कारा ।

१०. साचउ ठाकुरु साचु पिआरा । २ ।

११. तन महि मनूआ मन महि साचा ।

१२. सो साचा मिलि साचे राचा ।

१३. सेवकु प्रभ कै लागै पाइ ।

१४. सतिगुरु पूरा मिलै मिलाइ । ३ ।

१५. आपि दिखावै आपे देखै ।

१६. हठि न पतीजै ना बहु भेखै ।

१७. घड़ि भांडे जिनि अंम्रितु पाइआ ।

१८. प्रेम भगति प्रभि मनु पतीआइआ । ४ ।

१९. पड़ि पड़ि भूलहि चोटा खाहि ।

२०. बहुतु सिआणप आवहि जाहि ।

२१. नामु जपै भउ भोजनु खाइ ।

२२. गुरमुखि सेवक रहे समाइ । ५ ।

२३. पूजि सिला तीरथ बनवासा ।
२४. भरमत डोलत भए उदासा ।
२५. मनि मैलै सूचा किउ होइ ।
२६. साचि मिलै पावै पति सोइ । ६ ।
२७. आचारा वीचारु सरीरि ।
२८. आदि जुगादि सहजि मनु धीरि ।
२९. पल पंकज महि कोटि उधारे ।
३०. करि किरपा गुरु मेलि पिआरे । ७ ।
३१. किसु आगै प्रभ तुधु सालाही ।
३२. तुधु बिनु दूजा मै को नाही ।
३३. जिउ तुधु भावै तिउ राखु रजाइ ।
३४. नानक सहजि भाइ गुण गाइ । ८ । २ ।

पद-अर्थ

सहज—सहजावस्था में पहुँच कर; **सहज घरु**—सहजावस्था; **भांडे**—शरीर (जीव); **अंम्रितु**—नाम रूपी अमृत; **सिला**—पत्थर की मूर्त्ति; **भरमत डोलत**—भ्रान्त हुए फिरते हैं; **पल पंकज**—पलक के मारने में; **सहजि भाइ**—सहज भावना से, स्वाभाविक प्रेम भावना से ।

टीका

१. जो सहजावस्था में पहुंचकर प्रभु से मिलता है, वही वास्तव में संयोग को प्राप्त माना जाता है ।
२. ऐसा मनुष्य फिर मरता नहीं । उसका जन्म-मरण ही समाप्त हो जाता है ।
३. स्वामी प्रभु में वह भक्त (सहजावस्था वाला) ठहरता है और उस भक्त में प्रभु प्रकट हो जाता हैं ।
४. वह जिधर भी देखता है उसे (प्रभु ही दिखाई देता है । और कोई नहीं दिखाई देता । १ ।
५. गुरु के उपदेश से भक्ति-द्वारा सहजावस्था प्राप्त की जाती है ।

६. गुरु के मिलाप के बिना जन्म-मरण बना रहता है । १ । रहाउ ।
७. मैं उसे गुरु मानूं जो सत्य प्रभु को हृदय में दृढ़ करा दे,—
८. जो मुझे अकथनीय (अवर्णनीय) प्रभु का ज्ञान करा दे और शब्द-द्वारा प्रभु से मिला दे ।
९. हरि के भक्त को (नाम के अतिरिक्त और कोई काम नहीं ।
१०. उसका स्वामी सत्य प्रभु है । अत; उसे सत्य ही प्रिय लगता है । २ ।
११. जिसका मन शरीर के भीतर रहता है, जिसके मन की इच्छाएं अन्दर ही समाप्त हो जाती हैं, उसके मन में प्रभु बसता हैं ।
१२. वह सच्चा है । क्योंकि, वह सच्चे हरि में अनुरक्त हो गया है ।
१३. वह सेवक प्रभु के चरणों के आश्रय में रहता है ।
१४. प्रभु उसे पूर्ण सद्गुरु स्वयं मिलता हैं और हरि से मिला देता है । ३ ।
१५. प्रभु स्वयं ही सेवक की आत्मिक दशा को देखता है (पहचानता है) और पुन: स्वयं ही उसे अपने स्वरूप के दर्शन करा देता है ।
१६. परन्तु वह हठ की कमाई से, अथवा बेषों के धारण करने से, प्रसन्न नहीं होता ।
१७. जिस प्रभु ने जीव रूपी बर्तन बनाकर उनमें से किसी के भीतर अमृत नाम रखा है ।—
१८. उसका मन प्रेमाभक्ति के कारण विश्वस्त हो जाता है । ४ ।
१९. कई मनुष्य (धार्मिक पुस्तकें) पढ़-पढ़ कर भी भूले फिरते हैं और दु:ख सहते हैं ।
२०. बहुत से मनुष्य चतुराइयाँ भी दिखाते हैं, परन्तु जन्मते-मरते ही रहते हैं ।
२१. (सेवक वह है जो) नाम जपता है और प्रभु-भय का भोजन खाता है ।
२२. ऐसे सेवक गुरु के उपदेश से प्रभु में लीन हो जाते हैं । ५ ।
२३. कई पाषाण की मूर्तियों को पूजते हैं, तीर्थों और जंगलों में रहते हैं ।
२४. विरक्त त्यागी होकर भटकते फिरते हैं ।
२५. (परन्तु) जिसका मन मलिन है वह शुचि कैसे हो सकता है ?

२६. जो सत्य के शाथ संयुक्त होता है वही मान पाता है । ६ ।

२७. (वह सद्गुरु) जो शरीर (जीवन) में विचारवान् है और सत्कर्मी है,—

२८. जिसका मन सदा से सहजावस्था और निश्चल दशा में है,—

२९. जो कमलनयनों के एक पलक-निपात से करोड़ों को पार कर देता है,—

३०. हे प्रिय प्रभु, मुझे उस गुरु से मिला दे । ७ ।

३१. हे प्रभु, मैं किस अन्य को आगे (सामने) रखकर तुम्हारी तुलना करूँ ?

३२. तुम्हारे अतिरिक्त मुझे कोई अन्य दिखता ही नहीं है ।

३३. तुम्हें जैसे अच्छा लगता है, मुझे अपनी इच्छा के अधीन रखो ।

३४. (नानक, कृपा माँग कि) मैं सहज भावना से हरि के गुण गाता रहूं । ८ । २ ।

धनासरी महला—१

छंत (छन्द)

(१)

१. तीरथि नावण जाउ तीरथु नामु है ।

२. तीरथु सबद बीचारु अंतरि गिआनु है ।

३. गुर गिआनु साचा थानु तीरथु दस पुरब सदा दसाहरा ।

४. हउ नामु हरि का सदा जाचउ देहु प्रभ धरणी धरा ।

५. संसारु रोगी नामु दारू मैलु लागै सच बिना ।

६. गुर वाकु निरमलु सदा चानणु नित साचु तीरथु मजना । १ ।

७. साचि न लागै मैलु किआ मलु धोईऐ ।

८. गुणहि हारु परोइ किस कउ रोईऐ ।

९. बीचारि मारै तरै तारै उलटि जोनि न आवए ।

१०. आपि पारसु परम धिआनी साचु साचे भावए ।

११. आनंदु अनदिनु हरखु साचा दूख किलबिख परहरे ।

१२. सचु नामु पाइआ गुरि दिखाइआ मैलु नाही सच मने । २ ।
१३. संगति मीत मिलापु पूरा नावणो ।
१४. गावै गावणहारु सबदि सुहावणो ।
१५. सालाहि साचे मंनि सतिगुरु पुंन दान दइआ मते ।
१६. पिर संगि भावै सहजि नावै बेणी त संगमु सत सते ।
१७. आराधि एकंकारु साचा नित देइ चड़ै सवाइआ ।
१८. गति संगि मीता संत संगति करि नदरि मेलि मिलाइआ । ३ ।
१९. कहणु कहै सभु कोइ केवडु आखीए ।
२०. हउ मूरखु नीचु अजाणु समझा साखीऐ ।
२१. सचु गुर की साखी अंम्रितु भाखी तितु मनु मानिआ मेरा ।
२२. कूचु करहि आवहि बिखु लादे सबदि सचै गुरु मेरा ।
२३. आखणि तोटि न भगति भंडारी भरिपुरि रहिआ सोई ।
२४. नानक साचु कहै बेनंती मनु मांजै सचु सोई । ४ । १ ।

पद-अर्थ

थानु तीरथु-तीर्थ स्थान; **दस पुरब**—दस पर्व (पवित्र दिन) जब तीर्थ स्नान शुभ माना हुआ है। ये हैं—अष्ठमी, चतुर्दशी, अमावस्या, संक्रान्ति, पूर्णिमा, उत्तरायण, दक्षिणायन, दयतिप्त, चन्द्र और सूर्य ग्रहण; **दसाहरा**--जेठ सुदी दसमी, जब दस पापों का हरण करने वाली गंगा का जन्म माना जाता है; **जाचउ**—माँगता हूँ; **धरणी धरा**—पृथ्वी को स्थिर रखने वाला, प्रभु; **दारु**—औषध; **बेणी**—त्रिवेणी; **सत सते**—सच्चे से सच्चा; **साखीऐ**—शिक्षा से; **अंम्रित भाखी**—अमृत वाणी कही है; **कूच करहि**—चले जाते हैं; **आवहि**—उत्पन्न होते हैं; **बिखु लादे**—विष (पापों) से भरे हुए; **मांजै**—शुद्ध करे।

टीका

१. मैं भी तीर्थ पर स्नान के लिए जाता हूं। परन्तु मेरा यह तीर्थ हरि का नाम है।

२. शब्द का विचार भी तीर्थ है, जिससे भीतर प्रभु का ज्ञान होता है।

३. गुरु का दिया हुआ ज्ञान वास्तविक तीर्थस्नान है यही दस पर्व हैं और यही दस पाप दूर करने वाला दशहरा (गंगा का जन्मदिन) है।

४. मैं सदा प्रभु का नाम ही माँगता हूं। हे पृथ्वी के अवलम्ब प्रभु, मुझे नाम का दान दो।

५. संसार रोगी हैं। नाम ही रोगों का औषध है। सत्य-नाम के बिना पापों का मल लगता है।

६. गुरु का शब्द शाश्वत प्रकाश है और नित्यस्थायी सत्य तीर्थ है। यह ही तीर्थस्नान है। १।

७. सत्य में रहने से मल नहीं लगता। फिर तीर्थों पर जाकर मल धोने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

८. यदि गुणों का हार पिरोकर गले में डालें तो फिर किस लिये रोना है, फिर किस बात का दुःख मानना है। दुःख तो दुष्कर्म का माना जाता है।

९. जो मनुष्य विचार के बल से अहन्त्व को मार लेता है, वह आप पार उतरता है दूसरों को पार उतारता है और पुनः पुनः जन्म नहीं लेता।

१०. वह स्वयं पारस बन जाता है, परम ध्यानी होता है; वह सत्य-परायण पुरुष है और सत्य प्रभु का प्रिय है।

११. इसे सदा आनन्द होता है, वास्तविक हर्ष मिलता है और इससे दुःख पाप दूर होते हैं।

१२. जिसे गुरु ने मार्ग दिखाया है उसे सत्य नाम मिलता है; सत्य को मन में धारण करने से उसे मल नहीं लगता। २।

१३. हरि मित्र की संगति का मिलना ही वास्तविक स्नान है।

१४. जो शब्द के बल से प्रभु का गायक होकर उसकी स्तुति का गान करता है, वह सुन्दर हो जाता है।

१५. जो सद्गुरु को मानकर सत्य के गुणों की स्तुति करता है उसे पुण्य-दान और दयावती बुद्धि मिलती है।

१६. जो पति-प्रभु की संगति में रहकर उसे अच्छा लगने लगता है वह सहजावस्था में आत्मिक स्नान करता है। उसे मानों शुचितम त्रिवेणी के संगम का स्नान मिल जाता है।

१७. जो एक सत्य प्रभु का स्मरण करता है, उसे वह प्रतिदिन देन देता है और आगे अन्य-अन्य देता है।

१८. हरि-मित्र और सन्तों की संगति से मुक्ति मिलती है। प्रभु स्वयं ही कृपा करके ऐसी संगति का मिलाप देता है। ३।

१९. हे प्रभु, कहने को तो प्रत्येक मनुष्य तुम्हें महान् महान् कहता है परन्तु कौन कह सकता है तुम कितने महान् हो?

२०. मैं मूर्ख हूँ, नीच और अज्ञानी हूँ, गुरु के उपदेश से ही (तुम्हारी कुछ महत्ता) समझ सकता हूँ।

२१. गुरु की शिक्षा सत्य है, यह वाणी गुरु ने कही है; उस वाणी से मेरा मन विश्वस्त हो गया है।

२२. मनुष्य विष (पापों) से लदे हुए आते (जन्म लेते) हैं और वैसे ही चले जाते हैं, परन्तु सत्य शब्द के बल से जिनको मेरा गुरु मिलता है उनका जन्म-मरण समाप्त हो जाता है।

२३. हरि के (अनन्त गुण) कीर्तन से समाप्त नहीं होते। अत: भक्ति के कोषों का भी कोई अंत नहीं। वह तो सर्वत्र व्याप्त हो रहा है (उसे सर्वत्र देखा जा सकता है)।

२४. (नानक) जो मनुष्य उसके सम्मुख खड़ा होकर निश्छल प्रार्थना करता है, मन को शुद्ध कर लेता है और इस प्रकार सत्य रूप हो जाता है। ४। १।

(२)

१. **जीवा तेरै नाइ मनि आनंदु है जीउ।**
२. **साचो साचा नाउ गुण गोविंदु है जीउ।**
३. **गुर गिआनु अपारा सिरजणहारा जिनि सिरजी तिनि गोई।**
४. **परवाणा आइआ हुकमि पठाइआ फेरि न सकै कोई।**
५. **आपे करि वेखै सिरि सिरि लेखै आपे सुरति बुझाई।**
६. **नानक साहिबु अगम अगोचरु जीवा सची नाई। १।**
७. **तुम सरि अवरु न कोइ आइआ जाइसी जीउ।**
८. **हुकमी होइ निबेड़ु भरमु चुकाइसी जीउ।**

९. गुरु भरमु चुकाए अकथु कहाए सच महि साचु समाणा ।
१०. आपि उपाए आपि समाए हुकमी हुकमु पछाणा ।
११. सची वडिआई गुर ते पाई तू मनि अंति सखाई ।
१२. नानक साहिबु अवरु न दूजा नामि तेरै वडिआई । २ ।
१३. तू सचा सिरजणहारु अलख सिरंदिआ जीउ ।
१४. एकु साहिबु दुइ राह वाद वधंदिआ जीउ ।
१५. दुइ राह चलाए हुकमि सबाए जनमि मुआ संसारा ।
१६. नाम बिना नाही को बेली बिखु लादी सिरि भारा ।
१७. हुकमी आइआ हुकमु न बूझै हुकमि सवारणहारा ।
१८. नानक साहिबु सबदि सिआपै साचा सिरजणहारा । ३ ।
१९. भगत सोहहि दरवारि सबदि सुहाइआ जीउ ।
२०. बोलहि अंम्रित बाणि रसन रसाइआ जीउ ।
२१. रसन रसाए नामि तिसाए गुर कै सबदि विकाणे ।
२२. पारसि परसिऐ पारसु होए जा तेरै मनि भाणे ।
२३. अमरा पदु पाइआ आपु गवाइआ विरला गिआन वीचारी ।
२४. नानक भगत सोहनि दरि साचै साचे के वापारी । ४ ।
२५. भूख पिआसो, आथि किउ दरि जाइसा जीउ ।
२६. सतिगुर पूछउ जाइ नामु धिआइसा जीउ ।
२७. सचु नामु धिआई साचु चवाई गुरमुखि साचु पछाणा ।
२८. दीनानाथु दइआलु निरंजनु अनदिनु नामु वखाणा ।
२९. करणी कार धुरहु फुरमाई आपि मुआ मनु मारी ।
३०. नानक नामु महा रसु मीठा त्रिसना नामि निवारी । ५ । २ ।

पद-अर्थ

नाइ—नाम द्वारा; **सिरजी**—बनाई; **गोई**—नष्ट की; **परवाणा**—आदेश; **अगम**—अगम्य; **अगोचर**—जो मन, वाणी से परे है; **नाई**—प्रशंसा, गुणस्तुति, नाम; **सरि**—सदृश; **निबेड़ु**—फैसला, समाप्त करना; **चुकाइसी**—दूर कर देगा; **उपाए**—उत्पन्न करता है; **समाए**—मिला लेता

है; **सखाई**—सखा, साथी; **अलख**—अलक्ष्य; **सिरंदिआ**—स्रष्टा; **वाद**—विवाद; **बेली**—मित्र; **बिख**—विष (माया); **दरबारि**—दरबार में, सभा में; **सुहाइआ**—सुन्दर लगते हैं; **अंम्रित बाणि**—अमृत बाणी; **रसन**—रसना, जिह्वा; **तिसाए**—तृषित; **विकाणे**—बिके हुए; **अमरापदु**—अमर पद; **आथि**—माया; **चवाई**—बोलता हूँ; **निरंजनु**—माया से अलिप्त।

टीका

१. मैं तुम्हारे नाम से जीता हूँ। इस प्रकार मेरे मन में आनन्द होता है।

२. सत्य प्रभु का नाम सत्य है। मेरा गोविन्द (धरती का स्वामी) गुणों वाला है।

३. गुरु का ज्ञान ही यह बतलाना है कि प्रभु स्रष्टा अनन्त है, जिसने समस्त सृष्टि उत्पन्न की है और जो उसका नाश भी करता है।

४. उसके बुलावे को, जो वह अपने आदेश से भेजे, कोई नहीं लौटा सकता।

५. वह स्वयं सृष्टि उत्पन्न करके उसकी सँभाल करता है। उसका आदेश प्रत्येक प्राणी के सिर पर लिखा हुआ है। वह स्वयं ही ऊँची सुरति देकर समझाता है।

६. (नानक) स्वामी प्रभु तक पहुँच नहीं है। वह मन वाणी से परे है। मैं उस सच्ची प्रशंसा (नाम) के आश्रय से जीवित हूँ। १।

७. हे प्रभु, तुम्हारे सदृश अन्य कोई नहीं है। क्योंकि, जो कोई भी जगत् में आया है, चला जाएगा।

८. उसके आदेश से जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है, जब (गुरु) भ्रम दूर करता है।

९. गुरु भ्रम दूर करता है, अकथनीय प्रभु का ज्ञान देता है और जीव सत्य रूप होकर सत्य-प्रभु मे मिलता है।

१०. (उस जीव को ज्ञान हो जाता है कि) प्रभु स्वयं ही जीवों को उत्पन्न करता है और स्वयं ही अपने साथ मिला लेता है। उसे उसके आदेश के अनुसार चलकर ही आदेश का ज्ञान हुआ है ("हुकमु बिसमादु हुकमि पछाणिआ")।

११. हे प्रभु, उसने तुम्हारी सत्य प्रशंसा गुरु से प्राप्त की है और तुम अन्त तक उसके मन में बसकर अन्त तक उसके साथी बने हो।

१२. (नानक, प्रभु के बिना) अन्य कोई स्वामी नहीं है। हे हरि, तुम्हारे नाम के बल से तुम्हारी प्रशंसा का ज्ञान होता है। २।

१३. हे प्रभु, तुम सदा स्थिर स्रष्टा हो। तुम अलक्ष्य हो, तुम स्रष्टा हो।

१४. स्वामी एक है; परन्तु उसने (जीवन) मार्ग दो कर दिए हैं (एक माया का और द्वितीय भगवान् का)। इस प्रकार परस्पर विरोध से विवाद बढ़ते हैं।

१५. उसने स्वयं ही दोनों मार्ग बनाए हैं; समस्त जीव आदेश के अधीन चलाए हैं। समस्त संसार जन्म-मरण के चक्र में है।

१६. नाम के बिना मनुष्य का कोई साथी नहीं है, परन्तु तो भी सांसारिकों ने सिर पर विष (पाप) लाद रखा है।

१७. जीव प्रभु के आदेश से उत्पन्न होता है परन्तु उसके आदेश को नहीं जानता। आदेश के अनुसार चलाकर प्रभु जीव को सँवारने वाला है।

१८. (नानक) सत्य स्रष्टा स्वामी प्रभु शब्द के बल से पहचाना जाता है। ३।

१९. भक्त प्रभु की सभा में शोभा पाते हैं। वे शब्द के कारण सुन्दर लगते हैं।

२०. वे अमृत वाणी बोलते हैं और (वाणी के साथ) जीभ को रसीली बनाते हैं।

२१. वे नाम के प्यासे, नाम की सहायता से जीभ को रसीली कर लेते हैं। गुरु के शब्द ने उनको मोल ले लिया है।

२२. हे प्रभु, जो तुम्हें अच्छे लगे वे पारस गुरु के स्पर्श से पारस हो गए।

२३. जिसने अहन्त्व को मारा है, उसे अमर-पद प्राप्त हो गया है। परन्तु ऐसा कोई विरला ही ज्ञान का विचार करने वाला होता है।

२४. (नानक) भक्त सत्य प्रभु के द्वार पर शोभा पाते हैं। वे सत्य नाम के व्यापारी हैं। ४।

२५. मैं माया का भूखा हूँ। फिर मैं किस प्रकार प्रभु की सभा में

जाऊँगा ?

२६. मैं जाकर सद्‌गुरु से पूछता हूँ और (उसके आदेश के अनुसार) नाम का स्मरण करता हूँ ।

२७. मैं अब सत्य का स्मरण करता हूं, सत्य (प्रभु) का मुख से उच्चारण करता हूँ, गुरु की शिक्षा से सत्य को पहचानता हूँ ।

२८. मैं दिन-रात उसके नाम का स्मरण करता हूँ जो सभी का आश्रय है, दयालु है और माया से लिप्त नहीं है ।

२९. (नाम-स्मरण की इस) कमाई और कर्म का हरि की सभा से आदेश किया गया है । इस प्रकार अहन्त्व मिटता है और मन जीता जाता है ।

३०. (नानक) नाम अत्यन्त आनन्ददायक और मधुर है । नाम ने माया की तृष्णा शान्त कर दी है । ५ । २ ।

(३)

१. पिर संगि मूठड़ीए खबरि त पाईआ जीउ ।
२. मसतकि लिखिअड़ा लेखु पुरबि कमाइआ जीउ ।
३. लेखु न मिटई पुरबि कमाइआ किआ जाणा किआ होसी ।
४. गुणी अचारि नही रंगि राती अवगुण बहि बहि रोसी ।
५. धनु जोबनु आक की छाइआ बिरधि भए दिन पुंनिआ ।
६. नानक नाम बिना दोहागणि छूटी झूठि विछुंनिआ । १ ।
७. बूडी घरु घालिओ गुर कै भाइ चलो ।
८. साचा नामु धिआइ पावहि सुखि महलो ।
९. हरिनामु धिआए ता सुखु पाए पेईअड़ै दिन चारे ।
१०. निजघरि जाइ बहै सचु पाए अनदिनु नालि पिआरे ।
११. विणु भगती घरि वासु न होवी सुणिअहु लोक सबाए ।
१२. नानक सरसी ता पिरु पाए राती साचै नाए । २ ।
१३. पिरु धन भावै ता पिर भावै नारी जीउ ।
१४. रंगि प्रीतम राती गुर कै सबदि वीचारी जीउ ।
१५. गुर सबदि वीचारी नाह पिआरी निवि निवि भगति करेई ।

१६. माइआ मोहु जलाए प्रीतमु रस महि रंगु करेई ।
१७. प्रभु साचे सेती रंगि रंगेती लाल भईमनु मारी ।
१८. नानक साचि वसी सोहागणि पिर सिउ प्रीति पिआरी । ३ ।
१९. पिर घरि सोहै नारि जे पिर भावए जीउ ।
२०. झूठे वैण चवे कामि न आवए जीउ ।
२१. झूठु अलावै कामि न आवै ना पिरु देखै नैणी ।
२२. अवगुणिआरी कंति विसारी छूटी विधण रैणी ।
२३. गुर सबदु न मानै फाही फाथी साधन महलु न पाए ।
२४. नानक आपे आपु पछाणै गुरमुखि सहजि समाए । ४ ।
२५. धन सोहागणि नारि जिनि पिरु जाणिआ जीउ ।
२६. नाम बिना कूड़िआरि कूड़ु कमाणिआ जीउ ।
२७. हरि भगति सुहावी साचे भावी भाइ भगति प्रभ राती ।
२८. पिरु रलीआला जोबनि वाला तिसु रावे रंगि राती ।
२९. गुर सबदि विगासी सहु रावासी फलु पाइआ गुणकारी ।
३०. नानक साचु मिलै वडिआई पिर घरि सोहै नारी । ५ । ३ ।

पद-अर्थ

मूडड़ीए—ठगी हुई, मोहित; **खबरि**—पता; **पुरबि**—पिछले कर्मों के अनुसार; **अचारि**—उच्च आचरण वाली; **आक**—आक का पौधा; **पुंनिआ**—पूर्ण हो गए; **दोहागणि**—परित्यक्ता, दुर्भाग्यवती; **बूडी**—डूबी हुई; **धालिउ**—उजाड़ दिया; **सरसी**—आनन्दित होकर; **धन**—स्त्री; **नाह**—पति; **रस**—चाव के साथ; **रंगेती**—अनुरक्त; **वैण**—वचन; **चवै**—कहे; **अलावै**—बोले; **विधण**—पति के बिना, पतिहीना, दुःखी; **फाही फाथी**—बन्धनों में फँसी हुई; **भाइ भगति**—भक्ति भाव से; **रलीआला**—प्रेम-क्रीड़ा का घर; **विगासी**—खिल गई; **रावासी**—प्राप्त किया ।

टीका

१. हे विषयों से मोहित, पति तेरे साथ है; परन्तु तुझे पता ही नहीं लगा ।

२. तेरे पूर्व कर्मों के अनुसार, तेरे मस्तक पर लेख ही हमने लिखा था (कि तू पति को पहचान न सके)।

३. पूर्व, कृत कर्मों के अनुसार मिला हुआ लेख मिट नहीं सकता; (किसी को ज्ञात नहीं होता कि आगे क्या होगा ?)

४. जो जीव रूपी नारी न गुणवती है और न उच्च-आचरणमालिनी और न भक्ति में लग्न है, वह पुन: पुन: अपने अवगुणों के कारण रोएगी।

५. धन और यौवन (सुन्दर यौवन) आक के पौधे की छाया के समान हैं; जब (जीव) वृद्ध हो जाता है और मृत्यु का दिन पहुँच जाता है तब (जीव) धन सम्पत्ति का त्याग करके चला जाता है।

६. (नानक) जीव रूपी नारी नामहीन होने के कारण विधवा रह जाती है; उसे पति ने छोड़ दिया है, वह मिथ्या में लगने से उससे वियुक्त हुई है। १।

७. हे डूबी हुई तूने घर को उजाड़ दिया है अब भी गुरु की इच्छा के अनुसार चल।

८. प्रभु के सत्य नाम का स्मरण करके तू सुख में वास प्राप्त करेगी।

९. जो जीव रूपी नारी स्मरण करती है वह सुख पाती है। पिता के घर (जगत्) का वास स्वल्प समय के लिए है।

१०. (परन्तु) यदि वह आत्मस्वरूप में जाकर स्थिर हो जाए तो उसे सत्य प्रभु प्राप्त होता है।

११. भक्ति के बिना उस घर में (आत्म-स्वरूप में) वास नहीं मिलता; समस्त सांसारिक, सुनो।

१२. (नानक) जीव रूपी नारी आनन्दित होकर पति को तब प्राप्त करती है जब सत्य नाम में अनुरक्त हो जाए। २।

१३. यदि जीव रूपी नारी को प्रभु पति अच्छा लगे, तो प्रभु को वह प्रिय लगती है।

१४. वह प्रिय पति के रंग में रंगी हुई गुरु के ज्ञान से विचारवती हो जाती है।

१५. जो गुरु-ज्ञान से विचारवती हुई है, वह पति-प्रभु को प्रिय लगती है तथा विनीत होकर, निरभिमान होकर भक्ति करती है।

१६. प्रभु प्रियतम उसके भीतर माया का प्रेम जला देता है और पुन: वह प्रभु के प्रेम-रस में मिलाप का आनन्द प्राप्त करती है।

१७. वह सत्य प्रभु के प्रेम में रंगी रहती है और अपने मन को मारकर सुन्दर बनती है।

१८. (नानक), वह सौभाग्यवती सत्य में लीन रहती है। वह प्रभु की प्रिय से प्रीति करती है। ३।

१९. यदि पति की प्रसन्नता प्राप्त कर चुकी हो तो नारी पति के घर शोभा पाती है।

२०. (परन्तु जो भीतर से मक्खन) मिथ्या वचन बोले, वे किसी काम नहीं आते।

२१. मिथ्या बोले हुए वचन किसी काम नहीं आते, न ही वह आँखों से पति को देखेगी।

२२. अवगुणवती जीव रूपी नारी को पति-प्रभु भुला देता है और उसकी (आयुरूपी) रात्रि पतिरहित (दु:खमय होकर) बीतती है।

२३. जो जीव रूपी नारी गुरु-ज्ञान को मन में नहीं रखती और बन्धनों में फँसी है, वह पति का घर नहीं पा सकती।

२४. (नानक) जो जीव रूपी नारी अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेती है, वह गुरु के उपदेश से प्रभु में सभा जाती है। ४।

२५. वह सुहागिनी नारी भाग्यवती है जिसने पति को पहचाना है।

२६. परन्तु नाम के बिना जीव रूपी नारी मिथ्या-भूत रहती है और मिथ्या का अर्जन करती है।

२७. प्रभु-भक्ति द्वारा जो जीव रूपी नारी सुन्दर हो गई है वह सत्य प्रभु को प्रिय है और भक्ति-भाव द्वारा प्रभु की प्रेमिका हो जाती है।

२८. प्रभु पति प्रेम-क्रीड़ाओं का रसिक है, नव-यौवनशाली है, प्रेम में रंगी हुई जीव रूपी नारी के साथ रमण का आनन्द होता है।

२९. जो जीव रूपी नारी गुरु के शब्द की सहायता से खिल गई है, वह पति-सहवास का आनन्द प्राप्त करती है और गुणों के जन्मदाता हरि को प्राप्त कर लेती है।

३०. (नानक) उस जीव रूपी नारी को सत्य रूपी गौरव प्राप्त होता है और वह पति के घर में शोभा पाती है। ५। ३।

रागु तिलग

एक ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु

अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ।

रागु तिलंग महला १

चउपदे

(१)

१. यक अरज गुफतम पेसि तो दर गोस कुन करतार ।
२. हका कबीर करीम तू बोऐब पखदगार । १ ।
३. दुनीआ मुकामे फानी तहकीक दिल दानी ।
४. मम सर मूइ अजराईल गिरफतह दिल हेचि न दानी । १ । रहाउ
५. जन पिसर पदर बिरादरां कस नेस दसतंगीर ।
६. आखिर बिअफतम कस न दारद चूं सबद तकबीर । २ ।
७. सब रोज गसतम दर हवा करदेम बदी खिआल ।
८. गाहे न नेकी कार करदम मम ईं चिनी अहवाल । ३ ।
९. बदबखत हमचु बखील गाफिल बेनजर बेबाक ।
१०. नानक बुगोयद जनु तुरा तेरे चाकरां पाखाक । ४ । १ ।

पद-अर्थ

यक - एक; अरज—विनति; गुफतम—मैंने की है; पेसि—पास, आगे; तो—तेरे; दर गोस कुन—ध्यान से सुन, कान लगाकर सुन; हका—सच्चा; कबीर—बड़ा; करीम—दयालु; बेऐब—दोषरहित; परवदगार—पालने वाला; मुकामे फानी—नश्वर स्थान; तहकीक—सत्य; दानी—जान; मम—मेरे; सर मूइ—सिर के बाल; अजराईल—मृत्यु का देवता; गिरफतह—पकड़े हुए हैं; दिल—हे मन; हेचि न—कुछ भी नहीं; दानी—तू समझता; जन—स्त्री; पिसर—पुत्र; पदर—पिता; बिरादरां—भाई, बन्धु; कस—कोई भी; नेस—नास्ति, नहीं है; दसतंगीर—सहायक; आखिर—अन्त में; बिअफतम—गिर पड़ा; कस—कोई; नदारद बचा कहीं दकता;

सवद—हो जाता है; **तकवीर**—कब्र में दबाने के समय पढ़ी जाने वाली नमाज़; **सबरोज़**—दिन-रात; **गसतम**—फिरता हूँ; दर हवा—लोप में; **करदेम**—करता हूँ; **बदी खिम्राल**--बुराई का विचार; **गाहे**—कभी; **नेकी कार**—भलाई का काम;**ममइं विनी ग्रहवाल**—मेरी ऐसी दशा रही हैं; **बदबख्त**—अभागा; **हमचु**—हमारे जैसा; **बखील**—चुगली करने वाला; **गाफिल**—लापरवाह; **बेनजर**—निर्लज्ज; **बेबाक**—निर्भय; **बुगोयद**—कहता हूँ; **जनु**—दास; **तुरा**—तुझे; **चाकरां**--दासों; **पाखाक**—चरण-धूलि ।

टीका

१. हे प्रभु, मैंने तुमसे नम्र प्रार्थना की है। इसे कान लगाकर सुनो।

२. तुम सत्य हो, महान् हो, दयालु हो, दोषरहित हो, और पालनकर्ता हो। १।

३. हे मेरे मन, जगत् नश्वर स्थान है , यह बात तू सत्य जान।

४. मेरे सिर के बाल मृत्यु के देवता, ग्रज़ाईल, ने पकड़े हुए हैं; परन्तु हे मन, तू कुछ नहीं समझता। १। रहाउ।

५. पत्नी, पुत्र, पिता, भ्राता कोई भी सहायक नहीं है।

६. जब अन्त में मैं गिर पड़ा, जब मृत्यु का समय ग्रा जाता है तब उस समय कोई नहीं बचा सकता। २।

७. मैं दिन-रात लोभ में फिरता रहा ग्रौर बुराई सोचता रहा हूँ।

८. मैने भलाई का काम कभी नहीं किया। मेरी ऐसी दशा रही हैं। ३।

९. मेरा-जैसा ग्रभागा, चुगलखोर, लापरवाह, निर्लज्ज ग्रौर निडर (कौन हो सकता है) ?

१०. दास (नानक) कहता है कि हे प्रभु, मैं तुम्हारे दासों के चरणों की धूलि माँगता हूँ। ४। १।

(२)

१. भउ तेरा भांग खलड़ी मेरा चीतु।

२. मैं देवाना भइग्रातीतु।

३. कर कासा दरसन की भूख।

४. **मैं दरि मागउ नीता नीत । १ ।**

५. **तउ दरसन की करउ समाइ ।**

६. **मैं दरि मागतु भीखिआ पाइ । १ । रहाउ ।**

७. **केसरि कुसम मिरगमै हरणा सरब सरीरी चड़ना ।**

८. **चंदन भगता जोति इनेही सरबे परमलु करणा । २ ।**

९. **घिअ पट भांडा कहै न कोइ ।**

१०. **ऐसा भगतु वरन महि होइ ।**

११. **तेरै नाम निवे रहे लिव लाइ ।**

१२. **नानक तिन दरि भीखिआ पाइ । ३ । १ । २ ।**

पद-अर्थ

भउ—भय; **भांग**—भंग (मादक द्रव्य); **खलड़ी**—भंग वाली थैली; **आतीतु**—त्यागी; **कासा**—(भिखारी का) प्याला; **समाइ**—पुकार; **दरि**—द्वार पर; **कुसम**—पुष्प; **मिरगमै**—मृगमद, कस्तूरी; **हरणा**—स्वर्ण; **परमलु**—सुगन्धि; **पट**—रेशम; **भांडा**—निन्दा नहीं करता; **वरन**—जाति।

टीका

१. हे प्रभु, मेरे लिए तुम्हारा भय भंग (मादक द्रव्य) है, मेरा मन भांग रखने वाली थैली है।

२. मैं (इस प्रकार का) मादक द्रव्य प्रेमी होकर त्यागी (वीतराग) हो गया हूँ।

३. मेरे दोनों हाथों में तुम्हारे द्वार पर भिखारी का प्याला है और मुझे तुम्हारे दर्शनों की भूख है।

४. मैं तुम्हारे द्वार पर नित्य यही माँगता हूँ। १।

५. मैं तुम्हारे द्वार पर दर्शनों का अभिलाषी हूँ।

६. मुझ भिक्षुक को अपने द्वार से यह भिक्षा दो। १। रहाउ।

७. केसर, पुष्प, कस्तूरी और स्वर्ण समस्त शरीरों पर चढ़ते हैं (सब लोग चाव से इनका प्रयोग करते हैं और इनकी अशुद्धि नहीं

मानते)।

८. चंदन की विशेषता भी ऐसी है कि सबको सुरभित कर देती है। यही तुम्हारे भक्तों की विशेषता है। २।

९. घी और रेशम की कोई निन्दा नहीं करता (घी और रेशम सदा शुचि समझे जाते हैं)।

१०. यही दशा तुम्हारे भक्तों की है, चाहे वे किसी भी जाति के हों।

११. जो भक्त छोटे होकर तुम्हारे नाम से लगन लगाए रखते हैं,

१२. (नानक, कह कि) हे प्रभु, मुझे उनके द्वार पर ले जाकर भिक्षा डाल। ३। १। २।

(३)

१. इहु तनु माइआ पाहिआ पिआरे लीतड़ा लबि रंगाए।
२. मेरै कंत न भावै चोलड़ा पिआरे किउ धन सेजै जाए। १।
३. हंउ कुरबानै जाउ मिहरवाना हंउ कुरबानै जाउ।
४. हंउ कुरबानै जाउ तिना कै लैनि जो तेरा नाउ।
५. लैनि जो तेरा नाउ तिना कै हंउ सद कुरबानै जाउ। १। रहाउ।
६. काइआ रंङणि जे थीऐ पिआरे पाइऐ नाउ मजीठ।
७. रंङण वाला जे रंङै साहिबु ऐसा रंग न डीठ। २।
८. जिन के चोले रतड़े पिआरे कंतु तिना कै पासि।
९. धूड़ि तिना की जे मिलै जी कहु नानक की अरदासि। ३।
१०. आपे साजे आपे रंगे आपे नदरि करेइ।
११. नानक कामणि कंतै भावै आपे ही रावेइ। ४। १। ३।

पद-अर्थ

पाहिआ—पाँगा हुआ, लित, दिग्ध; **लबि**—लोभ में; **चोलड़ा**—चोला (जीवन); **सद**—सदा; **रंङणि**—रंगने वाली मिट्टी; **थीऐ**—बन जाए; **डीठ**—देखा; **रतड़े**—रंगे हुए; **कामणि**—स्त्री; **रावेइ**—रमण करता है।

टीका

१. इस शरीर (जीवन) पर माया का लेप है
और यह लोभ में रंगा हुआ है।

२. मेरे पति प्रभु का यह चोला (जीवन) अच्छा नहीं लगता। अत: ऐसी जीव रूपी नारी को किस प्रकार पति की शय्या पर जाना मिले (मिलन होवे)? । १ ।

३. हे कृपालु प्रभु, मैं उन पर न्यौछाबर हूँ, बलिहारी हूँ ,-

४. उन पर न्यौछावर जाता हूँ, जो तुम्हारा नाम जपते हैं।

५. जो तुम्हारा नाम जपते हैं, मैं उन पर सदा ही बलिहारी जाता हूँ । १ । रहाउ ।

६. हे प्रिय प्रभु, यदि मेरा शरीर रंग वाली मिट्टी बन जाए और उसमें नाम का पक्का मजीठ रंग डाला जाए,—

७. यदि रगने वाला स्वामी प्रभु (मेरे हृदय को इसमें) रंग दे;
तो (यह ऐसा रंग होगा) जो कभी पहले नहीं देखा गया होगा । २ ।

८. जिनके जीवन ऐसे रंग में रंगे हुए हैं, पति-प्रभु उनके समीप है।

९. (हे भाई), कह कि नानक की यही प्रार्थना है कि कहीं मुझे उनकी (प्रभु में रंगे भक्तों की) चरणधूलि मिल जाए । ३ ।

१०. प्रभु स्वयं ही जीवों को बनाता है, जब स्वयं ही उन पर कृपा-दृष्टि करता है तब स्वयं ही कितनों को रंग लगाता है।

११. (नानक) यदि जीव रूपी नारी प्रभु-पति को प्रिय लग जाए तो वह स्वयं ही उससे रमण करता है (अंगीकार करके उसका मान बढ़ाता है) । ४ । १ । ३ ।

(४)

१. इआनड़ीए मानड़ा काइ करेहि ।

२. आपनड़ै घरि हरि रंगो की न माणेहि ।

३. सहु नेड़ै धन कंमलीए बाहरु किआ ढूढेहि ।

४. भै कीआ देहि सलाईआ नैणी भाव का करि सीगारो ।

५. ता सोहागणि जाणीऐ लागी जा सहु धरे पिआरो । १ ।

६. इग्राणी बाली किग्रा करे जा धन कंत न भावै ।
७. करण पलाहु करै बहुतेरे साधन महलु न पावै ।
८. विणु करमा किछु पाईऐ नाही जे बहुतेरा धावै ।
९. लभ लोभ ग्रहंकार की माती माइग्रा माहि समाणी।
१०. इनी बाती सहु पाईऐ नाही भई कामणि इग्राणी । २।
११. जाइ पुछहु सोहागणी वाहै किनी बाती सहु पाईऐ ।
१२. जो किछु करे सो भला करि मानीऐ हिकमति हुकमु चुकाईऐ।
१३. जा कै प्रेमि पदारथु पाईऐ तउ चरणी चितु लाईऐ ।
१४. सहु कहै सो कीजै तनु मनो दीजै ऐसा परमलु लाईऐ ।
१५. एव कहहि सोहागणी भैणे इनी बाती सहु पाईऐ । ३ ।
१६. ग्रापु गवाईऐ ता सहु पाईऐ अउरु कैसी चतुराई ।
१७. सहु नदरि करि देखै सो दिनु लेखै कामणि नउनिधि पाई ।
१८. ग्रापणे कंत पिआरी सा सोहागणि नानक सा सभराई ।
१९. ऐसे रंगि राती सहज की माती ग्रहनिसि भाइ समाणी ।
२०. सुंदरि साइ सरप बिचखणि कहीऐ सा सिआणी । ४ । २ । ४ ।

पद-अर्थ

इग्रानड़ीए—अज्ञे ! मुग्धे; **धरि**—मन में; **सहु**—पति, प्रभु; **सलाईग्रा**—सुरमे की शलाका; **बाली**—युवती स्त्री; **करणपलाहु**—विलाप करना; **करमा**—भाग्यो; **धावै**—भाग-दौड़ करे; **माती**—मत्त हुई; **समाणी**—चुभी हुई; **बाती**—बातें; **वाहै**—उन्होंने; **चुकाईऐ**—छोड़ दें; **परमल**—सुगन्ध; **ग्रापु**—अहन्त्व; **ग्रउरु**—अन्य; **दिनु लेखै**— समय सफल हैं; **नउनिधि**—नौ कोष; **सभराई**—भाइयों वाली, बड़े प्रताप वाली; **खिचखणि**—विचक्षणा, बुद्धिमती ।

टीका

१. हे ग्रज्ञ जीव रूपी नारी, तू अहंकार क्यों करती हैं ?

२. तू अपने ही घर (मन) में हरि के प्रेम का आनन्द क्यों नहीं प्राप्त करती ?

३. हे मुग्ध जीवरूपी नारी, पति-प्रभु निकट ही (तेरे भीतर ही) हैं। तू बाहर क्यों फिरती है ?

४. आँखों में भय की अंजन-शलाका लगा और प्रेम का शृंगार कर।

५. यदि प्रभु-पति उससे प्रेम करेगा तो जीव रूपी नारी पति-प्रभु की सुहागिनी और उसके कार्य में लग्न कही जायगी। १।

६. यदि पति-प्रभु उसे पसन्द न करे (यदि वह पति की प्रसन्नता प्राप्त न कर सकी हो तो) अज्ञ युवती जीव रूपी नारी क्या कर सकती ?

७. वह बहुत प्रार्थना, रोना-पीटना करे, परन्तु उसे पति के गृह में प्रवेश नहीं मिलता।

८. चाहे वह कितनी ही भाग-दौड़ करे, भाग्य के बिना कुछ नहीं प्राप्त होता।

९. यदि (नारी) लोभ, लालच, अहंकार में मत्त है और माया में फँसी हुई है,—

१०. तो इन बातों से पति-प्रभु नहीं मिलता; जीव रूपी नारी अज्ञानवती ही रहती है। २।

११. हे सहेलियो, जाकर सुहागिनों से पूछो कि उन्होंने किन कर्मों से प्रभु,-पति को पाया है।

१२. (वे उत्तर देती हैं कि) जो कुछ प्रभु करे उसे शुभ समझे और चतुरता, पटुता तथा स्व-शासन के बिचार का त्याग करदे—

१३. जिसके प्रेम से (नाम अथवा मुक्ति की) अमूल्य वस्तु प्राप्त की जाती है, उसके चरणों में मन लगाए।

१४. जो कुछ पति का आदेश हो उसका पालन किया जाए; तन, मन उसको अर्पित किया जाए। बस यही सुगन्धि मानी जाए।

१५. वे सुहागिनें इस प्रकार उत्तर देती हैं कि हे बहिन, इन उपायों से ही पति प्राप्त किया जाता है। ३।

१६. अहन्त्व नष्ट कर दिया जाए तो पति मिलता है। अन्य चतुरताएँ किस लिए हैं।

१७. जब पति कृपा दृष्टि से देखे, वह समय सफल है; तब स्त्री को

मानो समस्त कोष मिल जाते हैं।

१८. जो अपने पति को प्रिय लगती है, वह सुहागिनी हैं; (नानक), वही भाइयों वाली हैं (महा प्रताप वाली हैं)।

१९. जो प्रभु के प्रेम-रंग में रंगी रहती है; सहजावस्था में मत्त है और दिन-रात प्रीति में मग्न रहती है,—

२०. वही सुन्दरी हैं सुरुपा है, बुद्धिमती है और वास्तव में वही ज्ञानवती कही जा जाती है। ४। २। ४।

(५)

१. जैसी मै आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो।

२. पाप की जंज लै काबलहु धाइआ जोरी मंगै दानु वे लालो।

३. सरमु धरमु दुइ छपि खलोए कूड़ु फिरै परधानु वे लालो।

४. काजीआ बामणा की गल थकी अगदु पड़ै सैतानु वे लालो।

५. मुसलमानीआ पड़हि कतेबा कसट महि करहि खुदाइ वे लालो।

६. जाति सनाती होरि हिदवाणीआ एहि भी लेखै लाइ वे लालो।

७. खून के सोहिले गावीअहि नानक रतु का कुंगू पाइ वे लालो। १।

८. साहबु के गुण नानकु मासपुरी विचि आखु मसोला।

९. जिनि उपाई रंगि खाई बैठा वेखै वखि इकेला।

१०. सचा सो साहिबु सचु तपावसु सचड़ा निआउ करेगु मसोला।

११. काइआ कपड़ु टुखु टुकु होसी हिदुसतानु समालसी बोला।

१२. आवनि अठतरै जानि सतानवै होरु भी उठसी मरद का चेला।

१३. सच की बाणी नानकु आखै सचु सुणाइसी सच की बेला

। २। ३। ५।

पद-अर्थ

खसम की वाणी—स्वामी-प्रभु का आदेश; **करी गिआनु**—कहता हूँ; **पाप की जंज**—जुल्म की फौज; **सरमु**—शर्म, लज्जा; **गल थकी**—बात (पूछताछ) समाप्त हो गई; **अगदु**—विवाह; **सैतानु**—शैतान; **जाति सनाती**—उच्च नीच जाति की; **लेखै**—गिनती; **सोहिले**—गीत; **कुंगू**—केसर;

आखु—कहेगा, करेगा; **मासपुरी**—लाशों से भरी नगरी; **मसोला**—मसला, सिद्धान्त, सिद्धान्त की बात; **खाई**—लाई हैं; **तपावसु**—न्याय; **काइग्रा**—शरीर; **समालसो बोला**—मेरा वचन याद करेगा; **बेला**—समय।

टीका

यह 'शबद' बाबर बादशाह के सैदपुर (ऐमनाबाद) वाले ग्राक्रमण के ग्रवसर पर भाई लालो के प्रति उच्चरित हुआ)।

१. हे लालो, जिस प्रकार मुझे पति का आदेश पहुंचता है, उसी प्रकार उसका पता देता हूँ।

२. (बाबा) अत्याचार की सेना लेकर काबुल से हिन्दुस्तान पर चढ़ ग्राया ग्रौर बलपूर्वक हिन्दरूपी वधू का कन्यादान माँगता है।

३. लज्जा ग्रौर धर्म दोनों दौड़ गए हैं। असत्य चौधरी बना फिरता है।

४. काज़ी ग्रौर ब्राह्मणों की पूछताछ समाप्त हो गई है (पहले वे विवाह कराते थे, ग्रब शैतान विवाह कराता है, ग्रब स्त्रियों को बलपूर्वक उठा लेते हैं) और विवाह-संस्कार के मन्त्र-वचन पढ़ने की आवश्यकता ही नहीं रहती।

५. मुसलमानियाँ दुःखी होकर (परमात्मा से दया की भिक्षा के लिए) कुरान पढ़ती हैं, खुदा-खुदा कहती हैं।

६. उच्च ग्रौर नीच जाति की अन्य हिन्दू स्त्रियाँ भी इसी गणना में सम्मिलित समझलो (उनकी भी यही अवस्था है)।

७. (नानक) मंगल गीतों के स्थान पर इस विचित्र विवाह में रक्त के गीत (शोक-गीत) गाते जा रहे हैं ग्रौर कुंकम के स्थान पर रक्त पड़ रहा है। १।

८. (अब चित्र का दूसरा पक्ष सामने आता है। बाबर के अत्याचार प्रभु के आदेश के ग्रनुसार ही हुए दिखाई देते हैं और गुरु जी लालो के साथ इसका संविभाग,—साझापत्ती करते हैं) हे लालो, नानक तो अब प्रभु के गुण ही गाता है (उसने प्रभु का ग्रादेश पालित होता देख लिया है)। शवों से भरी इस नगरी में खड़ा होकर वह ग्राज एक ईश्वरीय सिद्धान्त की बात जगत् को बताएगा।

९. (वह यह है कि) जिस हरि ने यह संसार बनाया है और उसे काम-

काज में लगाया हैं, वह स्वयं ही इसे चला रहा है, यद्यपि पृथक् बैठा (खेल) देख रहा है, (जो यहाँ हो रहा है उसके आदेश के अनुसार हो रहा है)।

१०. क्यों कि वह स्वामी सच्चा है, जो हुआ है वह सच्चा न्याय ही हुआ है। जो वह भविष्य में करेगा वह भी सच्चा न्याय होगा—यह ईश्वरीय सिद्धान्त हैं।

११. (इस देश में) शरीर रूपी वस्त्र (अभी और अधिक) खण्ड खण्ड होगा। हिन्दुस्तान मेरे इस वचन को याद करेगा (कि सच्चा वचन था)।

१२. (आदेश ऐसे चलता हैं कि) जो वि० संवत् १५७८ वि० आएं (बाबर ने हिन्द पर कई आक्रमण किए थे। वि० संवत् १५७८ का आक्रमण गुरु जी ने स्वयं देखा था। उन्होंने यहाँ उसी का उल्लेख किया हैं) वे १५९७ वि० में चले भी जाएं (पाप का राज्य स्थिर नहीं रह सकता। जैसे कापुरुषठानों के राज्य को बाबर की सेनाओं ने समाप्त किया है वैसे इन नए अत्याचारियों के राज्य को नष्ट करने के लिए) वीर पुरुष का कोई अन्य शिष्य उठेगा। (कदाचित् शेरशाह की ओर संकेत है; क्योंकि, उसने सम्वत् १५९७ वि० में हुमायूं को परास्त किया था)।

१३. नानक सत्य कह रहा है और आगे भी सत्य सुनाएगा, जब भी सत्य सुनाने का समय आएगा। २। ३। ५।

(६)

१. जिनि कीआ तिनि देखिआ किआ कहीऐ रे भाई।
२. आपे जाणै करे आपि जिनि वाड़ी है लाई। १।
३. राइसा पिआरे का राइसा जितु सदा सुखु होई। १। रहाउ।
४. जिनि रगि कंतु न राविआ सा पछो रे ताणी।
५. हाथ पछोड़ै सिरु धुणै जब रैणि विहाणी। २।
६. पछोतावा ना मिलै जब चूकैगी सारी।
७. ता फिरि पिआरा रवीऐ जब आवेगी वारी। ३।
८. कंतु लीआ सोहागणी मैं ते वधवीएह।

९. से गुण मुझै न आवनी कै जी दोसु धरेह । ४ ।
१०. जिनि सखी सहु राविआ तिन पूछउगी जाए ।
११. पाइ लगउ बैनतीं करउ लेउगी पंथु बताए । ५ ।
१२. हुकमु पछाणै नानका भउ चंदनु लावै ।
१३. गुण कामण कामणि करै तउ पिआरे कउ पावै । ६ ।
१४. जो दिलि मिलिआ सु मिल रहिआ मिलिआ कहीऐ रे सोई ।
१५. जे बहुतेरा लोचीऐ बातीं मेलु न होई । ७ ।
१६. धातु मिलै फुनि धातु कउ लिव लिवै कउ धावै ।
१७. गुरु परसादी जाणीऐ तउ अनभउ पावै । ८ ।
१८. पाना वाड़ी होइ घरि खरु सार न जाणै ।
१९. रसीआ होवै मुसक का तब फूलु पछाणै ।
२०. अपिउ पीवै जो नानका भ्रमु भ्रमि समावै ।
२१. सहजे सहजे मिलि रहे अमरापदु पावै । १० । १ ।

पद-अर्थ

वाड़ी—खेती; जगत्; **राइसा**—रासो, कथा, प्रसंग; **पछोड़ै**—पटकती हैं; **धुणै**—मारती हैं; **सारी**—नरद, जीवन; **वारी**—पुन: जन्म; **वधवीएइ**—अच्छी; **पंथु**—मार्ग; **भउ**—भय; **कामण**—टोने, जादू; **लिव**—प्रेम; **अनुभउ**—भयरहित हरि; **पाना वाड़ी**—पानों की क्यारी; **खरू**—गधा; **सार**—आदर; **मुसक**—सुगन्ध; **अपिउ**—अमृत; **अमरापदु**—अमरपद ।

टीका

१. जिस हरि ने संसार बनाया है उसी ने इसकी देखभाल की है । (उसकी महिमा आश्चर्यजनक है) उसकी महिमा कितने लोग वर्णन कर सकते हैं, भाई ?
२. वह स्वयं ही सब कुछ जानता है, स्वयं ही सब कुछ करता है, जिसने यह संसार की खेती लगाई है । १ ।
३. हे भाई, उस प्रिय प्रभु का रासो गाओ जिससे सदा सुख प्राप्त

होता है । रहाउ ।

४. जिस जीव रूपी नारी ने प्रेम के बल से पति-प्रभु को प्राप्त नहीं कि मिलन का आनन्द नहीं प्राप्त किया) वह पश्चात्ताप करती है ।

५. जब, उसकी आयु रूपी रात्रि बीत जाती है. वह हाथ पटकती है, सिर धुनती है । २ ।

६. जब जीव रूपी नरद संसार चौसर से उठा ली जाएगी (मनुष्य जन्म का क्रम समाप्त हो जाएगा) तब पश्चात्ताप भी नहीं होता (पश्चात्ताप का अवसर ही नहीं होता) ।

७. फिर तो प्रिय के समागम का आनन्द तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब पुन: मनुष्य जन्म की बारी आएगी । ३ ।

८. जिन सुहागिनों ने प्रभु-पति प्राप्त किया है, वे मुझसे अच्छी हैं ।

९. (जो गुण उनमें हैं) वे गुण मुझे नहीं आते; मैं किसको दोष दूँ ? (कि प्रभु प्राप्ति नहीं हुई) । ४ ।

१०. जिन सत्संगियों, सहेलियों ने, प्रभु-पति प्राप्त किया है, जाकर उनसे (मिलाप का उपाय) पूछूंगी ।

११. मैं उनके चरण स्पर्श करूँगी, विनति करूंगी और उनसे (मेल का) मार्ग पूछूँगी । ५ ।

१२. (मार्ग यह है कि नानक) जो नारी प्रभु के आदेश को पहचानती है उसके भय का चन्दन लगाती है,—

१३. और (उसे वश में करने के लिए) गुण रूपी जादू-टोने करती है, वह प्रिय को पा लेती है । ६ ।

१४. जो मनुष्य मन से हरि से मिलता है वह हरि के साथ संलग्न रहता है । वस्तुत: हरि से मिला हुआ वही समझा जाता है ।

१५. (परन्तु) केवल बातों से मेल नहीं होता, चाहे कितना ही यत्न करें ?

१६. जैसे धातु (गलाने के बर्तन में गलकर) धातु में मिल जाती है, वैसे ही प्रेम, प्रेम की ओर खिंच जाता है ।

१७. गुरु की कृपा से जब यह ज्ञान हो जाता है तब निर्भय होकर जाता है । ८ ।

१८. चाहे किसी घर में पानों की क्यारी हो, परन्तु उस घर का गधा उसके महत्त्व को नहीं जानता है।

१९. जो मनुष्य सुगन्ध का रसिक हो, वह ही पुष्प को पहचान सकता है। ९।

२०. (नानक), जो (नाम) अमृत पीता है, उसके भीतर का संशय-भ्रम भीतर ही समाप्त हो जाता है।

२१. वह सहज के बल से हरि से स्वतः ही मिल जाता है और अमरपद प्राप्त कर लेता है। १०। १।

